श्रीरामचरितमानस

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति।

गोस्वामी तुलसीदास कृत

श्रीरामचरितमानस

टीकाकार

स्वर्गीय डा० शंकरलाल मेहरोत्रा

एम० ए०, एल - एल० बी०, पी - एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बरेली कालेज

सम्पादक

कैलाश भूषण जिन्दल

एम० ए०, एल - एल० बी०, आई० आर० एस० (अ० प्रा०)

एडवोकेट, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद

भाग-१

किताब महल (होलसेल डिवीज़न) प्रा० लि०

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण :१९९१

भाग-१

बालकाण्ड एवम् अयोध्याकाण्ड

मुद्रक : किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्रा० लि०,
१५, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद

पितातुल्य

स्वर्गीय पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी के
श्री चरणों में

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरितमानस पर जितनी भी टीकाएं होंगी वह कम ही होंगी, क्योंकि मानस एक ऐसा मानस-सर है जिसमें जितनी भी डुबकी लगाएं कुछ न कुछ नया ही मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक स्वर्गीय डा० शंकरलाल मेहरोत्रा की टीका के साथ मानस का संस्करण है। इस टीका को मेरे मित्र श्री कैलास भूषण जिन्दल ने सम्पादित कर के प्रकाश में लाने का बहुत बडा उपकार किया है।

इस खण्ड में बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड हैं। स्व० शंकरलाल जी मेहरोत्रा की पत्नी ने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि श्री जिन्दल जी को सौंपी और उन्होंने इसको संक्षिप्त किया। इसके साथ ही साथ इसमें कुछ स्थलों पर कथाओं और लोकोक्तियों को विवृत भी किया। मानस की विनायकी टीका इस शताब्दी के प्रारम्भ में जबलपुर में छपी थी। वह पुन: वाणी प्रकाशन से मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से प्रकाशित हुई है। उस टीका में सन्दर्भों को बहुत सूक्ष्मता से खोला गया है। स्व० मेहरोत्रा जी ने अर्पित भाव से यह टीका लिखी ओर उन्होंने अपने सामने गोस्वामी तुलसीदास जी का यही भाव रखा है कि श्री राम में सौन्दर्य, शक्ति और शील, तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है। सगुणोपासना के ये तीन सोपान हैं जिन पर हृदय क्रमश: टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है। इनमें से प्रथम सोपान ऐसा सरल है कि स्त्री-पुरुष, मूर्ख-पंडित, राजा-रंक सब उस पर अपने हृदय को बिना प्रयास अड़ा देते हैं। इसकी स्थापना गोस्वामी जी ने राम के रूप माधुर्य का अत्यन्त मनोहर चित्रण करके की है। आज जो हम फिर झोपड़ी में बैठे किसानों को भरत के'भायप-भाव' पर, लक्षमण के त्याग पर, राम की पितृभक्ति पर पुलकित होते हुए पाते हैं, वह गोस्वामी जी के प्रसाद से। धन्य है गार्हस्थ जीवन में धर्मालोकस्वरूप रामचरित और धन्य है उस आलोक को घर-घर पहुँचाने वाले तुलसीदास।

शंकर लाल जी की टीका की मुख्य विशेषता यह है कि एक तो यह टीका अत्यन्त सहज और पूर्ण है। इसमें अर्थ प्रकाशित किया गया है। दूसरी विशेषता यह है कि जहाँ कहीं ग्रन्थ की संगति दिखलानी है, वहाँ टिप्पणी भी दे दी गई है। और तीसरी विशेषता यह है कि भाषा प्रवाहमय है जिसके कारण यह टीका सर्वसाधारण के लिए उपयोगी बन गई है।

श्री जिन्दल जी ने मूल टीका में जहाँ-जहाँ पुनरुक्ति थी, वहाँ से उसे दूर कर दी है और एक साथ कई-कई चौपाईयों को लेकर, जो प्रसंग की दृष्टि से जुड़ी हुई हैं, भावार्थ संकलित कर दिया है। उससे प्रसंगों का प्रवाह बना रहता है।

श्री रामचरितमानस में गहराई से उतरे बिना अर्थ समझ में नहीं आता और इसलिए प्रसंगों को परस्पर जोड़कर दिखाने से ही अर्थ स्फुरित होता है। इस टीका में यह निरन्तर प्रयास किया गया है कि श्रीरामचरितमानस का समग्र अर्थ सामने रहे और गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिस रूप को नातोरिश्तों के बीच में स्थापित किया है, वह सजीव बना रहे। इस पुण्य कार्य के लिए श्री जिन्दल जी का उपकार मानना चाहिए कि उन्होंने बड़े मनोयोग और परिश्रम से किए गए कार्य का उद्धार किया और उसे संवार करके एक सुन्दर रूप दिया।

मैं स्वर्गीय डा० शंकरलाल जी मेहरोत्रा को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और श्री कैलाश भूषण जिन्दल को साधुवाद देता हूँ।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी,
कार्तिक पूर्णिमा, १९९१

डा० विद्यानिवास मिश्र

सम्पादकीय

मेरा डा० शंकर लाल मेहरोत्रा से परिचय एक सुखद संयोग था। आयकर अधिकारी के पद पर मेरा लखनऊ से बरेली स्थानान्तरण हो गया था। मैं छुट्टियों में अपने घर लखनऊ आया करता था। १९५५ के बड़े दिन के अवकाश के बाद मै लखनऊ से बरेली जा रहा था। उसी ट्रेन में शंकर लाल जी भी यात्रा कर रहे थे। दिन-प्रतिदिन शिक्षा के गिरते हुए स्तर पर बात होने लगी। बातों बात में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और मैथलीशरण गुप्त की 'साकेत' पर विचार विनिमय होने लगा। बरेली पहुँचते-पहुँचते शंकर लाल जी ने 'साकेत' के नाटकीय तत्व पर मेरा ध्यान आकर्षित किया और बिदा होते समय 'साकेत' के अभिमञ्चन का सुझाव मेरे सामने रखा।

घर आकर शंकर लाल जी के सुझाव को मैंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती प्रियम्वदा के सामने रखा। उन्होंने प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया और साकेत को नाटक का रूप देना शुरू कर दिया। एक सप्ताह में नाटक का सम्पूर्ण आलेख उन्होंने तैयार कर दिया। आलेख के कुछ अंश पृष्ठ ६८८-८९ पर उद्धृत हैं। पात्रों के चयन का भार शंकरलाल जी को सौंपा गया। जनवरी, १९५६ की प्रत्येक सायं को मेरे यहाँ रिहर्सल हुए। और १५ फरवरी १९५६ को हिन्द टाकीज़ में 'साकेत' का मञ्चन हुआ। दशरथ की भूमिका में शंकरलाल जी थे और राम की भूमिका में मैं। मुख्य दृश्यों की फ़ोटो ली गयी। फ़ोटो से एक एलबम तैयार किया गया। हर फ़ोटो के नीचे 'साकेत' से सन्दर्भित पंक्तियाँ उद्धृत की गयीं। एलबम चिरगाँव (झाँसी) जाकर मैंने मैथलीशरण गुप्त जी को भेंट किया। एक चित्र में कौशल्या जी राज्यतिलक के पहले कुलदेव सूर्य की सीता से उपासना करा रही हैं। इस चित्र के लिये साकेत से कोई उचित पंक्ति उद्धृत करने के लिये नहीं मिली थी। रिक्त स्थान पर मैथलीशरण जी ने तुरन्त कविता बनाकर दो पंक्तियाँ लिख दीं :

'मूर्तिमयी ममता-माया, कौशल्या कोमल काया।
थीं अतिशय आनन्दयुता, पास खड़ी थीं जनकसुता।।'

१९५६ के अंत में मेरा कलकत्ता स्थानान्तरण हो गया। परन्तु शंकर लाल जी से पत्र-व्यवहार होता रहा। मेरी पत्नी द्वारा लिखे हुये साकेत के आलेख और एलबम को पृष्ठभूमि में रखकर शंकरलाल जी ने 'हिन्दी के महाकाव्यों में नाट्य तत्व' पर एक शोध ग्रन्थ लिखा, जिस पर उनको आगरा विश्वविद्यालय ने पी०-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

'साकेत' से शंकरलाल जी इतना प्रभावित हुये कि बरेली कालेज से सेवानिवृत्त होने पर उनका जीवन राममय हो गया। रात दिन बैठकर उन्होंने तुलसीदास की 'रामचरितमानस' की १८ रजिस्टरों में बृहत टीका लिखी। टीका समाप्त होते ही भगवान

ने उन्हें १० अप्रैल, १९८७ को अपने धाम बुला लिया। तब तक मैं ५. सवानिवृत्त होकर अपने घर लखनऊ लौट आया था। स्व० डा० शंकर लाल मेहरोत्रा की पत्नी श्रीमती डा० सत्या मेहरोत्रा सभी रजिस्टर लेकर मेरे पास आयीं और इच्छा प्रकट की कि शंकर लाल जी की इस अमरकृति को प्रकाशित किया जाये। मैंने यह भार सहर्ष स्वीकार किया।

यदि अट्ठारह रजिस्टर यथावत छापे जाते तो पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जाता। अतएव मैंने उन रजिस्टरों को ध्यानपूर्वक पढ़कर, १६०० पृष्ठों में संक्षिप्त किया। नयी पाण्डुलिपि तैयार करते सयम, निम्न बातों पर मैंने विशेष ध्यान दिया :

१. शंकरलाल जी ने एक-एक चौपाई का अलग-अलग अर्थ लिखा। परन्तु तुलसीदास जी ने दो दोहों के बीच की चौपाइयों में एक सम्पूर्ण भाव व्यक्त किया है। अतएव मैंने दो दोहों के बीच की चौपाइयों का मूल पाठ एक जगह एकत्र कर दिया है और सम्पूर्ण पाठ का भावार्थ एक साथ दिया है।

२. शब्दार्थ और भावार्थ में विशेष अन्तर नहीं है। पुनरोक्ति बचाने के लिए मैंने दोनों को एक में मिश्रित कर दिया है।

३. मानस में बहुत से मार्मिक स्थल हैं, अनेक अलंकार और रूपक हैं, कितनी ही लोकोक्तियाँ और अन्तर्कथाएं हैं। इनको उजागर करने का मैंने विशेष प्रयास किया है। पात्रों और लोकोक्तियों की अन्त में सूची भी दे दी है। आशा है मेरे इस प्रयास से 'नानापुराणनिगमागम सम्मत' मानस के समझने में पाठकों को अधिक सुविधा होगी।

पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक दो भागों में छापी गई है। पहले भाग में बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड हैं। दूसरे भाग में शेष पाँच काण्ड। पहले २४० पृष्ठों का टाइप शेष पुस्तक से भिन्न है। पहले २४० पृष्ठ हाथ से एक-एक फ़र्मा कम्पोज करके लखनऊ में छापे गए। इसमें बहुत समय लगा। इसलिए शेष पुस्तक कम्पयूटर प्रणाली द्वारा एक साथ इलाहाबाद में छपी।

आभारी हूँ धामपुर शुगर मिल के निदेशक सर्वश्री विजय कुमार और अशोक कुमार गोयल का जिनकी कृपा से समस्त पुस्तक का कागज हमें निःशुल्क मिला। श्री तेज टण्डन, टण्डन प्लाज़ा, १३१ बोस्टन रोड, नोर्थ बिलेरिका, मैसाचुसेट, यू० एस० ए०, ने मुद्रण का भार स्वीकार कर जो सहयोग दिया है उसके लिये मैं कृतज्ञ हूँ। वस्तुतः इन तीनों महानुभावों के सहकार के अभाव में इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव ही न होता।

जय श्री राम !

अजिताश्रम, गणेशगञ्ज, लखनऊ
दीपावली १९९१

कैलाश भूषण जिन्दल

डा० शंकर लाल मेहरोत्रा

आत्म-परिचय

१४ जनवरी, सन् १९०७ ई० दिन सोमवार को प्रतापगढ़ (अवध) में नाना जी नानक चन्द्र कपूर के यहाँ मेरा जन्म हुआ। पिता श्री पन्ना लाल मेहरोत्रा खाद्य पदार्थों को उचित मूल्य पर हरिद्वार के ऋषिकुल विद्यालय के छात्रों तथा दूधिया बाँध के श्रमिकों को देने का कार्य करते थे। माता श्रीमती कश्मीरी देवी ने बाल्यावस्था में ही मेरी रुचि रामायण में लगा दी और जब मैं दस वर्ष का था उनका स्वर्गवास हो गया। श्रीमान् पिताजी सदा जाप करते थे। और वास्तव में सन्त थे। ९९ वर्ष की आयु में ४ मार्च १९७८ को उनका स्वर्गवास हुआ।

उनके आशीर्वाद से सन् १९३० में मैंने बरेली कालेज, बरेली से बी० एस-सी० पास किया। लगभग चार वर्ष में कुछ समय हाईस्कूल में साइन्स मास्टर तथा पटियाला रियासत के कार्यालयों में कार्य किया। कुछ समय कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में प्रभात फिल्म कम्पनी में सहायक मैनेजर तथा हिन्दी भाषा का पात्रों से ठीक उच्चारण कराने का कार्य किया। सन् १९३४ में बरेली कालेज, बरेली में एल-एल० बी० विषय पढ़ना प्रारम्भ किया और सन् १९३६ में एल-एल० बी० पास करके छः महीने का अनिवार्य विधि शिक्षण कार्य सरकारी वकील के अधीन रहकर पूरा किया। विधि परीक्षा के साथ बी० ए० हिन्दी में पास कर लिया था। ७ नवम्बर सन् १९३७ को मेरी नियुक्ति बसी (पटियाला) में हाईस्कूल कक्षाओं को गणित एवं हिन्दी बढ़ाने हेतु हो गई। वहाँ सेवा करते हुए मैंने हिन्दी में प्रभाकर (पंजाब विश्वविद्यालय, साहित्य रत्न (नागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग), एम० ए० हिन्दी तथा इन्टरमीडिएट ड्राइंग ग्रेड की परीक्षाएं पास की। ६ जून, सन् १९४४ को बरेली कार्पोरेशन बैंक लिमिटेड के संस्थापक श्री छैल बिहारी लाल कपूर बिहारीपुर, बरेली ने अपने निजी सहायक के रूप में मेरी नियुक्ति कर दी। उनकी असीम अनुकम्पा से मुझे बैंक के सारे विभागों, यहाँ तक कि मैनेजर और ब्राँच आडिटर के रूप में, कार्य करने का अवसर मिला। उनकी ही दृढ़ता से मैंने आल इन्डिया इंस्टीट्यूट आफ़ बैंकर्स की प्रथम वर्ष की परीक्षा भी पास की, जिससे वेतन वृद्धि के साथ मुझे बरेली कारपोरेशन बैंक, दर्जी चौक, बड़ा बाजार, बरेली शाखा का मैनेजर बना दिया गया।

पर प्रभु इच्छा तो कुछ और थी। दिसम्बर सन् १९४५ में कुँवर भुरली मनोहर ने, जो धामपुर शुगर मिल्स लि० के और एच० आर० शुगर फैक्ट्री बरेली के प्रभावी डाइरेक्टर थे, दो बार के सम्पर्क के पश्चात् मेरे परममित्र श्री सूर्य प्रकाश, एडवोकेट के घर आकर, मुझे अपना निजी सहायक बना लिया। वेतन भी बैंक से लगभग दुगना कर दिया और जनवरी, सन् १९४६ से मैंने उनका कार्य प्रारम्भ किया। यद्यपि हमारे स्वभावों में मेल नहीं था फिर भी वे मुझे बहुत मानते थे।

सन् १९५० में बरेली कालेज में मेरी नियुक्ति हिन्दी विभाग में हुई। शेष समय में श्री मुरली मनोहर जी का कार्य देखना पड़ता था। उनका मुझ पर पूर्ण विश्वास था। वकालत की शिक्षा और बैंक के अनुभव उनके यहाँ काम आये।

सन् १९६० में मैंने "हिन्दी महाकाव्यों में नाट्य तत्व" शोध ग्रन्थ पूरा किया और आगरा विश्वविद्यालय ने मुझे पी० एच० डी० की डिग्री प्रदान की। तत्पश्चात् मैंने अपने एक शिष्य श्री रमाकान्त शर्मा से अपने निरीक्षण में "हिन्दी सन्त काव्यों में माया का स्वरूप" नामक शोध ग्रन्थ लिखवाया। परीक्षकों ने ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की और उन्हें पी० एच० डी० डिग्री से विभूषित किया। श्री रमाकान्त शर्मा इस समय बरेली कालेज, बरेली के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। इसी प्रकार श्री राम प्रकाश को "संत गरीबदास" पर और श्रीमती शान्ता वर्मा को "जयशंकर प्रसाद की शब्द शैली" पर शोध ग्रन्थ लिखवा कर, उन्हें भी आगरा विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० डिग्रियाँ प्राप्त कराई। श्री रामप्रकाश देहली में अध्यापन कार्य कर रहे हैं और श्रीमती शान्ता वर्मा, भूड़ कन्या महाविद्यालय, बरेली में प्राध्यापक के पद पर कार्य कर रही हैं।

३० जून सन् १९६९ को मैंने बरेली कॉलेज से अवकाश प्राप्त किया। जुलाई १९६९ को धामपुर शुगर मिल्स लि० के पंजीकृत कार्यालय में मैनेजर का पद भार ग्रहण किया और आयु के कारण तथा प्रभु इच्छा से १६ अक्टूबर १९८३ को वहाँ से भी अवकाश प्राप्त कर लिया।

पटियाला में १९३० में मेरा विवाह हुआ। मेरी धर्मपत्नी डा० श्रीमती सत्या मेहरोत्रा सुशिक्षित एवं सुशील महिला हैं। आजकल वह धर्मार्थ ट्रस्ट में रोगियों की मुफ्त होमियोपैथी चिकित्सा करती हैं तथा कई समाज सेवी संस्थाओं से संलग्न हैं। उन्होंने मुझे सदैव मेरे कार्यों में प्रेरणा दी तथा एक आदर्श पत्नी की भाँति सदैव मुझे सहयोग दिया। जीवन में मैं जो कुछ भी कर पाया हूँ उसमें उनका योगदान रहा है। उन्हीं की प्रेरणा से स्व० सूर्य प्रकाश जी इतना प्रभावित हुये कि नगर बरेली में अति सुन्दर वातावरण में श्मशान घाट का निर्माण कराया। यह कितना सुन्दर एवं भावना प्रधान है, इस से प्रमाणित हो जायेगा कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद यहाँ स्वयं आये और इसे देखकर यही कहा कि क्या ही अच्छा हो कि मेरा अन्तिम संस्कार भी इसी स्थान पर हो।

सत्या जी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उन्होंने ही मुझे रामायण का सार लिखने हेतु प्रेरित किया। वह सदैव मुझसे कहा करती थीं कि मैं कुछ रामायण पर लिखूँ जो कि नवीन हो, मौलिक हो तथा उसका लाभ जनसामान्य भी उठा सकें। अतः उन्हीं की प्रेरणा से मैंने रामायण का सार लिखने का प्रयत्न किया जो कि आपके समक्ष है।

रामचरित मानस का पाठ मैं बाल्यकाल से करता रहा हूँ और गत लगभग ३५ वर्षों से प्रतिदिन श्री हनुमान जी के भी दिन में एक बार दर्शन करता हूँ। गोस्वामी तुलसीदास जी की एक चौपाई में "मैं अरु मेर तोर तैं माया" पढ़कर आश्चर्य चकित रह गया, कि जिस "माया" के लिए पूरा शोध प्रबन्ध तैयार करा दिया फिर भी वह "माया" क्या है? समझ में न आया जबकि गोस्वामी जी ने केवल छः शब्दों में ही " माया" की सम्पूर्ण एवं विषद व्याख्या कर दी है। संस्कृत एवं हिन्दी के प्राध्यापक, अन्य कथावाचक, विशिष्ट उपाधियों से सम्मानित प्रवचन कर्त्ता भी इन छः शब्दों का ठीक उत्तर नहीं दे सके, जबकि मानव यदि चाहे सुगमता से "माया" से मुक्त हो सकता है। एक बार यह विचार आया कि रामचरित मानस का अखण्ड पाठ होता है जो फलदायक है पर वह केवल गले तक या कान तक ही रह जाता है। उसमें श्रीराम तथा अन्य पात्रों ने मानव जीवन ही व्यतीत किया है, जिसको अपना कर जीवन को ही सुखी बना लेना कठिन नहीं है। परन्तु बार-बार श्री राम को भगवान कह कर साधारण मानव को यह विचार करने पर विवश कर दिया जाता है कि "श्री राम भगवान होने के कारण सब कुछ कर सकते थे। हम साधारण मानस है हम किस प्रकार उनके आदर्शों का पालन कर सकते हैं?" श्री राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को ध्यान में रखना सहज नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त आज से ६५ वर्ष पूर्व रामकथा को कल्पना मात्र अंग्रेज और इसाई कहते थे, परन्तु आज तो वह पूर्ण सत्य रूप सिद्ध है। ऐसी भीषण परिस्थिति में जिसमें भारत ही नहीं वरन् सारा जगत है, यदि कोई सुगम मार्ग प्रदर्शन कर सकता है तो वह है रामचरित-मानस। स्वान्त: सुखाय से ही जग-हिताय है। गत छः वर्षों से आन्तरिक प्रेरणा से भावार्थ लिखना प्रारम्भ किया, क्योंकि लगभग गत् ४०० वर्षों में लोगों ने रामचरित मानस को पूजा अवश्य पर अपनाया नहीं। यह अनुभव किया है कि लेखनी जब श्री राम कृपा से चलती है तो भावार्थ पूरा करके ही रुकती है। कहीं काँट छाँट नहीं करनी पड़ी। यह प्रभु प्रसाद है जिसे तो बाँटना ही होगा। कठिन से कठिन शंकाओं का समाधान श्री हनुमान जी ने किया है। इसमें किसी भी अन्य पुस्तक से कुछ नहीं लिया गया है। जिसने यह महान कार्य करवाया है उसी को यह सादर समर्पित है।

३५-ए०, सिविल लाइन्स,
चौकी चौराहा,
बरेली

डा० शंकर लाल मेहरोत्रा

गोस्वामी तुलसीदास

प्रयाग के पास बाँदा जिले में राजापुर नामक एक ग्राम है। वहाँ आत्माराम दूबे नाम के एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। संवत् १५५४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन अभुक्तमूल नक्षत्र में इन्हीं भाग्यवान् दम्पति के यहाँ बारह महीने तक गर्भ में रहने के पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म हुआ। जन्मते समय बालक तुलसीदास रोये नहीं; किन्तु उनके मुख से 'राम' का शब्द निकला। उनके मुख में बत्तीसों दाँत मौजूद थे। उनका डील-डौल पाँच वर्ष के बालक कासा था। इस प्रकार के अद्भूत बालक को देखकर पिता अमंगल की शंका से भयभीत हो गये और उसके सम्बन्ध में कई प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे। माता हुलसी को यह देखकर बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने बालक के अनिष्ट की आशंका से दशमी की रात को नवजात शिशु को अपनी दासी के साथ उसके ससुराल भेज दिया और दूसरे दिन स्वयं इस असार संसार से चल बसीं। दासी ने जिसका नाम मुनियाँ था, बड़े प्रेम से बालक का पालन-पोषण किया। जब तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्ष के हुए, मुनियाँ का भी देहान्त हो गया। अब तो बालक अनाथ हो गया। वह द्वार-द्वार भटकने लगा। इस पर जगज्जननी पार्वती को उस होनहार बालक पर दया आयी। वे ब्राह्मणी का वेष धारण कर प्रतिदिन उसके पास जातीं और उसे अपने हाथों से भोजन करा जातीं।

इधर भगवान शंकर जी की प्रेरणा से रामशैल पर रहने वाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्री नरहर्यानन्द जी ने इस बालक को ढूँढ निकाला और उसका नाम 'रामबोला' रक्खा। उसे वे अयोध्या ले गये और वहाँ संवत् १५६१ माघ शुक्ला पंचमी शुक्रवार को उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्रीमन्त्र का उच्चारण किया, जिसे देखर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि स्वामी ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके रामबोला को राममन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उन्हें विद्याध्ययन कराने लगे। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। एक बार गुरुमुख से जो सुन लेते थे, उन्हें वह कण्ठस्थ हो जाता था। वहाँ से कुछ दिन बाद वे काशी चले आये। काशी में शेष सनातन जी के पास रहकर तुलसीदास जी ने पंद्रह वर्ष तक वेद-वेदान्त का अध्ययन किया। इधर उनकी लोकवासना कुछ जाग्रत हो उठी और अपने विद्यागुरु से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि को लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि उनका परिवार सब नष्ट हो चुका है। उन्होंने विधिपूर्वक अपने पिता आदि का श्राद्ध किया और वहीं रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

यमुना पार एक गाँव में दीनबन्धु पाण्डे कपड़े के व्यापारी थे। तुलसीदास जी के पाण्डित्य से प्रभावित होकर इन्होंने गुरूवार, ज्येष्ठ शुक्ला १३, संवत् १५६३ को अपनी

कन्या रत्नावली का विवाह तुलसीदास जी से करा दिया। रत्नावली बहुत सुन्दर थी और तुलसीदास उस पर आसक्त थे। एक बार रत्नावली भाई के साथ अपने मायके चली गयी। नव विवाहिता पत्नी का विरह तुलसीदास के लिए असह्य हो गया। वह रातोरात यमुना को तैर कर ससुराल पहुँच गए। इस प्रकार अर्धरात्रि में यकायक पति को अपने कक्ष में पाकर रत्नावली को बहुत ग्लानि हुई। वह धिक्कारते हुए बोली :

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक-धिक ऐसी प्रीति को कहा कहौं मैं नाथ।।
जितना चित्त हराम में तितना हरि में होय।
चला जाय बैकुण्ड को पल्ला गहै न कोय।।

अर्थात, मेरे इस हाड़-मांस के शरीर में जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता।

तुलसीदास जी को ये शब्द लग गये। वे एक क्षण भी नहीं रुके – तुरन्त वहाँ से चल दिये। वहाँ से चलकर तुलसीदास जी प्रयाग आये। वहाँ उन्होंने गृहस्थवेष का परित्याग कर साधुवेष ग्रहण किया। फिर तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे। वहाँ प्रह्लाद घाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया।

काशी में रहकर उन्होंने पुराणों और संस्कृत रामायणों का अध्ययन किया और उनके अन्दर कवित्व-शक्ति का स्फुरण हुआ। किम्बदन्ती है कि एक रात्रि स्वप्न में उनके सामने शिव-पार्वती प्रकट हुए और भगवान ने उन्हें आदेश दिया कि 'तुम अयोध्या जाकर रहो और अपनी भाषा में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से अयोध्या चले आये। संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। उस साल रामनवमी के दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्री रामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन में ग्रन्थ की समाप्ति हुई। संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में रामविवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। तुलसीदास जी अब असी घाट पर रहने लगे। संवत् १६८०, श्रावण शुक्ल सप्तमी, शनिवार को असी घाट पर गोस्वामी जी ने राम-राम कहते हुए अपना शरीर-परित्याग किया :

संवत सोरह सौ असी असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सत्तमी तुलसी तज्यो शरीर।।

कहा जाता है कि तुलसीदास ने ३७ ग्रन्थ लिखे, परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रन्थावली' में केवल १२ का उल्लेख है। इनका संक्षिप्त विवरण अगले पृष्ठ में दिया गया है :

ग्रन्थ	वर्ष	छन्द	पद संख्या	भाषा
१. कृष्ण गीतावली	१५७१	गीत विभिन्न रागो में	६१	ब्रज
२. गीतावली	१५७१	गीत विभिन्न रागो में	३२६८	ब्रज
३. राचरित मानस	१५७४	संस्कृत श्लोक, दोहा १२०० सोरठा, चौपाई ५१०० और छन्द	९९००	फारसी-जन्य शब्दों के पुट सहित अवधी
४. रामलला नहछू	१५८२	सोहर	२०	बैसवारा अँचल
. जानकी मंगल	१५८६	अरुण और हरिगीतिका	२१६	पूर्वी अवधी
. पार्वती मंगल	१५८६	अरूण और हरिगीतिका	१६४	पूर्वी अवधी
७. रामाज्ञा प्रश्न	१५९८	दोहा	३४३	ब्रजभाषा के शब्दो के पुट सहित अवधी अवधी
. वैराग्य संदीपनी	१५८२ १६१२	दोहा, चौपाई और दो सोरठे	६२	
. विनय पत्रिका	१६०९	विभिन्न रागों में स्तुतियाँ	२७९	ब्रज, भोजपूरी और बुन्देलखण्डी
०.कवितावली	१६१२	सवैया और कवित्त	३२५	ब्रज
१. बरवै रामायण	१६१२	रहीम का बरवा छन्द	६९	अवधी
२. दोहावली	१६२३	दोहे और २२ सोरठे	५७३	अवधी

रस	विषय
श्रृंगार और करुण	भगवान कृष्ण के जीवन की झलकियाँ
श्रृंगार और करुण	मुक्तक छदों द्वारा सात खण्डों में रामकथा
नव रस	सम्पूर्ण राम कथा ; अन्तर्कथाओं सहित
श्रृंगार	लोकगीत, राम के विवाह के समय गाये गये
श्रृंगार	सीता-स्वयंवर, परशुराम संवाद, चारों भाइयों का विवाह
श्रृंगार	सतीमोह और पार्वती विवाह
शांत	एक प्रकार का ज्योतिष - ग्रन्थ । प्रश्न पूछो और जिस दोहे पर उंगली रखदोगे, वही उसका उत्तर
शांत	संत के लक्षण
शांत	राम और अन्य देवी-देवताओं का स्तुति
वीर और करुण	कवित्तों में रामायण।अन्तिम काण्ड में तुलसीदास के निज़ी जीवन की झलकियाँ।
नव रस	राम की कथा के सहारे कवि ने अलंकारों और रसों का चमत्कार दिखाया है ।
शांत	अपने अन्य ग्रन्थों से संकलित नीति के दोहे । केवल ३२० मौलिक हैं ।

जिस धूमधाम से 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना उठती है उसे देखते ही इसके महत्व का आभास मिलने लगता है। ऐसे दृष्टिविस्तार के साथ, जगत् की ऐसी गंभीर समीक्षा के साथ और किसी ग्रंथ की प्रस्तावना नहीं लिखी गई। रामायणियों में प्रसिद्ध है कि 'बाल' के आदि, 'अयोध्या' के मध्य और 'उत्तर' के अंत की गंभीरता की थाह डूबने से मिलती है। बात भी कुछ ऐसी ही है। मनुष्य जीवन की दशा के हिसाब से देखें तो 'बालकाण्ड' में आनन्दोत्सव अपनी हद को पहुँचता है ; 'अयोध्या' में गार्हस्थ की विषम स्थिति सामने आती है ; और 'उत्तर' में कर्म की चरम सीमा, विजय और विभूति का चित्र दिखाई पड़ता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की आत्मा ने उस समय भारतीय जनसमाज के बीच अपनी ज्योति जगाई जिस समय नए-नए संप्रदायों की खींचतान के कारण आर्यधर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था, एकांगदर्शिता बढ़ रही थी। जो एक कोना देख पाता था, वह दूसरे कोने पर दृष्टि रखने वालों को बुरा भला कहता था। शैवों, वैष्णवों, शाक्तों की तू-तू मैं-मैं तो थी ही, बीच में मुसलमानों से अविरोध प्रदर्शन करने के लिये भी अपढ़ जनता को साथ लगाने वाले कई नए नए पंथ निकल चुके थे, जिनमें एकेश्वरवाद का कट्टर स्वरूप, उपासना का आशिकी रंगढंग, ज्ञानविज्ञान की निंदा, विद्वानों का उपहास, वेदांत के चार प्रसिद्ध शब्दों का अनधिकार प्रयोग आदि सब कुछ था; पर लोक को व्यवस्थित करने वाली वह मर्यादा न थी जो भारतीय आर्यधर्म का प्रधान लक्षण है।

बौद्धों की महायान शाखा का एक अवशिष्ट 'अलखीया' संप्रदाय था। यह अंतःकरण के मन, बुद्धि, विवेक, हेतु और चैतन्य ये पांच भेद बतलाता था और शून्य का ध्यान करने को कहता था। अलख से प्रादुर्भूत निराकार तुरीयावस्था में रहता है और उसी दशा में उससे ज्योति की उत्पत्ति होती है। अलख संप्रदाय के साधु अपने को बड़े भारी रहस्यदर्शी, योगी और 'अलख' को लखने वाले प्रकट किया करते थे। साधनात्मक और क्रियात्मक रहस्यवाद का योगतंत्र और रसायन के रूप में विकास हुआ। मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ ने हठ्योग को शैव रूप दिया। मुसलमानी शासन के प्रारंभ काल में इसी पंथ के साधु उत्तरीय भारत में अधिक घूमते दिखाई देते थे जिनकी रहस्यभरी बाते हिंदू और मुसलमान दोनों सुनते थे।

अरब और फारस का भावात्मक रहस्यवाद लेकर जब सूफी हिन्दुस्तान में आए तब उन्हें यही रहस्योन्मुख संप्रदाय मिला। इसी से उन्होंने हठयोग की बातों का बड़ी उत्कंठा के साथ अपने संप्रदाय में समावेश किया। जायसी आदि सूफी कवियों की पुस्तकों में योग और रसायन की बहुत सी बातें बिखरी मिलती हैं। रहस्यवादी सूफियों के प्रेमतत्व के साथ वेदान्त के ज्ञानमार्ग की कुछ बातें जोड़कर जो निर्गुणपंथ चला उसमें 'ईला, पिंगला, सुषमन, नाड़ी' की चर्चा बराबर रही।

सारांश में, गोस्वामी जी से पूर्व तीन प्रकार के साधु समाज के बीच रमते दिखाई देते

थे । एक तो प्राचीन परंपरा के भक्त जो प्रेम में मग्न होकर संसार को भूल रहे थे, दूसरे वे जो अनधिकार ज्ञानगोष्ठी द्वारा समाज के प्रतिष्ठित आदर्शों के प्रति तिरस्कार बुद्धि उत्पन्न कर रहे थे, और तीसरे वे जो हठयोग, रसायन आदि द्वारा अलौकिक सिद्धियों की व्यर्थ आशा का प्रचार कर रहे थे । इन तीनों वर्गों के द्वारा साधारण जनता के लोकधर्म पर आरूढ़ होने की संभावना कितनी दूर थी, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

सूफियों ने हठयोगियों की जिन बातों को अपने मेल में देखा वे थीं रहस्य की प्रवृत्ति, ईश्वर को केवल मन के भीतर समझना और ढूंढना, बाहरी पूजा और उपसना का त्याग। ये तीनों बातें भारतीय भक्तिमार्ग से मेल खाने वाली नहीं थी । भारतीय भक्तिपद्धति 'रहस्य' की प्रवृत्ति को भक्ति की सच्ची भावना में बाधक समझती है । भारतीय परंपरा का भक्त अपने उपास्य को बाहर लोक के बीच प्रतिष्ठित करके देखता है, अपने हृदय के कोने में नहीं। वह ध्यान भी करता है तो जगत के बीच अपनी प्रत्यक्ष कला का प्रकाश करते हुए व्यक्त ईश्वर का ।

सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने श्री कृष्ण के शृंगारिक रूप के प्रत्यक्षीकरण द्वारा 'टेढ़ी-सीधी निर्गुण वाणी' की खिन्नता और शुष्कता को हटाकर जीवन की प्रफुल्लता का आभास तो दिया, पर भगवान के लोक-संग्रहकारी रूप का प्रकाश करके धर्म के सौन्दर्य का साक्षात्कार नहीं कराया । कृष्णोपासक भक्तों के सामने राधाकृष्ण की प्रेमलीला ही रखी गई, भगवान की लोकधर्म स्थापना का मनोहर चित्रण नहीं किया गया ।

वाल्मीकि ने राम के नरत्व और नारायणत्व, इन दो पक्षों में से नरत्व की पूर्णता प्रदर्शित करने के लिये उनके चरित का गान किया । पर गोस्वामी जी ने राम का नारायणत्व लिया और अपने 'मानस' को भगवद्भक्ति के प्रचार का साधन बनाया ।

ज्ञान मार्ग की ओर ब्रह्म का निरूपण बहुत पहले से हो चुका था, पर वह ब्रह्म लोकव्यवहार से तटस्थ था । लौकिक उपासना के योग्य वह नहीं था । धीरे-धीरे उसके व्यावहारिक रूप, सगुणरूप, की प्रतिष्ठा हुई । उधर स्थितिरक्षा का विधान करने वाले धर्म और शील के नाना रूपों की अभिव्यक्ति पर जनता पूर्ण रूप से मुग्ध हो चुकी थी । उसने चट दया, दाक्षिण्य, क्षमा, उदारता, वत्सलता, सुशीलता आदि उदात्त वृत्तियों का आरोप ब्रह्म के लोकपालक सगुण स्वरूप में किया । लोक में 'इष्टदेव' की प्रतिष्ठा हो गई । नारायण वासुदेव के मंगलमय रूप का साक्षात्कार हुआ । जनसमाज आशा और आनंद से नाच उठा। भगवत धर्म का उदय हुआ । भगवान पृथ्वी का भार उतारने और धर्म की स्थापना करने के लिये बार बार आते हुये साक्षात् दिखाई पड़े । जिन गुणों से लोक की रक्षा होती है, जिन गुणों को देख हमारा हृदय प्रफुल्ल हो जाता है, उन गुणों को हम जिसमें देखें वही 'इष्टदेव' है ।

धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है । हमारे यहाँ धर्म से अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों की सिद्धि कही गई है । अत: मोक्ष का मार्ग धर्ममार्ग से बिल्कुल अलग नहीं जा सकता । धर्म का विकास इसी लोक के बीच हमारे परस्पर व्यवहार के भीतर होता है। हमारे परस्पर व्यवहारों का प्रेरक हमारा रागात्मक या भावात्मक हृदय होता है । अत: हमारे जीवन की पूर्णता कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों के समन्वय में है । साधना किसी प्रकार की हो, साधक की पूरी सत्ता के साथ होनी चाहिए–उसके किसी अंग को सर्वथा छोड़कर नहीं । यह हो सकता है कि कोई ज्ञान को प्रधान रखकर धर्म और उपासना को अंगरूप में लेकर चले, कोई भक्ति को प्रधान रखकर ज्ञान और कर्म को अंगरूप में रखकर चले । तुलसीदास जी भक्ति को प्रधान रखकर चलने वाले अर्थात भक्तिमार्गी थे । उनकी भक्तिभावना में यद्यपि तीनों का योग है पर धर्म का योग पूर्ण परिमाण में है । धर्म भावना का उनकी भक्ति भावना से नित्य संबंध है।

भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास जी ने लोक के संमुख रखा है, भक्ति का जो प्रकट आलंबन उन्होंने खड़ा किया है, उसमें सौन्दर्य, शक्ति और शील, तीनों विभूतियों की पराकाष्ठा है । सगुणोपासाना के ये तीन सोपान हैं जिनपर हृदय क्रमश: टिकता हुआ उच्चता की ओर बढ़ता है । इनमें से प्रथम सोपान ऐसा सरल है कि स्त्री-पुरुष, मूर्ख-पंडित, राजा-रंक सब उस पर अपने हृदय को बिना प्रयास अड़ा देते हैं । इसकी स्थापना गोस्वामी जी ने राम के रूप माधुर्य का अत्यंत मनोहर चित्रण करके की है । आज जो हम फिर झोपड़ी में बैठे किसानों को भरत के 'भायप भाव' पर, लक्ष्मण के त्याग पर, राम की पितृभक्ति पर पुलकित होते हुये पाते हैं, वह गोस्वमी जी के ही प्रसाद से । धन्य है गार्हस्थ जीवन में धर्मालोकस्वरूप रामचरित और धन्य है उस आलोक को घर घर पहुँचाने वाले तुलसीदास ।

तुलसीदास केवल धर्मोपदेष्टा और नीतिकार नहीं थे, अपितु एक महान कवि भी थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है उनकी प्रबन्धपटुता । हिन्दी का और कोई पुराना कवि इस क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता । चारणकाल के चंद आदि कवियों ने भी प्रबंधरचना की है; पर उसमें चरित्रचित्रण को वैसा स्थान नहीं दिया गया है, वीरोल्लास ही प्रधान है । जायसी आदि मुसलमान कवियों की प्रबंधधारा केवल प्रेमपथ का निदेर्शन करती गई है । केशव में प्रबंधपटुता नामको नहीं जिससे कथानक का सम्बन्ध निर्वाह होता है । उनकी "रामचन्द्रिका" फुटकर पद्यों का संग्रह सी जान पड़ती है ।

कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे । जो केवल दांपत्य रति में ही अपनी भावुकता प्रकट कर सकें, या वीरोत्साह ही का अच्छा चित्रग कर सकें, वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते । पूर्ण भावुक वे ही हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्दशक्ति द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें । हिन्दी के

कवियों में इस प्रकार की सर्वांगपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है, जिसके प्रभाव से 'रामचरितमानस' उत्तरी भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है ।

गोस्वामी जी की रुचि काव्य के अतिरञ्जित या प्रगीत स्वरूप की ओर नहीं थी । वह श्रोताओं या पाठकों को ऐसी भूमि पर ले जाकर खड़ा करने में ही अग्रसर रही है जहाँ से जीते जागते जगत की रूपात्मक और क्रियात्मक सत्ता के बीच भगवान् की भावमयी मूर्ति की झाँकी मिल सकती है । गोस्वामी जी का उद्देश्य लोक के बीच प्रतिष्ठित रामत्व में लीन करना है ; कुतूहल या मनोरञ्जन की सामग्री एकत्र करना नहीं । श्लेष, यमक, परिसंख्या इत्यादि कोरे चमत्कार विधायक अलंकार रखने के लिये ही उन्होंने कहीं रचना नहीं की है।

गोस्वामी जी ने यद्यपि अपनी रचना 'स्वांतः सुखाय' बताई है, पर वे कला की कृति के अर्थ और प्रभाव की प्रेषणीयता को बहुत ही आवश्यक मानते थे ? किसी रचना का वही भाव जो कवि के हृदय में था यदि पाठक या श्रोता के हृदय तक न पहुँच सका तो ऐसी रचना कोई शोभा नहीं प्राप्त कर सकती । गोस्वामी जी मनुष्य जीवन की बहुत अधिक परिस्थितियों का जो सन्निवेश कर सके, वह उनके हृदय की विशालता, भावप्रसार की शक्ति, मर्म स्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना और शब्दशक्ति की सिद्धि के बिना नहीं हो सकता था । मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं । यदि कहीं सौंदर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्षपुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनन्दोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो दीनता -- तुलसीदास जी के हृदय में बिंबप्रतिबिंब भाव से विद्यमान है । इसी एक ग्रंथ से जन साधारण को नीति का उपदेश, सत्कर्म की उत्तेजना, दुःख में धैर्य, आनन्दोत्सव में उत्साह, कठिन स्थिति को पार करने का बल--सब कुछ प्राप्त होता है । यह उनके जीवन का साथी हो गया है ।

तुलसी की वाणी मनुष्य जीवन की प्रत्येक दशा तक पहुँचने वाली है । राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वनगमन ; चित्रकूट में राम और भरत का मिलन ; शबरी का आतिथ्य ; लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप ; भरत की प्रतीक्षा-- ये स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं । रामचरित जीवन की सब दशाओं की समष्टि है, इसका प्रमाण 'रामाज्ञा प्रश्न' है जिससे लोग हर एक प्रकार की आनवाली दशा के संबंध में प्रश्न करते और उत्तर निकालते हैं । जीवन की इतनी दशाओं का पूर्ण मार्मिकता के साथ जो चित्रण कर सका, वही सबसे बड़ा भावुक और सबसे बड़ा कवि है, उसी का हृदय लोक-हृदय स्वरूप है ।

इतनी विस्तृत रचना के भीतर दो चार खटकने वाली बातें भी मिलती हैं, जिनका संक्षेप में नीचे उल्लेख किया गया है--

(१) ऐतिहासिक दृष्टि की न्यूनता। इस दोष से शायद ही कोई बच सकता हो। किसी की रचना हो उसके समय का आभास उसमें अवश्य रहेगा। इसी से ऋषियों के आश्रमों और विभीषण के दरवाज़े पर गोस्वामी जी ने तुलसी का पौधा लगाया और राम के मस्तक पर रामानंदी तिलक। वस्तुतः उनके समय में न तो रामानंदी तिलक की महिमा लोगों को मालूम हुई थी और न तुलसी की। राम के सिर पर जो चौगोशिया टोपी रखी है, उसका तो कोई ख्याल नहीं।

(२) नामप्रताप को राम के प्रताप से भी बड़ा कहने का (राम से अधिक राम कर नामा) प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। सच्ची भक्ति से कोई मतलब नहीं, टीका लगाकर केवल 'रामनाम' रटना बहुत से आलसी अपाहिजों का काम हो गया।

(३) 'मानस' में कई स्थानों पर पुनरोक्ति है। बालकाण्ड में रामजी की बरात ने जब अयोध्या से प्रस्थान किया और सीता जी को लेकर मिथिला से लौटी-- इतने समय में बार बार 'निसान' और'दुन्दुभी' बजने का संकेत किया गया है। अयोध्याकाण्ड में गंगा पार करके जब राम-लक्ष्मण बनगमन करते हैं तो मार्ग की ग्राम बधु दुःख से विह्वल होकर कहती हैं--

'ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्हं पठए बन बालक ऐसे।।'

इस पंक्ति का अक्षरशः दो जगह प्रयोग किया गया है। पुनरोक्ति के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

(४) गोस्वामी जी वैरागी थे। स्त्रियों से काम उत्पन्न होता है ; अतः स्त्रियों को उन्होंने स्थान-स्थान पर बुरा कहा है। किसी वस्तु से विरक्त करना जिसका उद्देश्य है वह अपने उद्देश्य का साधन उसे बुरा कहकर ही कर सकता है। पर उद्दिष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिये इस युक्ति का अवलंबन गोस्वामी जी ऐसे उदार और सरल प्रकृति के महात्मा के लिये सर्वथा अनुचित था। स्त्रियां भी प्राणी हैं–निंदा से उनका जी दुख सकता है।

श्रीरामचरितमानस

प्रथम सोपान

(बालकाण्ड)

श्लोक

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ।।१।।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।२।।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।३।।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ।।४।।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।।५।।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ।।६।।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वन्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।।७।।

भावार्थ—अक्षरों, रसों, छन्दों के द्वारा मंगल करने वाले सरस्वती और गणेश जी की मैं वन्दना करता हूँ। श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप पार्वती जी और शंकर जी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। ज्ञानमय शंकर-रूपी गुरू की मैं नित्य वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है। ज्ञान सम्पन्न कवीश्वर श्री वाल्मीकि जी और कपीश्वर श्री हनुमान जी की मैं वन्दना करता हूँ। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याण करने वाली श्री रामचन्द्र की प्रियतमा श्री सीता को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनकी माया के वशीभूत ब्रह्मादि देवता और असुरों को यह सम्पूर्ण मिथ्या जगत सत्य ही प्रतीत होता है, जैसे अंधेरे में रस्सी को देखकर सर्प का भ्रम होता है, और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छा वालों के लिए एक मात्र नौका हैं, उन समस्त कारणों से परे राम कहाने वाले हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध है, श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास (मैं) अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त हृदयाग्राही (मनोहर) भाषा में रचना कर, विस्तृत करता हूँ।

टिप्पणी—भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुसार, जो भी कवि प्रबन्ध-काव्य लिखना आरम्भ करता है, वह पहले अपने इष्ट देवी-देवताओं की वन्दना करता है ताकि उनकी कृपा से कवि की लेखनी में शक्ति आए और भाव व्यक्त करने की प्रतिभा। तदनुसार, रामचरित मानस प्रारम्भ करने के पहले गोस्वामी तुलसीदास ने छह संस्कृत श्लोकों में अपने इष्ट देवी-देवताओं की वन्दना की है और सातवें श्लोक में समस्त रामचरित मानस की विशेषता बता दी है।

मंगलाचरण के पहले श्लोक का प्रेरणास्रोत कालीदास का "रघुवंश" है। रघुवंश के पहले सर्ग का पहला श्लोक इस प्रकार है :—

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ बन्दे पार्वती परमेवश्रौ।"

कालीदास आरम्भ में शिव-पार्वती की वन्दना करते हैं, जो एक दूसरे से शब्द और उसके अर्थ के समान जुड़े हैं, और जिनकी कृपा से कवि को शब्द (वाक्) और उसमें अन्तर्निहित अर्थ का ज्ञान होता है।

तुलसीदास शिव-पार्वती की अपेक्षा सबसे पहले गणेश-सरस्वती की वन्दना करते हैं क्योंकि ये ही देवी-देवता समस्त ज्ञान के भंडार हैं। इनकी कृपा से न केवल

शब्द और अर्थ का ज्ञान होता है, अपितु रस छन्द का भी। तुलसीदास "शब्द" की अपेक्षा "वर्ण" (अक्षर) को अधिक महत्व देते हैं।

गोस्वामी जी माँ सरस्वती, जो विद्या की देवी हैं और श्रीगणेश जो विद्यावारिधि हैं अर्थात् विद्या को सबसे अधिक समझने की क्षमता रखते हैं, उनकी सबसे पहले वन्दना करते हैं। सरस्वती ही अक्षरों और उन अक्षरों के अर्थ समूहों को देने वाली हैं। अर्थात्, अक्षरों के मेल से ही शब्द बनता है और उस शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते हैं। जिस पर माँ सरस्वती की जैसी कृपा होगी उसे वैसे ही अर्थ का बोध हो सकेगा। शब्द में ही अर्थ समूह निहित होते हैं। फिर उनका रस लेने की प्रवृत्ति भी सब में एक सी नहीं होती। कोई तो उनके रस में विभोर हो जाता है, और किसी को वही शब्द नीरस ज्ञात होते हैं। नव रसों के आधार पर छन्दों की रचना होती है। जो माँ सरस्वती की कृपा से ही कल्याणकारी एवं आनन्द देने वाले हो जाते हैं। वह भी श्री गणेश जी की कृपा से। क्योंकि बुद्धि के स्वामी श्री गणपति ही हैं और जब उनकी कृपा से बुद्धि निर्मल होती है तो उसमें विचार भी निर्मल ही रहकर अधिक मंगलप्रद हो जाते हैं। इसीलिए सरस्वती और गणेश जी वन्दनीय हैं।

गोस्वामी जी सरस्वती और गणेश की वन्दना के पश्चात् शिव और पार्वती की वन्दना करते हैं, जो श्रद्धा और विश्वास के साक्षात् स्वरूप हैं। श्रद्धा और विश्वास के बिना चाहे जितना बड़ा सिद्ध क्यों न हो जाय, वह अपने अन्तःकरण में सर्वदा स्थित रहने वाले ईश्वर को नहीं देख सकता। तुलसीदास के दृष्टिकोण में शिव और गुरू में कोई अन्तर नहीं। शिव ही गुरू हैं और गुरू ही शिव हैं। शिव सदा ज्ञानमय और अपने कल्याणकारी स्वाभाव से ही सदा औरों को कल्याणमय होने का उपदेश देते हैं। अतः वे ही सत्य अर्थों में गुरू हैं। उनकी इतनी महिमा है कि जब वक्र चन्द्रमा भी, उनके केवल आश्रित होने से और उनके आभूषण बनने से वन्दनीय हो जाता है, तो मानव की तो बात ही क्या है ?

इसके पश्चात् गोस्वामी जी श्री बालमीकि जी और श्री हनुमान जी को वन्दना करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। क्योंकि श्री सीताराम जी के गुण रूपी वन में विहार करने वाले एवं उसका पूर्ण रसास्वादन करने वाले कवीश्वर आदि कवि श्री बालमीकि जी ने ही सर्व प्रथम रामायण की रचना की। जब तक वह श्री सीताराम जी के गुणों को भली प्रकार पहचान कर रीझते नहीं, तो इतने विशुद्ध और विज्ञान सम्पन्न रूप में रामायण की रचना कहाँ से कर पाते। इस कारण गोस्वामी जी के लिए वन्दनीय हैं क्योंकि उनकी ही रचना से प्रभावित होकर गोस्वामी जी ने बोलचाल की अवधी भाषा में रामकथा लिखने का साहस

किया। दूसरे श्री हनुमान जी और अधिक वन्दनीय हैं क्योंकि उनको तो साक्षात् श्री सीताराम की सेवा करने और उनके गुणों से अवगत होने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। जिनके स्मरण मात्र से ही श्री सीताराम उनके रोम-रोम में बस गये थे और उसी का वे सदा अमृत पान करने से अमर हो गये। उन्हें श्री सीताराम के अतिरिक्त और किसी का कभी ध्यान भी नहीं आता और श्री सीताराम की भी उनपर असीम कृपा आज तक है।

अन्त में गोस्वामी जी सीता-राम की वन्दना करते हैं। सीता श्रीरामचन्द्र जी की प्रियतमा हैं। उन्हीं की शक्ति से वे उत्पत्ति, पालन, और संहार करते हैं। सीता जी क्लेशों का हरण करने वाली एवं सब कल्याणों को करने वाली हैं। ब्रह्म आदि शक्ति को पुरुष और प्रकृति में विभाजित कर सारे ब्रह्माण्ड की रचना प्रकृति के रूप में ही करता है। आत्मा तो अजर अमर है परन्तु प्रकृति ही परिवर्तनशील है। यह अजर अमर नहीं है। ब्रह्म की वही प्रकृति शक्ति श्री सीता जी हैं जिनकी शक्ति से ही प्राकृतिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनका पालन होता है और जरा अवस्था को प्राप्त कर उनका ही संहार हो जाता है। उनकी ही कृपा से जगत के क्लेश नष्ट हो जाते हैं और मानवों के ही कल्याण के लिए जितनी अन्य वस्तुओं और पदार्थों की उन्हें आवश्यकता होती है, वे उन्हें उपलब्ध होते रहते हैं।

जैसे पहले श्लोक का प्रेरणा स्रोत कालीदास का "रघुवंश" है, उसी प्रकार मंगलाचरण के अन्तिम श्लोक का भी स्रोत "रघुवंश" है। "रघुवंश" के तेरहवें सर्ग का पहला श्लोक इस प्रकार है :

"प्रथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जाया रामाभिधानो हरिरित्युवाच॥"

अर्थात्, अपने नाम की महिमा को जानने वाले, रामनाम से विख्यात भगवान विष्णु, आकाश मार्ग से पुष्पक विमान में जाते हुए, समुद्र को देखकर अपनी पत्नी सीता जी से बोले। इसी प्रकार तुलसीदास भी शुरू में ही पाठकों को सूचित करते हैं कि राम विष्णुके अवतार हैं—रामाख्यमीशं हरिम्—राम नाम से विख्यात हरि (विष्णु)।

तुलसीदास माया को भगवान के अधीन मानते हैं, जो स्वयं इतनी प्रबल हैं कि ब्रह्मादि देवता जो नाना प्रकार की विभूतियों से युक्त होते हुए और असुर जो शारीरिक बल से युक्त और मायावी होते हुए भी, इस माया के वशीभूत हैं। गोस्वामी जी "माया" की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार भ्रमवश रस्सी को सर्प समझ कर उससे वृथा भय की उत्पत्ति हो जाना स्वाभाविक है,

उसी प्रकार दृश्य जगत जो है वह दिखाई न देकर भ्रमवश कुछ और ही दिखाई देता है जिसके कारण असत्य सत्य दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामी जी का दृढ़मत है कि जो राम सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ हैं उनके चरण ही भवसागर से तरने की एक मात्र नौका (आधार) हैं। चरणों का ध्यान करते ही गरदन झुक जाती है, मुख से मधुर वचन निकलने लगते हैं, दूसरों पर प्रेम दृष्टि पड़ने लगती है, सहनशीलता बढ़ने लगती है। इन्हीं सब से यह जगत अपने वास्तविक आनन्द प्रद स्वरूप में दिखाई देने लगता है। दुःख का स्थान सुख ले लेता है और भवसागर सुगमता से पार हो जाता है।

मंगलाचरण के बाद, तुलसीदास एक ही श्लोक में अपने पाठकों को "राम-चरितमानस" के विशेष गुणों से अवगत करा देते हैं। वह गुण इस प्रकार है:—

(१) **"नानापुराण.........सम्मतम्"**—मानस में १८ पुराणों, ४ वेदों और अनेक शास्त्रों का सार है।

(२) **"यद्रामायणे......अन्यतोऽपि"**—मानस का कथानक वाल्मीकि की रामायण पर आधारित है। अन्य कथास्रोत हैं, "अध्यात्म रामायण", "हनुमन्नाटक" और "प्रसन्न राघव" (जयदेव रचित) इत्यादि।

(३) **"स्वान्तः सुखाय"**—तुलसीदास ने जो कुछ भी लिखा है, किसी आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिये नहीं और न कुछ उससे परिश्रमिक या लाभ पाने के लिये और न अपनी कीर्ति और यश फैलाने के लिये। उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह अपने अन्तःकरण के सुख के लिए।

(४) **"भाषा निबन्धमति मन्जुलम्"**—अब तक जो कुछ भी आध्यात्मिक, दार्शनिक और धार्मिक विषयों पर लिखा जाता था वह समस्त बाङ्मय संस्कृत भाषा में लिखा जाता था। परन्तु संस्कृस जनसाधारण की भाषा कभी भी नहीं रही। वह तो एक अभिजात्य वर्ग की भाषा रही है। रामकथा को घर-घर पहुँचाने के लिये तुलसीदास ने जनसाधारण की अवधी "भाषा" को अपनाया। इसके पहले जायसी ने "पद्मावत" अवधी में लिखी थी। जायसी की अवधी को तुलसीदास ने परिष्कृत और सुसज्जित किया। तुलसी के हाथ में अवधी भाषा "मन्जुल" बन गई।

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि शुभ गुन सदन॥ १॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥ २॥

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन ।। ३ ।।

कुंद इंदु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा सिंधु मर्दन मयन ।। ४ ।।

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।। ५ ।।

भावार्थ—जो बुद्धि की राशि हैं, जो शुभ गुणों के सदन हैं, जिनके स्मरण से सब काम सिद्ध हो जाता है, जिनके मुखार्विन्द पर गजराज की सून्ड है, वह गणेश जी मुझ पर अनुग्रह करें। जिनकी कृपा से गूँगा बहुत बोलने लगता है और लंगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है वे भगवान, कलियुग के सब पापों को जला डालने वाले दयालु, मुझ पर द्रवित हों (दया करें)। जिनका कमल के समान श्याम शरीर है और जिनके लाल कमल जैसे नयन हैं, वह क्षीर-सागर में शयन करने वाले विष्णु भगवान, मेरे हृदय में वास करें। कुन्द पुष्प और चन्द्रमा के समान धवल-देह वाली उमा के जो पति हैं, जो करुणा के सागर हैं, जिन्होंने कामदेव को भस्म किया है, जो हमेशा दीन से प्रेम करते हैं, वह शिव भगवान मुझ पर कृपा करें। जिनके उपदेश ने मेरे मोह रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य जैसा प्रकाश दिया है, और जिनकी मुझपर हमेशा कृपा रही है, उन अपने गुरू नरहरि के चरण-कमल की मैं वन्दना करता हूँ।

टिप्पणी—यद्यपि तुलसीदास जी ने समस्त "मानस" दोहा-चौपाई शैली में लिखी है, "मानस" का प्रारम्भिक छन्द सोरठा है। सोरठे की शैली दोहे की उलटी होती है। सोरठे के पहले चरण में ग्यारह मात्रा पर विराम होता है और दूसरे चरण में तेरह पर। दोहे में पहला चरण १३ मात्रा का और दूसरा चरण ११ मात्रा का होता है। दोहे में हर पंक्ति के आखिरी शब्द तुकान्त होते हैं। सोरठे में हर चरण के आखिरी शब्द तुकान्त होते हैं।

संस्कृत मंगलाचरण में तुलसीदास ने देवी देवताओं की वन्दना की हैं, किन्तु सोरठे में तुलसीदास ने अपने को केवल देवताओं तक सीमित रखा है।

पहले सोरठे में गणेशजी की वन्दना की है। उनके चार गुण इस प्रकार हैं—उनके मुख पर हाथी की सून्ड है; उनका सुमिरन करने से सिद्धी प्राप्त होती है; वह बुद्धि की राशि हैं और सद्गुणों के भण्डार हैं।

दूसरे और तीसरे सोरठे में विष्णु भगवान की स्तुति की गई है। विष्णु भगवान क्षीर सागर में शयन करते हैं, उनका शरीर नील-कमल के समान श्याम-वर्ण है, उनके नेत्र लाल कमल के समान रञ्जित हैं, उनकी कृपा से कलियुग का सब कलुष मिट जाता है, गूँगा बोलने लगता है, और लंगड़ा पहाड़ पर चढ़ जाता है। आखिरी गुणों का वर्णन तुलसीदास ने सूरदास से लिया है। "सूरसागर" के प्रथम स्कंद का मंगलाचरण इस प्रकार है :

"जाकी कृपा पँगु गिरी लंघै, अंधे कौ सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै, गूँगे पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।"

चौथे सोरठे में शिव की स्तुति है। शिव जी ने कामदेव को भस्म किया था। वह करुणा के भण्डार हैं और सब पर कृपा करते हैं। उनकी पत्नी उमा की देह कुंद-पुष्प और चंद्रमा के समान धवल है। संस्कृत में सरस्वती की वन्दना करते हुए उनकी धवलता की उपमेय के लिए कवि ने भी कुंद और इन्दु का सहारा लिया है :

"या कुन्देन्दुतुषार हारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता"

अन्तिम सोरठे में तुलसीदास जी अपने गुरु नरहरि को नमस्कार करते हैं। गुरु कृपा के सागर हैं। उनके वचन-रूपी सूर्य-किरण से शिष्य का मोह अन्धकार नष्ट हो जाता है।

बंदउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृति सम्भु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥
श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

भावार्थ—मैं अपने गुरु के चरण कमल के रज की वन्दना करता हूँ जिसके स्पर्श से मृत्यु का भय मिट जाता है और मनुष्य अमरत्व की प्राप्ति करता है। जीवन में सुरुचि, सरसता और अनुराग का उदय होता है। वह इस भव के समस्त रोगों का शमन करती है। शम्भु भगवान की विभूति के समान, उनकी

चरण-रज मंगल और मोद को जन्म देने वाली है। मन रूपी मुकुर (शीशा) में कोई मल (धूल) आ जाय तो उसका हरण करती है। गुरु की पदरज का तिलक लगाने से सब गुण अपने वश में आ जाते हैं। गुरु के चरण के नख (नाखून) की ज्योति के स्मर्ण मात्र से हृदय में दिव्य दृष्टि पैदा होती है। बड़े भाग्य से वह ज्योति शिष्य के हृदय में प्रवेश करती है, जिससे समस्त अंधकार का नाश होता है। हृदय के नयन कपाट खुल जाते हैं और भवसागर के सब दुःख और दोष मिट जाते हैं। जैसे पृथ्वी को खोदने से छिपे हुए मणि और मानक प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार गुरु की कृपा से रामचरित प्रकाशित हो जाता हैं।

टिप्पणी—जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, तुलसीदास जी ने अपनी रामचरित मानस अवधी भाषा में दोहा-चौपाई शैली में लिखी। हर चार चौपाई के बाद एक दोहा आता है। इसी शैली में अंग्रेजी के महान कवि शेक्सपियर ने अपनी सोनेट्स (Sonnets) लिखीं। दो Quatrain यानि आठ पंक्ति के बाद एक Couplet (दोहा) आता है। तुलसीदास की चौपाइयों की पंक्तियाँ सम हैं, किन्तु जायसी की पद्मावत की पंक्तियाँ विषम हैं। सात पंक्तियों के बाद एक दोहा आता है। जायसी चौपाई के महत्व को पूर्णतया साध्य नहीं कर पाये, जिसमें आठ पंक्तियों का होना आवश्यक है। उनके सामने फारसी की मसनवी शैली थी, जिसमें हर पंक्ति अपने में सम्पूर्ण होती है। यही कारण है कि जायसी ने सात पंक्ति की चौपाइयों के बाद दोहा लिखा और तुलसीदास जी ने आठ पंक्तियों के बाद।

आखिरी सोरठे में तुलसीदास जी ने अपने गुरु नरहरि की वन्दना की है और उसके बाद की चौपाई में गुरु की महिमा का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। देखिये ऊपर लिखा हुआ भावार्थ।

दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

भावार्थ— साधक, सिद्ध और ज्ञानी पुरुष यदि गुरु-कृपा का अंजन (सुरमा) अपने नेत्रों में लगाएँ, तो उन्हें इस सृष्टि का—अर्थात् पर्वतों, वनों और मैदानों का—समस्त कौतुक भली प्रकार दिख जायेगा।

टिप्पणी —ऊपर चौपाई में तुलसीदास जी ने जो गुरु के गूणों की महिमा का वर्णन किया है उसका सारांश इस दोहे में दे दिया गया है। गुरु के पद-कमल की रज एक अंजन (सुरमा) के समान है। उसको जो अपने नेत्रों में लगा लेता

है, वह चाहे साधक हो, सिद्ध हो या ज्ञानी हो, वह इस सारे संसार का कौतुक अपने में आत्मसात् कर लेता है।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक विलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥
बदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सबहरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥
साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥
मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
विधि निषेधमय कलि मल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी॥
हरि हर कथा बिराजति वेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

भावार्थ—गुरु के चरणों की रज सुन्दर अंजन (सुरमें) के समान है, जो आँखों के सब दोषों को नष्ट कर देती है। उसको लगाकर मैं अपने विवेक (बुद्धि) को विमल कर, इस संसार से मुक्ति दिलाने वाले राम चरित्र का वर्णन करता हूँ। सबसे पहले मैं ब्राह्मणों की वन्दना करता हूँ, जो मोह से जनित संशय को दूर करते हैं। और फिर मैं संत-समाज को प्रणाम करता हूँ, जो समस्त गुणों की खान है। साधुओं का चरित्र धुनी हुई रुई के समान उज्ज्वल होता है। साधु लोग रस के परे होते हैं, और उनकी संगति का गुणमय फल होता है। साधु लोग भले अपने आप दुःख झेल ले, परन्तु औरों के दोष सदा छिपाते हैं। जिन साधुओं ने जग में यश पाया है, वह सर्वदा बंदनीय हैं। सन्तों का समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो इस जगत में चलता फिरता तीर्थराज है। जहाँ राम-भक्ति रूपी गंगा की धारा है, वहाँ ही ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती जी हैं। यह करो और यह न करो की कथा कलियुग के सभी पापों को हरने वाली यमुना जी हैं, और भगवान विष्णु और शिव की कथाएँ त्रिवेणी हैं, जो सुनते ही सब आनन्द और कल्याण की देने वाली हैं। संत समाज में अपने धर्म में अटल विश्वास ही प्रयागराज का अक्षयवट वृक्ष है और उस तीर्थराज का समाज ही शुभकर्म करने वाला समाज हो जाता है। ऐसा संत समाज रूपी प्रयाग राज सबके लिए नित्य प्रति सब देशों में ही सुगमता

से ही प्राप्त हो सकता है, जिसका आदरपूर्वक ग्रहण ही सारे क्लेशों को शान्त कर देता है।

टिप्पणी — ऊपर कहा जा चुका है कि तुलसीदास ने अंग्रेजी कवि शेक्सपियर की सोनेट शैली अपनाई–हर चार चौपाई के अंत में एक दोहा आता है। चौपाई चतुष्पद होनी है। हर पंक्ति में दो पद होते हैं और दो पंक्ति से एक चौपाई बनती है। चौपाइयों में सम पंक्ति होनी चाहिए। इसी कारण मानस की अधिकतर चौपाइयाँ आठ-आठ पंक्ति की हैं। जहाँ अतिक्रमण हुआ, उसका संकेत टिप्पणियों में कर दिया गया है। भावावेश में आकर बालकाण्ड में तुलसीदास ने पिंगल शास्त्र के इस नियम का तीस बार उलंघन किया है। इक्कीस चौपाइयों की पंक्तियाँ विषम हैं। छः चौपाइयों की पंक्तियाँ नौ हैं। पाँच चौपाइयों की पक्तियाँ ११ हैं। चार चौपाइयों की पंक्तियाँ १३ हैं और एक चौपाई में १५ पंक्ति हैं। शेष चौदह चौपाइयों की पंक्तियाँ सम हैं–छः की १०, पाँच की १२ और तीन की 14। इस समय जिस चौपाई की व्याख्या हो रही है उसमें १३ पंक्ति हैं।

गुरु की, ब्राह्मण की और साधु की महिमा का वर्णन करने के बाद तुलसीदास जी संत समाज की तुलना तीर्थराज से सांगोपांग करते हैं। रामभक्ति गंगा जी के समान पवित्र है। इसमें मंजन करने वाला अपने शरीर की नहीं वरन् मन और विचार की शुद्धि कर लेता है। फिर जिस प्रकार सरस्वती बद्रिकाश्रम से लगभग ढाई मील माना ग्राम के समीप अलकनन्दा में मिलकर उसी गंगा में लुप्त रूप से विराजमान रहती हैं, उसी प्रकार रामभक्ति रूपी गंगा में ब्रह्म विचार के प्रसार रूपी सरस्वती स्वतः रहती है। मन और बुद्धि का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। साधारणतया ये एक दूसरे पर आश्रित हैं। बुद्धि में तर्क है, विचार है, स्मरण शक्ति है और ज्ञानार्जन तथा वर्धन की क्षमता है। तो भी बुद्धि जब तक सद् न हो हानिकारक हो जाती है। इसी लिए भारतीय दार्शनिकों ने केवल बुद्धि को ही मान्यता न देकर सद्बुद्धि को ही मान्यता दी है। प्रायः बुद्धि द्वारा उत्पन्न ज्ञान में कुछ न कुछ कमी रह जाती है जिसका परिष्कार होता ही रहता है। इसीलिए भारतीय मनीषियों ने वेदों के अन्त में "नेति-नेति" का प्रयोग किया है। मन स्वतः चंचल है फिर भी यदि यह किसी भाव में लग जाता है तो उसमें लगा रहना इसके लिए सुगम है। संत समाज बुद्धि और मन दोनों को स्वच्छ तथा निर्मल बनाता है। जो कार्य तीर्थराज जाने तथा वहाँ के स्नान इत्यादि से साधारणतया कुछ समय के लिये ही सम्भव हो पाता है, वही संत समाज द्वारा अधिक प्रभावित करने वाला होता है। संत समाज रूपी तीर्थराज अलौकिक है और जो आनन्द इससे मिलता है वह अवर्णनीय है। इसके अतिरिक्त तत्काल ही

फल देने वाला है । एवं उसका प्रभाव भी प्रत्यक्ष है । सतसमाज न तो प्रयाग की प्रकार केवल भौतिक ही है । इसमें शरीर और आत्मा दोनों हैं, चेतन है, गुणवान तथा लाभदायक होने से अलौकिक है और इसमें रामकथा की जो चर्चा होती है वह इसे आनन्दप्रद बना देती है और उस आनन्द का रस वर्णनातीत है ।

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग ।। २ ।।

भावार्थ—जो मानव इस संत-समाज को प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं, फिर अपने मन और बुद्धि को उसमें प्रेमपूर्वक स्नान कर निर्मल बनाते हैं, वे इस शरीर के रहते हुए भी साधु समाज रूपी प्रयाग के सम्पर्क में आकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फल प्राप्त कर लेते हैं ।

मज्जन फल पेखिअ ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ।।
सुनि आचरज करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ।।
बालमीक नारद घटजोनी । निजनिज मुखनि कही निज होनी ।।
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ।।
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ।।
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परम कुधात सुहाई ।।
विधि बस सुजन कुसंगत परहीं । फनि मनि सम जन गुन अनुसरहीं ।।
बिधि हरि हर कबि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ।।
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ।।

भावार्थ—इस तीर्थराज (सन्त समाज अथवा साधु-समाज) में स्नान करने का फल तत्काल ही प्रत्यक्ष दिखाई देता है । काक के समान कर्कश स्वर से बोलने वाले (बात-बात पर जोर से बोलने वाले) कोयल के समान मधुर वाणी बोलने लगते हैं और बगुले हँस हो जाते हैं, अर्थात् बाहरी रूप से स्वच्छ दिखकर भी आंतरिक उन्नति से वंचित रहते, आन्तरिक शुद्धि प्राप्त कर लेते हैं । ऐसे शुभ-फलों की प्राप्ति के विषय में सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि अच्छी संगति की महिमा जगत में छिपी नहीं है । बालमीकि, नारद और अगस्त्य मुनि ने अपने जीवन में जो सत्संग का प्रभाव उन पर हुआ उसका वर्णन उन्होंने

स्वयं अपने आप ही किया है। जल में रहने वाले, धरती पर चलने वाले और आकाश में उड़ने वाले नाना प्रकार के जड़ और चेतन जीव संसार में हैं। उनमें से जिस किसी ने, जब कभी जिस किसी यत्न से बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, ऐश्वर्य अथवा भलाई प्राप्त की है वह सब सत्संग के प्रभाव का ही प्रताप है। इस जगत में वेदों में भी सत्संग के अतिरिक्त उपरोक्त विभूतियों को प्राप्त करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। सत्संग के बिना ज्ञान नहीं होता, परन्तु राम की कृपा के बिना सत्संग सुगमता से प्राप्त नहीं होता। सत्संगति ही आनन्द और कल्याण की जड़ है और इसकी प्राप्ति ही इसका शुभ फल है जो किसी भी सिद्धि से कम नहीं और सत्संग के कारण जो अन्य साधन करने पड़ते हैं वे इसके पुष्प हैं। जो संसार में अपने अवगुणों के कारण बुरे कहलाते हैं वे भी सत्संगति की प्राप्ति से सुधर जाते हैं और अच्छे अर्थात् गुणवान कहलाने लगते हैं, जिस प्रकार पारस के स्पर्श मात्र से कुधातु कहलाने वाला लोहा सुधातु के समान सुहावना हो जाता है। दैव-योग से अच्छे लोग यदि बुरी संगति में पड़ भी जाते हैं, तो ऐसी परिस्थित में सुजन अपने शुभगुणों का ही अनुसरण करते हैं जैसे सर्प की संगति से मणि में सर्प के विष का प्रभाव नहीं होता। उसी प्रकार प्रतिकूल विचारों के मानवों के साथ रहते हुए भी सुजन अपने शुभ विचारों का ही अनुकरण करते हैं। साधु और संत की महिमा का वर्णन करने में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कवि और पंडितों की वाणी भी सकुचाती है। उसका वर्णन मैं (गोस्वामी जी) किस प्रकार से करूँ। जैसे साग (शाक) बेचने वाला मणियों (रत्नों) के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता।

पात्र परिचय—ऊपर वाली यह चौपाई १२ पंक्तियों की है। गोस्वामी जी कहते हैं कि सत्संगति की महिमा बालमीकि, नारद और कुम्भज (घटजोनी) ने वर्णन की है। अगस्त्द ऋषि का नाम "कुम्भज" क्यों पड़ा, उसकी अन्तर्कथा इस प्रकार है। महर्षि मित्रावरुण आदित्य के यज्ञ में निमंत्रित हो कर गये थे। वहाँ उर्वशी को देखकर वीर्यपात हुआ। वीर्य का जो भाग कुंभ में पड़ा उससे अगस्त्य और जो स्थल में पड़ा उसखे वशिष्ठ उत्पन्न हुए। अगस्त्य का आकार परिमित था, इस कारण उनका नाम मान पड़ा था। इस ऋषि का महान तपोबल था। कालकेय नामक असुरगण वृत्रासुर-वध के पश्चात् देवताओं के भय से समुद्र में छिपकर प्राण रक्षा करते थे और रात्रि को निकलकर मुनियों को मारते तथा उनके तपोवन नष्टभ्रष्ट कर देते थे। इनके अत्याचारों से रक्षा पाने के लिए मुनियों ने पर्वत की गुहाओं में शरण ली, इससे यज्ञकर्म लुप्त हो गए। देवताओं के अनुरोध से महर्षि अगस्त्य ने समुद्र-पान किया। इससे कालकेय भाग तो सके नहीं और देवताओं ने उन्हें मार डाला। अभिमान से विन्ध्य पर्वत ने सूर्य का मार्ग रोक लिया, देवताओं के कहने से अमस्त्य विन्ध्य पर्वत के पास गये। विन्ध्य ने अपने गूरु को आते देख

प्रणाम किया। मुनि ने कहा : जब तक मैं न लौटूँ तब तक तुम ऐसे ही रहो। यह कहकर अगस्त्य दक्षिण दिशा में चले गए और तब से फिर न लौटे। विन्ध्य पर्वत का अहंकार चूर करने पर अगस्त्य नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई।

अगस्त्य को नहुष ने इन्द्रत्व पाकर अपनी पालकी ढोने के लिए लगाया और उनके लात मारी। इससे अगस्त्य को क्रोध आया और उन्होंने शाप दिया, "तुम दस हजार वर्ष तक साँप की योनि में पड़े रहो।" रामचन्द्र बनवास के समय अगस्त्य-आश्रम में गये थे। मुनि ने उनको धनु, अक्षत, तुणीर और खड्ग दिये थे।

हमारे संविधान की अष्टम सूची में तामिल भारत की १५ भाषाओं में से एक है। वह लगभग ७ प्रतिशत भारतीयों के व्यवहार की भाषा है। तमिल की दिव्योत्पत्ति में विश्वास करते हुए कहा जाता है कि भगवान शंकर इसके अन्नदाता और आदि गुरु रहे हैं। उनसे तामिल भाषा और उसका व्याकरण सीख कर, अगस्त्य ऋषि दक्षिण भारत गये और तमिल देश की एक गुफा में पैठकर, उन्होंने एक महान व्याकरण की रचना की जिसे "अगस्त नियम" कहते हैं और जो अब अप्राप्य है। लेकिन उसके कुछ सूत्र तमिल ग्रंथों में अब भी मिल जाते हैं।

दो०—बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥ ३(क)॥
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥ ३(ख)॥

भावार्थ—तुलसी समानचित रखने वाले संतों की वन्दना करते हैं। समान चित्त के कारण न जिनका कोई मित्र है और न शत्रु अर्थात् उनका चित्त रागद्वेष रहित है, जिस प्रकार अञ्जलि में रखे सुन्दर पुष्प अञ्जलि बनाने वाले दोनों हाथों को समान रूप से सुगन्धित करते हैं। जबकि उन्हीं हाथों में से एक ने उन्हें डाली से तोड़ा है और दूसरे हाथ ने उन्हें रखा है। तोड़ने वाले हाथ ने उनके जगत में अपना अस्तित्व बनाये रखने का समय ही कम कर दिया है और दूसरे हाथ ने उन्हें प्यार से अपने ऊपर रखकर उनको किसी सद्उपयोग में लाने योग्य बनाये रखा है। इस वन्दना में संत-महिमा की कुछ झलक अवश्य मिल जाती है। संतों का चित्त सरल होता है अर्थात् जगत के जंजाल से मुक्त रहता है और इसी कारण वे सच्चे हृदय से जगत की भलाई में ही लगे रहते हैं। अतः उन्हें ऐसा स्वभाव वाला तथा सबके प्रति स्नेह रखने वाला जानकर, मैं उनसे बालक के समान विनय कर रहा हूँ जिसे सुनकर वे कृपा करके श्री राम के चरणों में मुझे प्रीति दें।

टिप्पणी—जो वास्तविक संत हैं उनके गुणों की जानकारी देते हुए गोस्वामी जी संतों को पहचानने की कुंजी प्रदान कर देते हैं। सत का प्रथम लक्षण सरल चित्त वाला, दूसरा जगत का हित करने वाला, तीसरा स्वभाव से ही स्नेह-युक्त। जिसमें यह तीन लक्षण मिल सकें वह ही संत है। ऐसे संत, बालक के समान उनसे विनय करने वालों पर, विशेष कृपा करने को बाध्य हो जाते हैं। तो गोस्वामी जी रामचरण से शरण पाने को उनकी वन्दना करते हैं। रामचरण में रति उनमें निहित गुणों के कारण ही हो सकती है, जिनका वर्णन प्रेम से संत ही किसी अधिकारी के सन्मुख करते हैं और वह अधिकारी राम चरण में प्रीति सहित लीन हो जाता है। और यही भक्त की अपने लक्ष्य की प्राप्ति है। जिसके लिए वह जीवन भर प्रयत्नशील रहता हे, वह संत कृपा से, उसे कुछ ही समय में प्राप्त हो जाती है।

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्ह के मन माखी॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषि दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

भावार्थ—अब मैं अपने हृदय के सच्चे भाव से संसार में कहलाये जाने वाले खलों की बन्दना (उनके सम्मुख नत मस्तक होकर प्रणाम) करता हूँ। यह लोग निष्प्रयोजन ही उनका ही हित करने वाले के भी प्रतिकूल ही रहते हैं। दूसरों की हानि को अपना लाभ समझतें हैं। खल पुरुषों को दूसरे के उजड़ने से अर्थात् उसके सर्वनाश से प्रसन्नता होती है और उसके भली प्रकार बसने तथा ऐश्वर्यवान होने से दुःख होता है। यह विष्णु और शिव के यश रूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिये राहु के समान हैं। जहाँ कहीं विष्णु तथा शिव के यश का वर्णन होता है, उसी में बाधा पहुँचाकर ही सन्तुष्ट रहते हैं और दूसरों का बुरा करने में सहस्रबाहु के समान वीर हो जाते हैं, दूसरे के दोषों को सहस्र नेत्रों से देखते हैं। दूसरों के हित

रूपी धृत के लिये इनका मन मक्खी के समान हो जाता है। उनका तेज अग्नि के समान है और क्रोध यमराज के समान, पाप और अवगुणों के धन में कुबेर हैं। उनकी उन्नति या बढ़ोत्तरी सब के लिये भलाई का नाश करने वाले पुच्छल तारे के उदय होने के समान है। यह लोग कुंभकरन के समान सोते रहते ही सब के लिए अच्छे हैं। यह लोग अपने स्वभाव के इतने बशीभूत होते हैं कि दूसरे को हानि पहुँचाने के प्रयास में अपना शरीर भी त्याग देते हैं, जिस प्रकार ओले खेतों पर गिर कर खेती के नाश के साथ-साथ अपने अस्तित्व को भी पिघला कर नष्ट कर डालते हैं। मैं शेषनाग के समान ऐसे संसार में समझे जाने वाले खलों की बन्दना करता हूँ जो क्रोधित अवस्था में सहस्त्र मुँह से दूसरों के दोषों का बखान करते हैं। यहाँ तात्पर्य यह है कि वे अपने एक ही मुँह से कभी कुछ दोषों का वर्णन एक व्यक्ति से करते हैं फिर दूसरे व्यक्ति से एक ही दोष का वर्णन दूसरे रूप में, फिर तीसरे से तीसरे रूप में—इसी प्रकार उसी में कुछ न कुछ परिवर्तन कर दूसरे दोषों का वर्णन सहस्त्र प्रकार से भिन्न सहस्त्रों श्रोताओं से करते रहते हैं। मैं फिर उनको राजा पृथुराज के समान मानकर बन्दना करता हूँ जिन्होंने भगवान के यश श्रवण हित दस सहस्त्र कान माँगे थे और उनके द्वारा भगवान का यश रूपी अमृत पिया था। यह बिना किसी याचना के ही दूसरों के पापों को अपने दो कानों को ही दस हजार कान के समान स्वयं बनाकर सुनने से आनन्दित होते हैं अर्थात भिन्न-भिन्न व्यक्ति से बार-बार सुनने को लालायित रहते हैं। गोस्वामी जी फिर उनकी इन्द्र के समान बन्दना करते हैं। इन्द्र को तो सुर+अनीक (देवताओं की सेना) से अपना हित होता है, परन्तु जिनकी बन्दना गोस्वामी जी इन्द्र की समानता में कर रहे हैं उन्हें भी सुरा+नीक, अर्थात् मदिरा को अच्छा समझने में अपना हित दिखाई देता है। इसका प्रभाव यह होता है कि वे सुरा सेवन से अपनी ठीक प्रकार के सोचने-समझने की शक्ति भी खो देते हैं। फिर ऐसी अवस्था में स्वाभाविक ही है अति कटु और कठोर बचनों का प्रयोग करें। जिनका आघात बज्र से किसी प्रकार कम नहीं होता और वे समझते हैं कि उन्होंने बहुत ठीक और स्पष्ट बात कही है। उनको ऐसे बचन इस प्रकार दूसरों पर आघात करने के लिये प्रिय लगते हैं जिस प्रकार इन्द्र को अपना शस्त्र बज्र प्रिय है। अपने बचनों का अधिक प्रयोग करके यह दूसरे के दोषों को अपने दो नेत्रों को सहस्त्र नेत्र बनाकर देखने का प्रयास करते हैं। अर्थात, दूसरों के दोषों को कभी किसी दृष्टि से कभी किसी दृष्टि से यहाँ तक कि अपने मन, विचार और बुद्धि तथा कल्पना की दृष्टि से देखते रहते हैं और यदि उनके जैसे मिल जाते हैं तब तो नेत्रों की संख्या में शीघ्र ही वृद्धि हो जाना कुछ कठिन नहीं रह जाता।

अन्तर्कथाएँ–ऊपर की चोपाई विषम ११ पक्तियों की है। पहले संतों के महात्म का वर्णन करके, तुलसीदास जी फिर खल पुरुषों को नमस्कार करते हैं। खल पुरुष की बड़ी Nuisance Value होती है। उसे हर प्रकार से सन्तुष्ट रखना चाहिए, अन्यथा वह आपका न जाने कब काम बिगाड़ दे। खल पुरुषों के दोषों का वर्णन करते समय तुलसीदास ने उनकी उपमा सहस्त्रबाहु, कुँभकर्ण, पृथुराज और शक्र (इन्द्र) से दी है।

(१) कुँभकर्ण रावण का कनिष्ठ सहोदर भाई था। बिश्रवा मुनि के औरस और सुमाली राक्षस की कन्या केकयी के गर्भ से यह उत्पन्न हुआ था। इसने कठोर तपस्या द्वारा ब्रह्मा को संतुष्ट किया था। ब्रह्मा वर देने के लिए उपस्थित हुए। ब्रह्मा से वह इन्द्र–पद मांगने जा रहा था। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा कि बिना वर पाये ही यह राक्षस इतना अत्याचार करता है। वर पाने पर इसकी क्या गति होगी! देवताओं ने सरस्वती को स्मरण किया और कहा, तुम कुम्भकर्ण के मुंह से देवताओं के अनुकूल वचन निकालो। सरस्वती के संचालन से कुम्भकर्ण के मुख से "इन्द्रासन" की अपेक्षा "निद्रासन" निकल गया। ब्रह्मा ने तुरन्त "एवमस्तु" कहा। उसी समय कुम्भकर्ण अचेत हो गया। रावण के मनुहार करने पर ब्रह्मा ने वरदान में इतना संशोधन कर दिया कि कुम्भकर्ण छः महीने पर एक दिन भोजन करने के लिए उठेगा। सचेत होने पर वह कहने लगा, मैंने क्या वर माँगा! परन्तु अब हो ही क्या सकता था। एक प्रकार से ब्रह्मा का यह श्राप मनुष्य–जाति के लिये श्रेयस्कर हुआ। यदि कुम्भकर्ण निरन्तर जागता रहता तो उसकी भूख इतनी तीब्र थी कि वह समस्त मनुष्य जाति को खा जाता। तुलसीदास जी खल पुरुष को कुम्भकर्ण से इस लिए तुलना करते हैं, कि जब वह सोते रहेंगे तो औरों का अनिष्ट नहीं कर सकते।

(२) पृथुराज वेन के राजा के पुत्र थे। इन्होंने बाहुबल से समस्त राजाओं को जीत लिया था। इन्होंने पृथ्वीतल को प्रोथित समतल बनाया था। इस कारण ये पृथु कहे जाते थे। इनके राजसूय यज्ञ में महर्षिगण उपस्थित हुए थे और उन्होंने इनका राज्याभिषेक किया था। इनके शासनकाल में बिना जोती हुई भूमि भी अन्न उत्पन्न करती थी। धेनु-समूह काम दुहा हुई थी। प्रबल प्रतापी महाराज पृथु ने अनेक यज्ञ संपादन करके समस्त प्राणियों को अभिलाषित द्रव्य देकर संतुष्ट किया था। इसी दानी राजा ने अपने अश्वमेघ-यज्ञ में पृथ्वी के समस्त पदार्थों की स्वर्ण प्रतिमाएँ बनाकर ब्राह्मणों को दी थीं। इन्होंने ६६ हजार सुवर्ण छत्र और मणिरत्नभूषित सुवर्णमय पृथ्वी दान की थी। इन्होंने भागवत् स्तुति सुनने के लिये, ब्रह्मा से सहस्त्र कान माँगे, अर्थात् एक समय में सहस्त्र वाणी सुनने की क्षमता।

पृथुराज से खलपुरुषों की तुलसीदास ने इस लिए तुलना की है कि वह सहस्र कान से औरों की बुराई सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं।

(३) संस्कृत में श्वन, युवन, मघवन (इन्द्र) के एक समान रूप होते हैं। इनकी प्रवृत्ति भी एक समान मानी गई है। तीनों उच्छृंखल होते हैं। इन्द्र के वज्र के समान खल पुरुषों के शब्द वज्रपात करते हैं।

दो०—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति ॥ ४ ॥

भावार्थ—खल पुरुषों में सब से बड़ी विशेषता यह होती है कि जिनसे उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, या जो उनके शत्रु हैं, या मित्र हैं—इन तीनों की भलाई सुन कर वह जलने लगते हैं। उनकी निष्प्रयोजन हानि करने की प्रवृति को जानकर, तुलसीदास जी दोनों हाथ जोड़कर उनसे विनती करते हैं।

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ॥
बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू ॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

भावार्थ—यद्यपि मैंने अपनी ओर से उनकी विनती की है, परन्तु वे अपनी ओर से कभी नहीं चूकेंगे जैसे कौओं को बड़े प्रेम से पालने पर वे कभी भी क्या मांस के त्यागी हो सकते हैं? अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ क्योंकि यह दोनों ही दुःख देने वाले हैं। केवल दोनों के दुःख देने के प्रकार में कुछ अन्तर है। वह यह है एक (संत) तो बिछुड़ते समय ही प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिलते ही दारूण दुःख देना प्रारम्भ कर देते हैं। संत और असंत इस जगत में साथ ही उत्पन्न होते हैं, जिस प्रकार कमल और जोंक एक ही जल से उत्पन्न होते हैं। परन्तु कमल और जोंक के गुण पृथक-पृथक होते हैं। इसी प्रकार संत और असंत में भी उनके गुणों में पृथकता होने से एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। कमल देखने में नेत्रों को आनन्द प्रदान करता है और स्पर्श से सुख

देता है परन्तु जौंक शरीर का स्पर्श होते ही रक्त चूसने लगती है। संत का सम्पर्क में आना सुखदायक और असंत का दुखदायक होता है। संत अमृत के समान होते हैं क्योंकि उनके सतसंग से मानव को अपने को अमर बनाने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है, परन्तु असंत का संग संसार के झंझटों में फसाने वाला होता है क्योंकि ये स्वयं मदिरा के समान होते हैं और दूसरों पर अपने विचारों का नशा ही चढ़ा देते हैं। सुधा और सुरा दोनों की ही उत्पत्ति सागर मन्थन से ही बताई गई है। भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार संसार में यश अथवा अपयश की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। जो ऐसे कार्य स्वाभाविक रूप से करते हैं जिनसे उनका भी हित हो और दूसरों का भी वे यश प्राप्त करते हैं। इस जगत में अमृत, चन्द्रमा, गंगाजी और साधु के साथ ही साथ विष, अग्नि, कर्मनाशा नदी और हिंसा करने वाले व्याध (बहेलिए) भी हैं। और बड़ी बात यह है कि इनके गुण अवगुण को सब जानते हैं, किन्तु जो जिसे भाता है, उसे वही उत्तम लगता है क्योंकि निज-निज स्वभाव के अनुरूप ही उनकी रूचि और परख हो जाती है और वे उससे बाध्य हो जाते हैं।

टिप्पणी–यह चौपाई फिर विषम नौ पंक्तियों की है। तुलसीदास संतों की खल पुरुषों से तुलना करते हुये कहते हैं कि खल पुरुष अपनी प्रकृति कभी भी नहीं बदल सकते। जैसा कि उर्दू कवि ने कहा है :

इधर हैं वफायें उधर हैं जफायें।
न हम बाज आयें न वह बाज आयें॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥ ५॥

भावार्थ—अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप संसार में भला मानव भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता अंगीकार करने को विवश होता है। परन्तु इनका परिणाम भी दोनों को ही उसी स्वाभाविक रूप में मिलता है जिस प्रकार अमृत की सराहना से अमरत्व और विष की सराहना से मृत्यु निश्चित हो जाती है।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा ॥

भावार्थ—बुरे मानवों के पापों और अवगुणों की और अच्छे मानवों के गुणों की कथाएँ सागर के समान अपार और अथाह है। इसी से मैंने केवल कुछ गुण और दोषों का वर्णन किया है क्योंकि गुण और दोषों को समझे बिना गुणों का ग्रहण करना और अवगुणों का त्याग सम्भव नहीं हो सकता है। भले और बुरे दोनों ही पुरुष ब्रह्मा ने इस सृष्टि में रचे हैं। वेदों में उनके गुण और दोषों का अलग-अलग विवेचन किया है। वेद-पुराण और इतिहास बताते हैं कि ब्रह्मा ने बड़ी चतुराई से गुण और दोषों को एक साथ मिला दिया है। विरोधाभास संसार में निरंतर चलता रहता है—जहाँ दुःख है वहाँ सुख भी है, जहाँ पाप है वहाँ पुण्य भी है, जब दिन होता है तो उसके बाद रात भी होती है, साधु पुरुष भी हैं और असाधु पुरुष भी हैं, ऊँची जाति के लोग भी हैं और नीच जाति के भी, दानवों के साथ देवता भी हैं। ऊँच-नीच का भेदभाव निरन्तर है, अमृत से अमरत्व प्राप्त होता है और विष (माहुर) से मृत्यु। जगदीश्वर ब्रह्मा ने जीव और माया को साथ-साथ रचा है, राजा और रंक के लक्षण और सुलक्षण पृथक होते हैं, काशी की पावन गंगा स्वर्गदायनी है और मगध (मगहर) की कर्मनाशा नदी नरक पहुँचाती है, एक ओर मरूस्थल (रेगिस्तान) है तो दूसरी ओर उपजाऊ भूमि, एक ओर ब्राह्मण है तो दूसरी ओर वधिक, एक ओर स्वर्ग है तो दूसरी ओर नरक, एक ओर प्रेम और आसक्ति है, तो दूसरी ओर विराग। इस प्रकार से वेद और शास्त्रों ने गुण और दोषों का विभाजन किया है।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई में पुनः नौ विषम पंक्ति हैं।

दो०—जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥ ६ ॥

भावार्थ—विधाता ने इस जड़ चेतन विश्व को गुण-दोष दोनों से रचा है, किन्तु संत-रूपी हँस दोष-रूपी जल को छोड़कर गुण-रूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं।

अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता ॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं ॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं ॥

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ।।
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ । बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ ।।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ।।
किएहुँ कुबेर साधु सनमानू । जिमि जग जामवंत हनुमानू ।।
हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहुँ बेद बिदित सब काहू ।।
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ।।
साधु असाधु सदन सुक सारीं । सुमरहिं राम देहि गनि गारीं ।।
धूप कुसंग कारिख होई । लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ।।
सोइ जल अनल अनिल संघाता । होइ दजल जग जीवन दाता ।।

भावार्थ—जब विधाता इस प्रकार की समझ प्रदान करते हैं तभी मानव मन के दोषों को छोड़कर गुणों में अनुरक्त होता है । समय, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग भी प्रकृति के वश में होकर कभी-कभी भलाइ से चूक जाते हैं । भक्त गण उस भूल (चूक) को इस प्रकार सुधार लेते हैं कि जो दुःख उस चूक के कारण हो सकता था, उस दुःख को तथा उस दोष को जिसके कारण दुःख होना स्वाभाविक था दोनों को मिटाकर उस भले मानव को शुद्ध यश प्रदान करते हैं । यह संसार बड़ा बिचित्र है जिसमें दुष्ट कहलाने वाले भी कभी-कभी उत्तम संग पाकर भलाई अथवा परहित करते हैं, लेकिन मलिन स्वभाव जिसका हो वह नहीं मिट पाता जिसके कारण उत्तम संग का प्रभाव क्षणिक ही होकर समाप्त हो जाता है । उन ठगों को जो साधुओं का वेष बना लेते हैं, उनकी उनके साधु वेष के कारण जग पूजा करता है अर्थात साधुओं के समान ही उनका आदर सत्कार करता है, परन्तु एक न एक दिन अपने निहित स्वभाव को प्रकट कर देने में बाध्य होकर उनका कपट खुल जाता है और उनकी वही दशा होती है जो कालनेमि, रावण और राहु की हुई । केवल वेष पर ही ध्यान न देने वाले साधु प्रकृति वालों का संसार में जामवंत और हनुमान के समान सम्मान होता है । यह संसार में प्रत्यक्ष है और वेदों में वर्णित है तथा सबको ही ज्ञात है कि बुरी संगति से हानि और अच्छी संगति से लाभ होना निश्चित है। पवन का संग प्राप्त कर धूल आकाश पर चढ़ जाती है अर्थात् ऊँचा उठकर आकाश तक को ढक लेने में समर्थ हो जाती है। पवन का स्वभाव ही ऊपर चढ़ने का है । उसका आधार पाकर धूल भी ऊपर उठ जाती है, परन्तु वही धूल जल की संगति पाकर, जिस जल का स्वभाव ही निचाई की ओर जाने का है, कीचड़ में ही मिल जाती है । इसी तरह अच्छे और बुरे संग का प्रभाव पड़ता है । साधु के घर के तोता-मैना भी राम-राम रटते रहते हैं, परन्तु असाधु के घर के पक्षी गिन-गिन कर गालियाँ देते हैं। बुरी

संगत में पड़ने के कारण धुआँ कालिख हो जाता है, वही धुआँ अच्छी संगत से सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखने के काम आता है। और जो जल अग्नि के संग से धुआँ बनता है, वही पवन का संग पाकर बादल का रूप धारण कर, वर्षा करके, जगत को जीवन प्रदान करने वाला बन जाता है।

अन्तर्कथाएँ— यह चौपाई १२ पंक्तियों की है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो ठग साधु का वेष धारण कर लेते हैं, वह भले ही कुछ समय के लिए पुज जायें, परन्तु एक न एक दिन उनका कपट खुल जाता है। उदाहरणार्थ तुलसीदास जी तीन व्यक्तियों का नाम लेते हैं–कालनेमि, रावण और राहु। इनके विषय में अन्तर्कथाएं इस प्रकार हैं—

(१) **कालनेमि**— यह एक राक्षस था। विष्णु के भय से, रावण के नाना सुमाली के साथ लंका से पाताल चला गया और वहीं रहने लगा। हनुमान जी जब संजीवनी बूटी लेने कैलास पर्वत जा रहे थे, तो वह साधु का वेष बदल कर उनका मार्ग अवरूद्ध करना चाहता था। अत: वह उसी समय हनुमान जी के द्वारा मारा गया।

(२) **रावण**—अरण्य-काण्ड और लंका काण्ड का खलनायक है। इस राक्षस का कैसे और क्यों जन्म हुआ–इसके लिए आगे देखिए बालकाण्ड का सत्यकेतु प्रतापभानु प्रसंग। यहाँ तुलसीदास का संकेत है उसके पँचवटी में साधु के वेष में प्रवेश करने और छल से सीता का अपहरण करने से।

(३) **राहु**— विप्रचित्ति के औरस और सिंहिका के गर्भ से इसका जन्म हुआ था। समुद्र-मंथन से जब अमृत निकला, तब एक असुर देवताओं के दल में मिलकर अमृत पीने लगा। चंद्रमा और सूर्य ने उसे देख लिया और इसका संवाद उन्होंने विष्णु को दिया। विष्णु ने चक्र द्वारा उसका सिर काट लिया। परन्तु उसने अमृत पी लिया था, इस कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई। मस्तक भाग का नाम राहु और धड़ भाग का नाम केतु पड़ा। राहु इसी कारण चंद्रमा और सूर्य का ग्रास करता है।

दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ७ (क) ॥
सम प्रकास तप पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥ ७ (ख) ॥
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥ ७ (ग) ॥

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब॥ ७ (घ)॥

भावार्थ—ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं, परन्तु इस सत्य का अनुभव सभी को होने पर भी केवल चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस मोटी बात को जान पाते हैं। प्रत्येक मास के दोनों पखवाड़ों में उजाला और अंधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाता के रचे क्रम ने इनके नाम में भेद कर दिया है जिससे एक का नाम शुक्ल पक्ष तथा दूसरे का नाम कृष्ण पक्ष हो गया है। इतना ही नहीं शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढ़ते बढ़ते पूर्ण हो जाता है। इस कारण शुक्ल पक्ष को सुयश और कृष्ण पक्ष को अपयश दे दिया गया है। जगत में जितने जड़ और चेतन जीव हैं सबको राममय जानकर मैं इनके चरण-कमलों की सदा दोनों हाथ जोड़कर वन्दना करता हूँ। उसी सत्य के आधार पर सबको राममय समझकर मैं देवता, राक्षस, मानव, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गंधर्व, किन्नर तथा निशाचर सबको ही प्रणाम करता हूँ और उन सभी से मुझ पर कृपा करने की प्रार्थना करता हूँ।

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥
निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥
करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मन मति रंक मनोरथ राऊ॥
मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी॥
छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषनधारी॥
निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंनु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

भावार्थ—संसार में चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के जीव (स्वेदज, अण्डज, उदिज, जरायुज) जल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं। उन सब से भरे

हुए इस सारे जगत को सीतारामय जान कर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। जगत के सब प्राणियों से, क्योंकि वह कृपा के सागर हैं, मैं याचना करता हूँ कि मुझको अपना दास जान कर, सब मिल कर और छल अर्थात आपस में भेद-भाव छोड़कर, मुझ पर कृपा करें। मुझे अपनी बुद्धि की शक्ति पर विश्वास नहीं है, इसीलिए मैं सबसे ही कृपा करने की प्रार्थना करता हूँ। मैं श्री रघुनाथ जी के गुणों की कथा का वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीराम का चरित्र अथाह है, जिसका वर्णन बुद्धि की शक्ति से हो ही नहीं सकता और मेरी तो अल्प बुद्धि है। मुझे इसके लिए उपाय का एक अंग भी दिखाई नहीं देता, पूरे उपाय की तो बात ही क्या कहूँ। क्योंकि मेरी बुद्धि दरिद्र है, किन्तु श्री रघुनाथ के गुणों की कथा वर्णन करने का मनोरथ दरिद्र बुद्धि के अनुपात में राजा है। मेरी बुद्धि तो अत्यन्त नीची है परन्तु चाह अर्थात इच्छा बहुत ऊँची है, जैसे जिस मनुष्य को इस संसार में छाछ (मट्ठा) तक सुलभता से नहीं मिल सकता हो वह अमृत पाने की इच्छा करता है। मेरी इस परिस्थिति को देखकर सज्जन मुझे अयोग्य समझते हुए भी श्री रघुनाथ के गुणों का वर्णन करने की ढिठाई करने के लिए क्षमा करेंगे और मेरे ऊपर कृपा करने के कारण मुझे बालक के समान सरल स्वभाव का जानकर मेरे बचनों को भी बाल बचनों के समान प्रेमपूर्वक सुनने की कृपा करेंगे। जैसे जब बालक तोतले बचन बोलता है, तो उस बालक के माता-पिता उन बचनों को प्रसन्न मन से सुनते हैं, अर्थात उस बालक के तोतले बचनों से भी आनन्द प्राप्त करते हैं। परन्तु जो क्रूर, कुटिल और बुरे विचारों के लोग होते हैं, वे दूसरे के दोषों को ही अपना भूषण समझकर धारण करते रहते हैं अर्थात जो अपने मन, कर्म और स्वभाव वश दूसरों के दोषों पर ही अपने मन और बुद्धि को केन्द्रित करने में अभ्यस्त है। जब वे बालक के तोतले बचनों में आनन्द न लेकर उस पर भी हँसने से नहीं चूकते तो वे मेरी श्रीराम चरित वर्णन करने के प्रयास पर भी अवश्य हँसेंगे। कवियों की विशेषता है कि उनमें से ऐसा कौन है जिसे अपनी कविता चाहे रसयुक्त हो या अरस हो अच्छी न लगे। किन्तु जो दूसरे की रचना को सुन-कर प्रसन्न होते हैं अथवा उससे आनन्दित होते हैं ऐसे उत्तम पुरुष संसार में अधिक नहीं होते। इस संसार में तालाबों और नदियों के समान वृत्ति रखने वाले ही मानव अधिक हैं। जो बाढ़ के कारण अतिरिक्त जल पाकर उफन पड़ते हैं अर्थात् अपनी मर्यादा से भी अधिक विस्तृत होकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। परन्तु सागर के समान वृत्ति रखने वाला, जो पूर्ण चन्द्रमा को देखकर प्रसन्नता से उमड़ पड़ता है, बिरला ही सज्जन होता है।

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़ करउँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास॥ ८॥

भावार्थ— मैं जानता हूँ कि मेरा भाग्य छोटा है (जिसके कारण श्री राम चरित का अधिक ज्ञानार्जन न कर सका) परन्तु श्री रामचरित का वर्णन करने की इच्छा बहुत बड़ी है, फिर भी यह एक विश्वास दृढ़ है कि मेरी रचना को सुनकर सभी सज्जन व्यक्ति सुख प्राप्त करेंगे और खल वृत्ति वाले हँसी उड़ावेंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हंसहि बक दादुर चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकहीं॥
कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसें नहिं खोरी॥
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह महुँ मधुर कथा रघुबर की॥
राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥
कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कवित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

भावार्थ—असज्जनों के हंसी उड़ाने से भी मेरा हित होगा क्योंकि इसी प्रकार से वे मेरी रचना का प्रचार करेंगे जिससे दूसरों को इसके बारे में कुछ तो बोध होगा। फिर असज्जनों के असत्य को परख कर सत्य तक पहुँचना उनके लिये सुगम हो जायेगा। और जगत में यह तो स्वाभाविक ही है कि मधुर कंठ वाली कोयल को कौए कठोर कंठ वाली ही कहा करते हैं। इसी प्रकार बगुले हंस पर और मेढक पपीहे पर हंसते हैं। तो फिर मलिन मनवाले निर्मल वाणी पर बिना हँसे कैसे रह सकते हैं। जो लोग न तो कविता में आनन्द लेने वाले हैं और न जिनका श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम है, उनके लिये मेरी रचना हास्यरस का ही आनन्द प्रदान करेगी। एक और विशेष बात भी है कि यह कविता प्राचीन परिपाटी से हट कर संस्कृत भाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा में लिखी गई है; दूसरे इससे पूर्व भाषा में रामचरित वर्णन न होने के कारण, भाषा में ऐसी महान कथा को लिखने का मेरा प्रयास मेरी बुद्धि के भोलेपन का स्पष्ट प्रमाण है। जिसके कारण यह रचना हंसने योग्य तो है ही, तो फिर यदि इस पर लोग हंसे तो उनका कोई दोष नहीं हैं। जिनको न तो प्रभु श्रीराम के चरणों में प्रीति है और न जिनकी अच्छी समझ ही है, उनको तो श्रीराम कथा सुनने में आनन्द विहीन (अरस) ही लगेगी। परन्तु जिनको श्री विष्णु और श्री शिव के चरणों में प्रीति है उन्हें श्री रघुबर

(श्री राम) की कथा मधुर (सरस) लगेगी, क्योंकि उनकी बुद्धि कुतर्क करने वाली नहीं होती। सज्जनगण मेरी रचित श्री राम कथा को उनकी भक्ति से अलंकृत जानकर अपनी सुन्दर वाणी से इसकी सराहना करते हुये सुनेंगे। मैं कवि नहीं हूँ और न मुझ में वाक चातुर्य है, अर्थात कवि जैसी कल्पना शक्ति तथा कविता रचना की योग्यता का मुझ में अभाव है। इसके अतिरिक्त सांसारिक अन्य कलाओं और विधाओं से भी अनभिज्ञ हूँ। कवि के लिए आवश्यक है कि वह अक्षर और शब्द का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे तथा उनके अर्थों को भली भाँति समझ सके, अर्थात् कौन सा अक्षर या शब्द कहाँ प्रयोग करना चाहिये जिससे उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग हो सके। फिर अलंकार, अनेक प्रकार के छन्द तथा उनकी रचना की जानकारी रख सके। भावों और रसों के अपार भेद और कविता में भाँति-भाँति के जो गुण-दोष हैं उनकी जानकारी भी होना आवश्यक हो जाता है। ऐसी स्थिति में तुलसीदास जी इसी से संतोष करना उचित समझते हैं कि "मैं कवि ही नहीं हूँ, और जो कुछ भी मैंने लिखा है, वह केवल कोरा कागज है।"

लोकोक्ति—यह और इसके ऊपर की चौपाई क्रमश: ११ और १४ पंक्तियों की है। इस चौपाई के अन्त में एक लोकोक्ति है, जो बहुत प्रचलित है :

"कवित विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे"

तुलसीदास जी ने संस्कृत के पण्डितों और रीतिकाल के कवियों पर कटाक्ष किया है। पण्डितों के अनुसार विष्णु के अवतार श्री राम का चरित्र "भाषा" में लिखना धर्म के विरुद्ध था और बिना छन्दों और अलंकारों के रीतिकाल के कवियों को कोई भी रचना ग्राह्य नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में तुलसीदास जी बहुत विनम्रता पूर्वक स्वीकार करते हैं कि उनमें "कवित-विवेक" बिलकुल भी नहीं है और पण्डितों और समकालीन कवियों की दृष्टि में उनकी सीधी-सादी अवधी "भाषा" में केवल चौपाई और दोहों में लिखी हुई "मानस" कोरे कागज के समान है। अंग्रेजी के कवि शेक्सपियर और पोप की लोकोक्तियों के बिना पहले कोई लेख या भाषण अपने में सम्पूर्ण नहीं माना जाता था। लोकोक्तियों के सम्बन्ध में अंग्रेजी भाषा में जो शेक्सपियर और पोप का स्थान है, वही हिन्दी में तुलसीदास का है। आप कोई भी लेख लिखें या भाषण दें, "मानस" के किसी न किसी काण्ड की कोई न कोई लोकोक्ति अनायास आपकी लेखनी या मुख से निकल ही जायगी। इस रचना के अन्त में पाठकों की सुविधा के लिए तुलसीदास की लोकोक्तियों का संकलन कर दिया गया है।

दो०—भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह कें बिमल बिबेक ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह स्वीकार करते हुए कि मेरी रचना कविता के सब गुणों से विहीन है, फिर भी इसमें जगत विख्यात एक गुण है जिस पर ध्यान देकर सद्बुद्धि वाले मानव, जिनका निर्मल ज्ञान है, इसको सुनेगें।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा।।
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।।
भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।।
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी।।
सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही।।
जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रकट एहि माहीं।।
सोइ भरोस मोरें मन आवा। केहि न सुसग बड़प्पनु पावा।।
धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसग सुगंध बसाई।।
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।।

भावार्थ— इस रचना में श्री रघुनाथ जी का उदार नाम है, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद और पुराणों का सार भी है, कल्याण का भवन है और अमंगलों का हरने वाला है। इन गुणों के कारण उस नाम का पार्वती के साथ श्री भगवान शिव जाप किया करते हैं। जो अच्छे कवि द्वारा रचित विचित्र कविता है, वह भी श्रीराम का नाम रहित होने के कारण शोभा नहीं पाती जिस प्रकार चन्द्रमुखी (सुन्दर) स्त्री सब प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित होने पर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती। बुरे कवि द्वारा सर्व गुणों से रहित कविता को भी, श्री राम नाम एवं श्री राम के यश वर्णन से युक्त जानकर, बुद्धिमान लोग उसे सादर कहते और सुनते हैं, क्योंकि संतजन भौरों के समान गुण ही ग्रहण करने वाले होते हैं। यद्यपि मेरी कविता में काव्यशास्त्र वर्णित एक भी रस नही है फिर भी इसमें श्री राम के प्रताप का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है जिससे उसी का मेरे मन में विश्वास है कि श्रीराम के प्रताप का अच्छा संग पाने के कारण मेरी रचना अवश्य आदर पायेगी। इस जगत में ऐसा कौन है जिसने अच्छी संगति से बड़प्पन प्राप्त नहीं किया। धुआँ भी अगर के संग से सुगन्धित होकर अपने स्वाभाविक कड़वेपन को त्याग देता है। इसीलिये मेरी कविता भद्दी होते हुए भी इसमें श्रीराम की कथा का, जो जगत का कल्याण करने वाली है, वर्णन किया गया है।

टिप्पणी–ऊपर की चौपाई १० पंक्तियों की है। दोहा नं० ९ में तुलसी दास विनम्र भाव से कहते हैं कि उनकी "रचना कविता के सब गुणों से विहीन

है"। फिर भी उसमें एक ऐसा गुण है जिसके कारण उसको सुनने के लिए सब लोग लालायित रहेंगे। वह गुण क्या है? आगे की इस चौपाई में उसका विश्लेषण किया गया है। वह गुण है कि कविता का विषय-वस्तु राम-नाम की गाथा है। जैसे चन्द्रमुखी स्त्री कितने भी अलंकार धारण कर ले, वह बिना वस्त्र के अपने नग्न रूप में शोभा नहीं देती। इसी प्रकार शब्द-चातुर्य और अलंकार सुसज्जित कविता बिना राम-नाम के ग्राह्य नहीं हो सकती। इसके विपरीत, सीधी सादी कविता भी राम-नाम की महिमा के कारण सारे जगत को ग्राह्य होती है। राम-नाम की महिमा शिव-भगवान अपनी पूरक शक्ति पार्वती के साथ निरन्तर जपते रहते हैं।

छं०—मंगल करनी कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

भावार्थ—श्री रघुनाथ जी की कथा कल्याण करने वाली और कलियुग के पापों (बुराइयों) को हरने वाली है। इसी कारण मेरी भद्दी कविता रूपी नदी का जल, गंगा जी के जल के समान पवित्र हो गया है। प्रभु श्री राम के सुन्दर यश का संग होने से यह मेरी रचना (कविता) स्वयं सुन्दर तथा सज्जनों के मन को अच्छी लगने वाली हो जायेगी, जिस प्रकार श्मशान की अपवित्र राख भी श्री महादेव जी के अंग का संग पाकर सुहावनी लगने लगती है और उसका स्मरण करते ही पवित्रता प्राप्त हो जाती है।

दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥ १० (क)॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥ १० (ख)॥

भावार्थ—श्री राम यश का संग प्राप्त होने के कारण मेरी रचना (कविता) सभी को अत्यन्त प्रिय लगेगी, जिस प्रकार मलय पर्वत का संग प्राप्त होने से वहाँ का काष्ठ (लकड़ी) भी चन्दन बनकर वन्दनीय हो जाता है और कोई यह भी विचार तक नहीं करता कि यह केवल काठ है। जिस प्रकार श्यामा गाय का काला रंग होने पर भी उसका दूध उज्ज्वल और श्वेत गाय के दूध की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है—यह समझ कर उसे सब और अधिक चाव से पीते

हैं। इसी प्रकार मेरी रचना गँवारू भाषा में होने पर भी, इसमें वर्णित सीताराम जी के यश को बुद्धिमान लोग बड़े चाव से गायेंगे और सुनेंगे।

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोंह न तैसी ॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥
तैसेहिं सुकबि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं ॥
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥
कबि कोबिद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलिमल हारी ॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ॥
जौं बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू ॥

भावार्थ— मणि, माणिक और मोती की जैसी सुन्दरता है, वह सर्प, पर्वत और हाथी के मस्तक पर रहते हुए अपनी पूर्ण शोभा प्राप्त नहीं कर पाती। इनकी वास्तविक शोभा किसी राजा के मुकुट तथा नवयुवती के शरीर का संग प्राप्त करने पर ही पूर्णरूपेण विकसित होती है। क्योंकि सर्प, पर्वत और हाथी के मस्तक पर रहते हुए, ये स्वयं छिपे रहते हैं। इनकी उपस्थिति तक का ज्ञान नहीं होता। परन्तु जब यह अपने जन्म-स्थान से बाहर आकर, सुन्दर बनाये जाने के पश्चात, किसी राजा के मुकुट में अथवा आभूषणों में जड़ दिये जाते हैं और फिर राजा मुकुट धारण करता है एवं नवयुवती अपने शरीर पर आभूषणों को धारण करती है, तब इन मणि, माणिक और मोतियों की शोभा कई गुनी अधिक अपने आप ही हो जाती है। उसी प्रकार बुद्धिमान लोग कहते हैं कि सुकवि की कविता की उत्पत्ति उसके मस्तिष्क होती है किन्तु उसकी शोभा या उसके गुणों का प्रकाशन तभी सम्भव है जब सुहृद उस पर विचार करें, उसका प्रचार करें तथा उसमें वर्णित आदर्श को ग्रहण करें और उसका अनुसरण करें। इसका मुख्य कारण यह है कि कवि के स्मरण करते ही, उसकी भक्ति और सद्विचारों के फलस्वरूप, सरस्वती देवी ब्रह्मा के घर को छोड़ कर उस कवि पर कृपा करने को दौड़ी आती हैं। दौड़ी आने के कारण उनकी थकावट रामचरित रूपी सरोवर में उन्हें स्नान कराये बिना दूसरे करोड़ों उपायों से भी दूर नहीं होती। सुकवि और बुद्धिमान पंडित अपने हृदय में ऐसा विचार करके और भली भाँति समझकर कलियुग की बुराइयों अर्थात पापों का नाश करने वाले श्री विष्णु (राम) के यश का गान करते हैं। माता सरस्वती की कृपा का सद्उपयोग करना, कवि के लिए परमावश्यक

है। अतः उसके लिए आवश्यक है कि वह साधारण मानसिक मनोरंजन की रचना में ही माँ सरस्वती की कृपा का प्रयोग न करे। इससे उन्हें प्रसन्नता के स्थान पर निराशा ही होगी। संसारी मनुष्यों का गुणगान करने से माता सरस्वती अपना सिर धुन कर पछताने लगती हैं, क्योंकि उस कवि के आह्वान पर सरस्वती जी उस पर कृपा करने के लिए आई थीं, परन्तु उनकी कृपा का उपयोग उस कवि ने साधारण मानव का गुणगान केवल उसके मनोरंजनार्थ ही किया न कि जनकल्याण के लिए। अतः माता सरस्वती का पछतावा होना स्वाभाविक ही है।

बुद्धिमान हृदय को समुद्र, बुद्धि को सीप और सरस्वती को स्वाति नक्षत्र के समान कहते हैं। इसलिए यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल की वर्षा होती है तो कविता स्वयं मुक्तामणि (मोती) के समान सुन्दर हो जाती है।

किम्वदन्ति— इस चौपाई में विषम नौ पंक्तियाँ हैं। चौपाई तीन किम्वदन्तियों पर आधारित है :—

(१) आजकल के विज्ञान के युग में सब लोग भली प्रकार जानते हैं कि मणि (हीरा) और माणिक (लाल) खदानों में से निकलते हैं और मोती समुद्र में विशेष प्रकार की सीपी (oyster) को काटकर निकाले जाते हैं। परन्तु कवियों की कल्पना में मणि शेषनाग के फन में होता है, माणिक पर्वत की चोटी पर होता है, और मुक्ता (मोती) हाथी के मस्तिष्क में होता है। इसी कल्पना को लेकर तुलसीदास जी कहते हैं कि मणि, माणिक और मुक्ता का कोई महत्व नहीं जब तक वह "अहि, गिरि और गज" के सिर में रहते हैं। उनकी शोभा का पूर्ण विकास तब ही होता है जब वे अपने जन्म स्थान से बाहर आकर, सुन्दर बनाये जाने के पश्चात, किसी राजा के मुकुट या किसी स्त्री के आभूषणों में जड़े जाते हैं। इसी प्रकार कवि के मस्तिष्क से निकली हुई कविता का कोई महत्व नहीं, जब तक कि वह जन-मानस को ग्राह्य न हो।

(२) केशवदास (१५५५-१६१७) कठिन काव्य के प्रेत माने जाते हैं। वह अपने यमक और श्लेषालंकार के लिए प्रसिद्ध हैं। वह ओरछा-नरेश मधुकर शाह के आश्रित थे। राजा मधुकर के बाद जब उनके पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठे, तो उन्होंने राज-काज अपने छोटे भाई इन्द्रजीत के हाथ सौंप दिया। इन्द्रजीत ने केशव को न केवल अपना राज्य कवि बना लिया, अपितु अपना विशिष्ट सलाहकार भी। एक बार केशवदास ने तुलसीदास से मिलने की इच्छा प्रकट की। प्रहरी ने आकर तुलसीदास को सूचना दी। तुलसीदास ने तुरन्त कहा : "प्राकृत-कवि को आवन दो।" तुलसीदास की नजरों में संसारी (प्राकृत) मनुष्यों का गुणगान

करने वाला कवि निम्न श्रेणी का कवि होता है। श्रेष्ठ कवि भगवत् भजन और भगवत् लीला का गान करता है। केशवदास इस उलहने को सहन नहीं कर पाए। किम्वदन्ति है कि रातों-रात में उन्होंने समस्त "राम चन्द्रिका" लिख डाली। "रामचन्द्रिका" में से सीता की अग्नि-परीक्षा की चार पंक्तियाँ उद्धृत हैं :

सवस्त्रा सबै अंग सिंगार सोहैं, विलोके रमा देव देवी विमोहैं।
पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्र गीता, लसै अग्नि के अंक त्यों शुद्ध सीता।।
महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी, कि संग्राम के भूमि में चंडिका सी।
मनोरत्न सिंहासनस्था सची हैं, किंधौ रागनी रागपूर रची है।।

(२) किम्वदन्ति है कि स्वाति-नक्षत्र में सीपी अपना सम्पुट खोलती है। उसमें ओस का कण समा जाता है। सीपी जब अपना मुख बंद कर लेती है, तो वही कण मोती बन जाता है। इस किंवदन्ति को लेकर तुलसीदास ने रूपक बाँधा है। हृदय एक समुद्र है, बुद्धि उसमें सीपी और सरस्वती स्वाति-नक्षत्र। इसलिए यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल की वर्षा होती है, तो कविता स्वयं मुक्तामणि बन जाती है।

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग।। ११।।

भावार्थ—कविता रूपी मुक्ता मणियों को युक्ति से बेधकर श्री रामचरित्र रूपी सुन्दर तागे में पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुरागमयी शोभा होती है। तात्पर्य यह है कि सुकवि तो कविता रूपी मुक्तामणियों का निर्माण कर उन्हें जगहिताय समर्पित कर देता है, परन्तु उनका सद्उपयोग करना तो सज्जनों पर ही निर्भर करता है।

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस वेष मराला।।
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेबर कलि मल भाँड़े।।
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।।
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी।।
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ।।
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने।।
समुझि विबिध बिध बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।।
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका।।
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।।

कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई । करत कथा मन अति कदराई ॥

भावार्थ—जिनका जन्म ही घोर कलयुग में हुआ है, उन पर काल का प्रभाव होने के कारण उनके कार्य (करनी) कौवे के समान और वेष तथा ऊपरी दिखावा हंस के समान होता है । ऐसी परिस्थिति में वे वेदों में वर्णित जीवनयापन के मार्ग का परित्याग कर कुमार्ग पर ही चलते हैं, जिससे वे कपट की मूर्ति और कलिकाल जनित बुराइयों के पूर्ण पात्र होते हैं । भीतर से ठग होकर लोगों को ठगने पर भी वे अपने को श्रीराम का भक्त कहलाने में सफल होते हैं और धन (स्वर्ण), क्रोध और काम (वासना) के दास होते हैं । इस प्रकार के मानवों में सर्वप्रथम मेरा स्थान है जो धर्म की बातों में भी धींगाधींगी, धर्म का झूठा झंडा फहराने वाले (दंभी) और कपट के धन्धों का बोझ ढोने वाले हैं । यदि मैं अपने सब अवगुणों का बखान करने लगूँ तो मेरी निज की कथा ही बहुत बढ़ जायेगी और जो राम कथा लिखने की प्रेरणा हुई है उसमें भी कमी आ सकती है । इस कारण मैंने अवगुणों का संक्षिप्त वर्णन ही किया है और जो बुद्धिमान अथवा चतुर हैं इतने से ही मुझे भली प्रकार जान जायेंगे । मेरी नाना प्रकार की विनती को समझकर (ध्यान में रखकर) कोई भी इस रामचरित की कथा को सुनकर दोष नहीं देगा । इतने पर भी जो शंका करेंगे तो वे स्वयं मुझसे अधिक अपनी ठस और निर्बल बुद्धि का परिचय देंगे । मैं स्वयं न तो कवि हूँ और न चतुर कहलाता हूँ । जो बुद्धि मुझे श्रीराम कृपा से प्राप्त है उसी के अनुसार श्रीराम का गुणगान करता हूँ । कहाँ तो श्रीराम जी के अपार चरित्र और कहाँ संसार में आसक्त मेरी बुद्धि । श्रीराम जी के चरित्रों का वर्णन उनके अपार होने के कारण मानव शक्ति से परे है । जिस प्रचंड पवन से सुमेरु जैसे पर्वत तक उड़ जाते हैं उसके सामने रुई किस गिनती में है । अर्थात, जिन श्री रघुनाथ जी के चरित्र का वर्णन करने में बड़े-बड़े महात्मा और ज्ञानी असफल रह जाते हैं, वहाँ मुझ जैसा अल्प बुद्धि वाला सांसारिक मानव कहाँ सफलता प्राप्त कर सकता है । इस कारण श्रीराम की असीम प्रभुता को समझ कर उनकी कथा की रचना करने में मेरा मन बहुत हिचकता है । असीम का वर्णन जब सीमित के लिए असंभव है, फिर उसके वर्णन करने के प्रयास में मन में घबराहट होना स्वाभाविक ही है ।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई बारह सम पंक्तियों की है ।

दो०—सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान ।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ॥ १२ ॥

भावार्थ—श्री राम जी का गुणगान सरस्वती, शेषनाग, ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण "नेति नेति" कहकर सदा किया करते हैं। श्री राम के गुणों का पार नहीं पाया जा सकता, अर्थात उनकी इति नहीं है। इसी को "नेति नेति" कहकर सरस्वती, शेषनाग और ब्रह्मा अपनी असमर्थता प्रकट कर आनन्दित होते हैं।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥
एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥
गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥
तेहिं बल मैं रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी की प्रभुता को सब अकथनीय जानते हुए भी, उनका वर्णन किये बिना कोई न रह सका। अर्थात, भावावेश के कारण उन्हें गुण-गान करने पर विवश कर देता है। इसके लिए स्वयं वेद ने बताया है कि श्रीराम भजन का प्रभाव ही बहुत प्रकार से वर्णित होने पर भी सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। परमेश्वर एक है, जिसे कोई इच्छा नहीं है, जिसका न कोई रूप है और न कोई नाम, जो अजन्मा है, सच्चिदानन्द और परमधाम है और जो सबमें व्यापक होने से विश्व रूप है। उसी ने दिव्य स्वरूप धारण कर नाना प्रकार की लीला की हैं। वे भगवान परम कृपालु हैं और अपनी शरण में आने से अत्यन्त प्रेम करते हैं। उन भगवान का स्वभाव है कि वे भक्तों पर बड़ी ममता और कृपा करते हैं और जिस पर वे कृपा कर देते हैं, उस पर कभी भी क्रोध नहीं करते। दीन बन्धु गई हुई वस्तु को फिर से प्राप्त करा देते हैं, अर्थात सांसारिक वस्तुओं की ही नहीं वरन् आध्यात्मिक आनन्द तक की कमी को पूरा कर देते हैं। इसको ही समझ कर बुद्धिमान लोग श्री हरि के यश का वर्णन करने को विवश हो जाते हैं क्योंकि इससे सर्वप्रथम तो वे अपनी वाणी को ही पवित्र करते हैं जिससे उनका मन और बुद्धि स्वतः पवित्र हो जाती है, फिर जो परिणाम स्वरूप इसके सुफल होते हैं वे उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। उसी बल के आधार मैं श्री रघुनाथ

जी के गुणों की कथा, उनके चरण कमलों में अपना मस्तक नवा कर कहूँगा। गोस्वामी जी कहते हैं कि उनसे पूर्व बाल्मीकि, व्यास आदि मुनियों ने श्री हरि के यश और कीर्ति का वर्णन किया है। इस कारण उन्ही के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना उनके लिए सुगम होगा। उन्हें किसी नये मार्ग के निर्माण करने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा वरन उन महान मुनियों द्वारा निर्मित मार्ग पर चलना तथा उनका अनुसरण करना विशेष सुगम होगा।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई में १० सम पंक्ति हैं। इस चौपाई में और इसके ऊपर के दोहे में तुलसीदास ने हिन्दू-धर्म के प्रति न केवल अपना मत बताया है अपितु उनके पूर्व के मनीषियों के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया है।

महर्षि व्यास ने वैदिक ऋचाओं को तीन भागों में बाँटकर उनका अलग-अलग संकलन किया -ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद। इस संकलन का कलेवर बहुत बड़ा हो जाने के कारण वेदव्यास ने वेदों का सार अपने "वेदान्त सूत्र" में बताया। इस "वेदान्त सूत्र" पर आगे चलकर शंकराचार्य ने भाष्य लिखा (ईसा के ८०० वर्ष बाद)। शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुसार केवल एक ब्रह्म है, बाकी सब माया है।—"एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति"। यह ब्रह्म "अनीह, अरूप और अनाम" है। इस निर्गुण ब्रह्म की कोई भी व्याख्या नहीं कर सकता। अतः व्याख्या का कोई भी अन्त नहीं है (नेति) :

"नेति-नेति कहि जासु गुन, करहिं निरन्तर गान।"

अद्वैतवाद के अनुसार जब आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है, तो उसका अपना अस्तित्व जाता रहता है।

रामानुज (१०१७-११३७ ई०) शंकराचार्य की शिष्य परम्परा में थे। उन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार आत्मा, द्रव्य और ईश्वर का प्रथक अस्तित्व है और पहले दो तीसरे से निरन्तर सम्मिश्रण का प्रयास करते रहते हैं। आगे चलकर मध्वाचार्य ने द्वैतवाद चलाया, जिसके अनुसार भगवान ने मनुष्य बनाया है। मनुष्य नश्वर है और वह कभी भी ईश्वरत्व को प्राप्त नहीं कर सकता। विष्णुस्वामी (१३२०) का शुद्धाद्वैतवाद शंकराचार्य के अद्वैतवाद से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, केवल उसमें माया का कोई स्थान नहीं है। निम्बार्क ने कृष्ण के साथ राधा की अराधना शुरू की। राधा आत्मा है, कृष्ण परमात्मा—एक दूसरे में लीन हो जाते हैं। यह ही निम्बार्क का द्वैताद्वैत वाद है।

ऊपर का समस्त वाङ्मय संस्कृत में था और सामान्य जनता के परे था। वादों ने—अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत—जनता को और भ्रम में डाल दिया। मुसलमानों के द्वारा जब उनके मन्दिर तोड़े जा रहे थे, उन पर जजिया लगाया जा रहा था, उनकी स्त्रियों का अपहरण हो रहा था, और उनका बरबस धर्मपरिवर्तन किया जा रहा था—जनता का कोई मार्गदर्शन करने वाला नहीं था। ऐसी परिस्थिति में रामानन्द (१४००-१४७०) का आविर्भाव हुआ। रामानन्द शंकराचार्य-रामानुज शिष्य परम्परा के थे। यह पहले मनीषी थे जो दक्षिण से उत्तर आए और उत्तर की प्रचलित भाषा में धर्म का प्रचार किया। इन्होंने वादों को छोड़कर सगुण ब्रह्म की उपासना आरम्भ की और भक्ति का सहज मार्ग दर्शाया। इसके अनुसार भक्तों पर जब जब विपत्ति पड़ी, भगवान स्वयं पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

भगवान के दशावतारों में उनकी राम के रूप में पूजा अधिक अभीष्ट है।

तुलसीदास ने रामानन्द का बताया हुआ मार्ग अपनाया। ऊपर का दोहा और चौपाई तुलसीदास की प्रखर बुद्धि के द्योतक है। उनके पहले के समस्त वाङ्मय का सारांश उन्होंने इस दोहे और चौपाई में रख दिया :

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना। तेहि धरिदेह चरित कृतनामा॥
सो केवल भगतन हित लागी। परय कृपाल प्रनत अनुरागी॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥

१. **अनीह, अरूप, अनामा**—यह तीनों विशेषण शंकराचार्य के परब्रह्म के हैं।

२. **सच्चिदानन्द**—यह बल्लभाचार्य (१४७९-१५३०) का पुष्टि-मार्ग है। बल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म सत् (आत्मा), चित् (द्रव्य) और आनन्द का सम्मिश्रण है। जड़ पदार्थ में केवल चित है—न आत्मा न आनन्द। जीव में सत् और चित्, परन्तु आनन्द नहीं। ब्रह्म में तीनों विद्यमान हैं। इसलिए वह सच्चिदानन्द हैं।

३. **तेहि धरि देह चरित कृत नाना। सो केवल भगतन हित लागी**—ऊपर उद्धृत गीता के चौथे अध्याय के सातवें श्लोक का हिन्दी रूपान्तर है।

४. **मुनिन्ह ···· हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई**—रामानन्द का दिखाया हुआ भक्ति मार्ग तुलसीदास को सुगम लगता है। आगे चलकर राम से वह राम के नाम को अधिक महिमा देते हैं। राम ने तो त्रेतायुग में अपने कुछ भक्तों को ही तारा। परन्तु कलयुग में उनका नाम ही एक सहारा है (देखिये दोहा २५-२७ और बीच की चौपाई, पृष्ठ ५६-६०)। और आगे चलकर तुलसीदास ने नवधा भक्ति का विश्लेषण किया है (देखिए अरण्यकाण्ड दोहा ३५ और उसके ऊपर नीचे की चौपाई)।

दो०—अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ १३॥

भावार्थ—जो अत्यंत बड़ी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, यदि राजा इन पर पुल बाँध देता है तो अत्यंत छोटी चीटियाँ भी उस पर चलकर बिना किसी परिश्रम के पार चली जाती हैं। फिर मेरे लिए तो महान मुनियों ने श्री हरि कथा लिख कर ऐसा प्रशस्त और स्वच्छ मार्ग बना दिया है जिसके आधार पर मैं श्री राम जी के चरित्र का वर्णन सहज ही कर सकूँगा।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥
ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥
जे प्राकृत कबि परम सयाने। भाषाँ जिन्ह हरि चरित वखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागे॥
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि वाल कबि करहीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहि अँदेसा॥
तुम्हरी कृपाँ सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥

भावार्थ—इस प्रकार मन को बल देकर मैं श्री रामचन्द्र की सुहावनी कथा की रचना करता हूँ। मेरे पूर्व व्यास आदि जो अनेकों श्रेष्ठ कवि हो गये हैं उनकी अभिव्यक्ति का साहस जब सुगमता से प्राप्त है तो मन को इससे बल देकर, श्री रघुपति की कथा जो स्वयं ही सुहावनी है, उसकी रचना करना कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता। मैं उन सब श्रेष्ठ कवियों के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ

और प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे सब मनोरथों को पूरा करें। गोस्वामी जी कलियुग के उन कवियों को भी प्रणाम करते हैं, जिन्होंने श्री रघुनाथ जी के गुण समूहों का वर्णन किया है। त्रेता और द्वापर युग में श्री हरि का गुणगान करना उतना कठिन नहीं था जितना कलयुग में है। जो बड़े बुद्धिमान जनसाधारण के कवि हैं पर जिन्होंने भाषा में श्री हरि के चरित्रों का वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आगे होंगे, उन सबको मैं कपट त्याग कर प्रणाम करता हूँ। वे सब प्रसन्न होकर मुझे यह बरदान दें कि साधु समाज में मेरी कविता आदरित हो, क्योंकि बुद्धिमान लोग जिस कविता का आदर नहीं करते, बालक अर्थात अल्प ज्ञान वाले कवि उसकी रचना का व्यर्थ ही परिश्रम करते हैं। कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा जी के समान सबका हित करने वाली हो। यदि उनमें लोक कल्याण की भावना का अभाव है तो वे सब व्यर्थ हैं क्योंकि यदि उनमें लोक हित का लाभ नहीं है तो वे जिसकी हैं उसका भी कल्याण करने में असमर्थ ही रहेंगी और यह भी निश्चित ही है कि वे दूसरों के अहित का साधन बन जाँय और एक दिन उसका ही अहित कर दें। श्री रामचन्द्र जी की कीर्ति तो बड़ी सुन्दर और सबका अत्यंत कल्याण करने वाली है, परन्तु मेरी कविता भद्दी है और इन दोनों में इसी असामन्जस्य के कारण मुझे चिन्ता है। परन्तु हे कवियों आपकी कृपा से अपनी भद्दी भाषा में राम कथा का वर्णन मेरे लिए सुलभ और लोक के लिए हितकारी हो सकता है क्योंकि रेशम की सिलाई टाट पर भी सुहावनी लगती है। इस कारण कवियों की कृपा से जो मार्गदर्शन हुआ है उसका अनुसरण करना ही मेरा कार्य रह जाता है। श्री राम कथा तो स्वयं ही इतनी सुहावनी है जैसे रेशम और उसकी कढ़ाई चाहे टाट पर ही क्यों न की जाय सुन्दर लगती है। इसी प्रकार श्री राम कथा अपने अद्भुत चमत्कार के कारण अथवा गुणों के कारण मेरी भद्दी भाषा में भी सुशोभित ही होगी।

टिप्पणी— यह चौपाई ११ विषम पंक्तियों की है। दोहा नं० १३ में एक गूढ़ भाव का निरूपण किया गया है। राजा जब नदी को पार करने के लिए एक पुल बनवाता है, तो उसके सहारे एक छोटी सी चींटी भी नदी के पार पहुँच जाती है। दोहे के ऊपर की चौपाई की अंतिम पंक्ति में कहा गया है :

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥

और दोहे के नीचे की चौपाई में इसी भाव को फिर दोहराया गया है :

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहऊँ रघुपति कथा सुनाई ॥
व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥

संस्कृत में एक उक्ति है : "महाजनो गतः सः पन्थः" । इस उक्ति का दोहे और ऊपर उद्धृत चौपाई की पंक्तियों में तुलसीदास जी विस्तारपूर्वक विश्लेषण करते हैं। उनके पूर्व के कवि व्यास-बाल्मीकि आदि ने उनके लिए पहले ही से मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उसी लीक पर चलना उनके लिये सुगम हो गया है । यद्यपि व्यास ने राम कथा नहीं लिखी, फिर भी तुलसीदास ने ऊपर की चौपाई में उनके नाम का उल्लेख किया है। कारण यह है कि व्यास के अट्ठारह पुराणों में से विष्णु-पुराण और भागवत्पुराण हरि (विष्णु) के गान से ओत-प्रोत है । कृष्ण के भाँति, राम भी तो विष्णु के अवतार हैं।

शेष चौपाई में तुलसीदास अपने समकालीन कवियों को प्रणाम करते हैं, जिन्होंने "भाषा" में हरि-चरित्र बखाना है। संकेत है सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों की ओर । सब कवियों से वरदान माँगते हैं कि वे प्रसन्न हों ताकि उनकी (तुलसीरास की) कृति साधु-समाज में सम्मानित हो। इस प्रकार से याचना करते करते, तुलसीदास एक और लोकोक्ति का निरूपण करते हैं :

"कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहँ हितहोई ।"

मनुष्य की कीर्ति, उसका लेख और उसका धन सार्थक तब होते हैं, जब वह गंगा के समान सबका हित करें। इस लोकोक्ति को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने अपने आदर्श वाक्य (motto) के रूप में अपनाया है।

दो०—सरल कबित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान ।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान ।। १४ (क) ।।
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर ।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि कहउँ निहोर ।।१४ (ख)।।
कबि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल ।
बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मोपर होहु कृपाल ।। १४ (ग) ।।

भावार्थ— चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो समझने में सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्र तथा कीर्ति का वर्णन किया गया हो, जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक बैर तक को विस्मरण कर उसकी सराहना करने लगते हैं। ऐसी कविता की रचना बिना निर्मल बुद्धि के हो नहीं सकती और मेरी बुद्धि का बल बहुत ही थोड़ा है। इसलिए बार बार कवियों से निहोरा (गिड़गिड़ा कर प्रार्थना) करता हूँ। आप मुझ पर कृपा करें जिससे मैं हरि यश का वर्णन कर सकूँ। कवि-गण तथा पंडित ! आप श्री राम चरित्र रूपी मानसरोवर के सुन्दर हंस हैं, मुझ

बालक की विनती सुनकर अथवा अच्छी रूचि देखकर मुझ पर कृपा कीजिये। कवियों और ज्ञानी पंडितों का स्वभाव है कि वे उत्तम चरित्र के प्रशंसक होते हैं, फिर रामचरित्र में तो वे विशेष आनन्द ही प्राप्त करेंगे। इस कारण गोस्वामी जी कवियों और पंडितों दोनों से कृपा करने की प्रार्थना करते हैं।

सो०—बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥ १४ (घ) ॥
बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ॥ १४ (ङ) ॥
बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी ॥ १४ (च) ॥

भावार्थ- गोस्वामी जी बाल्मीकि मुनि के चरण कमलों की वन्दना करते हैं जिन्होंने सर्वप्रथम रामायण की रचना की है जो खर-दूषण जैसे राक्षसों का वर्णन अपने में धारण करते हुए भी, बड़ी कोमल, सुन्दर और दोष रहित है। फिर गोस्वामी जी चारों वेदों की वन्दना करते हैं, जो संसार समुद्र पार करने के लिए जहाज के समान हैं, जिन्हें श्री रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करने में थकावट या शिथिलता नहीं आती। गोस्वामी जी ही विरले हैं जो श्री ब्रह्मा जी के चरण रज की वन्दना करते हैं, जिन्होंने भवसागर बनाया है, जिसमें से एक ओर तो संत रूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु रूपी सज्जन व जग का हित करने वाले पशु इत्यादि और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्य-रूपी विष और संसार में लिप्त करने वाली वस्तुओं-रूपी मदिरा भी प्रकट हुए हैं।

दो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि करउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥ १४ (छ) ॥

भावार्थ—गोस्वामी जी देवता, ब्राह्मण, पंडित, ग्रह (नव ग्रह) के चरणों की वन्दना करके उनसे हाथ जोड़कर याचना करते हैं कि आप मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे सारे सुन्दर मनोरथों को पूरा करें।

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनित मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका ॥
गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनबउँ दीनबंधु दिन दानी ॥
सेवक स्वामी सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा । साबर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा ॥
अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥
सो उमेस मोहि पर अनुकूला । करिहिं कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सव पाइ पसाऊ । बरनउँ रामचरित चित चाऊ ॥
भनिति मोरि सिव कृपाँ बिभाती । ससिसमाज मिली मनहुँ सुराती ॥
जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥

भावार्थ—गोस्वामी जी फिर सरस्वती और गंगा जी की वन्दना करते हैं क्योंकि दोनों ही पवित्र और मनोहर चरित्र वाली हैं । फिर महेश और पार्वती जी को प्रणाम करते हैं जो उनके गुरु और माता-पिता हैं, जो दीन बन्धु और नित्य दान करने वाले हैं, जो श्री रामचन्द्र जी के सेवक, स्वामी और सखा हैं, और तुलसीदास का कपट रहित सच्चा हित करने वाले हैं । शिव, पार्वती ने कलयुग को देखकर, जगहिताय शाबर मंत्र समूह की रचना की । उन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं, उनका कोई अर्थ नहीं है और न ही ठीक प्रकार से अर्थ हो ही सकता है और न उनका जाप ही होता है फिर भी शिव के प्रताप से उसका प्रभाव प्रत्यक्ष ही है । ऐसे शाबर नाम के विशेष मंत्र के रचयिता श्री उमापति (महेश जी) मुझ पर कृपा करके इस रामकथा (श्री राम चरित मानस) को आनन्द और कल्याण का आधार बनायेंगे । अत: मैं श्री पार्वती और शिव का स्मरण कर उनका प्रसाद पाकर चाव-पूर्ण चित्त से श्री राम चरित्र का वर्णन करता हूँ । मेरी कविता श्री शिव जी की कृपा से ऐसी सुशोभित होगी, जिस प्रकार तारागणों के साथ चन्द्रमा युक्त रात्रि सुशोभित होती है । कलियुग के प्रभाव से कलिमल के कारण चहुँ ओर अज्ञानांधकार होना स्वाभाविक ही है । ऐसी अंधेरी रात्रि को तारागणों के साथ चन्द्रमा ही शीतल प्रकाश दे सकता है । इसी प्रकार कलिमल पूर्ण अज्ञान की अंधेरी रात्रि को सद्‌गुणों रूपी तारागणों और श्री रामकथा रूपी चन्द्रमा से शीतल प्रकाश प्राप्त होगा । ऐसे सुअवसर का लाभ उठाने के लिए जो इस श्री राम कथा को प्रेम से आनन्द लेकर कहेंगे और सुनेंगे और सावधानी से समझेंगे वे श्री राम चरणों के प्रेमी सहज ही बन जायेंगे और कलियुग के पापों से मुक्ति पाकर सुन्दर कल्याण के भागी हो जायेंगे ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई ११ विषम पंक्तियों की है । इसमें तुलसीदास ने शावर मन्त्र की ओर संकेत किया है । शिव जी के मुख से सात करोड़ (सप्त कोटि) मन्त्र निकले । इसलिए शिव जी का एक नाम शवर भी पड़ गया ।

शवर (शिव) के मुख से निःसृत मन्त्र समूह को ही शावर मन्त्र जाल कहा जा सकता है। पंचाक्षरी मन्त्र—"ॐ नमः शिवाय" का उतना ही महात्म है जितना शावर-मन्त्र का।

दो०—सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनित प्रभाउ ।। १५ ।।

भावार्थ—गोस्वामी जी वरदान माँगते हुए कहते हैं कि यदि श्री शिव जी और पार्वती जी स्वप्न में भी मुझसे प्रसन्न हों तो मैंने अपने द्वारा रचित भाषा-कविता का जो प्रभाव कहा है वह सब सत्य सिद्ध हो।

बदउँ अवध पुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि ।।
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ।।
सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक विसोक वनाइ बसाए ।।
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची ।।
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ।।
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी ।।
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी ।।
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता ।।

भावार्थ—गोस्वामी जी अति पवित्र श्री अयोध्या जी की और कलयुग की कालिमा को नष्ट करने वाली श्री सरयू नदी की बन्दना करते हैं, फिर अवधपुरी के उन नर-नारियों की भी बन्दना एवं प्रणाम करते हैं जिन्ह पर श्री रघुनाथ जी की ममता थोड़ी नहीं है। श्री रामचन्द्र जी ने अपनी पुरी में रहने वाले तथा उनकी अर्धांगिनी सीता जी की निन्दा करने वाले धोबी और उसके समर्थन में चुप रहने वाले अयोध्या पुरी के नर-नारियों के पाप समूह को नाश कर उनको शोक रहित बनाकर अपने लोक (धाम) में बसा दिया। इसके पश्चात् तुलसीदास श्री कौशल्या की कीर्ति को प्रातःकालीन पूर्व दिशा की तुलना देते हुए, बन्दना करते हैं जो सारे संसार को प्रकाश प्रदान करती है। इसी प्रकार श्री कौशल्या की कीर्ति भी समस्त संसार को अपने उज्ज्वल प्रकाश से प्रभावित करती रहेगी क्योंकि वे सूर्य-कुल के सूर्य की जन्मदात्री हैं। यदि दुष्ट जन को कमल समझा जाये तो पाले के समान उसको विनष्ट करने की क्षमता रखने वाले श्री राम रूपी चन्द्रमा का अयोध्या में उदय हुआ। तत्पश्चात् सब रानियों सहित राजा दशरथ को पुण्य और सुन्दर कल्याण की मूर्ति मानकर तुलसीदास उन सबको मन, बचन एवं कर्म से

प्रणाम करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे उन पर अपने पुत्र का सेवक जानकर कृपा करें। वे सब इतने महान हैं कि जिनकी रचना कर स्वयं ब्रह्मा जी ने भी बड़ाई प्राप्त की और श्री राम के माता-पिता होने के कारण स्वयं जगत में महिमा की सीमा हो गये।

टिप्पणी –यह आठ पंक्तियों की चौपाई पिंगल शास्त्रानुसार समीचीन है। वेनकेटेश्वर प्रेस द्वारा १८६० में बम्बई से प्रकाशित रामचरित मानस के पहले संस्करण में उत्तर काण्ड के बाद "लवकुश काण्ड" भी है। यह क्षेपक है क्योंकि गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा मानस के आधुनिक संस्करण उत्तर-काण्ड के बाद समाप्त हो जाते हैं। और यह उचित भी है। तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे और अपनी मानस में ऐसा कोई विवरण नहीं कर सकते थे जिससे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र पर किसी-प्रकार का लांछन आए। "लवकुश काण्ड" का इस चौपाई में केवल एक पंक्ति में संकेत मात्र किया है :—

"सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक विसोक बनाई बसाए।।"

"सिय निंदक कौन था और उसने निन्दा किस प्रकार की ? इसका विवरण "लव-कुश" काण्ड में इस प्रकार है। एक बार एक धोबी की स्त्री अपने मायके वालों के यहाँ गई। वहाँ कोई मंगल पर्व चल रहा था। अतएव लौटने में रात हो गई। तुफान और वर्षा के कारण माँझी ने नदी पार ले जाने से इन्कार कर दिया। हताश उसे रात माझी की झोपड़ी में बितानी पड़ी। प्रातः जब घर लौटकर आई तो पति ने उसे यह कहकर घर से निकाल दिया : "जो स्त्री अपने पति की अनुमति के बिना, रात किसी अन्य पुरुष के यहाँ बिताए, वह पुनः पति को ग्र ह्य नहीं।" स्त्री रोती हुई राजा राम के दरबार में न्याय माँगने गई। राम ने धोबी को तलब किया। धोबी ने भरी सभा में कह डाला " आप राजा हैं। जो सीता रावण के प्रमदवन में एक साल रही, उसको आप पुनः ग्रहण कर सकते हैं। पर हम साधारण पुरुषों के लिए ऐसी स्त्री सर्वथा त्याज्य है।" धोबी का तर्क यथोचित है ! इस विषय पर राम ने सभासदों की राय माँगी। सब मौन रहे। मौनम् स्वीकृति लक्षणम्। अत-एव राम ने सीता का त्याग कर दिया और लक्ष्मण को आदेश दिया कि उन्हें वन छोड़ आयें। यह कथा बाल्मीक रामायण के उत्तर काण्ड के बयालिस से उन्चास सर्ग में इस प्रकार वर्णित है :

सीता को गर्भवती देखकर राम उनसे बोले : "विदेहनन्दिनी ! तुम्हारे गर्भ से पुत्र प्राप्त होने का यह समय उपस्थित है। मैं तुम्हारा कौन सा मनोरथ पूर्ण करूँ ?"

सीता : "रघुनन्दन ! मेरी इच्छा एक बार उन पवित्र तपोबनों को देखने की

हो रही है ······महात्माओं के तपोवन में एक रात निवास करूँ, यही मेरी इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा है।"

राम :—"विदेहनन्दिनी ! निश्चिन्त रहो। कल ही वहाँ जाओगी, इसमें संशय नहीं है।"

ऐसा कहकर राम अपने सभा कक्ष में चले गए। वहाँ जाकर अपने मित्र भद्र से पूछा—"पुरवासी मेरे विषय में कौन-कौन सी शुभ या अशुभ बातें कहते हैं ?"

भद्र :—"वे कहते हैं-'श्री राम ने समुद्र पर पुल बाँधकर दुष्कर कर्म किया है। ऐसा कर्म तो पहले के किन्हीं देवताओं और दानवों ने भी नहीं सुना होगा। ···परन्तु एक बात खटकती है। ···पहले रावण ने बलपूर्वक सीता को गोद में उठाकर उनका अपहरण किया था, फिर वह उन्हें लंका में भी ले गया और वहाँ उसने अन्तःपुर के क्रीड़ा-कानन अशोक वनिका में रक्खा। इस प्रकार राक्षसों के वश में होकर वह बहुत दिनों तक रहीं तो भी श्रीराम उनसे घृणा क्यों नहीं करते हैं। अब हम लोगों को भी स्त्रियों की ऐसी बातें सहनी पड़ेंगी, क्योंकि राजा जैसा करता है, प्रजा भी उसका अनुसरण करने लगती है' राजन् इस प्रकार सारे नगर और जनपद में पुरवासी मनुष्य बहुत सी बातें कहते हैं।"

भद्र की यह बात सुनकर राम ने अत्यन्त पीड़ित होकर समस्त सुहृदों से पूछा "आप लोग भी मुझे बतावें, यह कहाँ तक ठीक है।" सबने धरती पर मस्तक टेककर राम को प्रणाम करके दीनतापूर्ण वाणी में कहा—"प्रभो ! भद्र का यह कथन ठीक है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।" राम ने तत्काल सीता का त्याग करने का निश्चय किया और प्रातःकाल लक्ष्मण को बुलाकर कहा : "गंगा के उस पार तमसा के तट पर महात्मा वाल्मीकि मुनि का आश्रम है। उस आश्रम के निकट निर्जन वन में तुम सीता को छोड़कर शीघ्र लौट आओ।"

सो०—बंदउँ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥ १६ ॥

भावार्थ—मैं अवध के राजा श्री दशरथ जी की वन्दना करता हूँ, जिनका श्री रामजी के चरणों में सत्य स्नेह था, और जिन्होंने दीनदयालु श्री रामजी से बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को साधारण तृन (तिनके) के समान त्याग दिया।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥

राम चरन पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ।।
बंदउँ लछिमन पद जलजाता । सीतल सुभग भगत सुख दाता ।।
रघुपति कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका ।।
सेष सहस्रसीस जग कारन । जो अवतरेउ भूमि भय टारन ।।
सदा सो सानुकूल रह मो पर । कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ।।
रिपुसूदन पद कमल नमामी । सूर सुसील भरत अनुगामी ।।
महाबीर बिनवउँ हनुमाना । राम जासु जस आप बखाना ।।

भावार्थ—मैं परिवार सहित राजा जनक जी को प्रणाम करता हूँ क्योंकि उनका श्री राम जी के चरणों में गूढ़ प्रेम था। राम के प्रति जनक का स्नेह, जो उनकी योग-भोग की शक्ति के कारण, उनमें प्रच्छन्न रूप में विद्यमान था, राम को देखते ही सहसा प्रकट हो गया। सबसे पहले मैं, श्री भरत जी के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनके नियम और व्रत का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका मन श्रीराम के चरण कमलों में भौंरे की भाँति लुभाया हुआ है। और उनका सामीप्य कभी छोड़ना नहीं चाहता। मैं फिर श्री लक्ष्मण जी के चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, जो भक्तों को सुन्दर एवं शीतल सुख देने वाले हैं। उनका यश श्री राम की कीर्ति रूपी झंडे को ऊँचा उठाकर फहराने वाले दंड के समान है। लक्ष्मण हजार सिर वाले शेषनाग के अवतार हैं। उन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिये अवतार लिया है। वे गुणों की खान कृपासिन्धु सुमित्रानन्दन (श्री लक्ष्मण जी) मुझ पर सदा प्रसन्न रहें। मैं श्री शत्रुघ्न जी के चरण कमलों में भी मस्तक नवाता हूँ, क्योंकि वे वीर होते हुए भी सुशील हैं और श्री भरत जी का अनुसरण करने वाले हैं। वीरता के साथ सुशील होना विशिष्ट गुण है जिसने उन्हें श्री भरत जैसे त्यागी और तपस्वी का अनुगामी होने में विशेष सहायता दी। अन्त में मैं महावीर श्री हनुमान जी की विनती करता हूँ, जिनके यश का श्रीरामचन्द्र जी ने स्वयं अपने मुख से वर्णन किया है।

टिप्पणी—यह चौपाई १० पंक्तियों की है। राम के सम्पर्क में जो भी आया, वह तुलसीदास के लिए वन्दनीय है। इस चौपाई में तुलसीदास जी सबसे पहले राजा जनक को प्रणाम करते हैं। उनकी बन्दना करते हुए तुलसीदास उनमें योग और भोग दोनों का संमिश्रण पाते हैं। राज योग होने के कारण उन्हें राज-लक्ष्मी भोगनी ही थी–इसलिए वह भोगी कहलाए। संस्कारों से वह योगी थे। उनका नाम "विदेह" उनकी योग-कला का सूचक है। वह योग में इतने लीन हो जाते थे कि उन्हें अपनी देह (शरीर) का भी ध्यान नहीं रहता था। गीता में सत्रह प्रकार के योगों का वर्णन है। उदाहरणार्थ :—

कर्मसु कौशलम् (काम में कुशलता)
चित्तवृत्ति निरोधः (मन को एकाग्र करना)
अनासक्ति योगः (किसी व्यक्ति विशेष में मोह न होना)

योगी होने के कारण, राजा जनक को किसी व्यक्ति विशेष से न प्रेम था न उसके प्रति मोह। फिर भी उनका राम के प्रति स्नेह जो उनके योग और भोग में दबा हुआ था, राम को देखते ही सहसा प्रकट हो गया।

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहि राम सर चाप धर ॥ १७ ॥

भावार्थ—मैं पवन कुमार श्री हनुमान जी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्ट-जन रूपी वन को भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप हैं। जो बड़े विद्वान हैं और जिनके हृदय भवन में धनुष वाण धारण किये श्री राम निवास करते हैं।

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा ॥
बंदउँ सब के चरन सुहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए ॥
रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते ॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे ॥
सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिग्यान बिसारद ॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥
जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ ॥
पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदउँ सब लायक ॥
राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक ॥

भावार्थ—मैं बानरों के राजा सुग्रीव, रीछों के राजा जामवन्त, राक्षसों के राजा विभीषण एवं अंगद आदि जितना बानरों का समाज है उन सब के सुशोभित चरणों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अधम (पशु एवं राक्षस आदि) का शरीर पाकर भी श्री रामचन्द्र जी को प्राप्त कर लिया। जितने पक्षी, पशु, देवता, मानव एवं दानव श्री राम जी के चरणों के उपासक हैं, मैं उन सबके चरण कमलों की बन्दना करता हूँ जो निष्काम भाव से श्री राम के सेवक हैं। मैं शुकदेव, सनक, नारद आदि जितने भक्त हैं और परम ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं पृथ्वी पर अपना शीश टिका कर उन सबको प्रणाम करता हूँ कि हे मुनीश्वरों! आप सब मुझे अपना दास जानकर मुझ पर कृपा कीजिये। मैं जनक जननी (राजा जनक की पुत्री)

सीता, जो करुणा निधान श्री राम को अतिशय प्रिय हैं, के चरण कमलों में याचना करता हूँ कि उनकी कृपा से मैं निर्मल (स्वच्छ) बुद्धि पाऊँ। फिर मैं मन, बचन और कर्म से कमल नयन, धनुषबाण धारी, भक्तों की विपत्ति का नाश करने वाले तथा उन्हें सुख देने वाले सर्व समर्थ श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

टिप्पणी— यह चौपाई १० पंक्तियों की है। जो भी राम के सम्पर्क में आया, वह तुलसीदास के लिए वन्दनीय है। इस चौपाई में और इसके पहले की दो चौपाईयों में तुलसीदास वन्दनीय जनों की सूची बनाते हुए, उनके विशेष गुणों की भी चर्चा करते हैं—

१-२. सरयू नदी और उसके तट पर बसी अयोध्या नगरी/यह दोनों कलियुग के पाप का नाश करने वाली है।

३. अवधपुरी के नर-नारी— इन पर राम का विशेष प्रेम था।

४. "सिय निंदक"—देखिये टिप्पणी, पृष्ठ ४१-४२।

५-६ राम के माता-पिता कौशल्या और दशरथ— वह इतने महान थे कि उनकी रचना कर स्वयं ब्रह्मा ने बड़ाई प्राप्त की।

७. जनक—देखिये टिप्पणी, पृष्ठ ४३-४४।

८. भरत— इनके नेम-व्रत का वर्णन नहीं किया जा सकता।

९. लक्ष्मण—यह शेषनाग के अवतार हैं। इनका अवतार पृथ्वी के भय को "टारने" के लिए हुआ।

१०. शत्रुघ्न—यह वीर होते हुए भी सुशील थे और इन्होंने अपने अस्तित्व को अपने भाइयों की सेवा में मिटा दिया।

११. हनुमान—राम इनके यश का स्वयं वर्णन करते हैं।

१२-१४. सुग्रीव, जामवन्त और अंगद—इन्होंने पशुओं का शरीर पाकर भी राम को प्राप्त कर लिया।

१५. विभीषण—यह निशाचर होते हुए भी सात्विक वृत्ति के थे। रावण के मरने के बाद, राम ने इनको लंका का राजा बनाया और इनका राज्याभिषेक किया।

१६-२०. खग, मृग, सुर, नर, असुर—जो राम के चरणों के उपासक हैं।

२१-२३. शुक्र, सनक और नारद मुनि—जिन्होंने राम-नाम की महिमा बतायी।

२४. सीता— करुणानिधान राम को अतिशय प्रिय हैं।

दो०—गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे वाणी और उसके अर्थ तथा जल और उसकी लहर केवल उच्चारण करने में प्रथक-प्रथक हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न हैं, वैसे सीता और राम पृथक होते हुए भी एक हैं। जिन्हें दीन दुखी बहुत प्रिय हैं, उनके चरणों की मैं वन्दना करता हूँ।

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ ॥
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस नाम सम मुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को ॥
नाम प्रभाउ जान सिय नीको। कालकूट फलु दीन अमी को ॥

भावार्थ— रघुनाथ जी की उस "राम" नाम की मैं वन्दना करता हूँ जो "र" बीज से कृशानु (अग्नि) को भस्म करने की शक्ति प्रदान करता है, "आ" बीज से भानु (सूर्य) के जगत के पालन की शक्ति देता है और "म" बीज से हिमकर (चन्द्रमा) को शीतल प्रकाश देता है। संस्कृत के विद्वानों ने बीज मन्त्र की रचना की। अग्नि का बीज मंत्र "र", सूर्य का "आ" और चन्द्रमा का "म" रखा है। वैदिक काल से ही अग्नि, सूर्य और चन्द्र देवताओं की उपासना प्रचलित है जिनसे सौभाग्यशालियों ने लाभ भी उठाया है। यह "राम" नाम ब्रह्मा, विष्णू और शिव रूप भी है क्योंकि इसमें उत्पत्ति, पालन और कल्याण तीनों शक्तियाँ हैं और यह नाम ही वेदों का प्राण है। यह "राम" नाम निर्गुण एवं उपमा रहित होते हुए भी गुणों का भण्डार है। राम का नाम वह महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्री शिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिस नाम का उपदेश दिया गया है वही

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

नाम काशी में मानव की लोकयात्रा के पश्चात् मुक्ति का कारण है। इस राम नाम की महिमा को श्री गणेश जी भली भाँति जानने के कारण गणपति कहलाये और और उनके इसी गुण के कारण सर्व मंगल कार्यों में सर्व प्रथम उनका (श्री गणेश जी) का पूजन होता है। आदि कवि श्री बाल्मीकि जी श्री राम नाम के प्रताप को जानते हैं क्योंकि वे उल्टा नाम (मरा, मरा) जपकर ही पवित्र हो गये। श्री शिवजी के इस वचन को सुनकर कि एक राम नाम सहस्र नाम के समान है, श्री पार्वती जी सदा अपने पति के साथ राम नाम का जप करती रहती हैं। राम नाम के प्रति श्री पार्वती जी के हृदय की ऐसी प्रीति देखकर, श्री शिवजी इतने प्रसन्न हो गये कि उन्होंने स्त्रियों में भूषण (पतिव्रताओं में शिरोमणि) श्री पार्वती जी को अपना ही भूषण बना लिया (अर्थात उन्हें अपने अंग में धारण करके अर्धांगिनी बना लिया) और अर्ध नारीश्वर तक कहलाने लगे। वे शिवजी श्री राम नाम के प्रभाव को भली भाँति जानते हैं, क्योंकि उसी के प्रभाव के कारण जग हिताय जिस कालकूट (जहर) का उन्होंने पान किया था उसी ने उनको अमृत का फल दिया।

टिप्पणी—यह चौपाई और इसके आगे की बालकाण्ड की समस्त चौपाइयाँ आठ-आठ पंक्तियों की हैं। इस नियम का अंत में एक बार अतिक्रमण किया गया, जिसका उस चौपाई की टिप्पणी में संकेत कर दिया गया है।

इस चौपाई में तुलसीदास "राम" नाम की महिमा का वर्णन करते हैं। वर्णन करते-करते एक अन्तर्कथा का भी संकेत करते हैं।

जब देवताओं और असुरों ने समुद्र-मंथन किया, तो उसमें से अनेक देवियों, रत्न, अमृत और विष प्रकट हुए। जब विष को कोई भी स्वीकार करने को तैयार नहीं हुआ, तब शिव जी ने उसे ग्रहण कर लिया और अपने गले में रोक लिया। इसी कारण वे नील-कण्ठ भी कहलाते हैं। शिव जी का विष-पान इस बात का प्रतीक है कि संसार के समस्त पापों को उन्होंने अपने में समा लिया, फिर भी उनसे प्रभावित नहीं हुए।

दो०—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास ॥ १९ ॥

भावार्थ—श्री राम जी की भक्ति वर्षा ऋतु के समान है और श्री राम के सुन्दर दास (भक्त) धान के समान हैं और उनके लिये राम के दो अक्षर सावन-भादों के महीने के समान हैं।

आखर मधुर मनोहर दोऊ । बरन बिलोचन जन जिय जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू । लोक लाहु परलोक निबाहू ॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके । राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती । ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती ॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता । जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन । जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥
स्वाद तोप सम सुगति सुधा के । कमठ सेष सय धर वसुधा के ॥
जन मन मंजु कंज मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ॥

भावार्थ—श्री राम नाम के दोनों अक्षर "र" और "म" मधुर और मनोहर हैं, जो वर्णमाला रूपी शरीर के नेत्र हैं, भक्तों के जीवन हैं तथा स्मरण करने में सब के लिये सुलभ और सुख देने वाले हैं, जो इस लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह करते हैं। ये दोनों वर्ण र और म कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत ही अच्छे (सुन्दर और मधुर) हैं। तुलसीदास जी को तो वे श्री राम लक्ष्मण के समान प्यारे लगते हैं। इनका "र" और "म" का अलग-अलग वर्णन करने में प्रीति बिलगाती है अर्थात् पृथक हो जाती है (आशय यह है कि र बीज मन्त्र का प्रेम से उच्चारण करे या म का)। प्रेम बाँटा नहीं जा सकता। अब उपासक के सन्मुख या ध्यान में यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि वह र बीज मन्त्र का प्रेम से उच्चारण करे या म का, क्योंकि इन दोनों के उच्चारण में अर्थ एवं फल तक में भिन्नता दीखने लगती है, परन्तु ये दोनों र और म तो जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही साथ रहने वाले (सदा एक रूप और एक रस) हैं। गोस्वामी जी कहते हैं कि इनका प्रथक-प्रथक महत्व मानते हुये भी इनको प्रथक नहीं किया जा सकता क्योंकि यह तो जीव और ब्रह्म के समान एक साथ ही रहते हैं। इनको प्रथक कर इनकी एक रूपता और एक रसता को नष्ट नहीं किया जा सकता। ये दोनों अक्षर नर-नारायण के समान सुन्दर भ्राता हैं, ये जगत का पालन और विशेष रूप से भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्ति रूपिणी सुन्दर स्त्री के कानों के सुन्दर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत के हित के लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं। ये वर्ण "र" और "म" मोक्ष रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान है। कच्छप और शेषनाग जी के समान पृथ्वी को धारण करने वाले हैं। भक्तों के मन रूपी सुन्दर कमल में रहने वाले तथा आनन्दित होने वाले भौरे के समान हैं। और जीभ रूपी यशोदा के लिये श्री कृष्ण और श्री बलराम जी के समान आनन्द देने वाले हैं।

अन्तंकथा—राम नाम की महिमा का वर्णन करते हुए, तुलसीदास "र" और "म" के एक दूसरे से सम्बद्ध होने के कई उदाहरण देते हैं। एक उदाहरण नरनारायण का है। इन भ्राताओं की अन्तंकथा इस प्रकार है :—

ब्रह्मा के हृदय से धर्म उत्पन्न हुए थे। धर्म ने दक्ष प्रजापति की दस कन्याओं से व्याह किया था। उन्हीं के गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। हरि और कृष्ण योगस्थ हो गए, और नर-नारायण बद्रीकाश्रम में जाकर तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या के फलस्वरूप अलकनन्दा नदी के इस पार पर्वत को आज भी नर पर्वत कहा जाता है और उस पार का पर्वत, जिस पर श्री बद्रीनारायण जी का मन्दिर बना हुआ है तथा जिस पर ब्रह्म कपाल नामक स्थान है जहाँ यात्री अपने पूर्वजों का श्राद्ध भी करते हैं, नारायण पर्वत कहलाता है। आज भी इन दोनों भ्राताओं के नाम से सम्बोधित पर्वत मानवों की सेवा में ही रत हैं। इसी प्रकार वर्णमाला के अक्षर "र" और "म" मानवों के कल्याण में लगे हैं।

दो०—एकु छत्र एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ २० ॥

भावार्थ—श्री रघुनाथ जी के नाम के दोनों अक्षरों "र" और "म" में से पहला एक "रकार" सब अन्य अक्षरों के ऊपर छत्र रूप (रेफ) से और दूसरा "मकार" मुकुटमणि (अनुस्वार) रूप से विराजमान होते हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें ॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥

भावार्थ—समझने में नाम ओर नामी दोनों एक से हैं, किन्तु दोनों में परस्पर स्वामी और सेवक के समान प्रीति है। नाम और नामी में पूर्ण एकता होने पर भी जैसे स्वामी के पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नाम के पीछे नामी को भी चलना पड़ता है। इसी कारण प्रभु श्रीराम को भी अपने राम नाम का अनुगमन

करना पड़ता है और नाम लेते ही नाम लेने वाले के समीप आने को बाध्य हो जाना पड़ता है। इस नाम और रूप में कौन बड़ा है, कौन छोटा है, इसकी व्याख्या करना तो अपराध है। इनके (दोनों नाम और रूप) के गुणों की विभिन्नता को सुनकर साधु पुरुष स्वयं ही भली प्रकार समझ लेंगे। वास्तव में रूप नाम के अधीन अथवा वशीभूत देखा जाता है। क्योंकि नाम के बिना रूप का ज्ञान ही नहीं हो सकता। कोईसा भी विशेष रूप बिना उसका नाम ज्ञात हुए, चाहे हथेली पर ही रखा हुआ हो, पहचाना ही नहीं जा सकता। जब कि रूप के बिना देखे भी केवल उनके नाम का स्मरण करने से तो वह रूप विशेष प्रेम के साथ हृदय में आ जाता है। नाम और रूप की विशेषता की कथा अकथनीय है। यह समझने में सुखदायक है परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। निर्गुण और सगुण के बीच में नाम ही सुन्दर साक्षी है और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है।

दो०—राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥ २१ ॥

भावार्थ—यदि मानव अपने भीतर (हृदय) में और बाहर (संसार) में प्रकाश चाहता है तो उसे अपने मुख रूपी द्वार को अपनी जिह्वा रूपी देहली पर राम नाम रूपी मणि दीपक को रखना चाहिए।

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि विसेषि पिआरा ॥
चहुँ जुग चहूँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विसेषि नहिं आन पउाऊ ॥

भावार्थ—ब्रह्मा द्वारा विरचित इस जगत से, जिसमें नाना प्रकार का प्रपंच भरा हुआ है, भली-भाँति छुटकारा पाकर वैराग्यवान मुक्त योगी "राम" नाम को जिह्वा से जपते हुये सतत जागते रहते हैं और नाम एवं रूप से रहित अनुपम, अनिर्वचनीय, और अनामय ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं। जो जिज्ञासु भगवान के गूढ़ रहस्य को एवं यथार्थ महिमा को जानना चाहते हैं वे भी केवल अपनी जिह्वा से श्री भगवान के नाम का जाप करने से उसे जान लेते हैं। साधक तो और अधिक

लवलीन होकर भगवान के नाम का जाप करते हैं जिससे वे योग की अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व और वशित्व आठों सिद्धियों को प्राप्त कर पूर्ण सिद्ध हो जाते हैं। जगत के संकटों से व्यथित भक्त नाम का जाप करते हैं तो उनके बड़े भारी बुरे से बुरे संकट मिट जाते हैं; एवं वे सुखी हो जाते हैं। संसार में राम भक्त चार प्रकार के होते हैं। एक अर्थार्थी अर्थात् धनादि या भौतिक पदार्थो की चाह से "राम" नाम लेने वाले होते हैं। दूसरे आर्त जो संसार के संकटों की निवृत्ति के लिये "राम" नाम का जाप करने वाले हैं। तीसरे जिज्ञासु—जो भगवान राम को जानने व उसकी महिमा व लीला को जानने की इच्छा से उसके नाम का भजन करने वाले होते हैं। और चौथे भगवान को तत्व से जानकर स्वाभाविक प्रेम से ही उसका भजन करने वाले ज्ञानी हैं। यह चारों प्रकार के मानव गोस्वामी जी के मतानुसार राम भक्त हैं और इस कारण चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं। इन चारों प्रकार के भक्तों (अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी) के लिए श्रीराम नाम का ही आधार है जिससे वे अपना मनोवांछित फल प्राप्त कर आनन्दित हो जाते हैं। परन्तु इनमें से ज्ञानी भक्त भगवान को विशेष रूप से प्रिय हैं। चारों युगों में और चारों वेदों में "नाम" की महिमा गायी गयी है। परन्दु नाम का प्रभाव कलियुग में बिशेष रूप से दिखाई देता है क्योंकि इसमें तो श्री राम के नाम को छोड़कर मानव के लिए अन्य कोई दूसरा उपाय ही नहीं है।

दो०—सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥ २२॥

भावार्थ—वे महामानव जो सब प्रकार की कामना से रहित होकर केवल श्री राम भक्ति के आनन्द में लीन हैं, उन्होंने तो नाम के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है। अर्थात्, वे नाम रूपी सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं और सदा उसके आनन्द में मग्न रहते हैं।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नाम दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासि॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

भावार्थ—निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरुप हैं। और दोनों ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। गोस्वामी जी के मतानुसार ब्रह्म का नाम उसके दोनों निर्गुण और सगुण स्वरुपों से बड़ा है, जिसने अपनी महान शक्ति से दोनों को अपने वशीभूत कर रक्खा है। विद्वान और सज्जन मेरी इस बात को (कि "राम" या "ब्रह्म" के नाम का प्रताप राम एवं ब्रह्म से अधिक महिमावान एवं प्रभावशाली हैं) अन्यथा न समझें, क्योंकि वास्तव में मैं अपने मन के पूर्ण विश्वास, प्रेम एवं रूचि की ही बात स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ कि निर्गुण और सगुण ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है। निर्गुण ब्रह्म उस अप्रकट अग्नि के समान है जो काठ के अन्दर छिपी हुई है और दिखाई नहीं देती और सगुण ब्रह्म उस अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। तत्वतः दोनों एक ही हैं, केवल प्रकट-अप्रकट भेद होने से भिन्न ज्ञात होती हैं। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्वतः एक ही हैं। इतना होने पर भी जानने में दोनों ही बड़े कठिन हैं परन्तु नाम के आधार पर दोनों को जान पाना सुगम हो जाता है। इसी कारण से मैंने नाम को निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम से बड़ा कहा है। ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है, सत्ता, चैतन्य और आनन्द रूपी धन की राशि है। अक्षत अविकारी ब्रह्म के सब प्राणियों के हृदय में वास करते हुये भी, इस संसार के सारे प्राणी दीन और दुःखी क्यों रहते हैं ?—जब कि नाम का निरूपण करके (अर्थात् नाम के यथार्थ स्वरुप, महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर) नाम का जतन करने से (श्रद्धा पूर्वक नाम का जाप करने से) वही ब्रह्म इस प्रकार प्रकट हो जाता है जैसे रत्न को भली-भाँति पहचानने से उसका मूल्य भी स्वतः ज्ञात हो जाता है।

दो०—निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ २३॥

भावार्थ—इस प्रकार निर्गुण ब्रह्म से उनका नाम बड़ा है, क्योंकि नाम का प्रभाव अपार है। अब अपने विचार के अनुसार कहता हूँ कि नाम राम से भी बड़ा है।

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

दंडक बनु प्रभु कीन्हि सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन ।।
निसिचर निकर दले रघुनन्दन। नामु सकल कलि कलुष निकन्दन ।।

भावार्थ—श्रीराम ने भक्तों के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण कर के स्वयं कष्ट सहकर साधुओं को सुखी किया। भक्तगण प्रेम के साथ "नाम" का जप करते हुए सहज में ही आनन्द और कल्याण के धाम हो जाते हैं। श्रीराम ने तो केवल एक तपस्वी की स्त्री (अहल्या) को ही तारा (उसका उसकी जड़ परिस्थिति से उद्धार किया), जबकि नाम ने तो करोड़ो दुष्टों की बिगड़ी हुई बुद्धियों को सुधार दिया। श्रीराम ने ऋषि विश्वामित्र की भलाई के लिये एक सुकेतु नामी यक्ष की कन्या ताड़का और उसकी सेना सहित उसके पुत्र सुबाहु की समाप्ति कर दी। श्रीराम का नाम तो अपने भक्तों के दोष, दुख और दुराशाओं का इस प्रकार नाश कर देता है जैसे सूर्य रात्रि का। इसके अतिरिक्त श्रीराम ने तो स्वयं शिवजी के धनुष को तोड़ा, परन्तु उनके नाम का प्रताप ही संसार के सब भयों का नाश करने वाला है। प्रभु श्रीराम ने भयानक दण्डक वन को ही सुहावना बनाया, परन्तु उनके पवित्र नाम ने तो असंख्य मानवों के मनों को पवित्र कर उन्हें ही सुहावना बना दिया। श्री रघुनाथजी ने राक्षसों के समूह का संहार किया परन्तु नाम की विशिष्टता तो यह है कि वह कलियुग की सारी बुराइयों एवं पापों को उखाड़ फेकने वाला है, जिससे वे फिर से उत्पन्न ही न हो पाये।

टिप्पणी—पिछली तीन चौपाइयों में तुलसीदास ने राम-नाम की महिमा का वर्णन किया है और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि राम से उनका "नाम" महान है। इस चौपाई में और अगली चौपाई में, इस महानता के तुलसीदास ने कई उदाहरण दिये है :—

(१) राम ने तो केवल अहल्या को तारा, परन्तु उनके नाम ने करोड़ों दुष्टों को सुधार दिया।

(२) राम ने केवल ताड़का और सुबाहु को मारा, परन्तु उनका नाम भक्तों के दोष, दुख और दुराशाओं का नाश कर देता है।

(३) राम ने केवल एक शिव-धनुष तोड़ा, परन्तु उनके नाम के प्रताप से संसार के सब भयों का नाश हो जाता है।

(४) राम ने केवल दण्डक वन को सुहावना बनाया, परन्तु उनके नाम ने अनेक मानवों के मनो को पवित्र कर उन्हें सुहावना बनाया।

(५) राम ने केवल राक्षसों के समूह का संहार किया, किन्तु उनके नाम में कलियुग की समस्त बुराइयों एवं पापों को उखाड़ फेकने की क्षमता है।

(६) राम ने शबरी, जटायु आदि सेवकों को ही मुक्ति दी, परन्तु उनके नाम ने अनगिनत दुष्टों का उद्धार किया।

(७) राम ने तो सुग्रीव और विभीषण दो को ही अपनी शरण में रक्खा परन्तु "नाम" ने अनेक गरीबों पर कृपा की है।

(८) राम ने भालू और बन्दरों को इकट्ठा कर बड़ी मेहनत से समुद्र पर पुल बाँधा, परन्तु उनका नाम लेते ही भवसागर पार हो जाता है।

अन्तर्कथाएँ—ऊपर के तुलनात्मक विवेचन में जिन दो अन्तर्कथाओं का संकेत है, वह इस प्रकार हैं :—

(१) **अहल्या**-वृद्धाश्व की पुत्री और गौतम की पत्नी। ये अत्यन्त रूपवती थीं। देवराज इन्द्र ने गौतम का रूप धरकर इनका सतीत्व नष्ट करना चाहा था। गौतम के शाप से इन्द्र नपुंसक हो गये थे, परन्तु देवताओं ने बड़े परिश्रम से मेष का पुरुषत्व लेकर इन्द्र को प्रदान किया, तभी से इन्द्र का एक नाम मेष वृषण हुआ। गौतम ने अहल्या को भी शाप दिया। गौतम के शाप से अहल्या पत्थर हो गई। पुनः अहल्या के प्रार्थना करने पर गौतम प्रसन्न होकर बोले : "हमारा शाप व्यर्थ नहीं हो सकता, किन्तु विष्णु रूपी रामचन्द्र जब इस आश्रम में आवेंगे, तब तुम उनके चरण बन्दन कर, मुक्त हो सकोगी।" विश्वामित्र के साथ जब रामचन्द्र आए, तब दोनों भाइयों ने अहल्या को प्रणाम किया, और श्री राम की चरण-रज से अहल्या का उद्धार हुआ।

(२) **ताड़का**—सुकेतु नामक यक्ष की कन्या थी। जम्भ के पुत्र सुन्द के साथ इसका ब्याह हुआ था। किसी कारण से महर्षि अगस्त्य के शाप के द्वारा सुन्द मारा गया था। स्वामी के मारे जाने से क्रुद्ध होकर ताड़का अपने पुत्र मारीच को साथ लेकर, अगस्त्य को मारने के लिए उनके आश्रम पर गई। माता और पुत्र दोनों ही राक्षसत्व को प्राप्त हो गये थे। अतएव उन दोनों ने ब्राह्मणों को नाश करना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। ब्राह्मणों को देखते ही वह उन पर धावा करते थे। ताड़का के उपद्रव से मुनिगण व्याकुल हो गये। तब विश्वामित्र ने अयोध्या नगरी में जाकर, दशरथ से राम और लक्ष्मण को ताड़का का वध करने के लिए माँगा। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण गए। राम ने ताड़का को मार डाला और मारीच को दूर भगा दिया।

दो० सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥ २४॥

भावार्थ—श्रीराम ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति दी, परन्तु उनके नाम ने अनगिनत दुष्टों का उद्धार किया। राम के नाम के गुणों की गाथा तो उनके अवतार से भी पूर्व वेदों में प्रसिद्ध है।

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे ॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा ॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाही। करहु बिचारु सुजन मन माहीं ॥
राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी ॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती ॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें ॥

भावार्थ—श्री राम ने सुग्रीव और विभीषण दो को ही अपनी शरण में रक्खा, यह सब कोई जानते हैं, परन्तु "राम" ने अनेक गरीबों पर कृपा की है। नाम का यह सुन्दर विरद (प्रण) लोक और वेद में विशेष रूप से प्रकाशित है। श्री राम ने भालू और वानरों की सेना बटोरी और समुद्र पर पुल बाँधने के लिए थोड़ा परिश्रम नहीं किया, परन्तु नाम लेते ही सारा समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण ! मन में विचार कीजिए कि दोनों में कौन बड़ा है। श्रीराम ने कुटुम्ब सहित रावण को युद्ध में मारा, तब सीता सहित उन्होंने नगर (अयोध्या) में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुन्दर वाणी से उनके गुण गाते हैं। परन्तु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नाम के स्मरण मात्र से बिना किसी परिश्रम, के मोह की प्रबल सेना को जीतकर, प्रेम में मग्न हुए अपने ही सुख में विचरते हैं। नाम के प्रभाव से उन्हें सपने में भी कोई चिन्ता नहीं सताती।

टिप्पणी—आजकल के कहानी-लेखकों और उपन्यासकारों ने एक नई विधा अपनायी है। कहानी समापन से प्रारम्भ होती है, और किसी पात्र, नायक या नायिका के मुख से समस्त बीती हुई घटनाओं का विवरण कराया जाता है। इसे अंग्रेजी में flash back कहते हैं। तुलसीदास ने इसके विपरीत विधा अपनाई है। बालकाण्ड में ही भविष्य में होने वाली घटनाओं का संकेत कर दिया है। इस चौपाई में सुग्रीव को अपनी शरण में लेना, किष्किन्धा काण्ड की घटना है, विभीषण को शरण में लेना सुन्दरकाण्ड की घटना है, समुद्र पर सेतु बाँधना भी सुन्दरकाण्ड में है, रावण को मारना लंका काण्ड में है, सीता सहित अयोध्या

लौटना और राम का राज-तिलक उत्तर काण्ड का प्रसंग है। इसी प्रकार सती-मोह और पार्वती-विवाह यद्यपि बाल-काण्ड में वर्णित है, सती ने राम की परीक्षा अरण्य-काण्ड में ली थी।

दो० ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥ २५॥

भावार्थ—इस प्रकार नाम ब्रह्म (निर्गुण) और राम (सगुण) दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। श्री महेश जी ने अपने हृदय में यह जानकर ही सौ करोड़ राम-चरित्र में से इस "राम" नाम को (सार रूप से चुनकर) ग्रहण किया है। नाम के प्रभाव और बड़प्पन को श्री शिवजी ने भली-भाँति पहचाना है क्योंकि इसमें तो दूसरों को वरदान देने वालों को भी वर देने की अपार शक्ति है।

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

भावार्थ—नाम ही के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगल वेश वाले होने पर भी मंगल की राशि हैं। शुकदेव जी और सनकादि सिद्ध, मुनि, योगीगण नाम के ही प्रसाद से ब्रह्मानन्द को भोगते हैं। नारद जी ने नाम के प्रताप को जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं, और आप (नारद) हरि और हर दोनों को प्रिय हैं। नाम के जपने से प्रभु ने कृपा की जिससे प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हो गये। ध्रुव जी ने ग्लानि से (विमाता के बचनों से दुखी होकर) हरिनाम को जपा और उनके प्रताप से अचल और अनुपम स्थान (ध्रुव लोक) प्राप्त किया। हनुमान जी ने पवित्र नाम का स्मरण करके श्री राम जी को अपने वश में कर रक्खा है। नीच अजामिल, गज और वेश्या भी श्री हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, स्वयं राम भी नाम के गुणों को नहीं गा सकते।

अन्तर्कथाएं--राम का नाम लेने से जो लोग परमगति को प्राप्त हुए, उनमें से कुछ का संकेत इस चौपाई में है। उनकी अर्न्तकथाएं इस प्रकार हैं :—

१. प्रह्लाद—दैत्यपति हिरण्यकशिपु के पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही इनकी विष्णु-भक्ति प्रकट हो गयी थी। प्रह्लाद के गुरू विष्णु का नाम न लेने के लिए सर्वदा प्रह्लाद को उपदेश दिया करते थे, परन्तु उसका कुछ भी फल नहीं हुआ। उल्टा प्रह्लाद के साथ के अन्य दैत्य बालक भी विष्णु-भक्त हो गये। दैत्यराज ने प्रह्लाद को मरवा डालने के लिए अनेक उपाय किये, परन्तु भगवान की कृपा से प्रह्लाद को कुछ भी हानि नहीं हुई। इससे हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और बोला "अरे मूर्ख ! यदि तेरा ईश्वर सब स्थानों में वर्तमान है, तो खम्भे में क्यों नहीं है ?" प्रह्लाद ने उस खम्भे की ओर देखा और प्रणाम किया, तदनन्तर वे बोले—"यहीं तो हरि देखे जा रहे हैं।" हिरण्यकशिपु को वहाँ कुछ भी नहीं दिखाई देता था। उसने उस खम्भे पर एक लात मारी। लात के लगते ही उस खम्भे से भयंकर शब्द हुआ। प्रह्लाद ने खम्भे में नृसिंह भगवान को देखा, परन्तु अब भी हिरण्यकशिपु को कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। अतएव वह भौचक्का होकर चारों ओर देखने लगा। उसी समय खम्भे से भयंकर नृसिंह प्रकट हुए। हिरण्यकशिपु गदा लेकर उस ओर दौड़ा, नृसिंह ने उसे उठाकर अपनी जंघा पर रख लिया तथा नखों से उसका पेट फाड़कर उसे मार डाला।

२. **ध्रुव**—स्वायंभुव मनु के दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। राजा उत्तानपाद के दो महारानियाँ थीं—सुनीति और सुरूचि। सुनीति के गर्भ से ध्रुव और सुरूचि के गर्भ से उत्तम नामक दो पुत्र हुए। सुरूचि पर राजा का अधिक प्रेम था। एक समय राजा उत्तानपाद सुरूचि के गर्भ से उत्पन्न उत्तम को गोद में लेकर सिंहासन पर बैठे थे। उसी समय ध्रुव भी वहाँ आ गया और राजा की गोद में बैठने की चेष्टा करने लगा। सौभाग्यगर्वित सुरूचि अपनी सौत के पुत्र को राजा की गोद में जाते हुए देखकर कहने लगी "वत्स ! तुम सुनीति के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, तुम हमारे पुत्र नहीं हो। अतएव तुम्हें ऐसी उच्च अभिलाषा नहीं करनी चाहिए।" सुनीति ध्रुव के आँसू पोछते हुए कहने लगी—"वत्स ! यदि सुरूचि की बातें तुम्हें बहुत दुखद लगती हैं तो तपस्या करो, तपस्या से पुण्य संचय करो। अपने मन को धर्म में लगाओ। एकान्त भाव से भगवान की आराधना करो, सर्वदा प्राणियों का हित करो, इर प्रकार अवश्य ही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।" माता की बातों को सुनकरव ध्रुव कहने लगे—"माँ ! मैं तपस्या के द्वारा उस स्थान को प्राप्त करूँगा, जो पिता को भी दुर्लभ है।" यह कहकर और माता को प्रणाम कर ध्रुव घर से निकल गये। बहुत दूर जाने पर ध्रुव को सप्तर्षि

का साक्षात्कार हुआ। महर्षियों ने ध्रुव की छोटी अवस्था और दृढ़ संकल्प देखकर, उन्हें विष्णु मन्त्र का उपदेश देकर, उसका जप करने के लिए उनसे कहा। सप्तर्षियों से मन्त्र पाकर ध्रुव यमुना किनारे मधु नामक वन में भगवान की आराधना करने लगे। विष्णु वर देने के लिए ध्रुव के निकट उपस्थित हुए। ध्रुव ने अभिलाषित वर पाया। घर लौट आने पर पिता ने उनको प्रसन्नता से राज्य दिया। राज्य पाकर ध्रुव ने शिशुमार की कन्या भ्रीम को व्याहा। ध्रुव की दूसरी स्त्री का नाम इला था। ध्रुव ने भ्रीम के गर्भ से कल्प और वत्सर नामक दो पुत्र और इला के गर्भ से उत्पल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। ध्रुव के वैमात्रेय भ्राता उत्तम शिकार खेलने गये थे। उन्हें यक्ष ने मार डाला। इस कारण यक्षों से युद्ध करने गये। कुबेर के युद्ध न करने की प्रार्थना करने पर मनु ने ध्रुव को युद्ध करने से रोक दिया। अतएव कुबेर से वर पाकर ध्रुव लौट आये। ३६ हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णुप्रदत्त अपने लोक में गये। किम्वदन्ति है कि सप्तऋषि (Great Bear) तारक समूह की नोक के सामने दूर चमकता हुआ ध्रुव-तारा (Pole Sta:) जो सदा उत्तर दिशा की ओर संकेत करता है, वह स्वयं ध्रुव हैं। ध्रुव ने देवत्व प्राप्त कर लिया है। इसे अंग्रेजी में apotheosis कहते हैं।

३. **अजामिल**—एक दुराचारी ब्राह्मण था। यह पहले साधु था, परन्तु पीछे संग-दोष से यह बेजोड़ दुराचारी बन गया। रखनी के गर्भ से इसके १० पुत्र हुए थे। जिनमे एक का नाम नारायण था। वह इसका प्रिय पुत्र था। मरते समय इसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा। इसको लेने के लिए यमदूत और विष्णुदूत दोनो पहुचे। दोनों में तर्क-वितर्क होने लगा। यमदूत कहते थे कि इसको अपने पापों का फल भोगना ही पड़ेगा। विष्णुदूत कहते थे कि इसने "नारायण' का नाम स्मरण किया है। अतएव हम लोग इसको बैकुण्ठ ले जायेंगे। अन्त में विष्णुदूत सफल हुए और अजामिल को बैकुण्ठ ले गये।

४. **गजेन्द्र**—एक दैत्य शापवश घड़ियाल हो गया। एक दिन तालाव पर एक हाथी पानी पीने आया। घड़ियाल ने हाथी का मुँह में पैर दबा लिया और उसे पानी में घसीटने लगा। हाथी ने भगवान को पुकारा। उसकी पुकार सुनकर विष्णु दौड़े आये और न केवल हाथी को घड़ियाल से मुक्त किया, अपितु घड़ियाल को भी शाप से मुक्त किया।

५. **गणिका**—एक वेश्या अपने तोते को राम-राम सिखाती थी। इसी से उसका श्रीराम के नाम का जाप हो जाता था और वह श्रीराम के प्रभाव से ही मुक्ति या मोक्ष पा गयी।

दो०—नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥ २६ ॥

भावार्थ— कलियुग में राम का नाम कल्पतरु है (मनचाहा पदार्थ देने वाला) और कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है, जिसको स्मरण करने से भाँग का सा निकृष्ट झाड़ तुलसी जैसा पवित्र पेड़ हो गया अर्थात स्वयं तुलसीदास।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

भावार्थ— चारों युगों में, तीनों कालों में और तीनों लोकों में नाम का जाप करके जीव शोक रहित हुए हैं। वेद, पुराण और संतों का मत यही है कि मानव के सारे पुण्यों का फल श्री राम जी से स्नेह करना है। प्रथम युग (सत्युग) में भगवान का ध्यान करने से, दूसरे (त्रेता युग) में यज्ञ करने से और तीसरे (द्वापर युग) में भगवान का पूजन करने से भगवान प्रसन्न होते हैं। परन्तु कलियुग में जो पाप की जड़ होने से मलिन है, इसमें मनुष्यों का मन पाप रूपी समुद्र में मछली बना हुआ है। जिससे वह पाप से कभी पृथक नहीं होना चाहता। इस कारण उमसे कलियुग में ध्यान, यज्ञ और पूजन हो ही नहीं सकता। ऐसे कराल (कलियुग) काल में श्री राम का नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण मात्र से ही संसार के सब जंजालों का नाश कर देने वाला है। इस कलिकाल में यह राम-नाम मन-वाँछित फल प्रदान करने वाला है, परलोक के लिये परम हितैषी और इस लोक के लिए माता-पिता है। अर्थात परलोक में भगवान का परमधाम देता है और इस लोक में माता-पिता के समान सर्व प्रकार से पालन और रक्षण करता है। कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है; राम-नाम ही एक आधार है। जैसे कपटी कालनेमि* को बुद्धिमान और शक्तिशाली हनुमान ने धर पटका था, वैसे ही इस कपट भरे कलियुग के प्रभाव को राम का नाम पछाड़ डालता है।

* अन्तर्कथा के लिए देखिए, पिछला पृष्ठ २१

टिप्पणी— इस चौपाई में तुलसीदास ने एक बड़े मार्मिक तथ्य का निरूपण किया है। भगवान को प्रसन्न करने के लिये सतयुग में लोग उनका ध्यान करते थे, त्रेता में यज्ञ करते थे, द्वापर में पूजन करते थे, परन्तु कलयुग में न कर्म, न भक्ति न ज्ञान से काम चल सकता है—राम नाम ही एक आधार है।

दो०—राम नाम नरकेरी कनककसिपु कलिकाल।
जापत जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥२७॥

भावार्थ—श्रीराम का नाम श्री नृसिंह भगवान है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और श्री राम नाम का जप करने वाले जन प्रह्लाद* के समान हैं। यह राम नाम देवताओं के शत्रु (कलियुग रूपी दैत्य) को मारकर उसका जप करने वालों की रक्षा करेगा।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करऊँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥
मोर सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निज किस देखि दयानिधि पोसो ॥
लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्रामनर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥
सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु षुजान सुनील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला ॥
सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्रकृति महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ ॥
रीझत राम सनेही निसोतें। को जग मंद मलिनमति मोतें ॥

भावार्थ—चाहे अच्छे भाव से (प्रेम से), बुरे भाव (वैर) से, क्रोध से या आलस्य से, किसी भी प्रकार से नाम जपने से दसों दिशाओं में कल्याण ही होता है। उसी (परम कल्याणकारी) राम नाम का स्मरण करके और श्री रघुनाथ जी को मस्तक नवाकर मैं श्री राम जी के गुणों का वर्णन करता हूँ। श्री राम मेरी विगड़ी एवं बुरी परिस्थिति को सब प्रकार सुधार लेंगे। वे श्री राम ऐसे कृपालु हैं कि उनकी कृपा करते रहने से भी पूर्ण संतुष्ट नहीं होती। कैसे आश्चर्य की बात है कि श्री राम जैसा उत्तम स्वामी और मुझ सरीखा बुरा सेवक—इतना होने

---

* अन्तर्कथा के लिए देखिए, पृष्ठ ५७

पर भी दयानिधि राम ने अपनी उत्तमता को ध्यान रखते हुए मेरा पालन-पोषण किया है। संसार में और वेद में अच्छे स्वामी की यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय को सुनते ही प्रेम को पहचान लेते हैं। धनवान, निर्धन, ग्रामवासी, नगर-निवासी, पंडित-मूर्ख, बदमाम, यशस्वी और अच्छे कवि, बुरे कवि सभी नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की सराहना करते हैं। और साधु, बुद्धिमान, सुशील, ईश्वर के अंश से उत्पन्न कृपालु राजा सब की सुनकर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चाल को पहचान कर सुन्दर (मीठी) वाणी से सबका यथायोग्य सम्मान करते हैं। यह स्वभाव एवं आचरण तो संसारी राजाओं का है। कोशलनाथ श्री रामचन्द्र जी तो चतुरशिरोमणि हैं। और श्री राम तो विशुद्ध प्रेम से ही रीझते हैं, परन्तु इस जगत में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिन बुद्धि और कौन होगा।

टिप्पणी—यह चौपाई ११ विषम पंक्तियों की है। तुलसीदास जी कहते हैं धनी और गरीब, ग्राम-वासी और नगर-वासी, पंडित और मूर्ख, बदनाम और यशस्वी, अच्छे कवि और बुरे कवि, अपनी-अपनी मति अनुसार राजा की प्रशंसा करते हैं। राजा उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चाल को पहचान कर, सबका यथायोग्य सम्मान करता है। जब संसारी राजाओं का यह गुण है, तो श्री राम का जो न केवल राजा हैं, अपितु भगवान के अंश हैं, प्रेम की प्रार्थना को पहचानने का सहज गुण कितना श्रेष्ठ होगा? गोस्वामी जी अपनी दशा पर ध्यान देते हुए कहते हैं कि इस जगत में मुझसे बढ़कर मूर्ख और मलिन बुद्धि वाला कौन होगा? फिर भी उन्हें श्री राम के गुणों और कृपा पर दृढ़ विश्वास है, जैसा कि नीचे के दो दोहों में उन्होंने और विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

दो०—सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किए जलजान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु ॥२८(क)॥
हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास ॥२८(ख)॥

भावार्थ—जिन्होंने पत्थरों को तो जहाज और वानर, भालुओं को बुद्धिमान मंत्री बना लिया, ऐसे कृपालु श्री राम मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि अवश्य रखेंगे।

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी। भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें ॥
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥

कहत नसाइ होइ हियँ नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ॥
रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहिं अघ वधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥
ते भरतहि भेटत सनमाने । राज सभाँ रघुबीर बखाने ॥

भावार्थ-श्री राम का अपने कृत्य से (अर्थात् अपने को उनका सेवक कहने और कहलवाने से) उनका उपहास करना मेरी बहुत बड़ी ढिठाई और दोष है, मेरे इस पाप को सुनकर नरक ने भी मुझसे नाक सिकोड़ ली है। अर्थात्, नरक में भी मेरे लिए स्थान नहीं है। यह समझकर मुझे अपने ही कल्पित डर से डर हो रहा है, किन्तु भगवान श्री रामचन्द्र जी ने तो स्वप्न में भी इस पर (मेरी इस ढिठाई और दोष पर) ध्यान नहीं दिया। मेरे प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने इस बात को सुनकर-देखकर, अपने सुचित रूपी चक्षु से भी निरीक्षण कर, मेरी भक्ति और बुद्धि की प्रशंसा की है। श्री राम के स्वभाव में यह विशेषता है कि उनके चित्त में अपने भक्तों की की हुई भूल-चूक याद ही नहीं रहती (वे उसे भूल भी जाते हैं) और उनके हृदय की अच्छाई को ही सौ-सौ बार याद करते रहते हैं। क्योंकि जिस पाप कर्म के कारण उन्होंने बालि को व्याध की तरह मारा था उसी कुमार्ग का अनुसरण सुग्रीव ने भी किया। इसी प्रकार विभीषण की करनी भी वैसी ही थी, परन्तु श्री राम जी ने उनका सम्मान भरत जी से मिलने के समय (जब पुष्पक विमान से लंका जीतकर अयोध्या आये) किया और राज सभा में भी उनके गुणों का बखान किया।

दो०—प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान ॥२९(क)॥
राम निकाई रावरी है सबही को नीक ।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥२९(ख)॥
एहि विधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिरु नाइ ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ ॥२९(ग)॥

भावार्थ—प्रभु श्री राम तो वृक्ष के नीचे और वानर वृक्ष की डालियों पर उनके ऊपर कूदने वाले, फिर भी श्री राम ने इस असमानता पर तनिक भी ध्यान न देकर उन्हें भी अपने समान बना लिया। श्री राम के इस गुण के कारण उन जैसा शीलनिधान स्वामी कहीं भी नहीं है। हे राम! आपकी अच्छाई से सभी

का भला है क्योंकि आपका कल्याणमय स्वभाव सभी का कल्याण करने वाला है। जो यह सत्य है तो मुझ तुलसीदास का भी सदा कल्याण ही होगा। इस प्रकार अपने गुण-दोषों को कहकर और सबको फिर सिर नवाकर मैं श्री रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसके श्रवण करने से कलियुग में पाप नष्ट हो जाते हैं।

जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई।।
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी।।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा।।
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।
ते श्रोता बकता समसीला। सवँदरसी जानहिं हरिलीला।।
जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल तग आमलक समाना।।
औरउ जे हरि भगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना।।

भावार्थ—मुनि याज्ञवल्क्य ने जो सुहावनी कथा भारद्वाज को सुनाई थी, उसी संवाद को मैं बखानकर कहूँगा, सब सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसे सुनें। महेश जी ने पहले इस सुहावने चरित्र को अपना कर अंगीकार किया, फिर कृपा करके पार्वती जी को सुनाया। वही चरित्र शिव जी ने काकभुसुण्डि जी को रामभक्त और अधिकारी पहचान कर दिया। उन काकभुसुण्डि जी से फिर याज्ञवल्क्य जी ने इस कथा को प्राप्त किया और उन्होंने फिर उसे भारद्वाज जी को गाकर सुनाया वे दोनों वक्ता और श्रोता (याज्ञवल्क्य और भारद्वाज) समान शीलवाले और समदर्शी और श्री हरि की लीला को जानते हैं। वे अपने ज्ञान से तीनों कालों की बातों को जानते हैं इस प्रकार जैसे हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष) ज्ञान रखते हैं। और भी जो सुजान (भगवान की लीलाओं का रहस्य जानने वाले) हरिभक्त हैं, वे इस चरित्र को नाना प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं।

टिप्पणी—इस चौपाई और उसके नीचे के दोहे में, तुलसीदास जी बड़े विनम्र भाव से कहते हैं कि वह जिस कथा का वर्णन करने जा रहे हैं, वह उनकी कोई मौलिक कृति नहीं है। उनके पहले राम-कथा चार महापुरुषों ने सुपात्र श्रोताओं को सुनाई और अन्तिम वक्ता से उन्हें प्राप्त हुई। वक्ता-श्रोता की परि-पाटी इस प्रकार है:—राम-कथा सबसे पहले शिवजी ने पार्वती और अपने शिष्य कागभुसुण्डी को सुनाई, कागभुसुण्डि ने याज्ञवल्क्य को सुनाई, याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को, अन्त में गुरू नरहरिदास ने अपने शिष्य तुलसीदास को।

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ॥३०(क)॥
श्रोता बकता ग्याननिधि राम कै गूढ़ ।
किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़ ॥३०(ख)॥

भावार्थ—मैंने भी श्रीराम कथा सूकर क्षेत्र (बारह क्षेत्र, वर्तमान सोरों) में अपने गुरु जी से सुनी थी; परन्तु उस समय में उसको उसके शुद्ध रूप में अपनी बाल्य-बुद्धि (अल्प-बुद्धि) के कारण नहीं समझ सका था। दूसरी बात इससे भी अधिक महत्व की यह है कि श्रीराम-कथा गूढ़ है, इसके सुनने वाले और कहने वाले दोनों ही ज्ञान के निधि (पूर्णज्ञानी) ही होते हैं। फिर मै कलियुग के पापों में फँसा हुआ, महामूर्ख और जड़ जीव उस समय उसे कैसे समझ सकता।

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई ॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें ॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी ॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि ॥
राम कथा कलि पंनग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी ॥
राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनि ॥
असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधुबिबुध कुल हित गिरिनंदिनी ॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी ॥
जग मन मुहँ मसि जग जमुना सी। जीबन मुकुति हेतु जनु कासी ॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ॥
सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी ॥

भावार्थ—रामकथा जब मेरी समझ में न आयी तो गुरु जी ने बार-बार कथा समझाई, तब कहीं जाकर मैं उस समय की अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ समझ सका। उसी कथा की अब मैं बोलचाल की भाषा में रचना करूँगा, जिससे मेरे मन को संतोष प्राप्त हो। जितना भी मेरी बुद्धि और ज्ञान का बल है उसकी सहायता से, मैं अपने हृदय में श्री हरि (श्रीराम) की प्रेरणानुसार ही उसका वर्णन

करूँगा। मैं अपने संदेह, मोह (अज्ञान) एवं भ्रम को हरने वाली कथा की रचना कर रहा हूँ, जो संसार रूपी नदी के पार करने के लिए नाव है। रामकथा पंडितों को विश्राम देने वाली और कलियुग के पापों को नाश करने वाली है। यह श्री राम-कथा कलियुग रूपी सर्प के लिए मोरनी है। और विवेक रूपी अग्नि प्रकट करने के लिए अरणि (मंथन की जाने वाली लकड़ी) है; अर्थात्, इस कथा से ज्ञान की प्राप्ति होती है। राम-कथा कलियुग में सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु गौ है, एवं सज्जनों के लिए संजीवनी बूटी है। पृथ्वी के ऊपर यह अमृत की नदी है, जो जन्म-मरण भय का नाश करने वाली और भ्रम रूपी मेढकों को खाने के लिए सर्पिणी है। यह रामकथा असुरों की सेना के समान नरकों का नाश करने वाली और साधु रूपी देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती (दुर्गा) है। यह संत-समाज रूपी क्षीर समुद्र के लिये लक्ष्मी जी के समान है और सम्पूर्ण विश्व का भार उठाने में अचल पृथ्वी के समान है। यमदूतों के मुख में कालिख लगाने के लिए यह जगत में यमुना जी के समान है। और जीवों को मुक्ति देने के लिए काशी के ही जैसी है। यह रामचन्द्र जी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास के लिए हुलसी (तुलसीदास जी की माता) के समान हृदय से हित करने वाली है। यह राम-कगा शिव जी को नर्मदा जी के समान प्यारी है। यह सब सिद्धियों की तथा सुख-सम्पत्ति की राशि है। सद्गुण रूपी देवताओं को उत्पन्न और पालन-पोषण करने के लिए अदिति के समान है। श्री राम की भक्ति प्रेम की परम-सीमा के समान है।

टिप्पणी—इस चौपाई में १४ पंक्ति हैं। अन्तिम चौपाई के पहले पद में तुलसीदास राम कथा को "शिवप्रिय मेकल सैल सुता सी" कहते हैं। "मेकल-सैल" विंध्याचल पर्वत को कहा गया है। नर्मदा इसी पर्वत से निकलती है। अतएव वह "मेकल-सैल सुता" हुई। नर्मदा शिव जी को प्रिय है। क्यों ?—शिव जी के अनेकानेक मंदिर नर्मदा के किनारे वने हुये हैं। ओंकारेश्वर मंदिर तो नर्मदा के बीच में ही वना हुआ है जहाँ भील वेष धारण कर श्री शिव ने अर्जुन से युद्ध कर परीक्षा ली थी। उस मंदिर में ब्राह्मण को चढ़ावा नहीं मिलता; वह सब भील लेते हैं।

दो०—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥ ३१॥

भावार्थ— राम-कथा मंदाकिनी नदी है, सुन्दर (निर्मल) चित्त चित्रकूट है, सुन्दर स्नेह ही वह वन है जिसमें श्री सीताराम विहार करते हैं।

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ।।
जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ।।
सदगुरु ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के ।।
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के ।।
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ।।
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ।।
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के ।।
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद धन दारिद दवारि के ।।
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ।।
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से ।।
अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ।।
सुकबि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से ।।
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोन से ।।
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ।।

भावार्थ—श्रीराम जी का चरित्र सुन्दर चिन्तामणि है और संतों की सुबुद्धि रूपी स्त्री का सुन्दर श्रृंगार है। रामचन्द्र जी की गुण-गाथा जगत का कल्याण करने वाली और मुक्ति, धरनि-धान, धन को देने वाली है। ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सद्गुरु है और संसार रूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य (अश्विनी कुमार) के समान हैं। सीताराम के प्रेम को उत्पन्न करने वाली माता-पिता है और सारे व्रत, धर्म और नियमों का बीज है। पाप और शोक का नाश करने वाली है और इस लोक और परलोक तक का प्रेम से पालन करने वाली हैं। सद्विचार (ज्ञान) रूपी राजा को मन्त्रणा देने वाली एवं उसकी रक्षा का सदा ध्यान रखने वाली शूरवीर मन्त्री है। और संसार में जो लोभ रूपी अपरिमित सागर है उसको सोखने के लिए अगस्त्य ऋषि के समान है। श्रीराम से प्रेम रखने वाले मानवों के मन-रूपी वन में निवास करने वाली काम-क्रोध, कलियुग की बुराईयों एवं पापों को जो हाथियों के समान बलवान हैं, श्री राम-चरित्र सिंह के बच्चों के समान उनका नाश कर देता है। शिव जी के लिए श्रीराम-चरित्र पूज्य एवं प्रिय अतिथि है और संसार की दरिद्रता रूपी दावाग्नि को बुझाने और शान्त करने वाला एवं सकल कामनाओं को पूर्ण करने वाला मेघ है। संसार के विषय रूपी साँप का जहर उतारने के लिए मन्त्र और महामणि के समान है। ये माथे पर लिखे हुए कठिनता से मिटने वाले बुरे लेखों

(प्रारब्ध कर्म) को मिटा देने वाला है। मोहजनित अज्ञान रूपी अंधकार के हरण करने के लिए सूर्य के किरणों के समान है। सेवक रूपी धान के पालन करने हेतु मेघ के समान है। मन वाँच्छित वस्तु देने में श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान है और सेवा करने में हरि-हर के समान सुलभ और सुखदायक है। सुकवि रूपी शरद ऋतु के मन रूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए नारायण के समान है और श्रीराम के भक्तों का जीवन तो धन्य ही है। सम्पूर्ण पुण्यों के फलस्वरूप महान भोगों के समान है। जगत का छल-रहित (यथार्थ एवं सच्चा) हित करने में साधु सन्तों के समान है। सेवकों के मनरूपी मानसरोवर के लिए हंस के समान और पवित्र करने में गंगा जी की तरंग मालाओं के समान है।

टिप्पणी—इस चौपाई में १४ पंक्तियाँ हैं। गोस्वामी जी रामचरित्र के विशेष गुणों का वर्णन करते हुए, अपने हृदय गत भावों को स्पष्ट करते हुए, कहते हैं कि संसार के विषय-भोग, सर्पदंश के समान, अपने जहरीले प्रभाव से मानव को निश्चित मृत्यु एवं सर्वनाश का कारण बन जाते हैं। उनके प्रभाव को हटाने और मिटाने के लिये रामचरित्र मंत्र और महामणि के समान है। मंत्र के प्रभाव एवं शक्ति से तथा महामणि के गुण के कारण सर्पदंश के जहर की घातक शक्ति समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार श्री राम-चरित्र में रमकर आनन्दित होने वाले के लिये विषय-भोग कोई आकर्षण ही नहीं रखते, तो उसे प्रभावित ही कहाँ से करेंगे ? चौपाई में और भी कई उत्प्रेक्षा हैं।

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड॥ ३२ (क)॥
रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥ ३२ (ख)॥

भावार्थ—कुमार्ग पर चलना, कुतर्क करने को सदा तत्पर रहना, बुरे आचरण जिसमें कपट, घमंड और पाखंड है, इन सब बुराईयों एवं दोषों को श्रीराम के गुणों का समूह इस प्रकार भस्म कर देता है जैसे प्रचण्ड अग्नि सब प्रकार के इँधन (जलने योग्य वस्तुओं) को जला डालती है। वैसे तो श्रीराम चरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान सभी को सुख देने वाला है, परन्तु सज्जन रूपी कुमुदनी और चकोर के चित्त के लिये तो विशेष हितकारी और महान लाभदायक है।

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई॥

जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई ।।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी ।।
रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ।।
नाना भाँति राम अबतारा। रामायन सत कोटि अपारा ।।
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ।।
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी ।।

भावार्थ—जिस प्रकार पार्वती जी ने शिव जी से प्रश्न किया और जिस प्रकार शिव ने विस्तार पूर्वक उसका उत्तर दिया—उस प्रकरण की मैं विचित्र कथा की रचना करूँगा और गाकर कहूँगा। जिसने यह कथा पहले न सुनी हो, वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे और जो ज्ञानी इस कथा को सुनते हैं वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते हैं कि संसार में राम कथा की कोई सीमा नहीं है (राम कथा अनन्त है)। उनके मन में ऐसा विश्वास रहता है कि नाना प्रकार से श्री रामचन्द्र जी के अवतार हुए हैं और सौ करोड़ तथा अपार रामायण हैं। कल्पभेद के अनुसार श्री हरि के सुन्दर चरित्रों को मुनीश्वरों ने अनेकों प्रकार से गाया है। अपने हृदय में ऐसे विचार को स्थान देकर सन्देह न कीजिये और प्रेम के साथ इस कथा को सुनिये।

दो०—राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार ।। ३३ ।।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्र जी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथा का विस्तार भी असीम है। अतएव जिनके विचार निर्मल हैं, वे इस कथा को सुनकर आश्चर्य नहीं करेंगे।

एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर रद पंकज धूरी ।।
पुनि सबहीं बिनवहुँ कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी ।।
सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनहुँ बिसद राम गुन गाथा ।।
संबत सोलह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा ।।
नौमी भौम बार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ।।
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा ।।
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना ।।

भावार्थ—इस प्रकार से सब सन्देहों का समाधान करने के पश्चात और अपने श्री गुरू के चरण कमलों की धूलि (रज) को सिर पर धारण करके, मैं पुनः हाथ जोडकर विनती करता हूँ जिससे श्री रामकथा की रचना में कोई दोष न आने पावे। मैं आदर सहित शिव जी को शिर नवाकर श्री राम जी के गुणों को निर्मल कथा का वर्णन करता हूँ। यह कथा मैंने विष्णु भगवान (राम) को प्रणाम कर सोमवार, चैत्र सुदी नवमी, संवत् 1631 (तदनुसार सन् 1574 ई०) को अयोध्या में शुरू की। यह तिथि राम के पुण्य जन्म दिवस की है। इस तिथि का महात्म वेदों ने गाया है। इस शुभ पर्व पर समस्त तीर्थ अयोध्या चले आते हैं। असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि एवं देवता आकर अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार श्री रघुनाथ जी की सेवा में लग जाते हैं। बुद्धिमान लोग श्री राम-जन्म महोत्सव मनाते हैं और श्री राम जी की सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

दो०—मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर ॥ ३ ॥

भावार्थ—सज्जनों के बहुत से समूह श्री राम नवमी के दिन अवधपुरी में सरयू नदी के पवित्र जल में स्नान करते हैं और मन से राम की सुन्दर-श्यामल छवि का ध्यान करते हुये, उनका जाप करते हैं।

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमलमति ॥
राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा ॥
रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥
मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई ॥
रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥

भावार्थ—वेद एवं पुराण कहते हैं कि सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापों को हरता है। यह नदी बड़ी पवित्र है। इसकी महिमा अमित है, जिसका वर्णन विमल बुद्धि वाली सरस्वती जी भी नहीं कर सकतीं। यह श्रीराम जी के परम धाम अयोध्यापुरी को देने वाली है और सब लोकों में अत्यन्त पवित्र प्रसिद्ध है। जगत में (अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज) चार प्रकार के अत्यन्त जीव हैं। इनमें से किसी प्रकार का जीव यदि अयोध्या में शरीर छोड़ता है तो वह फिर संसार में नहीं आता क्योंकि वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकर भगवान श्रीराम के परमधाम में निवास करता है। अवधपुरी सब प्रकार से मनोहर एवं सब सिद्धियों की देने वाली और कल्याण का भण्डार है। यह समझकर मैंने इस निर्मल कथा की रचना आरम्भ की है जिसको सुनते ही इच्छाएं, मद (नशा चाहे किसी कारण वश क्यों न हो) और घमंड नष्ट हो जाते हैं। इस रचना का नाम रामचरित मानस है जिसे कानों से सुनते ही शान्ति मिलती है। मानवों का मन रूपी हाथी विषय रूपी दावाग्नि से जल रहा है। वह यदि इस रामचरित रूपी मानसरोवर में आ पड़े तो वह सुखी हो जायेगा। इसलिये यह रामचरित मानस मुनियों को प्रिय है। इस रामचरित मानस की, जो सुहावनी होने के साथ पवित्र भी है, रचना स्वयं शिव जी ने की है। इसमें तीनों प्रकार के दोषों, दुःखों और दरिद्रता को तथा कलियुग की बुराइयों एवं सब पापों को नाश करने का सामर्थ्य है। इसकी रचना कर महादेव जी ने इसे अपने मन में ही रखा था और सुअवसर पाकर पार्वती जी को सुनायी। इसी से शिव जी ने इसको अपने हृदय में देखकर और प्रसन्न होकर इसका "रामचरित मानस" नाम रखा। गोस्वामी जी का तात्पर्य यह है कि महादेव जी ने प्रथम तो श्री रामचरित्र का स्वयं अनुभव किया फिर उससे इतने प्रभावित एवं आनन्दित हुए कि रामचरित्र की सम्पूर्ण कथा की रचना बुद्धि में की फिर उसका आनन्द लेने के लिये उसे अपने मन में ही रखा और जब पार्वती जी को रामचरित सुनने की तीव्र अभिलाषा हुई, तभी उस सुअवसर पर महादेव जी ने पार्वती को रामचरित्र की कथा सुनायी। वही सुखदायनी कथा तुलसीदास सुनाने जा रहे हैं और सज्जनों से आग्रह करते हैं कि वह मन लगाकर उसे आदर सहित सुनें।

टिप्पणी—इस चौपाई में १३ विषम पंक्तिया हैं। इसके पहले की चौपाई में तुलसीदास लिखते हैं "संवत सोरह सौ इकतीसा।···"नौमी भौमवार मधुमासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।"

"प्रकासा" शब्द से कुछ भ्रान्ति हो सकती है। आजकल जब समस्त पुस्तक मुद्रित हो जाती तब उसका लोकार्पण किया जाता है। तब ही पुस्तक "प्रकाशित"

मानी जाती है। तुलसीदास के समय में मुद्रणालय नहीं थे। समस्त रामचरितमानस उन्होंने हाथ से लिखी थी। जब वह "प्रकाशा" शब्द का प्रयोग करते हैं, तो उनका कदापि भी यह अभिप्राय नहीं है कि "मानस" की सम्पूर्ण पाण्डु लिपि तैयार हो गयी। वह कहना चाहते हैं कि राम-चरित को वह अमुक तिथि को प्रकाश में लाये, अर्थात लिखना प्रारम्भ किया। उन्होंने अपना आशय अगली इस चौपाई में स्पष्ट कर दिया है।

"बिमल कथा कर दीन्ह अरम्भा।"

इस पंक्ति से स्पष्ट है कि अमुक तिथि को उन्होंने "मानस" आरम्भ की। वह तिथि कौन थी ? "नौमी भौमवार मधुमासा"–अर्थात चैत्र की नवमी तिथि और दिन था सोमवार। हर मास में दो नवमी हो सकती हैं। इसलिए तुलसीदास ने तुरन्त दूसरी पक्ति में स्पष्ट कर दिया है :—

"जेहि दिन राम जन्म श्रुति गावहिं"

अर्थात् वह शुक्ल पक्ष की राम नौमी थी। दोहा ३४ में और उसके नीचे की चौपाई में तुलसीदास ने राम जन्म दिवस (राम नौमि), सरयू नदी और अयोध्या पुरी के महात्म का वर्णन किया है।

दो० —जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥ ३५॥

भावार्थ—यह रामचरित मानस जैसा है, जिस प्रकार रचा गया और जिस कारण जगत में इसका प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं श्री उमा-महेश का स्मरण करके कहता हूँ।

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरसहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

भावार्थ—महादेव के प्रसाद से मेरे हृदय में सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे मैं तुलसीदास रामचरित मानस का कवि हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो मैं इसे मनोहर ही बनाता हूं, किन्तु फिर भी हे सज्जनों ! सुन्दर चित्त से इसे सुनकर आप सुधार लीजिए। सुन्दर (सात्विक) बुद्धि भूमि है, हृदय हा उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। वे (साधु रूपी मेघ) श्रीराम के सुयश रूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं। भगवान की सगुण लीला का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, वही (राम-सुयश रूपी) जल की निर्मलता है, जो मल का नाश करती है, और जिस प्रेम-भक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जल की मधुरता और सुन्दर शीतलता है। वह (राम-यश रूपी) जल सत्कर्म रूपी धान के लिये हितकर है, श्रीराम जी के भक्तों का तो जीवन ही है। वह पवित्न जल बुद्धि-रूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमट कर सुहावने कान रूपी मार्ग से चला और मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान में भर कर वहीं स्थिर हो गया। वहीं पुराना होकर, सुन्दर, रूचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया।

टिप्पणी—यह चौपाई 9 विषम पक्तियों की है। इसमें तुलसीदास ने एक बहुत सुन्दर रूपक बाँधा है। सात्विक बुद्धि भूमि है, हृदय उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-सन्त मेघ हैं। वे मेघ राम के सुयश रूपी मधुर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं। यह जल सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकर है और भक्तों का तो जीवन है। यह जल बुद्धिरूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमट कर कानरूपी मार्ग से चला और हृदय रूपी स्थान में भरकर वहीं स्थिर हो गया।

दो०—सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥ ३६ ॥

भावार्थ—इस कथा में बुद्धि से विचार कर जो चार अत्यन्त सुन्दर संवाद (कागभुशुण्डि-गरूड़, शिव-पार्बती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास-संत) रचे हैं, वही इस पवित्न और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर धाट हैं।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोई बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला ॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर तेहि बहुभाँती ॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना ॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति बेद बखाना ॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा ॥

भावार्थ—सात काण्ड ही इस मानसरोवर की सुन्दर सात सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञान रूपी नेत्रों से देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। श्री रघुनाथ जी की निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से अतीत) और निर्बाध (एक-रस) महिमा का जो वर्णन किया जायेगा, वही इसके सुन्दर जल की गहराई है। जो इस रचना में छन्द-सोरठे और दोहे हैं, वही इसमें बहुरंगी कमलों के समूह सुशोभित हैं। अनुपम अर्थ, ऊँचे भाव और सुन्दर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) और सुगन्ध हैं, सत्कर्मों (पुण्यों) के पुञ्ज भौरों की सुन्दर पंक्तियाँ हैं। ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं। कविता की ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और जाति ही अनेकों प्रकार की मनोहर मछलियाँ हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों, ज्ञान-विज्ञान का विचार करके कहना, काव्य के नवरस, जप-तप, योग और वैराग्य के प्रसंग, ये सब इस सरोवर के सुन्दर जलचर जीव हैं। पुण्ययात्मा जनों के, साधुओं के एवं श्री रामनाम के गुणों का गान ही विचित्र जल-पक्षियों के समान हैं। संतों की सभा ही इस सरोवर के चारों ओर की अमराई (आम के बगीचे) है, जिसमें श्रद्धा का गान ही वसंत ऋतु के समान किया गया है। नाना प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया तथा दम (इन्द्रिय निग्रह) लताओं के मण्डप हैं। मन का निग्रह, यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) ही इसके पुष्प हैं, ज्ञान फल है और श्री हरि के चरणों में प्रेम ही (इस ज्ञान रूपी फल का) रस है। ऐसा वेदों में कहा है। इस (रामचरित मानस) में और भी जो अनेक प्रसंगों की कथाएं हैं, वे ही इसमें तोते, कोयल आदि रंग-विरंगे पक्षी हैं।

दो०—पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु ॥ ३७ ॥

भावार्थ—श्री रामचरित मानस की कथा में जो रोमान्च होता है वही वाटिका, बाग और बन हैं, और जो सुख होता है, वही सुन्दर पक्षियों का विहार है। निर्मल मन ही माली है, जो प्रेम रूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा इसे सींचता है।

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ।।
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी ।।
अति खल जे बिषई बग कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा ।।
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना ।।
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे ।।
आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई ।।
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला ।।
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला ।।
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना।

भावार्थ—जो मानव इस चरित्र को सावधानी से गाते हैं, वे ही इस तालाब के चतुर रखवाले हैं, और जो स्त्री-पुरुष सदा आदर पूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस मानस के अधिकारी उत्तम देवता हैं। मानवों में जो दुष्ट एवं विषयी स्वभाव के हैं वे भाग्यहीन बगुले और कौऐ हैं, जो इस सरोवर के समीप नहीं जाते। क्योंकि यहाँ (इस मानस सरोवर में) घोंघे, मेढक और सेवार के समान विषम-रस की कथाएँ नहीं हैं। इसी कारण बेचारे कौए और बगुले रूपी विषयी लोग यहाँ आते हुए हृदय में हार मान जाते हैं। क्योंकि उनके लिये इस सर तक आने में बहुत कठिनाईयां हैं। कारण, कि बिना राम कृपा के यहाँ तक नहीं आया जाता। घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है, उन कुसंगियों के बचन ही बाघ, सिंह और साँप हैं। घर के कामकाज और गृहस्थी के भाँति-भाँति के जंजाल ही अत्यन्त दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं। मोह, मद, मान ही बहुत से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं।

टिप्पणी—दोहा ३६ और ३७ के नीचे की चौपाईया क्रमशः १५ और ६ विषम पक्तियों की हैं। इन दो दोहों और चौपाइयों में तुलसीदास ने एक बहुत सुन्दर और बड़ा रूपक बाँधा है। दोहे ३६ के नीचे की चौपाई में उन्होंने अपने महाकाव्य का नामकरण कर दिया है :—"रामचरितमानस एहि नामा"। रामचरित को "मानस" की संज्ञा देने के बाद, वह ऊपर के दो दोहों और चौपाइयों में उस "मानस" के उपमानों की सूची इस प्रकार देते हैं :—

१. चार संवाद अर्थात् कागभुशुण्डि-गरूड़, शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, तुलसीदास-संत संवाद **मानों** चार घाट।

२. मानस के सात काण्ड **मानों** सात सीढ़ियां।

३. राम की गुण गाथा **मानों** अगाध जल।

४. छंद, सोरठे और दोहे **मानों** बहुरंगी कमल।

५. अर्थ, ऊँचे भाव और सुन्दर भाषा **मानों** पराग, मकरंद, और सुगंध।

६. सत्कर्मों के पुन्ज **मानों** भ्रमर।

७. ज्ञान, वैराग्य और विचार **मानों** हंस।

८. ध्वनि, वक्रोक्ति और अन्य कविता के गुण **मानों** मछलियां।

९. जप, तप, योग और वैराग्य के प्रसंग **मानों** जलचर।

१०. पुण्यात्मा, साधुओं और श्रीराम के गुणों का गान **मानों** जल-पक्षी।

११. संतों की सभा **मानों** अमराई।

१२. क्षमा, दया तथा दम **मानों** पुष्प।

१३. मन का निग्रह, यम, नियम **मानों** पुष्प।

१४. ज्ञान **मानों** फल।

१५. हरि के चरणों में प्रेम **मानों** रस।

१६. अन्तर्कथाएँ **मानों** शुक, पिक और अन्य विहंग।

१७. राक कथा में जो रोमान्च होता है वह **मानों** वाटिका, बाग और वन।

१८. रामकथा सुनने या पढ़ने से जो सुख मिलता है वह **मानों** पक्षियों का विहार।

१९. निर्मल मन **मानों** माली।

२०. अश्रु-वारि **मानों** सीचने का जल।

२१. राम-चरित्र को गाने वाले **मानों** रखवाले।

२२. श्रोता **मानों** मालिक।

२३. विषयी और दुष्ट प्रवृत्ति के मानस **मानों** बगुले और कौऐ।

२४. बिषयी कथायें **मानों** घोंघे, मेंढक, और सेवार हैं।

नम्बर २३ और २४ रामचरित मानस के पास फटकने का साहस नहीं कर सकते।

दो०—जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥ ३८॥

भावार्थ—जिनके पास श्रद्धारूपी सम्बल नहीं है, संतों का साथ नहीं है और जिनको श्री रघुनाथ जी प्रिय नहीं हैं, उनके लिये यह मानस अत्यन्त ही अगम है अर्थात् श्रद्धा, सतसंग और भावप्रेम के बिना कोई इसको प्राप्त नहीं कर सकता।

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेहीं। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥
अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमलजस जलभ रिता सो॥
सहजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूलनिकंदिनि॥

भावार्थ—यदि अनेकों में एक कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाये, तो वहाँ आते ही उसे नींद रूपी जूडी आ जाती है। हृदय में मूर्खता रूपी बड़ा जाड़ा लगने लगता है, जिससे वहाँ जाकर भी वह अभागा स्नान नहीं कर पाता। उससे उस सरोवर में स्नान और जलपान तो किया ही नहीं जाता, वह अभिमान सहित वहाँ से लौट आता है। फिर यदि कोई उससे (वहाँ का हाल) पूछने आता है, तो वह (अपने अभाग्य की बात न कहकर) सरोवर की निन्दा कहकर उसे समझाता है। ये सारे विघ्न उसको नहीं व्याप्ते (बाधा नहीं पहुँचाते) जिसे श्री रघुनाथ जी सुन्दर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक इस सरोवर में स्नान करता है और महान भयानक त्रिताप से (आध्यात्मिक, अधिदैविक, भौतिक तापों से) नहीं जलता है। जिनके मन में श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में सुन्दर प्रेम है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते। हे भाई! जो इस सरोवर

में स्नान करना चाहे वह मन लगाकर सत्संग करे। ऐसे मानसरोवर को हृदय के नेत्रों से देखकर और उसमें गोता लगाकर ही कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदय में आनन्द और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनन्द का प्रवाह उमड़ आया। उस कवि बुद्धि से वह सुन्दर कविता रूपी नदी बह निकली जिसमें श्री राम जी का निर्मल यश रूपी जल भरा है। इस (कवितारूपिणी नदी) का नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दो सुन्दर किनारे हैं। यह रामचरित मानस से जन्मी नदी अत्यन्त पवित्र है और इसके प्रवाह का वेग कलियुग के पाप रूपी तिनकों और वृक्षों को जड़ से उखाड़कर अपने साथ बहा ले जाने की क्षमता रखता है।

टिप्पणी—यह चौपाई १३ विषम पंक्तियों की है। इसमें और इसके नीचे तीन दोहे और चौपाईयों में तुलसीदास ने एक और रूपक बाँधा है। राम-गाथा की कविता को नदी की संज्ञा देकर, आगे के उपमान और उपमेय इस प्रकार हैं—

१. कविता **मानों** सरयू नदी।

२. राम का विमल यश **मानों** नदी का जल।

३. लोक मत और वेदमत **मानों** नदी के दो किनारे।

४. कलियुग का पाप **मानों** तिनके और पेड़ जिन्हें नदी का वेग प्रवाह बहाये लिए जा रहा है।

५. ज्ञानी, योगी, भक्त—तीन प्रकार के श्रोता **मानों** नदी के किनारे बसे हुए गाँव और नगर हैं।

६. रामभक्ति **मानों** गंगा नदी है, जिसमें सरयू आकर मिलती है।

७. राम-लक्ष्मण के युद्ध का पवित्र यश **मानों** सोननदी है, जो भी गंगा में आकर मिलती है।

८. रामचरित के बीच-बीच में जो भिन्न प्रकार की विचित्र कथाएँ हैं, **मानों** वह तट के वन और बाग हैं।

९. शिव-पार्वती के विवाह के बराती **मानों** नदी के जलचर जीव।

१०. श्रीराम के जन्म की आनन्द बधाइयाँ **मानों** नदी के भँवर और तरंग।

११. चारों भाइयों का बाल-चरित **मानों** रंग-बिरंगे खिले हुए कमल।

१२. राजा-दशरथ, उनकी रानियों और कुटुम्बियों के सत्कर्म **मानों** भ्रमर और जल पक्षी।

१३. सीता-स्वयम्बर की सुन्दर कथा **मानों** नदी की छवि ।

१४. विचारपूर्ण प्रश्न **मानों** नदी की नावें ।

१५. प्रश्नों के उत्तर **मानों** केवट ।

१६. कथा को सुनकर पीछे जो चर्चा होती है **मानों** तीर पर चलने वाले यात्री ।

१७. परशुराम का क्रोध **मानों** नदी का महा प्रवाह ।

१८. राम के श्रेष्ठ बचन **मानों** सुन्दर बँधे हुए घाट ।

१९. चारों भाइयों के विवाह का उत्साह **मानों** नदी की बाढ़ ।

२०. राम के राजतिलक का साज **मानों** किसी पर्व पर नदी के किनारे एकत्रित हुआ यात्री-समूह ।

२१. कैकेयी की कुबुद्धि **मानों** नदी में जमी हुई काई ।

२२. कलियुग के पाप और दुष्टों के अवगुणों का वर्णन **मानों** नदी की कीचड़, बगुले और कौवे ।

२३. भरत चरित्र **मानों** नदी तट पर किया जाने वाला जप-यज्ञ ।

२४. शिव-पार्वती का विवाह **मानों** हेमन्त ऋतु ।

२५. राम का जन्मोत्सव **मानों** शिशिर ऋतु ।

२६. राम का विवाह **मानों** बसन्त ऋतु ।

२७. राम वन-गमन **मानों** ग्रीष्म ऋतु ।

२८. मार्ग की कथा **मानों** कड़ी धूप और लू ।

२९. राक्षसों से युद्ध **मानों** वर्षा ऋतु ।

३०. राम राज्य **मानों** शरद ऋतु ।

दो०—श्रोता त्रिबिधि समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ॥३९॥

भावार्थ—तीनों प्रकार के श्रोताओं (ज्ञानी, योगी, भक्त) का समाज ही इस नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए पुर, गाँव और नगर हैं । जो संतों की सभा हैं वह ही सब सुन्दर कल्याणों की मूल उपमा रहित अयोध्या है ।

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥
त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजत मन पावन करिही॥
बिच-बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर-तीर बन बागा॥
उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती॥
रघुबीर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥

भावार्थ—श्री राम की सुन्दर कीर्ति रूपी सरयू नदी रामभक्ति रूपी गंगा से जाकर मिलती है। छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री राम के युद्ध का पवित्र यश रूपी महानदी सोन भी उसी में आ मिली है। उत्तर से सरयू, दक्षिण से सोन—इन दोनों नदियों के बीच में भक्ति रूपी गंगा जी की धारा ज्ञान और वैराग्य के सहित शोभित हो रही है। ऐसी तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक) को दाह करने वाली त्रिमुहानी नदी रामस्वरूप रूपी समुद्र की ओर जा रही है। इस कविता रूपिणी नदी का उद्गम मानस (श्रीरामचरित) है। इसके सुनने से ही कितने सुजनों के अर्थात् अच्छे लोगों के मन पवित्र हो जाते हैं। इस रामचरित्र के बीच-बीच में जो भिन्न-भिन्न प्रकार की विचित्र कथायें हैं, वे ही इस पवित्र नदी के तट के वन और बाग हैं। इस रामचरित रूपी सरयू में पार्वती और शिव जी के विवाह के बराती इसी नदी के असंख्य जलचर जीव हैं। एवं श्री राम के जन्म की आनन्द बधाईयाँ ही इस नदी के भंवर और तरंगों की मनोहरता है।

दो०—बालचरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारिबिहंग॥४०॥

भावार्थ—चारों भाईयों के जो बालचरित्र हैं वे ही इसमें (खिले हुए) रंग बिरंगे बहुत से कमल हैं। महाराज श्री दशरथ जी तथा उनकी रानियों और कुटुम्बियों के सत्कर्म (पुण्य) ही भ्रमर और जलपक्षी हैं।

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥
सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥

कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं ।।
राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा ।।
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी ।।

भावार्थ—सीता जी के स्वयंबर की जो सुन्दर कथा है, वही इस नदी में सुहावनी छवि छा रही है। सुन्दर विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदी की नावें हैं और उनके विवेक युक्त उत्तर चतुर केवट हैं। इस कथा को सुनकर पीछे जो आपस में चर्चा होती है, वही इसके तीर पर चलने वाले यात्रियों का समाज शोभा पा रहा है। परशुराम जी का क्रोध इस नदी की महान धारा है। और श्री रामचन्द्र जी के श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बँधे हुए घाट हैं। भाईयों सहित श्री रामचन्द्र जी के विवाह का उत्साह ही इस कथा रूपी नदी की कल्याणकारी बाढ़ है। जो सभी को सुख देने वाली है। इसके कहने सुनने में जो हर्षित और पुलकित होते हैं वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं जो प्रसन्न मन से इस नदी में नहाते हैं। श्रीराम के राजतिलक के लिए जो मंगल साज सजाया गया वही मानो पर्व के समय इस नदी पर यात्रियों के समूह एकत्रित हुए हैं। कैकेयी की कुबुद्धि ही इस नदी में काई है, जिसके फलस्वरूप बड़ी भारी बिपत्ति आ पड़ी।

दो०—समन अमित उतपात सब भरतचरित जपजाग।
कलि अख खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग ।।४१।।

भावार्थ—सम्पूर्ण अनगिनत उत्पातों को शान्त करने वाला भरत जी का चरित्र (नदी तट पर किया जाने वाला) जपयज्ञ है। कलियुग के पापों और दुष्टों के जो वर्णन हैं वे ही इस नदी के जल की कीचड़ और बगुले, कौये हैं।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी ।।
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू ।।
वरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू ।।
ग्रीषम दुसह राम बनगवनू। पंथकथा खर आतप पवनू ।।
बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी ।।
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ।।
सती सिरोमनि सिय गुनगाथा। सोई गुन अमल अनूपम पाथा ।।
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई ।।

भावार्थ— यह कीर्तिरूपिणी नदी छहों ऋतुओं में सुन्दर है। सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। इसमें शिवपार्वती का व्याह हेमन्त

ऋतु है। श्रीराम जी के जन्म का उत्सव सुखदायी शिशिर ऋतु है। श्रीराम के विवाह समाज का वर्णन ही आनन्दमय ऋतुराज बसंत हैं। श्री राम का बन-गमन दुःसह ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कड़ी धूप और लू है। राक्षसों के साथ घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है जो देवकुल रूपी धान लिये सुन्दर कल्याण करने वाली है। श्री राम के राज्यकाल का जो सुख, विनम्रता और बड़ाई है वही निर्मल सुख देने वाली शरद ऋतु हैं। सती-शिरोमणि श्री सीता जी की गुणों की जो कथा है, वही इस जल का निर्मल और अनुपम गुण है। श्री भरत जी का स्वभाव इस नदी की सुन्दर शीतलता है, जो सदा एक सी रहती है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास ॥४२॥

भावार्थ—चारों भाइयों का परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक दूसरे से प्रेम करना, हंसना और सुन्दर भाईपना इस जल की मधुरता और सुगन्ध है।

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी ॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥
काम कोह मन मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन ॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें ॥
जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥

भावार्थ—मेरा आर्तभाव, विनय और दीनता इस सुन्दर और निर्मल जल का कम हलका पन नहीं है (अर्थात् अत्यन्त हल्कापन है)। वह जल बड़ा ही अनोखा है जो सुनने से ही गुण करता है और आशा रूपी प्यास को और मन के मैल को दूर कर देता है। यह जल श्री राम के सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है, कलियुग के समस्त पापों और उनसे होने वाली ग्लानि को दूर करता है (हर लेता है)। संसार के (जन्म-मृत्यु रूप) श्रम को सोख लेता है, संतोष को भी संतुष्ट करता है और पाप, ताप, दरिद्रता और दोषों को नष्ट कर देता है। यह जल काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करने वाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्य को बढ़ाने वाला है। इसमें आदरपूर्वक स्नान करने से और इसे पीने से हृदय में रहने

वाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं। जिन्होंने इस (राम सुयश-रूपी) जल से अपने हृदय को नहीं धोया, वे कायर कलिकाल के द्वारा ठगे गये, जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणों के रेत पर पड़ने से उत्पन्न हुये जल के भ्रम को वास्तविक जल समझ-कर पीने दौड़ता है और जल न पाकर दुखी होता है।

दो०—मति अनुहारी सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ ॥४३(क)॥
अब रघुपति पद पंकरुह हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन सुभग संबाद ॥४३(ख)॥

भावार्थ—अपनी बुद्धि के अनुसार इस सुन्दर जल के गुणों को विचार कर, उसमें अपने मन को स्नान कराकर और भवानी-शंकर को स्मरण करके, कवि (तुलसी दास) सुन्दर कथा कहता है। मैं अब श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों को हृदय में धारण कर और उनका आनन्दरूपी प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियों (याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाज) के मिलन का सुन्दर संवाद वर्णन करता हूं।

भारद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना ॥
माघ मकरगत रवि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं ॥
पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥
तहाँ होई मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा ॥

भावार्थ—भरद्वाज मुनि प्रयाग में रहते हैं और उनका श्री राम जी के चरणों में अत्यन्त प्रेम है। इसके साथ ही तपस्वी, निगृहीतचित्त, जितेन्द्रिय, दया-निधान और परमार्थ के मार्ग में बड़े ही चतुर हैं। माघ मास में जब सूर्य मकर राशि पर जाते है तब सब लोग तीरथ राज प्रयाग को जाते हैं। देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्यों के समूह आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं। श्री वेणी माधव (विष्णु) के चरण कमलों को पूजते हैं और अक्षय वट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित हो जाते हैं। वही प्रयाग राज में श्री भारद्वाज जी का आश्रम अति पवित्र, परम रमणीय और मुनियों के मन को मोहने वाला है। जो ऋषि-मुनियों का समाज तीर्थ राज प्रयाग में स्नानार्थ जाता है, वहां वह ऋषि-मुनियों का समाज

भरद्वाज के आश्रम में एकत्रित होता है। प्रातःकाल सब उत्साह पूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान के गुणों की कथाएँ कहते हैं।

दो०—ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग ॥४४॥

भावार्थ—वह ऋषि और मुनि ब्रह्म निरूपण, धर्म का विधान और तत्वों के विभाग का वर्णन करते हैं, तथा ज्ञान-वैराग्य से युक्त भगवान की भक्ति का कथन करते हैं।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा॥
एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥
सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनित आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी॥
नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड़ होइ अकाजा॥

भावार्थ—इसी प्रकार सम्पूर्ण माघ मास स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को चले जाते हैं। प्रत्येक वर्ष वहाँ इसी प्रकार बड़ा आनन्द होता है। मकर में स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं। एक वर्ष प्रत्येक वर्ष की भांति पूर्ण मकर मास (माघ मास) स्नान एवं सत्संग करके सब मुनीश्वर अपने अपने आश्रमों को चले गये। तब परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को, चरण पकड़कर, श्री भरद्वाज मुनि ने अपने आश्रम में जाने से रोककर रख लिया। फिर भरद्वाज मुनि ने आदर सहित उनके चरण कमलों को अपने हाथ से धोया। तत्पश्चात बड़े ही पवित्र आसन पर उन्हें बिठाया। फिर श्री भरद्वाज मुनि ने श्री याज्ञवल्क्य जी की श्रद्धा और प्रेम पूर्वक पूजा की। उनके सुयश का वर्णन किया। याज्ञवल्क्य जी जब भारद्वाज से पूर्ण संतुष्ट दिखाई दिये, तो भरद्वाज सुअवसर देखकर अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणी से अपना आशय प्रकट करने हेतु बड़ी विनम्रता से बोले। "हे नाथ! यद्यपि वेदों का तत्व सब आपकी मुट्ठी में है, मेरे मन में एक बड़ा सन्देह है। उस सन्देह को आपके सम्मुख कहने में मुझे डर और लज्जा लगती है। यदि इस सन्देह को आपके सम्मुख नहीं कहता हूं तो अपनी बड़ी भारी हानि करता हूं, क्योंकि अज्ञानी ही बना रहूंगा।

दो०—संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥४५॥

भावार्थ—हे प्रभो ! संतों ने ऐसी नीति कही है और वेद, पुराण, मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरू से छिपाने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

अस बिचारि प्रगटऊँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥
सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाई कृपानिधि मोही ॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥

भावार्थ—ऐसा विचार कर मैं अपना अज्ञान आपके सामने प्रकट करता हूं और साथ ही प्रार्थना करता हूं कि हे नाथ ! मुझ सेवक पर कृपा करके उस अज्ञान को हर लीजिए। संतों, पुराणों और उपनिषद ने श्री राम नाम के असीम प्रभाव का गान किया है। ज्ञान और गुणों की राशि भगवान शंकर, जो अविनाशी हैं, निरन्तर राम नाम का जप करते रहते हैं। और इसी के प्रभाव के प्रताप से संसार में चार प्रकार के जीव (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज) काशी में मरने से परम पद को प्राप्त करते हैं। हे मुनिराज ! काशी में शरीर त्याग कर परम पद प्राप्त होना वह भी राम (नाम) की ही महिमा है, क्योंकि शिव जी दया करके (काशी में मरने वाले जीव को) राम नाम का ही उपदेश देते हैं। इसी से उसको परमपद मिलता है। हे प्रभो ! मैं आपसे पूछता हूं कि वे कौन राम हैं ? हे कृपा निदान ! मुझे समझा कर कहिये। एकर ाम तो अवधनरेश दशरथ जी के कुमार हैं, उनका चरित्र सारा संसार जानता है। उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मार डाला।

टिप्पणी—दोहा ३४ के नीचे की चौपाई में (पृष्ठ ६९) तुलसीदास ने अपने महाकाव्य का नाम-करण किया। उसको उन्होंने 'रामचरित मानस' की संज्ञा दी है और उसके बाद उन्होंने एक बड़ा रूपक बांधा है, जिसमें मानस के सब लक्षण बताये हैं। दोहे ३६ (पृष्ठ ७०) में पहला लक्षण बताया है कि सरोवर में चारों ओर चार घाट होते हैं। "मानस" में जो चार संवाद हैं, वहीं मानों इसके चार घाट

हैं। पहला याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद है जो दोहे ४४ के नीचे की चौपाई (पृष्ठ ८३) से आरम्भ होता है। हर वर्ष माघ मास में ऋषि-मुनि त्रिवेणी स्नान के लिये प्रयाग आते थे और भरद्वाज के आश्रम में ब्रह्म-निरूपण और ज्ञान-वैराग्य के कथोपकथन के लिए एकत्रित होते थे और मकर-संक्रान्ति के बाद अपने-अपने आश्रमों को लौट जाते थे। एक बार जब मकर संक्रान्ति पर याज्ञवल्क्य भरद्वाज के आश्रम में विदा लेने आये, तो भरद्वाज ने आग्रह करके उन्हें अपनी कुछ शंका समाधान के लिये रोक लिया। उनको शंका थी—

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित संसारा॥

अर्थात, जिनका शिवजी निरन्तर जाप करते हैं, वह राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं, या कोई अन्य व्यक्ति हैं। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को समझाया कि ब्रह्मा ने रावण को वरदान दिया था कि नर और वानर को छोड़कर उसकी मृत्यु और किसी के हाथ से न होगी। ब्रह्मा से वर पाकर रावण को दम्भ हो गया। "जब देवता भी बल में उसके सामने तुच्छ थे, तो नर में इतरी शक्ति ही नहीं थी कि उसको मार सके"। इस प्रकार रावण अपने को अमर समझने लगा। वह मनुष्यों पर अत्याचार करने लगा, ऋषि-मुनियों को मारने लगा। उनके यज्ञ विध्वंस करने लगा। ब्रह्मा के रावण को दिये हुए वरदान को सत्य करने के लिये और रावण और समस्त राक्षस–जाति का संहार करने के लिये ब्रह्म ने नर का अवतार लिया। चाहे उसको "अनीह, अरूप, अनाम" ब्रह्म कहो, चाहे "अवधेश कुमार" राम कहो-दोनों एक हैं। एक भगवान का निर्गुण रूप है, दूसरा उसका सगुण। दोनों रूपों में शिव जी उसको राम-नाम से जपते हैं।

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥४६॥

भावार्थ—हे प्रभो! वहीं राम हैं (अर्थात् दशरथ-पुत्र राम) या कोई दूसरे राम हैं, जिनको श्री शिवजी जपते हैं? आप सत्य के धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, अतः आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप इसका स्पष्टीकरण अपने ज्ञान और विचार के आधार पर कीजिये।

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥

तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई ॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करसिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी ॥

भावार्थ—हे नाथ! जिस प्रकार से मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय आप वही कथा विस्तार पूर्वक कहिये।" याज्ञवल्क्य जी मुस्करा कर बोले "तुम्हें श्रीराम की प्रभुता का ज्ञान है। तुम मन, बचन और कर्म से श्रीरामभक्त हो। तुम्हारी प्रार्थना की युक्ति चतुरतापूर्ण है जिसे मैं जान गया हूँ। तुम श्रीराम के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो। इसी कारण तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानों बड़े ही मूढ़ हो। हे तात! तुम आदर सहित श्रीराम की कथा मन लगा कर सुनो। मैं अब उसी सुन्दर रामकथा को कहता हूं। रामकथा उस भयंकर अज्ञान रूपी महिषासुर का नाश करने को उससे भी भयंकर कालिका (दुर्गा) है जो उसका नाश अवश्य ही कर देती है। रामकथा चंद्रमा की किरणों के समान शीतलता एवं प्रकाश देने वाली है जिसे संत रूपी चकोर सदा पान करते हैं। जिस प्रकार का संशय तुमने किया है, ऐसा ही सन्देह पार्वती जी ने श्री महादेव जी से किया था और फिर महादेव जी ने उनको श्री रामकथा सुनने का अधिकारी समझकर उनसे विस्तार सहित श्री रामकथा को सुनाया था।

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥४७॥

भावार्थ—मैं अपनी मति के अनुसार वही उमा और शिव जी का संवाद कहता हूँ। उमा-शम्भू संवाद जिस कारण से और जिस समय हुआ। उसी को सुनने से आपका यदि कोई इस विषय में विषाद है तो वह स्वयं ही मिट जायेगा।

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी ॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी ॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई ॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥
तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुबंश लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंड कबन बिचरत अबिनासी ॥

भावार्थ—एक बार त्रेता युग में शिव अगस्त्य ऋषि के पास गये। उनके साथ जगज्जननी भवानी सती जी भी थीं। अगस्त्य ऋषि ने शिव जी को सम्पूर्ण जगत का ईश्वर जानकर उनका पूजन किया। मुनिश्वर अगस्त्य जी ने शिव को रामकथा सुनाई, जिसको शिव ने परम आनन्दित होकर सुना। अगस्त्य मुनि ने भी शिव जी से सुन्दर हरिभक्ति के विषय में पूछ लिया। अगस्त्य ऋषि को हरिभक्ति को जानने का वास्तविक अधिकारी समझकर, शिव ने हरि भक्ति को उसके रहस्य सहित अगस्त्य मुनि को पूर्ण निरूपण के साथ समझाई। श्री रघुनाथ जी के गुणों की कथायें कहते हुए एवं सुनते हुए कुछ दिनों तक शिव जी अगस्त्य मुनि जी के आश्रम में रहे। इस प्रकार सत्संग का पूर्ण लाभ उठाकर शिव जी महामुनि अगस्त्य से विदा मांगकर सती सहित अपने घर (कैलाश) को चले। उसी समय पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्री हरि ने रघुवंश में (श्री राजा दशरथ के यहाँ) अवतार लिया एवं अपने पिता राजा दशरथ के वचनों को पूरा करने हेतु अयोध्या के राज्य का त्याग कर तपस्वी अर्थात् साधुओं के वेष में दण्डक वन में बिचर रहे थे।

दो०—हृदयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोई॥ ४८(क)॥
दो०—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥ ४८(ख)॥

भावार्थ—अगस्त्य जी के आश्रम से लौटते समय शिव जी इस सोच में पड़ गये कि श्रीराम के किस प्रकार दर्शन हों। श्री राम ने गुप्त रूप से अवतार लिया है। वे कोई भी कार्य मानव आचरण से हटकर नहीं कर रहे हैं। अतः मेरे प्रकट रूप से उनके पास जाने मात्र से ही सब जान जायेंगे कि यह भगवान हैं, साधारण मानव नहीं। यह असमंजस उनके हृदय में है और दर्शनों की लालसा भी इष्ट देव के प्रति तीव्र है। श्री शिव के हृदय में इस परिस्थिति के कारण बड़ी बेचैनी हो रही थी क्योंकि वह अपने इष्ट श्रीराम के दर्शनों का कोई भी उपाय सोच नहीं पा रहे थे। और उनकी अर्धांगिनी सती जी उनके हृदय के उस भेद को नहीं जानती थीं।" तुलसीदास जी कहते हैं कि शिव के मन में अपने हृदय के भेद के खुल जाने का डर भी था, परन्तु श्रीराम के दर्शनों के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे।

रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥
जौं नहिं जाऊँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥

एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपटकुरंगा॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥

भावार्थ—रावन ने तपस्या करके ब्रह्मा जी से अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ से माँगी थी। क्योंकि नर में इतनी शक्ति ही नहीं थी कि जब देवता भी रावण के सामने बल में तुच्छ थे तो नर उसके सामने किस गिनती में था। इस प्रकार का वरदान श्री ब्रह्मा जी से प्राप्त कर रावण अपने को अमर समझने लगा था और अपनी सीमित बुद्धि और राक्षसी स्वभाव वश अत्याचार करने लगा था। इस लिये उसकी मृत्यु नर के हाथ से करने के हेतु श्री राम ने नर रूप धारण कर श्री ब्रह्मा के रावण को वरदान में दिये बचनों को सत्य करना चाहा और उसकी पूर्ति के लिये श्री राम अपनी लीला द्वारा उस अवसर को निकट लाने का प्रयास कर रहे थे। शिव जी विचार करते हैं कि इस परिस्थिति में मैं अपने इष्ट के दर्शनार्थ नहीं जाता हूं तो मुझे सदा पछतावा रहेगा कि मैं उनके इस रूप में दर्शन न कर सका। इस प्रकार शिव श्रीराम के दर्शनार्थ विचार कर रहे थे परन्तु कोई भी युक्ति ठीक नहीं बैठ रही थी कि किस प्रकार दण्डक वन जाकर अपनी परम इच्छा की पूर्ति कर सकें। इसी प्रकार महादेव जी अपनी दर्शनों की इच्छा पूर्ति के लिये चिन्ता के वश हो गये। उसी समय नीच रावण ने जाकर मारीच को साथ लिया और वह मारीच तुरंत कपट मृग बन गया। मूढ़ रावण ने छल करके सीताजी को हर लिया। उसे श्री रामचन्द्र जी के वास्तविक प्रभाव का कुछ भी पता न था। मृग को मारकर भाई सहित श्री हरि आश्रम में आये और उसे खाली देखकर (अर्थात् वहाँ सीता जी को न पाकर) उनके नेत्रों में आँसू भर आये। शिव जी ने देखा कि श्री रघुनाथ जी नर की भाँति विरह से व्याकुल हैं और दोनों भाई बन में सीता को खोजते हुए फिर रहे हैं। शिव जी यह भी देख रहे हैं कि जिस आदि पुरुष को कभी कोई भी संयोग-वियोग नहीं है, उनमें ही प्रत्यक्ष नारी विरह का दुःख दिखाई दे रहा हे।

टिप्पणी—दोहा २४ के नीचे की चौपाई की टिप्पणी (पृष्ठ ५५) में बताया गया है कि आजकल के चल-चित्रों में कहानी समापन से प्रारम्भ होती है और लेखक नायक या नायिका के मुख से समस्त बीती हुई घटनाओं का विवरण कराता

है। तुलसीदास ने इस flash-back की उल्टी विधा अपनायी है और बालकाण्ड में ही "मानस" की समस्त कथा से पाठकों को अवगत करा दिया है। अड़तालिसवें दोहे के ऊपर नीचे की चौपाइयों में आगे की घटनाओं का संक्षिप्त में संकेत है।

(१) त्रेता युग में शिव जी अगस्त ऋषि से समस्त राम कथा सुनकर लौट रहे थे, तब राम का जन्म (अवतार) हुआ।—**बालकाण्ड**

(२) पिता के बचन का पालन करने के लिये राम ने राजसिंहासन त्याग दिया।
—अयोध्या काण्ड

(३) जब राम दण्डक वन में विचर रहे थे, तब रावण मारीच को लेकर आया। मारीच ने मायावी हिरण का रूप धारण कर लिया। जब दोनों भाई सीता को खोजते हुए फिर रहे थे, तब शिव जी ने छिपकर राम के दर्शन किये। कुसमय जानकर अपना परिचय नहीं दिया।—**अरण्यकाण्ड**

(४) ब्रह्मा के बचन सत्य करने के लिये, राम ने नर का रूप धारण किया और रावण का बध किया। (देखिये ८५ पृष्ठ पर टिप्पणी)—**लंकाकाण्ड**

दो०—अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन ॥४९॥

भावार्थ—इसी से ज्ञात होता है कि श्री रघुनाथ जी का चरित्र बड़ा ही विचित्र है, उसको परम ज्ञानी जन ही जानते हैं और जो मन्द बुद्धि हैं, वे तो विशेष रूप से मोह के वश होकर अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ दूसरी ही बात समझ लेते हैं।

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥
जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥
सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

भावार्थ—श्री शिव ने उसी अवसर पर श्री राम जी को देखा और उनके हृदय में बहुत भारी आनन्द उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र (श्रीरामचन्द्र) जी को शिवजी ने नेत्र भर कर देखा, परन्तु अवसर ठीक न जानकर उनसे साक्षात्कार नहीं किया। और श्री शिव ने प्रार्थना की कि जगत के पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द की जय हो। इस प्रकार कह कर कामदेव का नाश करने वाले शिव जी चल पड़े। कृपा निधान श्री शिव जी बार-बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती जी के साथ चले जा रहे हैं। सती ने उनकी वह आनन्द से पुलकित दशा देखी तो उनके मन में बड़ा सन्देह उत्पन्न हो गया। वे मन ही मन कहने लगीं कि शिव जी को स्वयं सारा जगत वंदना करता है; वे जगत के ईश्वर हैं; देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके आगे शीश झुकाते हैं। ऐसे महिमावान शिव जी ने एक राजकुमार को (जो श्री शिव की तुलना में बहुत छोटा है) सच्चिदानन्द, परमधाम कह कर प्रणाम किया। उस राजकुमार की शोभा को देखकर जिसका तापस वेष है और पत्नी-विरह में वन में उसे खोज रहा है, श्री शिव इतने प्रेममग्न क्यों हो गये ? और अब तक उनके हृदय में श्री राम (जो राजकुमार हैं और नर समान आचरण करने के कारण शुद्ध रूप में नर ही ज्ञात हो रहे हैं) के प्रति जो प्रीति जागृत हो गयी है, वह रोकने से भी नहीं रुक पा रही है।

दो०—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥५०॥

भावार्थ—जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छा-रहित और भेदरहित है, जिसे पूर्ण रूप से वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है ?

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।

भावार्थ—जो देवताओं के लिये मनुष्य रूप धारण करने वाले श्री विष्णु भगवान हैं, वे भी श्री शिव के समान सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले) हैं। वे ही ज्ञान के भण्डार, लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु भगवान विष्णु अज्ञानी के समान स्त्री को खोज रहे हैं। शिव के वचन भी झूठे नहीं हो सकते। शिव जी सर्वज्ञ हैं, इसे सब कोई जानते हैं। इसी के कारण सती के मन में इस प्रकार का अपार संदेह उठ खड़ा हुआ, जो किसी प्रकार भी उनके हृदय में ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं होने देता था। यद्यपि भवानी (सती) ने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिव सब जान गये। उन्होंने कहा–हे सती सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। ऐसा संदेह मन में कभी नहीं रखना चाहिये। जिनकी कथा का अगस्त्य जी ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को सुनाई, ये वही मेरे इष्ट देव श्री रघुबीर जी हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं।

छं०—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोई राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

सो०—लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जान जियँ॥५१॥

भावार्थ—ज्ञानी, मुनि, योगी और सिद्ध निरंतर निर्मल चित्त से जिनका ध्यान करते हैं, तथा वेद, पुराण और शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र, ब्रह्मरूप श्री भगवान राम ने भक्तों के हित के लिये (अपनी इच्छा से) रघुकुल के मणि रूप में अवतार लिया है। यद्यपि शिव जी ने सती को बहुत बार समझाया फिर भी सती के हृदय में उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेव जी अपने मन में भगवान की माया का बल जानकर मुसकराते हुये बोले।

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाई परीक्षा लेहू॥
तव लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक विचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारू करौं का भाई॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥

भावार्थ—"जो तुम्हारे मन में बहुत संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं ? जब तक तुम मेरे पास लौट आओगी तब तक मैं इसी बट की छाँह में बैठा हूँ। जिस प्रकार तुम्हारा यह अज्ञान जनित भारी भ्रम दूर हो, भली भाँति बिवेक के द्वारा सोच समझ कर, तुम वही करना।" शिव जी की आज्ञा पाकर सती चलीं और मन में सोचने लगीं कि भाई क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ) ? इधर शिव जी ने मन में यह अनुमान किया कि दक्षकन्या सती का कल्याण नहीं है। जब मेरे समझाने से भी सन्देह दूर नहीं होता तो ज्ञात होता है कि विधाता ही उलटे हैं। अब सती की कुशल नहीं है। जो कुछ राम ने रचा रखा है, वही होगा। तर्क करके कौन शाखा (विस्तार) बढ़ावे। (मन में) ऐसा कहकर शिव जी भगवान श्री हरि का नाम जपने लगे और सती जी वहाँ गईं जहाँ सुख के धाम श्री रामचन्द्र जी थे।

लोकोक्ति—शिव जी के बार-बार समझाने पर भी सती को विश्वास नहीं हुआ कि जो राम दण्डक वन में सीता को ढूँढ़ते फिर रहे हैं, वह केवल नर-लीला कर रहे हैं और साक्षात् विष्णु के अवतार हैं, जिनका शिवजी निरन्तर ध्यान करते रहते हैं। राम की परीक्षा लेने के लिए सती ने स्वय सीता का रूप धारण कर लिया और राम की प्रतीक्षा करने लगीं। उनकी पत्नी उनके इष्टदेव की परीक्षा ले रही हैं, यह शिव जी के लिए असह्य था और वह भावी अनिष्ट की कल्पना करने लगे। उनके मुख से अनायास निकल पड़ा—

"होइहि सोई जो राम रचि राखा।"

यह पंक्ति जन मानस में समा गई है। जब किसी पर विपत्ति पड़ती है, तो वह इसी लोकोक्ति का सहारा लेता है। कुछ समालोचकों का कहना है कि इस लोकोक्ति ने हिन्दू समाज को अकर्मण्य बना दिया। ऐसी धारणा तुलसीदास जी के प्रति अन्याय है। कृष्ण भगवान ने गीता के दूसरे अध्याय में कहा है—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

अर्थात्, मनुष्य का कर्तव्य है कर्म करना, उसका क्या फल होगा, यह उसके हाथ की बात नहीं। मनुष्य नियति का दास और प्रकृति का अनुचर है। हिन्दू धर्म कर्म-सिद्धान्त पर आधारित है। न केवल पूर्व-जन्म के किए हुए कर्मों का फल मनुष्य को इस जन्म में भोगना पड़ता है, अपितु इस जन्म में किए हुए दुष्कर्मों का फल भी उसके सामने आ जाता है। इसे ही "प्रारब्धकर्म" कहते हैं। न कोई अजर है, न अमर। जो संसार में आया है, उसको उसके आयु-कर्म के पूरा होने पर जाना ही होगा।

यह नियति का नियम है। कोई दैविक शक्ति समस्त सृष्टि को चला रही है। सभी धर्म के मनीषियों ने इस सत्य को माना है। किसी उर्दू कवि ने कहा है:—

"मुद्दई लाख बुरा चाहे, तो क्या होता है।
वही होता है, जो मंजूर-ए-खुदा होता है ॥"

इसी आशय का भाव अंग्रेजी कवि शेक्सपियर ने अपने नाटक "हैमलेट" में इस प्रकार व्यक्त किया है:—

"There's a divinity that shapes our ends,
Rough-hew them how we will."

(अंक ५, दृश्य २)

ऊपर की पहली पंक्ति का अनुवाद तुलसीदास की लोकोक्ति ही है:

"होइहिं सोई जो राम रचि राखा।"

सती ने भगवान की परीक्षा लेनी चाही। इसका दण्ड उन्हें भोगना ही था।

दो०—पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥५२॥

भावार्थ—सती बार-बार मन में विचार कर सीता जी का रूप धारण करके उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं जिससे पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी आ रहे थे।

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी। बोले बिहसि रामु मृदु बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

भावार्थ—सती जी के बनावटी भेष को देखकर लक्ष्मण जी चकित हो गये और उनके हृदय में बड़ा भ्रम हो गया। वे बहुत गंभीर हो गये, कुछ कह नहीं सके। धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु रघुनाथ जी के प्रभाव को जानते थे। सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय की बात जानने वाले, देवताओं के स्वामी, श्री रामचन्द्र जी सती के कपट को जान गये। जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वही

सर्वज्ञ भगवान के सामने सती जी छिपाव करना चाहती हैं। अपनी माया के बल को हृदय में बखान कर, श्री रामचन्द्र जी हँस कर कोमल वाणी से बोले। पहले प्रभु ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और पिता सहित अपना नाम बताया। फिर कहा कि "वृषकेतु शिवजी कहाँ हैं ? आप यहाँ बन में अकेली किस लिये फिर रहीं हैं ?"

दो०—राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥५३॥

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी के कोमल और रहस्य भरे वचन सुनकर सती को बड़ा संकोच हुआ। वे डरती हुई शिव जी के पास चलीं, उनके हृदय में बड़ी चिन्ता हो गयी।

मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा ॥
जाना राम सतीं दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहि सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा। बिबिध बेष देखे सब देवा ॥

भावार्थ—सती अब विचार कर रही हैं कि मैंने शिव जी का कहना नहीं माना और अपने अज्ञान वश श्री रामचन्द्र जी पर आरोप किया। अब जाकर मैं शिव जी को क्या उत्तर दूंगी ? यों सोचते-सोचते, सती जी के हृदय में अत्यन्त भयानक ताप पैदा हो गया। श्रीरामचन्द्र जी ने जान लिया कि सती जी को दुःख हुआ। तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके उन्हें दिखलाया। सती जी ने मार्ग में जाते हुये यह कौतुक देखा कि श्री रामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं। तब उन्होंने पीछे की ओर देखा, तो वहाँ भी भाई लक्ष्मण और सीता जी के साथ श्रीरामचन्द्र जी सुन्दर वेष में दिखायी दिये। वे जिधर देखती हैं, उधर ही प्रभु श्री रामचन्द्र जी विराजमान हैं और चतुर सिद्ध और मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं। सती जी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे, जो एक से एक बढ़कर असीम प्रभाव वाले थे। उन्होंने देखा कि भाँति-भाँति के वेष धारण किये सभी देवता श्रीरामचन्द्र जी की चरण वन्दना और सेवा कर रहे हैं।

दो०—सती बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

भावार्थ—उन्होंने अनगिनत सती, ब्रह्माणि और लक्ष्मी देखीं। जिस-जिस रूप में ब्रह्मादि देवता थे, उसी के अनुकूल रूप में उनकी ये सब शक्तियाँ भी थीं।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहिं देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे ॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता ॥
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं ॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥

भावार्थ—सती जी ने जहाँ-जहाँ जितने रघुनाथ जी देखे, शक्तियों सहित वहाँ उतने ही सारे देवताओं को देखा। संसार में जो चराचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकार के सब देखे। सती ने देखा कि अनेकों वेष धारण करके देवता प्रभु श्री रामचन्द्र जी की पूजा कर रहे हैं। परन्तु श्री राम का दूसरा रूप कहीं नहीं देखा। सीता सहित श्री रघुनाथ जी बहुत से देखे, परन्तु उनके वेश अनेक नहीं थे। सती वही रघुनाथ, वही लक्ष्मण और वही सीता को देखकर बहुत ही डर गयीं। उनका हृदय काँपने लगा और देह की सारी सुध बुध जाती रही। वे आँख मूंद कर मार्ग में बैठ गईं। फिर जब सती ने आँख खोली तो वहाँ दक्षकुमारी (सती) को कुछ भी न दीख पड़ा। तब वे बार-बार श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवा कर वहाँ चलीं जहाँ शिव जी थे।

दो०—गईं समीप महेश तब हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात ॥५५॥

भावार्थ—जब सती शिव जी के पास पहुँची, तब उन्होंने हँस कर कुशल प्रश्न करके कहा कि तुमने किस प्रकार श्री राम की परीक्षा ली। सारी बात सच-सच कहो।

सतीं समुझि रघुबर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई ।।
तव संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना ।।
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ।।
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना ।।
सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा ।।
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती ।।

भावार्थ—सती ने श्रीरघुनाथ जी के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिव जी से छिपाव किया और कहा—"हे स्वामिन् ! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली। वहाँ जाकर आपकी ही तरह प्रणाम किया। आप ने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में यह पूरा विश्वास है।" तब शिव जी ने ध्यान करके देखा और सती ने जो चरित्र किया था सब जान लिया। फिर श्री रामचन्द्र जी की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुँह से झूठ कहला दिया। सुजान शिव जी ने मन में विचार किया कि हरि की इच्छा रूपी भावी प्रबल है। सती ने सीता का वेष धारण किया, यह जानकर शिव जी के हृदय में बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने यह विचार किया कि यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्ति मार्ग लुप्त हो जाता है। और बड़ा अन्याय होता है।

लोकोक्ति—इस चौपाई में भी एक लोकोक्ति है :—

"हरि इच्छा भावी बलवाना"

इस लोकोक्ति का आशय बहुत कुछ वह ही है जो ५१ दोहे के नीचे की लोकोक्ति में है :—

"होंइहि सोई जो राम रचि राखा"

इस लोकोक्ति की समीक्षा के लिए देखिए ऊपर पृष्ठ ९२-९३।

दो०—परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक संतापु ।।५६।।

भावार्थ—वैसे सती परम पवित्र हैं, इस लिये उन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करने में बड़ा पाप है। प्रकट रूप से महादेव जी कुछ भी नहीं कहते, परन्तु उनके हृदय में बड़ा सन्ताप है।

तब संकर प्रभु पद सिरू नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा ।।
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ।।

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा ॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥
जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥

भावार्थ—स्थिर-बुद्धि शंकर जी ऐसा विचार कर श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए अपने घर (कैलाश) को चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई कि हे महेश! आप की जय हो। आप ने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की। आपको छोड़-कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है? आप श्री रामचन्द्र जी के भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान है। इस आकाशवाणी को सुनकर सती जी के मन में चिन्ता हुई और उन्होंने सकुचाते हुये शिव जी से पूछा। "हे कृपालु कहिये, आपने कौन सी ऐसी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो आप सत्य के धाम और दीनदयालु हैं"। यद्यपि सती ने बहुत प्रकार से पूछा, परन्तु त्रिपुरारि शिव जी ने कुछ न कहा।

दो०—सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य ॥५७(क)॥

सो०—जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥५७(ख)॥

भावार्थ—सती ने हृदय में अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिव सब जान गये। मैंने शिव जी से कपट किया। स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती है। प्रीति की सुन्दर रीति देखिये कि जल भी (दूध के साथ मिलकर) दूध के समान भाव बिकता है, परन्तु फिर कपट रूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है, (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है।

हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित आइ नहिं बरनी ॥
कृपासिंधु सिब परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥
संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई ॥
सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुख हेतू ॥
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन । बैठे बट तर करि कमलासन ।।
संकर सहज सरूपु सम्हारा । लागि समाधि अखंड अपारा ।।

भावार्थ—अपनी करनी को याद करके सती के हृदय में इतना सोच है और इतनी अपार चिन्ता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । (उन्होंने समझ लिया कि) शिव जी कृपा के परम अथाह सागर हैं, इससे प्रकट में उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा । शिव जी का रुख देखकर सती ने जान लिया कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदय में व्याकुल हो उठीं । अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय (भीतर ही भीतर) कुम्हार के आवें के समान अत्यन्त जलने लगा । बृषकेतु शिव जी ने सती को चिन्ता युक्त जानकर उन्हें सुख देने के लिये सुन्दर कथायें कहीं । इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार के इतिहासों को कहते हुए विश्वनाथ कैलाश जा पहुँचे । वहाँ फिर शिव जी अपनी प्रतिज्ञा को याद करके वट-बृक्ष के नीचे पद्मासन लगा कर बैठ गये । शिव जी ने अपना स्वाभाविक रूप संभाला । उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गई ।

दो०—सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं ।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं ।।५८।।

भावार्थ—तब सती जी कैलाश पर रहने लगीं । उनके मन में बड़ा दुःख था । इस रहस्य को कोई कुछ भी नहीं जानता था । उनका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था ।

नित नव सोचु सती उर भारा । कब जैहउँ दुख सागर पारा ।।
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पति बचनु मृषा करि जाना ।।
सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ।।
अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही । संकर बिमुख जिआवसि मोही ।।
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी । मन महुँ रामहि सुमिर सयानी ।।
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा । आरति हरन बेद जसु गावा ।।
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी । छुटउ बेगि देह यह मोरी ।।
जौं मोरें सिव चरन सनेहू । मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू ।।

भावार्थ—सती के मन में नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दुख सागर के पार कब जाऊँगी । मैंने जो श्री रघुनाथ जी का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूठा जाना, उसका फल विधाता ने मुझको दिया । जो उचित था वही किया । परन्तु हे विधाता ! अब तुझे यह उचित नहीं है जो

शंकर से विमुख होने पर भी मुझे जिला रहा हो। सती के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सती जी ने मन में श्री रामचन्द्र जी का स्मरण किया और कहा—"हे प्रभो ! यदि आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदों ने आपका यह यश गाया है कि आप दुःख के हरने वाले हैं, तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी ही छूट जाय। यदि मेरा शिव जी के चरणों में प्रेम है और मेरा यह (प्रेम का) व्रत मन, वचन और कर्म (आचरण) से सत्य है।

दो०—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥५६॥

भावार्थ—तो हे सर्वदर्शी प्रभो ! सुनिये और शीघ्र वह उपाय कीजिये जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह (पति-परित्याग रूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाये।"

एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥
लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥
बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

भावार्थ—दक्ष सुता (सती) इस प्रकार बहुत दुःखी थी, उनको इतना दारूण दुख था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्तासी हजार वर्ष अतीत जाने पर अविनासी शिव जी ने समाधी खोली। शिव जी राम नाम का स्मरण करने लगे, तब सती जी ने जाना कि अब जगत के स्वामी (शिव जी) जागे। उन्होंने जाकर शिव जी के चरणों में प्रणाम किया। शिवजी ने उनको बैठने के लिये सामने आसन दिया। शिव जी भगवान हरि की रसमयी कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति हुये। ब्रह्मा जी ने सब प्रकार से योग्य देखकर एवं समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया। जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया तब उनके हृदय में बड़ा भारी (अत्यन्त) अभिमान आ गया। जगत में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हो।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई की अंतिम पंक्ति में तुलसीदास ने एक और लोकोक्ति का प्रतिपादन किया है। ब्रह्मा ने दक्ष को प्रजापतिओं का नायक बना दिया। इस अधिकार को पाकर दक्ष के हृदय में बड़ा अभिमान आ गया। यह स्वाभाविक था, क्योंकि—

"नहि कोउ अस जनमा जग माँहीं, प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।"

अर्थात् जगत में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ, जिसको प्रभुता पा कर मद न हो। इसी भाव को जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक "स्कंदगुप्त" में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है।"

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग॥६०॥

भावार्थ—दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदर सहित आमन्त्रित किया।

किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥
सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥
पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥
पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥

भावार्थ—दक्ष का निमंत्रण पाकर किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी पत्नियों सहित चले। विष्णु और ब्रह्मा (महादेव को छोड़कर) सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले। सती जी ने देखा अनेकों प्रकार के सुन्दर विमान आकाश में चले आ रहे हैं। देव सुन्दरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियों का ध्यान छूट जाता है। सती जी ने जब विमानों में देवताओं के जाने का कारण पूछा, तब शिव जी ने सब बातें बतलायीं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कि यदि महादेव जी

मुझे आज्ञा दें, तो इसी बहाने कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ। उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझ कर वे कुछ कहती न थी। आखिरकार सती भय, संकोच और प्रेम रस में सनी हुई मनोहर बाणी से बोलीं।

दो०—पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ ॥ ६० ॥

भावार्थ—"हे प्रभो ! मेरे पिता के घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपानिधान ! मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ।"

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं ॥
ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना ॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई ॥
भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा ॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ ॥

भावार्थ—शिव जी ने कहा—"तुमने बात तो अच्छी कही। वह मेरे मन को भी अच्छी लगी। पर उन्होंने न्योता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब पुत्रियों को बुलाया है। किन्तु हमारे बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया। एक बार ब्रह्मा जी की सभा में हमसे अप्रसन्न हो गए थे। उसी से वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी ! जो तुम बिना बुलाये जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरू के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये, तो भी जहाँ कोई विरोध मानता है, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता।" शिव जी ने बहुत प्रकार से समझाया, पर होनहार-वश सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। फिर शिव जी ने कहा कि बिना बुलाए जाओगी तो हमारी समझ में अच्छी बात न होगी।

अन्तर्कथा—दक्ष ने प्रजापतियों का नायक नियुक्त होने पर एक महायज्ञ का अनुष्ठान किया। सभी देवी-देवताओं को यज्ञ में आमन्त्रित किया, शिव और सती को छोड़कर। उनका शिव से पुराना बैर था। उस बैर की अन्तर्कथा इस प्रकार है :

ब्रह्मा ने जगत की सृष्टि करने की इच्छा से आधा पुरुष का और आधा नारी का शरीर ग्रहण किया और उसी नारी के गर्भ से विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई। विराट् पुरुष ने स्वायम्भुव मनु को जन्माया। स्वायम्भुव मनु ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया और ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए दक्ष को उत्पन्न किया। दक्ष ने योगमाया की आराधना करके यह वर पाया कि योगमाया उनकी कन्यारूप से उत्पन्न होकर महादेव की गृहिणी बनेंगी। इसी प्रकार बिना स्त्रीसंग के दक्ष प्रजापति सृष्टि करने लगे। परंतु दक्ष ने जितने पुत्र उत्पन्न किए वे सब नारद के कहने से पृथ्वी-परिक्रमा करने लगे। इस प्रकार प्रजा की वृद्धि रुक गई, तब दक्ष ने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से असिक्नी को ब्याहा। उसी के गर्भ से योगमाया उत्पन्न हुई, जिसका नाम सती था। दक्ष का सती से बड़ा स्नेह था। एक समय प्रजापतियों ने एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस यज्ञ में समस्त देवता उपस्थित थे। प्रजापति दक्ष जब इस यज्ञ में आए, तब सब देवता उनका सम्मान करने के लिए खड़े हुए परंतु महादेव बैठे ही रहे। इससे दक्ष अप्रसन्न हो गए। उन्होंने शिव की निन्दा की तथा शाप दिया कि शिव आज से देवताओं के साथ यज्ञभाग नहीं पा सकेगें। यह कहकर दक्ष यज्ञभूमि से उठकर चले गए। तभी से जामाता और श्वशुर में विद्वेष खड़ा हो गया।

थोड़े दिनों के बाद परमेष्ठी ब्रह्मा ने दक्ष को समस्त प्रजापतियों का अधिपति बनाया। इससे दक्ष के अभिमान की सीमा नहीं रही। उन्होंने बृहस्पति नामक एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ में सबको निमंत्रण दिया गया। परन्तु महादेव और सती को निमंत्रण नहीं दिया गया।

दो०—कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥६२॥

भावार्थ—शिव जी ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया, परन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि महादेव जी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको बिदा कर दिया।

पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी ॥
सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभुकर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥

पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा । जस यह भयउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति अवमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा ॥

भावार्थ—भवानी सती जब पिता (दक्ष) के घर पहुंची तब दक्ष के डर से किसी ने उनकी आवभगत नहीं की । केवल एक माता भले ही आदर से मिलीं । बहिनें बहुत मुसकराती हुई मिलीं । दक्ष ने तो उनकी कुशल तक न पूछी । सती जी को देखकर उल्टे उनके सारे अंग जल उठे । तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहां कहीं शिव जी का भाग दिखायी नहीं दिया । तब शिव जी ने जो कहा था वह उनकी समझ में आया । स्वामी का अपमान समझ कर सती का हृदय जल उठा । पिछला (पतिपरित्याग का) दुःख उनके हृदय में उतना नहीं आया था जितना महान् दुःख इस समय (पति अपमान के कारण) हुआ । यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारूण दुःख हैं, तथापि जाति-अपमान सब से बढ़ कर कठिन है । यह समझ कर सती जी को बड़ा क्रोध हो आया । माता ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया बुझाया ।

दो०—सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध ।
सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध ॥६३॥

भावार्थ परन्तु उनसे शिव जी का अपमान सहा नहीं गया, इससे उनके हृदय में कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ । तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोध भरे वचन बोलीं ।

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा । कही सुनी जिन्ह संकर निंदा ॥
सो फलु तुरत लहब सब काहूँ । भली भाँति पछिताब पिताहूँ ॥
संत संभु श्रीपति अपबादा । सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ॥
काटिअ तासु जीभ जो बसई । श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ॥
जगदातमा महेसु पुरारी । जगत जनक सब के हितकारी ॥
पिता मंदमति निंदत तेही । दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

भावार्थ—सती ने कहा "हे सभासदों और सब मुनीश्वरों ! सुनो जिन लोगों ने यहाँ शिव जी की निन्दा की या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरंत ही

मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भली भाँति पछतायेगें। जहाँ संत, शिव जी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान की निन्दा सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निन्दा करने वाले) की जीभ काट ले और नहीं तो कान मूँद कर वहाँ से भाग जाये। त्रिपुर दैत्य को मारने वाले भगवान शंकर सम्पूर्ण जगत की आत्मा हैं, वे जगत पिता और सबका हित करने वाले हैं। मेरा मन्दबुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है। और मेरा यह शरीर दक्ष के वीर्य से ही उत्पन्न हुआ है। इसलिए चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले वृषकेतु, शिव जी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरन्त ही त्याग दूँगी।" ऐसा कहकर सती जी ने योगाग्नि में अपना शरीर त्याग कर डाला। सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

टिप्पणी—पिता के हाथों पति का अपमान, सती के लिये असह्य हो गया। उन्होंने जोग अग्नि प्रज्वलित करने अपने को उसमें भस्म कर लिया। वैसे भी राम-परीक्षा के अपराध में शिव जी ने उनका त्याग कर दिया था। मरते समय उन्होंने भगवान से ये ही वर माँगा था कि उनका जन्म-जन्मान्तर शिव के चरणों में प्रेम रहे (देखिए नींचे की चौपाई)। अतएव उन्होंने मर के हिमालय पर्वत की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म लिया, जिनसे शिव जी का पुनर्विवाह हुआ।

सती के बाद, विधवा का पति के शव के साथ दाह संस्कार कर देना—यह प्रथा कब प्रचलित हुई ठीक पता नहीं। हाँ, महाभारत में माद्री का अपने मृत पति पाण्डु के साथ दाह संस्कार हुआ। इतना निश्चित है, कि ज़िन्दा विधवा को जला देने की रीति का नाम ही "सती" पड़ गया। इस कुरीति को भारत के वाइसराय लार्ड बेन्टिक ने सन् १८३६ ई० में बन्द किया।

दो०—सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

भावार्थ—सती का मरण सुनकर शिव जी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस देखकर मुनीश्वर भृगु जी ने उनकी रक्षा की।

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए॥
जग्य विधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥
भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥
सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥

तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥
जब तें उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम भूधर दीन्हे॥

भावार्थ—यह सब समाचार शिव जी को मिले, तब उन्होंने क्रोध करके बीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल दिया। दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई जो शिव द्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिये मैंने संक्षेप में वर्णन किया। सती ने मरते समय भगवान हरि से यह वर माँगा था कि मेरा जन्म-जन्म में शिव जी के चरणों में अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचल के घर जाकर पार्वती के शरीर में जन्म लिया। जब से सती हिमाचल के घर जन्मी तब से वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पन्तियाँ छा गईं। मुनियों ने जहाँ तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमाचल ने उनको उचित स्थान दिये।

अन्तर्कथा—सती के मरने का समाचार पाकर, शिव जी ने वीरभद्र को दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने के लिये भेजा। दक्ष-यज्ञ के विनाश की अन्तर्कथा इस प्रकार है :—

नारद से सती के देहत्याग की बात सुनकर शिव व्याकुल हो गए, और उन्होंने अपनी एक जटा काटकर उसी समय भूमि पर पटक दी। उस जटा से वीर-भद्र उत्पन्न हुआ। शिव के अनुचरों को लेकर वीरभद्र दक्षयज्ञ का विनाश करने के लिए चल पड़े। वीरभद्र ने भृगु की दाढ़ी उखाड़ ली। पूषा के दाँत तोड़ डाले, और दक्ष का सिर काटकर यज्ञाग्नि में भस्म कर डाला। यह सब हाल सुनकर ब्रह्मा देवों को साथ लेकर कैलास गए और उन्होंने स्तुतियों द्वारा महादेव को प्रसन्न कर दक्ष को जीवित करने का अनुरोध किया। महादेव ने कहा, दक्ष का मस्तक जल गया है। अतएव अब बकरे का मस्तक ही दक्ष का मस्तक बने। ब्रह्मा ने वैसा ही किया। दक्ष जी उठे। उन्होंने यज्ञ समाप्त करके अनेकविध स्तुति करके महादेव को प्रसन्न किया।

दो०—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥६५॥

भावार्थ—उस सुन्दर पर्वत पर बहुत प्रकार के सब नये-नये वृक्ष सदा पुष्प फल युक्त हो गये और वहाँ बहुत तरह की मणियों की खाने प्रकट हो गईं।

सरिता सब पुनीत जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥

सोह सैल गिरिजा गृह आएँ। जिमि जनु रामभगति के पाएँ ॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥
नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा ॥
नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥

भावार्थ—सारी नदियों में पवित्र जल बहता है और पक्षी, पशु, भ्रमर सभी सुखी रहते हैं। सब जीवों ने अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया, और पर्वत पर सभी परस्पर प्रेम करते हैं। पार्वती जी के घर आ जाने से पर्वत ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसा रामभक्ति को पाकर भक्त शोभायमान होता है। उस (पर्वतराज) के घर नित्य नये-नये मंगलोत्सव होते हैं, जिसका ब्रह्मादि यश गाते हैं। जब नारद जी ने सब समाचार सुने तो वे कौतुक ही से हिमाचल के घर पधारे। पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर उनको उत्तम आसन दिया। फिर अपनी स्त्री सहित मुनि के चरणों में सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर में छिड़कवाया। हिमाचल ने अपने सौभाग्य का बहुत बखान किया और पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणों पर डाल दिया।

दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि ॥६६॥

भावार्थ—(और कहा) हे मुनिश्वर! आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, आप की सर्वत्र पहुँच है। अतः आप हृदय में विचार कर कन्या के दोष-गुण कहिये।

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी ॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी ॥
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी ॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता ॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं ॥
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रियचढ़िहहिंपतिब्रतअसिधारा ॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना ॥

भावार्थ—नारद मुनि ने हंसकर रहस्ययुक्त वाणी से कहा—"तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह स्वभाव से ही सुन्दर, सुशील और समझदार है।

उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं। कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है। यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इसके माता-पिता यश पायेंगे। यह सारे जगत में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसार में स्त्रियाँ इसका नाम स्मरण करके पतिव्रत रूपी तलवार की धार पर चढ़ जायेंगी। हे पर्वतराज ! तुम्हारी कन्या सुलच्छनी है। अब इसमें जो दो-चार अवगुण हैं, उन्हें भी तुम सुन लो। गुणहीन, मानहीन, माता-पिता विहीन, उदासीन, संशयहीन (लापरवाह)।

दो०—जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख ॥६७॥

भावार्थ—योगी, जटाधारी, निष्काम हृदय, नंगा और अमंगल वेष वाला—ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है।

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी ॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना ॥
सकल सखीं गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना ॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा ॥
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू ॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछँग बैठी पुनि जाई ॥
झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहिं दंपति सखीं सयानी ॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ ॥

भावार्थ—(नारद) मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय में सत्य जानकर पति-पत्नी (हिमवान् और मैना) को दुःख हुआ और पार्वती जी प्रसन्न हुईं। नारद जी ने भी इस रहस्य को नहीं जाना, क्योंकि सबकी दशा एक सी होने पर भी समझ भिन्न-भिन्न थी। सारी सखियाँ, पार्वती, पर्वत राज हिमवान् और मैना सभी के शरीर पुलकित थे, और सभी के नेत्रों में जल भरा था। देवर्षि के वचन कभी असत्य नहीं हो सकते, (यह विचार कर) पार्वती ने उन वचनों को हृदय में धारण कर लिया। इससे उन्हें शिव जी के चरण कमलों में स्नेह हो आया, परन्तु मन में यह संदेह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। अवसर ठीक न जानकर उमा ने अपने प्रेम को छिपा लिया और वे सखी की गोद में जाकर बैठ गईं। देवर्षि की वाणी झूठी न होगी (यह विचार कर) हिमवान्, मैना और सारी चतुर सखियाँ चिन्ता करने लगीं। फिर हृदय में धीरज धर कर पर्वत-राज ने कहा "हे नाथ ! कहिए अब कौन उपाय किया जाए।"

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥ ६८॥

भावार्थ—मुनिश्वर ने कहा "हे हिमवान्! सुनो, विधाता ने ललाट पर जो लिख दिया है उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते।

लोकोक्ति—ऊपर पृष्ठ ६२ और ६६ पर उल्लेख किया गया कि तुलसीदास को प्रारब्ध-कर्म और भाग्य पर अटल विश्वास था। इस विश्वास की पुष्टि में उन्होंने दो लोकोक्ति कहीं, जिनका ऊपर विवेचन किया जा चुका है। श्रृंखला में ऊपर के दोहे में तुलसीदास कहते हैं :

"......................जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर-नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥"

अर्थात्, ललाट पर विधि ने जो भाग्य रेखा लिख दी है उसे देवता, दानव, नाग, मुनि और साधारण नर कोई भी नहीं मिटा सकता। इसके पहले दोहे ६७ में पार्वती की हस्त-रेखा देख कर नारद ने भविष्य वाणी की कि पार्वती को ऐसा पति मिलेगा जो "जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष" होगा। यह सुनकर पार्वती के माता-पिता ने ऐसे दामाद से बचने के लिये कोई उपाए पूछा। नारद ने उन्हें सान्तवना देते हुए उपरोद्धत लोकोक्ति कही।

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥
जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥
जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

भावार्थ—तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह (कार्य सिद्ध) हो सकता है। उमा को बर तो निःसन्देह वैसा ही मिलेगा जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है। परन्तु मैंने वर के जो-जो दोष बतलायें हैं, मेरे अनुमान से वे सभी शिव जी में हैं। यदि शिव जी के साथ विवाह हो जाय तो दोषों को भी सब लोग गुणों के समान ही कहेंगे। जैसे विष्णु भगवान शेषनाग

की शैया पर सोते हैं तो भी पंडित लोग उनको कोई दोष नहीं लगाते। सूर्य और अग्नि देव अच्छे बुरे सभी रसों का भक्षण करते हैं, परन्तु उनको कोई बुरा नहीं कहता। गंगा जी में शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर उन्हें कोई अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और गंगा जी की भाँति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई की अंतिम पंक्ति में एक और लोकोक्ति है :

"समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।"

अर्थात्, जो मनुष्य समर्थ, शक्तिशाली और बलवान होता है, लोग केवल उसके गुणों की चर्चा करते हैं और उसके दोषों पर पर्दा डालते हैं। उदाहरणार्थ, तुलसीदास जी कहते हैं विष्णु शेष-नाग पर सोते हैं, सूर्य और अग्नि में सबको भस्म करने की शक्ति है, गंगा में मैला और शुद्ध जल दोनों मिलते हैं-फिर भी इन सब दोषों की ओर ध्यान न देकर लोग विष्णु, सूर्य, अग्नि और गंगा को पूजते हैं। इसी प्रकार नारद हिमालय और मैना को समझाते हैं कि शिव के अमंगल वेष पर न जाएँ और उनके अनेक गुणों को देखकर उन्हें सहर्ष अपना दामाद स्वीकार करें।

तुलसीदास दिव्य दृष्टा थे। वह जानते थे कि आगे चलकर कलियुग में लोग इस लोकोक्ति का दुरुपयोग करेगें। इसीलिए अगले दोहे ६६ में उन्होंने चेतावनी दे दी "जीव कि ईस समान ?" साधारण मनुष्य ईश्वर के समान नहीं हो सकता। खेद है कि आजकल के चाटुकार सत्ताधारी नेताओं और वरिष्ठ सरकारी पदाधिकारियों के भ्रष्टाचार और अत्याचार पर निरन्तर पर्दा डालते रहते हैं।

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर जड़ बिबेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान॥ ६६॥

भावार्थ—यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञान के अभिमान से ऐसी बराबरी करते हैं तो वे कल्पभर के लिए नरक में पड़ते हैं। भला, कहीं जीव भी ईश्वर के समान (सर्वथा स्वतन्त्र) हो सकता है।

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अंतरु तैसें॥
संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥

बर दायक प्रनतारति भंजन । कृपासिंधु सेवक मन रंजन ।।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें । लहिअ न कोटि जोग जप साधें ।।

भावार्थ—गंगाजल से भी बनायी हुई मदिरा को जानकर संत लोग कभी उसका पान नहीं करते। परन्तु वही गंगा जी में मिल जाने पर जैसे पवित्र हो जाती है, ईश्वर और जीव में भी भेद है। शिवजी सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान हैं। इस लिए इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है। परन्तु महादेव जी की आराधना बड़ी ही कठिन है, फिर भी क्लेश (तप) करने से वे बहुत जल्द संतुष्ट हो जाते हैं। यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि (महादेव जी) होनहार को भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में वर अनेक हैं, पर इनके लिये शिव जी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है। शिव जी वर देने वाले, शरणागतों के दुःखों का नाश करने वाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन को प्रसन्न करने वाले हैं। शिव जी की आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वान्छित फल नहीं मिलता।"

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ।। ७० ।।

भावार्थ—ऐसा कहकर भगवान् का स्मरण करके नारद जी ने पार्वती को आशीर्वाद दिया और कहा कि "हे पर्वतराज ! तुम सन्देह का त्याग कर दो, अब इसमें कल्याण ही होगा।"

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ।।
पतिहि एकांत पाइ कह मैना । नाथ न मैं समुझे मुनि बैना ।।
जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा । करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ।।
न त कन्या बरु रहउ कुआरी । कंत उमा मम प्रानपिआरी ।।
जौं न मिलिह बरु गिरिजहि जोगू । गिरि जड़ सहज कहिहि सबु लोगू ।।
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू । जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ।।
अस कहि परी चरन धरि सीसा । बोले सहित सनेह गिरीसा ।।
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं । नारद बचनु अन्यथा नाहीं ।।

भावार्थ—यों कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गये। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त में पाकर मैना ने कहा—"हे नाथ मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नहीं समझा। जो हमारी कन्या के अनुकूल घर, बर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिए। नहीं तो कन्या चाहे कुमारी ही रहे। क्योंकि

हे स्वामिन् ! पार्वती मुझको प्राणों समान प्यारी है। यदि पार्वती के योग्य वर न मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड़ (मूर्ख) होते हैं। हे स्वामी इस बात को विचार कर ही विवाह कीजियेगा, जिससे फिर पीछे हृदय में संताप न हो।" इस प्रकार कहकर मैंना पति के चरणों में मस्तक रखकर गिर पड़ी। तब हिमवान् ने प्रेम से कहा-"चाहे चन्द्रमा में अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारद जी के वचन झूठे नहीं हो सकते।

दो०—प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं सोइ करिहि कल्यान ॥ ७१ ॥

भावार्थ—हे प्रिये ! सब सोच छोड़कर श्री भगवान का स्मरण करो। जिन्होंने पार्वती को रचा है, वे ही कल्याण करेगें।

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू ॥
नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सब गुन निधि बृषकेतू ॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका ॥
सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी ॥
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी ॥

भावार्थ—यदि अब तुम्हें कन्या पर प्रेम है, तो उसे जाकर यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे जिससे शिवजी मिल जायें। दूसरे उपाय से यह क्लेश नहीं मिटेगा। नारद जी के वचन रहस्य से युक्त और सकारण है, और शिवजी समस्त गुणों के भण्डार हैं। यह विचारकर तुम (मिथ्या) संदेह को छोड़ दो। शिव जी सभी तरह निष्कलंक हैं।" पति के वचन सुन, मन में प्रसन्न होकर, मैना तुरंत उठकर पार्वती के पास गई। पार्वती को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आये। उसे स्नेह के साथ गोद में बैठा लिया। फिर बार-बार उसे हृदय में लगाने लगीं। प्रेम से मैना का गला भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगजननी भवानी जी तो सर्वज्ञ हैं। (माता के मन की दशा को देखकर) वे माता को सुख देने वाली कोमल वाणी से बोलीं।

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि ॥७२॥

भावार्थ—"माँ ! सुन, मैं तुझे सुनाती हूँ, मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि मुझे एक सुन्दर गौरवर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मण ने उपदेश दिया है।

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी ।।
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ।।
तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता ।।
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी।।
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ।।
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चली उमा तप हित हरषाई ।।
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता ।।

भावार्थ—'हे पार्वती ! नारद जी ने जो कहा है उसे सत्य समझकर तू जा कर तप कर। फिर यह बात तेरे माता-पिता को भी अच्छी लगी है। तप सुख देने वाला और दुःख दोष का नाश करने वाला है। तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत का पालन करते हैं। तप के बल से ही शम्भु (रुद्र रूप से) जगत का संहार करते हैं और तप के बल से ही शेष जी पृथ्वी का भार धारण करते हैं। हे भवानी ! सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है। ऐसा जी में जानकर तू जाकर तपकर'। यह बात सुनकर माता को बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया। माता-पिता को बहुत तरह से समझा कर बड़े हर्ष के साथ पार्वती जी तप करने चलीं। प्यारे कुटुम्बी, माता और पिता सब व्याकुल हो गये। किसी के मुँह से बात नहीं निकलती।

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ ।।७३।।

भावार्थ—तब वेदशिरा मुनि ने आकर सबको समझा कर कहा। पार्वती जी की महिमा सुनकर सब को समाधान हो गया।

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना ।।
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ।।
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा ।।
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए ।।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा । किए कठिन कछु दिन उपबासा ॥
बेल पाती महि परइ सुखाई । तीनि सहस सबत सोइ खाई ॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तब भयउ अपरना ॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा । ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा ॥

भावार्थ—प्राणपति (शिवजी) के चरणों को हृदय में धारण करके पार्वती जी बन में जाकर तप करने लगीं । पार्वती जी का अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नहीं था, तो भी पति के चरणों का स्मरण करके उन्होंने ने सब भोगों को तज दिया । स्वामी जी के चरणों में नित्य नया अनुराग होने लगा और तप में ऐसा मन लगा कि शरीर की सारी सुधि बिसर गई । एक हज़ार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाये, फिर सौ वर्ष साग खाकर बिताये । कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और कुछ दिन कठोर उपवास किये । जो पत्न केवल सूख कर पृथ्वी पर गिरते थे, तीन हज़ार वर्ष तक उन्हीं को खाया फिर पर्ण (पत्ते) भी छोड़ दिये, तभी पार्वती का नाम "अपर्णा" हुआ, अर्थात जो बिना पत्ते खाये जीवित रहती हैं । तप से उमा के क्षीण शरीर को देखकर, आकाश से गम्भीर ब्रह्म वाणी हुई ।

दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि ।
परिहरु दुसइ कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥७४॥

भावार्थ—"हे पर्वतराज की कुमारी ! सुन तेरा मनोरथ सफल हुआ । तू अब सारे असह्य क्लेशों को (कठिन तप को) त्याग दे । अब तुझे शिव जी मिलेंगे ।

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी । भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी । सत्य सदा संतत सुचि जानी ॥
आवै पिता बोलावन जबहीं । हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा । जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥
जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥

भावार्थ—हे भवानी ! धीर मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसी ने नहीं किया । अब तुम इस श्रेष्ठ ब्रह्म वाणी को सदा सत्य और निरन्तर पवित्र जानकर अपने हृदय में धारण करो । जब तुम्हारे पिता तुम्हें

बुलाने आवें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और जब तुम्हें सप्तर्षि मिलें तब इस वाणी को ठीक समझना।" (इस प्रकार) आकाश से कही हुई ब्रह्मवाणी को सुनते ही पार्वती जी प्रसन्न हो गईं और (हर्ष के कारण) उनका शरीर पुलकित हो गया। (याज्ञवल्क्य जी भारद्वाज जी से बोले कि) मैंने पार्वती का सुन्दर चरित्र सुनाया, अब शिव जी का सुहावना चरित्र सुनो।

जब से सती ने आकर शरीर त्याग किया, तब से शिव जी के मन में वैराग्य हो गया। वे सदा रघुनाथ जी का नाम जपने लगे और जहाँ तहाँ श्री रघुनाथ जी के गुणों की कथाएँ सुनने लगे।

दो०—चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम ॥७५॥

भावार्थ—चिदानन्द, सुख के धाम, मोह, मद और काम से रहित शिव जी सम्पूर्ण लोकों को आनन्द देने वाले भगवान (श्रीरामचन्द्र जी) को हृदय में धारण कर (भगवान के ध्यान में मस्त हुए) पृथ्वी पर विचरने लगे।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुखित सुजाना ॥
एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती ॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा ॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला ॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ॥
बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा ॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥

भावार्थ—वे कहीं मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते और कहीं श्री रामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करते थे। यद्यपि सुजानु शिव जी निष्काम हैं, तो भी वे भगवान अपने भक्त (सती) के वियोग के दुःख से दुखी हैं। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। रामचन्द्र जी के चरणों में नित नयी प्रीति हो रही है। शिव जी के (कठोर) नियम, (अनन्य) प्रेम और उनके हृदय में भक्ति की अटल टेक को (जब श्री रामचन्द्र जी ने) देखा, तब कृतज्ञ (उपकार मानने वाले), कृपालु, रूप और शील के भण्डार महान् तेजपुन्ज भगवान् श्री रामचन्द्र जी प्रकट हुए। उन्होंने बहुत तरह से शिव जी की सराहना की और कहा कि आप के बिना ऐसा (कठिन) व्रत कौन निबाह सकता है। श्रीरामचन्द्र जी ने बहुत प्रकार से

शिव जी को समझाया और पार्वती का जन्म सुनाया । कृपा के भण्डार श्रीरामचन्द्र जी ने विस्तार पूर्वक पार्वती जी की अत्यन्त पवित्र करनी का वर्णन किया ।

दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु ।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु ॥ ७६ ॥

भावार्थ—(फिर उन्होंने शिव जी से कहा)—"हे शिव जी ! यदि मुझ पर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी बिनती सुनिये । मुझे यह माँगा वर दीजिए कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह कर लें ।"

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं । नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरमु यह नाथ हमारा ॥
मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी । बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी । अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना । भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ । अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥
अंतरधान भए अस भाषी । संकर सोइ मूरति उर राखी ॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए । बोले प्रभु अति बचन सुनाए ॥

भावार्थ—शिव जी ने कहा—"यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामी की बात तो मेटी नहीं जा सकती । हे नाथ ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिरपर रखकर उसका पालन करूँ । माता, पिता, गुरू और स्वामी की बात को बिना ही बिचारे शुभ समझ कर करना (मानना) चाहिए । आप तो सब प्रकार से मेरे हितकारी हैं । हे नाथ ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है ।" शिव जी की भक्ति, ज्ञान और धर्म से युक्त वचन-रचना सुनकर प्रभु रामचन्द्र जी सन्तुष्ट हो गये । प्रभु ने कहा—"हे हर ! आपकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई । अब हमने जो कहा है, उसे हृदय में रखना ।" इस प्रकार कहकर श्रीरामचन्द्र जी अन्तर्धान हो गये । शिव जी ने उनकी वह मूर्ति अपने हृदय में रख ली । उसी समय सप्तर्षि शिव जी के पास आये । प्रभु महादेव जी ने उनसे अत्यन्त सुहावने वचन कहे ।

दो०—पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ॥ ७७ ॥

भावार्थ—"आप लोग पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लीजिए और हिमाचल को कह कर (उन्हें पार्वती को लिवा लाने के लिये भेजिए तथा) पार्वती को घर भिजवाइये और उनके संदेह को दूर कीजिये ।"

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंद तपस्या जैसी।।
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी।।
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू।।
कहत बचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई।।
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा।।
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना।।
देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा।।

भावार्थ—ऋषियों ने (वहाँ जाकर) पार्वती को कैसी देखा मानों मूर्तिमान तपस्या ही हो। मुनि बोले—"हे शैलकुमारी! किस लिये इतना कठोर तप कर रही हो। तुम किसकी अराधना करती हो और क्या चाहती हो? हमसे अपना सच्चा भेद क्यों नहीं कहतीं?" (पार्वती ने कहा) "बात कहते मन बहुत सकुचाता है। आप लोग मेरी मूर्खता सुनकर हंसेगे। मन ने हठ पकड़ ली है, वह उपदेश नहीं सुनता और जल पर दीवाल उठाना चाहता है। नारद जी ने जो कह दिया उसे सत्य जानकर मैं बिना ही पंख के उड़ना चाहती हूँ। हे मुनियों! आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि मैं सदा शिव जी को ही पति बनाना चाहती हूँ।"

टिप्पणी—समस्त मानस में यह ऊपर की चौपाई एक अपवाद के रूप में विद्यमान है। इसमें केवल सात पंक्तियाँ हैं। चौपाई "चतुष्पदी" का विकृत रूप है। चौपाई में चार पद होना आवश्यक है। एक पंक्ति में दो पद होते हैं। अतएव दो पंक्तियों में एक चौपाई सम्पूर्ण होती है। हर दोहे के ऊपर जो चौपाइयाँ हैं, उनमें सम पंक्तियाँ होना आवश्यक है। पृष्ठ १० पर स्पष्ट कर दिया गया है कि जहाँ चौपाइयों की पंक्तियाँ विषम हैं, वहाँ टिप्पणी में इस अतिक्रम का संकेत कर दिया गया है। बाल काण्ड में कई चौपाइयाँ हैं जिनमें ९, ११, १३ या १५ पंक्ति हैं। परन्तु ऊपर की चौपाई समस्त "मानस" में अकेली ७ पंक्तियों की है। इस आर्षप्रयोग का एक ही कारण हो सकता है। चौपाइयों की शृंखला के बाद एक दोहा आता है। दोनों को मिलाकर तुलसीदास का एक भाव या विचार सम्पूर्ण हो जाता है। दोहा ७७ में शिव जी ने सप्तर्षि को आदेश दिया कि वह जाकर पार्वती के प्रेम की परीक्षा लें। अतएव ऋषियों ने जाकर पार्वती से पूछा कि वह किस की आराधना कर रही हैं और किस कारण इतना घोर तप कर रहीं हैं। पार्वती ने उत्तर दिया—"वह पानी पर दिवार बनाना चाह रही हैं; नारद के बचन सत्य करना चाह रही हैं; शिव जी को पति के रूप में पाना चाह रही हैं।

सात ही पंक्तियों में यह भावपूर्ण हो गया और उसके बाद के दोहा ७८

में ऋषि पार्वती की तपस्या भंग करने के आदेश से उन्हें चेतावनी देते हैं कि नारद के वचन मानने से किसी का घर नहीं बसा, अर्थात् किसी का कल्याण नहीं हुआ। और अगली आठ पंक्तियों में नारद के वचन मानने वालों का किस प्रकार नाश हुआ—उसके उदाहरण दिए गए हैं।

दो०—सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह ॥ ७८ ॥

भावार्थ—पार्वती की बात को सुनते ही सप्तर्षि हंस पड़े और बोले—तुम्हारा शरीर पर्वत से ही तो बना हुआ है! भला, कहो तो नारद का उपदेश सुनकर आजतक किसका घर बसा है।

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई ॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥
नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। असि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥
तेहि कें बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली ॥
कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ ॥
पंच कहें सिवँ सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही ॥

भावार्थ—उन्होंने जाकर दक्ष के पुत्रों को उपदेश दिया था, जिससे उन्होंने फिर लौटकर घर का मुंह ही नहीं देखा। चित्रकेतु के घर को नारद ने ही चौपट किया। फिर यही हाल हिरण्कशिपु का हुआ। जो स्त्री-पुरुष नारद की सीख सुनते हैं, वे घर बार छोड़कर अवश्य ही भिखारी हो जाते हैं। उनका मन तो कपटी है, शरीर पर सज्जनों के चिन्ह हैं। वे सभी को अपने समान बनाना चाहते हैं। उनके वचनों पर विश्वास मानकर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेष वाला, नर-कपालों की माला पहनने वाला कुलहीन, बिना घर-बार का, नंगा और शरीर पर सांपों को लपेटे रहने वाला है। ऐसे वर के मिलने से कहो, तुम्हें क्या सुख होगा? तुम उस ठग (नारद) के बहकावे में आकर खूब भूलीं। पहले पंचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया था, परन्तु फिर उसे त्याग कर मरवा दिया।

अन्तर्कथाएँ—शिव जी ने सप्तर्षियों को पार्वती की परीक्षा लेने भेजा। नारद के कहने से पार्वती शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या

कर रहीं थी। दोहा ७८ में कहा गया है कि तपस्या भंग कराने के लिए ऋषि पार्वती को समझाने लगे कि जिसने नारद की बात मानीं उसका सर्वथा अनिष्ट हुआ। दोहे के नीचे की चौपाई की पहली दो पंक्तियों में ऋषियों ने अपने कथन के समर्थन में तीन व्यक्तियों के दृष्टान्त दिये। अन्तर्कथाएँ इस प्रकार हैं:—

(१) दक्षपुत्र—देखिये ऊपर पृष्ठ १०२।

(२) चित्रकेतु—पुराणों में उल्लिखित एक राजा। उसकी अनेक पत्नियाँ थीं। नारद तथा अंगिरा द्वारा यज्ञ संपन्न करने के कारण उसको कृतद्वृती नामक स्त्री से एक पुत्र प्राप्त हुआ। अन्य रानियों ने उसे विष दे डाला। नारद ने चित्रकेतु को एक मंत्र दिया था, जिसके प्रभाव से उसने सात दिन में ही अप्रतिहत गति प्राप्त की थी और सर्वत्र उसकी अबाधगति हो गयी थी। एक बार विमान पर बैठकर वह शिव जी के पास कैलास पर पहुँचा और पार्वती को अपनी जांघ पर बैठाए देखकर वह उन्हें उपदेश देने लगा। शंकर उसके उपदेश पर मुस्कराने लगे। किन्तु पार्वती ने उसे अगले जन्म में राक्षस होने का शाप दे डाला, जिसके फलस्वरूप वह वृत्रासुर बना।

(३) हिरण्यकशिपु—यह असुर था। इसके पिता का नाम कश्यप और माता का नाम दिति था। तपोबल द्वारा वर लाभ करके, वह स्वर्ग का अधीश्वर हो गया था और इसने देवताओं को निकाल बाहर किया था। त्रैलोक्य-विजयी होकर इसे बड़ा अभिमान उत्पन्न हुआ। नारद के उपदेश से हिरण्य-कशिपु की पत्नी कयाधु गर्भवती हुई। वह तो कुछ न ससझी पर गर्भ का बालक प्रह्लाद पर उनका प्रभाव पड़ा जो अपने बंश के प्रतिकूल भगवान का भक्त बना। शेष कथा के लिए, देखिए ऊपर पृष्ठ ५७।

दो०—अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥७९॥

भावार्थ—अब शिव को कोई चिन्ता नहीं रही, भीख मांगकर खा लेते हैं। और सुख से सो लेते हैं। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वालों के घर में भला, या कभी स्त्रियाँ टिक सकती हैं।

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥
अति सुंदर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला ॥
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी ॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी ॥

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूटै बरु देहा ।।
कनकउ पुनि पषान तें होई । जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ।।
नारद बचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ।।
गुर कें बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ।।

भावार्थ—सप्तर्षियों ने बड़ी सहानुभूति दिखाते हुए फिर कहा कि अब भी हमारा कहना मानो, हमने तुम्हारे लिये अच्छा वर विचारा है। वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है, जिसका यश और लीला वेद गाते हैं। वह दोषों से रहित, सारे सद्गुणों की राशि, लक्ष्मी का स्वामी और बैकुण्ठपुरी का रहने वाला है। हम ऐसे वर को लाकर तुम से मिला देंगे। यह सुनते ही पार्वती जी हँस कर बोलीं। "आप ने यह सत्य ही कहा है कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है। इसलिये हठ नहीं छूटेगी, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है। सो वह जलाये जाने पर भी अपने स्वभाव (स्वर्णत्व) को नहीं छोड़ता। अत: मैं नारद जी के वचनों को नहीं छोड़ूंगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरू के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।

दो०—महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ।।८०।।

भावार्थ—माना की महादेव जी अवगुणों के भवन हैं और विष्णु समस्त गुणों के धाम हैं, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है।

लोकोक्ति—ऊपर के दोहे की दूसरी पंक्ति में एक लोकोक्ति है :—

"जहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम।"

जब एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से प्रेम हो जाता है, तो उसको उसमें गुण ही गुण दिखते हैं और उसके दोषों पर दृष्टि नहीं जाती। कहते हैं लैला काली थी, परन्तु मजनूँ की दृष्टि में वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा थी।

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ।।
अब मैं जन्मु संभु हित हारा । को गुन दूषन करै बिचारा ।।
जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ।।
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । वर कन्या अनेक जग माहीं ।।
जन्म कोटि लगि रगर हमारी । बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ।।

तजउँ न नारद कर उपदेसू । आपु कहहिं सत बार महेसू ।।
मैं पा परउँ कहइ जगदंबा । तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ।।
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदबिके भवानी ।।

भावार्थ—हे मुनीश्वरों ! यदि आप पहले मिलते, तो मैं आपका उपदेश सिर माथे रखकर सुनती । परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिये हार चुकी । फिर गुण-दोषों को विचार कौन करे । यदि आपके हृदय में बहुत ही हठ है और विवाह की बातचीत (बरेखी) किये बिना आप से रहा ही नहीं जाता, तो संसार में वर-कन्या बहुत हैं । खिलवाड़ करने वालों को आलस्य तो होता नहीं (और कहीं जाकर कीजिए) । मेरी तो करोड़ों जन्मों तक यही हठ रहेगी । विवाह किया तो शिवजी को बरूँगी, नहीं तो कुमारी ही रहूँगी । स्वयं शिवजी सौ बार कहें, तो भी नारद जी के उपदेश को नहीं छोड़ूगीं ।" जगज्जननी पार्वती ने फिर कहा कि मैं आपके पैरों पड़ती हूँ । आप अपने घर जाइये, बहुत देर हो गई । (शिवजी में पार्वती का ऐसा) प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले—"हे जगज्जननी ! भवानी ! आपकी जय हो ! जय हो !

दो०—तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु ।
नाई चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु ।।८१।।

भावार्थ—आप माया हैं और शिवजी भगवान हैं। आप दोनों समस्त जगत के माता-पिता हैं ।" (यह कहकर) मुनि पार्वती जी के चरणों में सिर नवाकर चल दिये । उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे ।

जाई मुनिन्ह हिमवंतु पठाए । करि बिनती गिरजहिं गृह ल्याए ।।
बहुरि सप्तरिषि सिव पहि जाई । कथा उमा के सकल सुनाई ।।
भए मगन सिव सुनत सनेहा । हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ।।
मनु थिर करि तब संभु सुजाना । लगे करन रघुनायक ध्याना ।।
तारकु असुर भयउ तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज बिसाला ।।
तेहि सब लोक लोकपति जीते । भए देव सुख संपति रीते ।।
अजर अमर सो जीति न जाई । हारे सुर करि बिबिध लराई ।।
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे । देखे बिधि सब देव दुखारे ।।

भावार्थ—मुनियों ने जाकर हिमवान को पार्वती जी के पास भेजा और वे विनती करके उनको घर ले आये । फिर सप्तर्षियों ने शिव जी के पास जाकर उनको पार्वती जी की सारी कथा सुनाई । पार्वती जी का प्रेम सुनते ही शिव जी

आनन्द मग्न हो गये। सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर (ब्रह्मलोक) को चले गये। तब सुजान शिवजी मन को स्थिर करके श्री रघुनाथ जी का ध्यान करने लगे। उसी समय तारक नामक असुर हुआ, जिसकी भुजाओं का बल, प्रताप और तेज बहुत बड़ा था। उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया, सब देवता सुख और सम्पत्ति से रहित हो गये। वह अजर-अमर था, इसलिये किसी से जीता नहीं जाता था। देवता उसके साथ बहुत तरह की लड़ाइयाँ लड़कर हार गये। तब उन्होंने ब्रह्मा जी के पास जाकर पुकार मचाई। ब्रह्मा जी ने सब देवताओं को दुःखी देखा।

दो०—सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ ॥८२॥

भावार्थ—ब्रह्मा जी ने सबको समझाकर कहा—"इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिव जी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो, इसको युद्ध में वही जीतेगा।

अन्तर्कथा—जब सप्तर्षियों ने पार्वती की परीक्षा का संवाद शिवजी को सुनाया, उसी समय तारकासुर का जन्म हुआ। जब वह देवताओं को बहुत कष्ट देने लगा, तब देवगण ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा जी ने देवताओं को समझाया कि शिव-पार्वती के सम्बन्ध से जो पुत्र होगा, वही तारक का बध करेगा। अन्तर्कथा इस प्रकार है—

तारक देवद्वेषी असुर था। तपस्या से ब्रह्मा को संतुष्ट करके इसने दो वर पाये थे। एक वर यह था कि इस जगत् में उससे बलवान् दूसरा कोई जन्म न ले और दूसरा वर यह था कि महादेव के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु हो। ब्रह्मा के वर से बलवान् होकर तारक देवताओं को उत्पीड़ित करने लगा। तारक द्वारा पीड़ित होकर देवता ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा बोले—"मैं तारक का विनाश नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने उसे वर दिया है कि शिव के पुत्र के अतिरिक्त दूसरा उसे नहीं मार सकता। अतएव शिव के जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न हो वैसा तुम लोग प्रयत्न करो।" देवगण कामदेव को साथ लेकर हिमालय पर्वत पर योगध्यानमग्न महादेव के निकट गए। उस समय पार्वती भी शिव की पूजा करने के लिए वहाँ उपस्थित थीं। कामदेव ने अवसर जानकर बाण मारा। शिव का मन चंचल हुआ। उनका ध्यान टूट गया। वे क्रोध से इधर-उधर देखने लगे। डरकर देवता भाग गए, परन्तु कामदेव नहीं भाग सके। वे महादेव के नेत्राग्नि से भस्म हो गए।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥
सतीं जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥

जदपि अहइ असमंजस भारी । तदपि बात एक सुनहु हमारी ।।
पठवहु काम जाइ सिव पाहीं । करै छोभु संकर मन माहीं ।।
तव हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउब बिबाहु बरिआई ।।
एहि बिधि भुलेहिं देवहित होई । मति अति नीक कहइ सबु कोई ।।
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू । प्रगटेउ विषमबान झषकेतू ।।

भावार्थ—मेरी बात सुनकर उपाय करो । ईश्वर सहायता करेंगे । और काम हो जायेगा । सती जी ने जो दक्ष के यक्ष में देह का त्याग किया था उन्होंने अब हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया है । उन्होंने शिव जी को पति बनाने के लिये तप किया है; इधर शिव जी सब छोड़-छाड़ कर समाधि लगा बैठे हैं । यद्यपि है तो बड़े असमंजस की बात, तथापि मेरी एक बात सुनो । तुम जाकर कामदेव को शिवजी के पास भेजो, वह शिवजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे (उनकी समाधि भग्न करे) । तब हम जाकर शिवजी के चरणों में सिर रख देंगे और जबरदस्ती (उन्हें राजी करके) विवाह करा देंगे । इस प्रकार से भले ही देवताओं का हित हो) । और तो कोई उपाय नहीं है ।" सब ने कहा—यह सम्मति बहुत अच्छी है । फिर देवातओं ने बड़े प्रेम से स्तुति की, तब विषम (पाँच) बाण धारण करने वाला और मछली के चिन्ह-युक्त ध्वजावाला कामदेव प्रकट हुआ ।

दो०—सुरन्ह कही निज बिपति सब सुनि मन कीन्ह बिचार ।
संभु बिरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ।।८३।।

भावार्थ—देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति कही । सुनकर कामदेव ने मन में विचार किया और हँसकर देवताओं से यों कहा कि "शिवजी के साथ विरोध करने में मेरी कुशल नहीं है ।

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा । श्रुति कह परम धरम उपकारा ।।
पर हित लागि तजइ जो देही । संतत संत प्रसंसहिं तेही ।।
अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई । सुमन धनुष कर सहित सहाई ।।
चलत मार अस हृदयँ बिचारा । सिव बिरोध ध्रुव मरनु हमारा ।।
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा । निज बस कीन्ह सकल संसारा ।।
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू । छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू ।।
ब्रह्मचर्ज ब्रत संजम नाना । धीरज धरम ग्यान बिग्याना ।।
सदाचार जप जोग बिरागा । सभय बिबेक कटकु सबु भागा ।।

भावार्थ—फिर भी मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरे के उपकार को परम धर्म कहते हैं। जो दूसरों के हित के लिये अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं।" यों कह, और सबको सिर नवा कर कामदेव अपने पुष्प के धनुष को हाथ में लेकर (वसन्तादि) सहायकों के साथ चला। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिव जी के साथ विरोध करने में मेरा मरण निश्चित है। तब कामदेव ने अपना विस्तार फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जिस समय उस मछली के चिन्ह की ध्वजा वाले कामदेव ने क्रोध किया, उस समय क्षण भर में ही वेदों की सारी मर्यादा मिट गई। ब्रह्मचर्य, नियम, नाना प्रकार के संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान-विज्ञान, सदाचार, जप, योग, बैराग्य आदि विवेक की सारी सेना डर कर भाग गई।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है :—

"परहित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहि तेही॥"

अर्थात्, दूसरे के हित के लिए जो अपने प्राण त्याग देता है, उसकी सर्वदा प्रशंसा होती है। कामदेव जानता था कि यदि उसने शिव की समाधि भंग करने की चेष्टा की, तो शिव जी उसको भस्म कर देंगे। फिर भी देवताओं के हित के लिए, तारक के वध के लिए, कार्तिकेय के जन्म के लिए (देखिए पिछला पृष्ठ–१२२) कामदेव ने शिवजी का योगध्यान भग्न करने के लिए अपने पंचबाण शिवजी पर छोड़े। शिवजी की समाधि टूट गई, वह चंचल हो गये, क्रोध में आकर उन्होंने अपनी नेत्राग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया। इसी प्रकार वृत्रासुर (देखिए अन्तर्कथा पृष्ठ ११८ पर) को मारने के लिए जब देवताओं को बज्रास्त्र की आवश्यकता हुई, तो दधीचि मुनि ने स्वयं अपना शरीर त्याग दिया ताकि उनकी अस्थि से बज्र बन सके। जो सेनानी देश की रक्षा के लिए अपना जीवन बलिदान करते हैं, उनके लिए अंग्रेजी में एक लोकोक्ति है :

"For your tomorrow we gave our today"

आपके उज्ज्वल भविष्य के लिए हमने अपना आज बलिदान कर दिया।

छं०—भागेउ बिबेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्बत कंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

दो०—जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम॥ ८४॥

भावार्थ—विवेक अपने सहायकों सहित भाग गया, उसके योद्धा रणभूमि से पीठ दिखा गये। उस समय वे सब सद्ग्रंथ रूपी पर्वत की कन्दराओं में जा छिपे। अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचारादि ग्रन्थों में ही लिखे रह गये। उनका आचरण छूट गया। सारे जगत में खलबली मच गयी और सब कहने लगे—"हे विधाता! अब क्या होने वाला है? हमारी रक्षा कौन करेगा? ऐसा दो सिर वाला कौन है, जिसके लिए रति के पति कामदेव ने कोप करके हाथ में धनुष-बाण उठाया है?" जगत में स्त्री पुरुष संज्ञा वाले जितने चर अचर प्राणी थे, सब अपनी अपनी मर्यादा को छोड़कर काम के वश हो गये।

सब के हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा ॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाईं। संगम करहिं तलाव तलाईं ॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी ॥
पसु पच्छी नभ जल थलचारी। भए कामबस समय बिसारी ॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका ॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी ॥
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए बियोगी ॥

भावार्थ—सब के हृदय में काम की इच्छा हो गई। लताओं को देखकर वृक्षों की डालियाँ झुकने लगीं। नदियाँ उमड़-उमड़ कर समुद्र की ओर दौरीं और ताल-तलइयाँ भी आपस में संगम करने लगे। जब जड़ (वृक्ष, नदी आदि) की दशा ऐसी हो गई, तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है? आकाश, जल और पृथ्वी पर बिचरने वाले सारे पशु-पक्षी (अपने संयोग का) समय भुलाकर काम के वश में हो गये। सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा-चकई रात-दिन नहीं देखते। देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल—ये सब सदा ही काम के गुलाम हैं। यह समझकर मैंने इनकी दशा का वर्णन नहीं किया। सिद्ध, विरक्त, महामुनि, और महायोगी भी काम के वश होकर स्त्री के विरही हो गये।

टिप्पणी—यद्यपि "मानस" शांत-रस प्रधान ग्रन्थ है, तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर शेष आठ रसों का भी प्रयोग किया है। दोहा ८४, उसके ऊपर का छंद और नीचे की चौपाई श्रृंगार-रस पूर्ण हैं। जब कामदेव शिवजी की समाधि भग्न करने चला, तो सारा संसार कामवश हो गया। जो समस्त चराचर जगत को ब्रह्ममय देखते थे, वे उसे स्त्रीमय देखने लगे। इसी प्रकार सारी स्त्रियाँ सारे संसार

को पुरुषमय देखने लगीं। ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचार ग्रन्थों में ही लिखे रह गये। उनका आचरण छूट गया। लताएं पेड़ों से लिपटने लगीं, नदियाँ समुद्र से मिलने के लिए आतुर हो उठीं। ताल तलइयों से संगम करने लगे। इसी भाव को 'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

"भुज-लता पड़ी सरिताओं की, शैलों के गले सनाथ हुए"

आगे चलिये तो आकाश, जल और पृथ्वी पर विचरने वाले सारे पशु-पक्षी, अपने संयोग का समय भुलाकर काम-क्रीड़ा में रत हो गये। चकवा-चकई को रात-दिन का ध्यान ही नहीं रहा। देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, बैताल—सारे प्राणी कामान्ध हो गये। सिद्ध, विरक्त, योगी, महामुनि भी स्त्री के विरह में तड़पने लगे। सृष्टि की यह परिस्थिति केवल दो घड़ी (लगभग पौन घंटा) रही। जब कामदेव शिवजी के समक्ष पहुँचा, तब वह किम्कर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसके निःस्तब्ध होते ही, उसका ब्रह्माण्ड के अन्दर रचा हुआ कौतुक समाप्त हो गया। फिर ऋतुराज बसन्त ने अपनी लीला दिखायी। फूले हुए नये-नये वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गयीं। बन, उपवन, बावली, तालाब और सब दिशाएं सुन्दर हो गयीं। शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। सरोवरों में अनेक कमल खिल गये। जिन पर सुन्दर भौंरों के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएं गा-गाकर नाचने लगीं। मरे हुए मन में भी कामोत्पत्ति हो उठी। (देखिए सोरठा ८५ के नीचे की चौपाई और छंद)

छं०—भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै ।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे ॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं ।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ॥

सो०—धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे ।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ ॥ ८५ ॥

भावार्थ—जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गये, तब पामर पुरुषों की कौन कहे ! जो समस्त चराचर जगत को ब्रह्ममय देखते थे वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियाँ-सारे संसार को पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घड़ी तक सारे ब्रह्माण्ड के अन्दर कामदेव का रचा हुआ कौतुक (तमाशा) रहा। किसी ने भी हृदय में धैर्य नहीं धारण किया, कामदेव ने सबके मन हर लिये। श्री रघुनाथ जी ने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही उस समय बचे रहे।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथातिथि सबु संसारू॥
भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥

भावार्थ—दो घड़ी तक ऐसा तमाशा हुआ, जब तक कामदेव शिवजी के पास पहुँच गया। शिवजी को देखकर कामदेव शंका से रुक गया, तब फिर सारा संसार फिर जैसे का तैसा स्थिर हो गया। तुरन्त सब जीव वैसे ही सुखी हो गये। जैसे मतवाले नशा पिये हुए लोग मद (नशा) उतर जाने पर सुखी होते हैं। दुराधर्श (जिनको पराजित करना अत्यन्त कठिन है) और दुर्गम (जिनका पार पाना कठिन है) भगवान रुद्र (भयंकर) शिवजी को देखर कामदेव भयभीत हो गया। लौट आने में लज्जा मालूम होती है, और करते कुछ नहीं बनता। अन्त में मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरन्त ही सुन्दर ऋतुराज बसन्त को प्रकट किया। फूले हुए नये-नये वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गईं। बन, उपवन, बावली, तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुन्दर हो गये। जहाँ तहाँ मानों प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे मनों में भी कामदेव जाग उठा।

छं०— जागइ मनोभाव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

दो०—सकल कला करि कोटि बिधि हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत॥ ८६॥

भावार्थ—मरे हुए मन में भी कामदेव जागने लगा, बन की सुन्दरता कही नहीं जा सकती। काम रूपी अग्नि का सच्चा मित्र शीतल मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। सरोवरों में अनेकों कमल खिल गये। जिन पर सुन्दर भौंरों के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और

अप्सरायें गा-गाकर नाचने लगीं। कामदेव अपनी सेना समेत करोड़ों प्रकार की सब कलाएं (उपाय) करके हार गया, पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव क्रोधित हो उठा।

देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥
छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥
सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी॥
समुझि कामसुखु सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥

भावार्थ—आम के वृक्ष की एक सुन्दर डाली देखकर मन में क्रोध से भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़ गया। उसने पुष्प धनुष पर अपने पाँचों बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोध से (लक्ष्य की ओर) ताक कर उन्हें कान तक तान लिया। कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े जो शिव जी के हृदय में लगे। तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग गये। ईश्वर (शिवजी) के मन में बहुत क्षोभ हुआ, उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा। जब आम के पत्तों में (छिपे हुए) कामदेव को देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला, उनके देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया। जगत में बड़ा हाहाकार मच गया। देवता डर गये, दैत्य सुखी हो गये। भोगी लोग काम सुख को याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गये।

छं०—जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

दो०—अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥ ८७॥

भावार्थ—योगी निष्कंटक हो गये। कामदेव की स्त्री रति अपने पति की यह दशा सुनते ही मूर्छित हो गई। रोती, चिल्लाती और भाँति-भाँति से करुणा की

याचना करती हुई वह शिवजी के पास गयी । अत्यन्त प्रेम के साथ अनेक प्रकार से विनती करके हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गयी । शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले शिवजी अबला (असहाय स्त्री) को देखकर सुन्दर (उसको सान्त्वना देने वाले) बचन बोले । "हे रति ! अब से तेरे स्वामी का नाम "अनंग" होगा । वह बिना शरीर के ही सब में ब्यापेगा । अब तू अपने पति से मिलने की बात सुन ।

जब जदुबंस कृष्न अवतारा । होइहि हरन महा महिभारा ।।
कृष्न तनय होइहि पति तोरा । बचनु अन्यथा होइ न मोरा ।।
रति गवनी सुनि संकर बानी । कथा अपर अब कहउँ बखानी ।।
देवन्ह समाचार सब पाए । ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए ।।
सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता । गए जहाँ सिव कृपानिकेता ।।
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा । भए प्रसन्न चंद्र अवतंसा ।।
बोले कृपासिन्धु बृषकेतू । कहहु अमर आए केहि हेतू ।।
कह बिधि तुम्ह प्रभु अंतरजामी । तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी ।।

भावार्थ—जब पृथ्वी के बड़े भारी भार को उतारने के लिए यदुवंश में श्रीकृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति उसके पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में उत्पन्न होगा । मेरा यह बचन अन्यथा नहीं होगा । शिवजी के वचन सुनकर रति चली गयी । अब दूसरी कथा बखान कर (विस्तार से) कहता हूँ । ब्रह्मादिक देवताओं ने ये सब समाचार सुने तो वे बैकुण्ठ को चले । फिर वहाँ से विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवता वहाँ गये जहाँ कृपा के धाम शिवजी थे । उन सबने शिवजी की अलग-अलग स्तुति की, तब शशिभूषण शिव जी प्रसन्न हो गये । कृपा के समुद्र शिव जी बोले—"हे देवताओं कहिए, आप किसलिये आये हैं !" ब्रह्माजी ने कहा—"हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी ! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ ।

अन्तर्कथा—जब कामदेव को शिवजी ने अपनी कोपाग्नि से भस्म कर दिया तो उसकी पत्नी रति विलाप करती हुई शिवजी से दया की भीख मांगने गई । शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि उसका पति अबसे 'अनंग' कहलायेगा और बिना शरीर के ही सब में व्यापेगा । द्वापर में श्रीकृष्ण के पुत्र (प्रद्युम्न) के रूप में जन्म लेगा । प्रद्युम्न की अन्तर्कथा इस प्रकार है :—

प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के पुत्र थे । वे रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । जन्म होने के सातवें दिन श्रीकृष्ण के प्रबल शत्रु शम्बरासुर ने उसे हर लिया । यह बात श्रीकृष्ण को मालूम तो हो गई, परन्तु उन्होंने इसका कुछ भी प्रतिविधान नहीं

किया। दैत्य पति शम्बर की रानी का नाम मायावती था। मायावती का कोई पुत्र नहीं था। अतएव शम्बर ने प्रद्युम्न को मायावती के हाथों में सौंप दिया और उसे पालने-पोसने के लिए कहा। मायावती कोई दूसरी नहीं है, यह स्वयं रति है। प्रद्युम्न को देखते ही मायावती को अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त स्मरण हो आये। वह पति का लालन-पालन स्वयं करना उचित न समझकर धाय के द्वारा उसे पालने-पोसने लगी। प्रद्युम्न जब जवान हुए, तब मायावती उनसे पत्नी के समान भाव प्रकट करने लगी। यह देखकर प्रद्युम्न ने एक दिन मायावती से पूछा—"तुम मेरे पुत्रभाव छोड़कर इस प्रकार का विपरीत भाव क्यों प्रकट करती हो ?" प्रद्युम्न को एकान्त में ले जाकर मायावती कहने लगी—"नाथ ! तुम हमारे पुत्र नहीं हो, शम्बर भी तुम्हारा पिता नहीं है। तुम्हारा जन्म वृष्णिवंश में हुआ है। तुम्हारी माता रुक्मिणी और पिता श्रीकृष्ण हैं। तुम्हारे जन्म के सातवें दिन सौर घर में शम्बर तुम्हें उठा लाया था। मैं तुम्हारे रूप पर मोहित हुई हूँ, तुम शम्बर को मारो और मेरा मनोरथ पूर्ण करो।" यह सुनकर प्रद्युम्न ने किसी प्रकार शम्बर का क्रोध बढ़ाया और युद्ध में वैष्णवास्त्र के द्वारा उसे मार डाला। तदनन्तर मायावती को लेकर वे द्वारका चले गये।

दो०–सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु ।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु ॥ ८८ ॥

भावार्थ—हे शंकर ! सब देवताओं के मन में ऐसा परम उत्साह है कि वे अपनी आँखों से आपका विवाह देखना चाहते हैं।

यह उत्सव देखिय भरि लोचन । सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा । कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा ॥
सासति करि पुनि करहिं पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा । करहु तासु अब अंगीकारा ॥
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी । ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ॥
तब देवन्ह दुन्दुभी बजाईं । बरषि सुमन जय जय सुर साईं ॥
अवसरु जानि सप्तरिषि आए । तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी । बोले मधुर बचन छल सानी ॥

भावार्थ—हे कामदेव के मद को चूर करने वाले ! आप ऐसा कुछ कीजिए जिससे सब लोग इस उत्सव को नेत्र भरकर देख सकें। हे कृपा के सागर ! कामदेव को भस्म करके आपने रति को जो वरदान दिया सो बहुत ही अच्छा

किया। हे नाथ ! श्रेष्ठ स्वामियों का यह सहज स्वभाव ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर कृपा किया करते हैं। पार्वती ने अपार तप किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिए।" ब्रह्मा जी की प्रार्थना सुनकर और श्री रामचन्द्र जी के वचनों को याद करके, शिवजी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"ऐसा ही हो।" तब देवताओं ने नगाड़े बजाये और फूलों की वर्षा करके 'जय हो ! देवताओं के स्वामी की जय हो।' ऐसा कहने लगे। उचित अवसर जानकर सप्तर्षि आये और ब्रह्मा जी ने तुरन्त ही उन्हें हिमाचल के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गये जहाँ पार्वती जी थीं, और उनसे छल से भरे मीठे (विनोदयुक्त, आनन्द पहुँचाने वाले) बचन बोले।

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेश।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेश॥ ८९॥

भावार्थ—नारदजी के उपदेश से तुमने उस समय हमारी नहीं सुनी। अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेव जी ने काम को ही भस्म कर डाला।

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी।
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा॥
हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई॥

भावार्थ—यह सुनकर पार्वती जी मुस्कराकर बोलीं—"हे विज्ञानी मुनीश्वरों ! आपने उचित ही कहा। आपकी समझ में शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, अब तक तो वे विकारयुक्त (कामी) ही रहे। किन्तु हमारी समझ से तो शिवजी सदा से ही योगी, अजन्मा, अनिद्य, कामरहित और भोग हीन हैं और यदि मैंने शिवजी को ऐसा समझकर ही मन, वचन और कर्म से प्रेम सहित उनकी सेवा की है, तो हे मुनीश्वरों ! सुनिये, वे कृपानिधान भगवान मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे। आपने जो यह कहा कि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया, यही आपका बड़ा भारी अविवेक है। हे तात ! अनल का तो यह स्वभाव ही है कि पाला उसके समीप कभी जा ही नहीं सकता और जाने पर वह अवश्य नष्ट हो जायेगा। महादेव जी और कामदेव के सम्बन्ध में भी यही न्याय (बात) समझना चाहिये।"

दो०—हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर गए हिमाचल पास ॥ ९० ॥

भावार्थ—पार्वती के वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदय में बड़े प्रसन्न हुये। वे भवानी को सिर नवाकर चल दिये और हिमाचल के पास पहुँचे।

सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा ॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना ॥
हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिबर लिए बोलाई ॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई ॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही ॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदयँ समाती ॥
लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई ॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे ॥

भावार्थ—उन्होंने पर्वतराज (हिमाचल) को सब हाल सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर हिमाचल बहुत दुखी हुये। फिर मुनियों ने रति के बरदान की बात कही, उसे सुनकर हिमवान ने बहुत सुख माना। शिवजी की प्रभुता को मन में विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों को आदर पूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी सोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय करा कर लिखवा लिया। फिर हिमाचल ने वह लग्न पत्रिका सप्तऋषियों को दे दी और चरण पकड़ कर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह लग्नपत्रिका ब्रह्मा जी को दी। उसको पढ़ते समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था। ब्रह्मा जी ने लग्न पढ़कर सबको सुनाया। उसे सुनकर सब मुनि और देवताओं का सारा समुदाय हर्षित हो गया। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओं में मंगल कलश सजा दिये गये।

दो०—लगे सँवारन सकल सुर बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद करहिं अपछरा गान ॥ ९१ ॥

भावार्थ—सब देवता अपने भाँति-भाँति के वाहन और विमान सजाने लगे। कल्याणप्रद मंगल शकुन होने लगे और अप्सराएं गाने लगीं।

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा ।।
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला ।।
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा ।।
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला ।।
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा ।।
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ।।
बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ।।
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ।।

भावार्थ–शिवजी के गण शिवजी का श्रृंगार करने लगे। जटाओं का मुकुट बनाकर उसपर साँपों का मौर सजाया गया। शिवजी ने साँपों के ही कुण्डल और कंकण पहने, शरीर पर विभूति रमायी और वस्त्र की जगह बाघंबर लपेट लिया। शिवजी के सुन्दर मस्तक पर चन्द्रमा, सिर पर गंगा जी, तीन नेत्र, साँपों का जनेऊ, गले में विष और छाती पर नरमुण्डों की माला थी। इस प्रकार उनका वेष अशुभ होने पर भी वे कल्याण के धाम और कृपालु हैं। एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे हाथ में डमरू सुशोभित है। शिवजी बैल पर चढ़कर चले। बाजे बज रहे हैं। शिवजी को देखकर देवांगनायें मुसकरा रही हैं (और कहती हैं कि) इस वर के योग्य दुलहिन संसार में न मिलेगी। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपने-अपने वाहनों (सवारियों) पर चढ़कर बरात में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम-सुन्दर) था, पर दुल्हे के योग्य बरात न थी।

दो०—बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज ।। ९२ ।।

भावार्थ–तब विष्णु भगवान् ने सब दिक्पालों को बुलाकर हँसकर कहा– "सब लोग अपने-अपने दल सहित अलग-अलग होकर चलो।"

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई ।।
बिष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ।।
मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ।।
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ।।
सिव अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए ।।
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा ।।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू । बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ।।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना । रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना ।।

भावार्थ–हे भाई ! हम लोगों की यह बारात वर के योग्य नहीं है । क्या पराये नगर में जाकर हँसी कराओगे । विष्णु भगवान की बात सुनकर देवता मुस्कराये, और वे अपनी-अपनी सेना सहित अलग हो गये । महादेव जी (यह देखकर) मन ही मन मुसकराते हैं कि विष्णु भगवान के व्यंग वचन (अर्थात् आमोद युक्त बातें) नहीं छूटते । अपने प्यारे (विष्णु भगवान) के इन अति प्रिय वचनों को सुनकर शिवजी ने भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बुलवा लिया । शिवजी की आज्ञा सुनते ही सारे गण चले आये और उन्होंने स्वामी के चरण कमलों में सिर नवाया । तरह-तरह की सवारियों और तरह-तरह के वेष वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हँसे । कोई बिना मुख का है तो किसी के बहुत मुख हैं । कोई बिना हाथ पैर का है तो किसी के कई हाथ पैर हैं । किसी के बहुत आँखें हैं, तो किसी के एक भी आँख नहीं है । कोई बहुत मोटा ताजा, तो कोई बहुत ही दुबला पतला है ।

छं०— तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ।।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ।।

सो०—नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब ।
देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि ।। ९३ ।।

भावार्थ–कोई शरीर से दुबला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेश धारण किये हुए हैं । भयंकर गहने पहने, हाथ में कपाल लिये हैं और सब के सब शरीर में ताजा खून लपेटे हुए हैं । गधे, कुत्ते, सुअर और सियार के से उनके मुख हैं । गणों के अनगित वेषों को कौन गिने ? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगिनियों की जमाते हैं । उनका वर्णन करते नहीं बनता । भूत-प्रेत नाचते और गाते हैं, वे सब बड़े मौजी हैं । देखने में बहुत ही बेढंगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंग से बोलते हैं ।

टिप्पणी–ऊपर पृष्ठ १२४ पर स्पष्ट कर दिया गया है कि यद्यपि "मानस" शान्त रस प्रधान ग्रंथ है, उसमें शेष आठ रस भी इधर-उधर विद्यमान

है। दोहा ६२ के नीचे की अन्तिम चौपाई और छन्द और सोरठा ६३ वीभत्स रस से परिपूर्ण हैं।

जस दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता।।
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना।।
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं।।
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा।।
कामरूप सुंदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी।।
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा।।
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथाजोगु तहँ तहँ सब छाए।।
पुर शोभा अवलोकि सुहाई। लागे लघु बिरंचि निपुणाई।।

भावार्थ–अब जैसा दूल्हा है उसी के अनुकूल बरात बन गयी है। मार्ग में चलते हुए भाँति-भाँति के कौतुक (तमाशे) होते जाते हैं। इधर हिमाचल ने भी ऐसा विचित्र मण्डप बनाया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जगत में जितने छोटे बड़े पर्वत थे, जिनका वर्णन करके पार नहीं मिलता, और जितने वन, समुद्र, नदियाँ और तालाब थे, हिमाचल ने सबको न्योता भेजा। वे सब अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाले सुन्दर शरीर धारण कर सुन्दरी स्त्रियों और समाजों के साथ हिमाचल के घर चले। सभी स्नेह सहित मंगलगीत गाते हैं। हिमाचल ने पहले से ही बहुत से घर सजवा रखे थे। यथायोग्य उन-उन स्थानों में सब लोग उतर गये। नगर की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना चातुरी भी तुच्छ लगती थी।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है जो बहुत प्रचलित है:

"जस दूलह तसि बनी बराता।"

अर्थात्, जैसा दूल्हा होता है, वैसी ही उसकी बारात होती है। संभ्रांत नागरिक और बुद्धिजीवी कन्या के मकान के निकट, एक जगह एकत्रित हो जाते हैं, और एक बाजे (बैंड) के साथ मोटर या घोड़े पर वर को बिठाकर कन्या के निवास पर द्वाराचार और बरमाला के लिये समय से पहुँच जाते हैं। पंजाबी बाजे के साथ भांगड़ा नाच सारे रास्ते नाचते चलते हैं और नाचने वालों के सिर के ऊपर से नोटों की न्योछावर करते चलते हैं। खटिकों की बारात में हाथी-घोडे होते हैं, दूल्हे को बिजली के चौखटे से घेर कर एक सजी-धजी गाड़ी में बिठा देते हैं और बराती मदिरा पान कर सारे रास्ते झूमते-नाचते चलते हैं। इस लोकोक्ति के अंग्रेजी में कई रूपान्तर हैं: Like Master, like Servant (यथा

राजा, तथा प्रजा); A speaker gets the audience that he deserves (जैसा वक्ता, वैसे श्रोता)

छं०—लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपति सुख निति नूतन अधिकाइ॥९४॥

भावार्थ—नगर की शोभा देखकर ब्रह्मा की निपुणता सचमुच तुच्छ लगती है। वन, बाग, कुंएँ, तालाब, नदियां सभी सुन्दर हैं। उनका वर्णन कौन कर सकता है। घर-घर बहुत से मंगल सूचक तोरण और ध्वजा-पताकाएँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँ के सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषों की छबि देखकर मुनियों के मन भी मोहित होते हैं। जिस नगर में स्वयं जगदम्बा ने अवतार लिया, क्या उसका वर्णन हो सकता है। वहां ऋद्धि-सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित नये बढ़ते जाते हैं।

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर खरभरु सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सजि बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥
हियँ हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥
धरि धीरजु तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥
गएँ भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं वचन भय कपित गाता॥
कहिअ काह कहि जाइ न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥
बरु बौराह बसहँ असवारा। ब्याल कपाल विभूषन छारा॥

भावार्थ—बारात को नगर के निकट आयी सुनकर नगर में चहल-पहल मच गयी, जिससे उसकी शोभा बढ़ गयी। अगवानी करने वाले लोग बनाव श्रृंगार करके तथा नाना प्रकार की सवारियों को सजाकर आदर सहित बरात को लेने चले। देवताओं के समाज को देखकर सबके मन में प्रसन्नता हुई और श्री विष्णु भगवान को देखकर बहुत ही सुखी हुये। परन्तु जब शिवजी के दल को देखने लगे, तब तो उनके सब वाहन (सवारियों के हाथी, घोड़े, रथ के बैल आदि) डरकर भाग चले। कुछ बड़ी उम्र के समझदार लोग धीरज धर कर वहाँ डटे

रहे। लड़के तो सब अपने प्राण लेकर भाग गये। घर पहुँचने पर जब माता पिता पूछते हैं, तब वह भय से कांपते हुये शरीर से ऐसा कहते हैं—"क्या कहें कोई बात नहीं कही जाती। यह बरात है या यमराज की सेना? दुल्हा पागल है और बैल पर सवार है। सांप, कपाल और राख ही उसके गहने हैं।

छं०—तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि बिकट मुख रजनीचरा॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर सही।
देखिहि सो उमा बिबाहु घर घर बात असि लरिकन्ह कही॥

दो०—समुझि महेस समाज सब जननि जनक मुसुकाहिं।
बाल बुझाए बिबिध बिधि निडर होहु डरु नाहिं॥ ९५॥

भावार्थ—दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, साँप और कपाल के गहने हैं; वह नंगा, जटाधारी और भयंकर है। उसके साथ भयानक मुख वाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियां और राक्षस हैं। जो बरात देखकर जीता बचेगा, सचमुच उसके बड़े ही पुण्य हैं, और वही पार्वती का विवाह देखेगा।" लड़कों ने घर-घर यही बात कही। महेश्वर! (शिव जी) का समाज समझकर सब लड़कों के माता-पिता मुस्कराते हैं। उन्होंने बहुत तरह से समझाया कि निडर हो जाओ, डर की कोई बात नहीं है।

लै अगवान बरातहि आए। लिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥
अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

भावार्थ—अगवानी के लिए गये हुये लोग बरात को लिवा लाये। उन्होंने सबको सुन्दर जनवासे ठहरने के लिये दिये। मैना (पार्वती की माता) ने शुभ आरती सजाई और उनके साथ की स्त्रियाँ उत्तम मंगल गीत गाने लगीं। सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभित है; इस प्रकार मैना हर्ष के साथ शिव जी का परछन

करने चलीं। जब महादेव जी को भयानक वेष में देखा तो सब स्त्रियों के मन में बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया। वे स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत होकर वहाँ से भाग-कर घर में घुस गयीं। शिव जी भी स्त्रियों के व्यवहार की ओर ध्यान न देकर जहाँ जनवासा अर्थात् उनके समाज के बराती ठहरे हुये थे वहाँ चले गये। मैंना के हृदय में बहुत दुख हुआ और घर जाकर उन्होंने पार्वती जी को अपने पास बुला लिया। मैंना ने बड़े प्रेम पूर्वक श्री पार्वती को गोद में बैठाकर अपने नील कमल के समान नेत्रों में आँसू भर कर कहा—"जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया उस मूर्ख ने तुम्हारे दूल्हे को बावला कैसे बनाया।

छं० —कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

दो०—भईं बिकल अबला सकल दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति सुता सनेहु सँभारि॥९६॥

भावार्थ—जिस विधाता ने तुझको सुन्दरता दी, उसने तुम्हारे लिये वर बावला कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिये वह जबरदस्ती बबूल में लगाया जा रहा है। मैं तुम्हे लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँगी। आग में जल जाऊँगी या समुद्र में कूद पड़ूंगी। चाहे घर उजड़ जाय और संसार भर में अपकीर्ति फैल जाय, पर जीते जी इस बावले वर से तुम्हारा विवाह न करूँगी।" मैंना को दुखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं। मैंना अपनी कन्या के स्नेह को याद करके विलाप करती, रोती और कहती थीं।

नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥
साचेहुँ उन्ह के मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥
जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहि मति माना। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

भावार्थ—मैना कहती है, "मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था, जिन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया और जिन्होंने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि जिससे उसने बावले वर के लिये तप किया। सचमुच नारद को न किसी से मोह है, न माया, न उनके धन है, न घर है और न स्त्री ही है। वे सबसे उदासीन हैं। इसी से वे दूसरे का घर उजाड़ने वाले हैं। उन्हें न किसी की लाज है, न डर है। भला बाँझ स्त्री प्रसव की पीड़ा को क्या जाने।" माता को विकल देखकर पार्वती जी विवेक युक्त कोमल वाणी बोलीं—"हे माता ! जो विधाता रच देते हैं, वह टलता नहीं। ऐसा विचार कर तुम सोच मत करो। जो मेरे भाग्य में बावला ही पति लिखा है तो किसी को क्यों दोष लगाया जाय ? हे माता ! क्या विधाता के अंक तुमसे मिट सकते हैं ? व्यर्थ कलंक (का टीका) मत लो।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है :

"बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ॥"

बाँझ स्त्री प्रसव-पीड़ा को नहीं जान सकती। अर्थात् जो अपने जीवन में सदा सुखी और समृद्ध रहा है, वह दूसरों के दुख की कभी भी कल्पना नहीं कर सकता। यह लोकोक्ति मैंना ने दूसरे सन्दर्भ में कही थी। नारद उदासीन हैं—उनको न किसी से मोह है और न उन्हें माया व्यापती है। उनके न धन है, न घर है, न स्त्री है। इसीलिए दूसरों का घर उजाड़ने में न उन्हें कोई संकोच होता है, न लाज आती है।

छं०—जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं ॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं ॥

दो०—तेहि अवसर नारद सहित अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि गवने तुरत निकेत ॥९७॥

भावार्थ—हे माता ! कलंक मत लो, रोना छोड़ो, यह अवसर विषाद करने का नहीं है। मेरे भाग्य में जो दुःख सुख है उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वहाँ पाऊँगी।" पार्वती जी के ऐसे विनय भरे कोमल बचन सुनकर सारी स्त्रियाँ सोच करने लगीं और भाँति-भाँति से विधाता को दोष देकर आँखों में आँसू बहाने लगीं। उसी समय सप्तर्षियों सहित, नारद आ गये। इस समाचार को सुनते ही हिमाचल उन्हें अपने साथ लेकर घर गये।

तब नारद सबही समुझावा । पूरुब कथाप्रसंगु सुनावा ॥
मयना सत्य सुनहु मम बानी । जगदंबा तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि । सदा संभु अरधंग निवासिनि ॥
जग संभव पालन लय कारिनि । निज इच्छा लीला बपु धारिनि ॥
जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई । नाम सती सुंदर तनु पाई ॥
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं । कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥
एक बार आवत सिव संगा । देखेउ रघुकुल कमल पतंगा ॥
भयउ मोहु सिव कहा न कीन्हा । भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा ॥

भावार्थ—तब नारद जी ने पूर्व जन्म की कथा सुनाकर सबको समझाया और कहा कि "हे मैंना ! तुम मेरी सच्ची बात सुनो ! तुम्हारी यह पुत्री (साक्षात्) जगज्जननी भवानी हैं । ये अजन्मा, अनादि शक्ति और अविनाशिनी हैं । सदा शिव जी के अर्धांग में रहती हैं । वे जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं, और अपनी इच्छा से ही लीला-शरीर धारण कर लेती हैं । पहले यह दक्ष के घर जाकर जन्मी थीं, तब इनका सती नाम था, बहुत सुन्दर शरीर पाया था । वहाँ भी सती शंकर जी से ही व्याही गई थीं । यह कथा सारे जगत में प्रसिद्ध है । एक बार इन्होंने शिवजी के साथ आते हुए (राह) में रघुकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्र जी को देखा । तब इन्हें मोह हो गया और इन्होंने शिवजी का कहना न मानकर भ्रम वश सीता जी का वेश धारण कर लिया ।

छं०— सिय वेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं ।
हर बिरहँ जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं ॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया ।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया ॥

दो०—सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा बिषाद ।
छन महुं ब्यापेउ सकल पुर घर घर यह संबाद ॥ ९८ ॥

भावार्थ—सती ने सीता का वेष धारण किया, उसी अपराध के कारण शंकर जी ने उनको त्याग दिया । फिर शिवजी के वियोग में ये अपने पिता के यज्ञ में जाकर वहीं योगाग्नि में भस्म हो गईं । ऐसा जानकर सन्देह छोड़ दो । पार्वती जी तो सदा ही शिव जी की प्रिया (अर्धांगिनी) हैं ।" तब नारद का वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और यह समाचार सारे नगर में फैल गया ।

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे ॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥
लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा ॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती ॥
बिबिध पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा ॥
नारिबृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी ॥

भावार्थ—तब मैना और हिमवान आनन्द में मग्न हो गये और उन्होंने बार-बार पार्वती के चरणों की वन्दना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगर के सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। नगर में मंगल के गीत गाये जाने लगे और सब ने भाँति-भाँति के सुवर्ण के कलश सजाये। पाकशास्त्र में जैसी रीति है, उसके अनुसार अनेक भाँति की ज्योनार हुई (रसोई बनी)। जिस घर में स्वयं माता भवानी रहती हो, वहाँ की ज्योनार (भोजन सामग्री) का वर्णन कैसे किया जा सकता है? हिमाचल ने आदर पूर्वक सब बरातियों को—विष्णु-ब्रह्मा और सब जाति के देवताओं को बुलवाया। भोजन (करने वालों) की बहुत सी पंगतें बैठीं। चतुर रसोइये परोसने लगे। स्त्रियों की मण्डलियाँ देवताओं को भोजन करते जानकर कोमल वाणी से गालियां देने लगीं।

छं०—गारी मधुर स्वर देहिं सुंदरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलंबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं ॥
जेवँत जो बढ़्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो ॥

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर पठए देव बोलाइ ॥ ९९ ॥

भावार्थ—सब सुन्दरी स्त्रियां मीठे स्वर में गालियां देने लगीं और व्यंग भरे वचन सुनाने लगीं। देवगण विनोद सुनकर बहुत सुख अनुभव करते हैं, इस लिए भोजन करने में बड़ी देर लगा रहे हैं। भोजन के समय जो आनन्द बढ़ा, वह करोड़ों मुंह से भी नहीं कहा जा सकता। (भोजन कर चुकने पर) सब के हाथ-मुंह धुलवाकर, पान दिये गये। फिर सब लोग जो जहाँ ठहरे थे वहाँ चले गये। फिर मुनियों ने लौटकर हिमवान को लगन (लग्न पत्रिका) सुनायी और विवाह का समय देखकर देवताओं को बुला भेजा।

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे ॥
बेदी बेद बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी ॥
सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा ॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं ॥
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है ॥
जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी ॥

भावार्थ—हिमवान ने आदर सहित सब देवताओं को बुलवा लिया और उनके आने पर सबको यथा योग्य आसन दिये। वेद की रीति से वेदी सजायी गयी और स्त्रियाँ सुन्दर श्रेष्ठ मंगलगीत गाने लगीं। (बेदिका पर) एक अत्यन्त सुन्दर दिव्य सिंहासन था, जिस (की सुन्दरता) का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वयं ब्रह्मा जी का बनाया हुआ था। ब्राह्मणों को सिर नवाकर और अपने हृदय में अपने स्वामी श्री रघुनाथ जी का स्मरण करके शिव जी (उस सिंहासन) पर बैठ गये। फिर मुनिश्वरों ने श्री पार्वती जी को बुलाया। सखियाँ श्रृंगार करके उन्हें ले आयीं। पार्वती जी के रूप को देखते ही देवता मोहित हो गये। संसार में ऐसा कवि कौन है जो उस सुन्दरता का वर्णन कर सके। श्री पार्वती को जगदम्बा और श्री शिव की पत्नी समझकर देवताओं ने मन ही मन प्रणाम किया। भवानी सुन्दरता की सीमा हैं। करोड़ों मुखों से भी उनकी शोभा नहीं की जा सकती।

छं०—कोटिहुँ बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा ॥
छबिखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहिं न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहाँ ॥

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि ॥ १०० ॥

भावार्थ—जैसा कहा जा चुका है श्री पार्वती जी के विवाह के समय महान शोभा का वर्णन करोड़ो मुखों से भी करते नहीं बनता। वेद, शेष और सरस्वती जी तक उसे कहते हुए सकुचा जाती हैं, तब मन्मति तुलसी किस गिनती में है। सुन्दरता और शोभा की खान माता भवानी मण्डप के बीच में जहाँ श्री शिव जी

पहले से ही विराजमान थे वहाँ गयीं और संकोच के मारे पति (शिवजी) के चरण कमलों को देख नहीं सकतीं, परन्तु उनका मन रूपी भौंरा तो वहीं (रस-पान कर) रहा था। मुनियों की आज्ञा से शिव जी और पार्वती जी ने गणेश जी का पूजन किया। मन में देवताओं को अनादि समझकर कोई इस बात को सुनकर शंका न करे (कि गणेश जी तो शिव-पार्वती की सन्तान हैं, अभी विवाह से पूर्व ही वे कहाँ से आ गये)। तात्पर्य यह है कि श्री गणेश बुद्धि के देवता हैं। प्रत्येक शुभ कार्य को करने के लिये सर्वप्रथम बुद्धि के ठीक होने की आवश्यकता है। शिव और पार्वती के विवाह से पूर्व भी बुद्धि का देवता तो अनादि काल से चला आ रहा होगा जिसका पूजन मुनियों के आदेशानुसार शिव और पार्वती ने भी किया।

जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥
पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
वेदमंत्र मुनिबर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमनबृष्टि नभ भय बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥
दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनकभाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

भावार्थ—वेदों में जैसी रीति कही गयी है, महामुनियों ने वह भी (रीति) करवाई। हिमाचल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ पकड़ कर उन्हें भवानी (शिव पत्नी) जानकर शिव जी को समर्पण किया। जब महेश्वर (शिवजी) ने पाणिग्रहण किया, तब इन्द्रादि सब देवता हृदय में बड़े ही हर्षित हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेद मन्त्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण भी शिवजी का जय जय कार करने लगे। उस समय अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे। आकाश से नाना प्रकार के पुष्पों की वर्षा हुई। शिव-पार्वती का विवाह हो गया। सारे ब्रह्मांण्ड में आनन्द भर गया। हिमवान ने रीति एव अपनी सामर्थ्य के अनुसार दहेज में दास, दासी, रथ, घोड़े, हाथी, गायें, वस्त्र और मणि आदि अनेक प्रकार की उपयोगी बस्तुयें, अन्न एवं सुवर्ण पात्र सहित, गाड़ियों में लदवाकर दिये जिनका पूर्ण वर्णन करना असम्भव है।

छं०—दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥

सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो ।
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो ॥

दो०—नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु ।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु ॥ १०१ ॥

भावार्थ—बहुत प्रकार का दहेज देकर, फिर हाथ जोड़कर हिमाचल ने कहा—"हे शंकर ! आप पूर्णकाम हैं, मैं आप को क्या दे सकता हूँ ?" इतना कहकर वे शिवजी के चरण कमल पकड़ कर रह गये । तब कृपा के सागर शिवजी ने अपने ससुर का सभी प्रकार से समाधान किया । फिर प्रेम से परिपूर्ण हृदय, मैंना जी ने शिवजी के चरण कमल पकड़े । मैंना ने कहा—"हे नाथ ! यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान (प्यारी) है । आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइयेगा । इसके सब अपराधों को क्षमा करते रहियेगा । अब प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिये ।"

बहु बिधि संभु सासु समुझाई । गवनी भवन चरन सिरु नाई ॥
जननीं उमा बोलि तब लीन्हीं । लै उछंग सुंदर सिख दीन्हीं ॥
करेहु सदा संकर पद पूजा । नारिधरमु पति देव न दूजा ॥
बचन कहत भरे लोचन बारी । बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥
कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी । धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी ॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना । परम प्रेमु कछु जाइ न बरना ॥
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी । जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥

भावार्थ-श्री शिव ने बहुत तरह से अपनी सास को समझाया । तब वे (श्री शिव जी) के चरणों में सिर नवा कर घर चलीं गयी । फिर माता ने पार्वती को बुलाया और गोद में बैठाकर यह सुन्दर सीख दी । "तुम सदा शिव जी के चरणों की पूजा करती रहना, नारियों का यही धर्म है । उनके लिए पति ही देवता है, और कोई देवता नहीं है" । (इस प्रकार) बातें कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आये और उन्होंने कन्या को छाती से लिपटा लिया । (मैंना फिर बोलीं) "विधाता ने जगत में स्त्री जाति को क्यों पैदा किया ? पराधीन को सपने में भी सुख नहीं मिलता ।" (उस समय) माता प्रेम से अत्यन्त विकल हो गयी, परन्तु कुसमय जानकर (दुख करने का अवसर जानकर) उन्होंने धीरज धरा । मैंना श्री पार्वती से बार बार मिलती हैं और (पार्वती) के चरणों को पकड़ कर गिर पड़ती हैं । मैंना को श्री पार्वती से बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन

नहीं किया जा सकता। भवानी सब स्त्रियों से मिल भेंट कर फिर अपनी माता के हृदय से जा लिपटीं।

लोकोक्ति–तुलसीदास कथानक कहते कहते अपने पात्रों से थोड़े से शब्दों में शाश्वत सत्य कहला देते हैं। पार्वती को बिदा करते समय उनकी माता उन्हें सीख दे रही हैं कि वह सदा शिवजी के चरणों की पूजा करती रहें। नारी का यही धर्म है। उनके लिये पति के सिवाय और कोई देवता नहीं। फिर आवेश में आकर मैंना कहतीं हैं "विधाता ने जगत में स्त्री जाति को क्यों पैदा किया। पराधीन को सपने में भी सुख नहीं मिलता":

"पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।"

स्त्री पुरुष से दुर्बल है। वह सदा उसका आश्रय चाहती है–बाल्यावस्था में पिता के आश्रय में रहती है, युवावस्था में पति के आश्रय में, और वृद्धावस्था में पुत्र के आश्रय में। बात तो स्त्री के सम्बन्ध में कही गयी, परन्तु यह शाश्वत सत्य सभी शोषित वर्ग पर लागू होता है। जिसके हाथ में सत्ता होती है, वह दूसरों का शोषण करता है। पराधीन देश और जातियाँ कभी भी सुखी नहीं हो सकतीं।

छं०—जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दई।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गई॥
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

दो०—चले संग हिमवंतु तब पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाँति परितोषु करि बिदा कीन्ह बृषकेतु॥ १०२॥

भावार्थ–श्री पार्वती माता से फिर मिल कर चलीं, सब किसी ने उन्हें योग्य आशीर्वाद दिये। पार्वती जी फिर-फिर कर माता की ओर देखती जाती थीं। तब सखियाँ उन्हें शिव जी के पास ले गयीं। महादेव जी सब याचकों को सन्तुष्ट कर पार्वती के साथ घर (कैलाश) को चले। सब देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में सुन्दर नगाड़े बजने लगे। तब हिमवान अत्यन्त प्यार से शिव जी को पहुँचाने के लिये साथ चले। वृषकेतु (शिवजी) ने बहुत तरह से उन्हें संतोष कराकर विदा किया।

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई॥
आदर दान विनय बहुमाना। सब कर बिदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी ॥
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिध बिपुल काल चलि गयऊ ॥
तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥

भावार्थ–पर्वतराज (हिमाचल) तुरन्त घर आये और उन्होंने तब पर्वतों और सरोवरों को बुलाया। हिमाचल ने आदर, दान, विनय और बहुत सम्मान से सबकी विदायी की। जब शिव जी कैलाश-पर्वत पर पहुँचे, तब सब देवता अपने-अपने लोकों को चले गये। पार्वती जी और शिव जी जगत् के माता-पिता हैं, इस लिये मैं उनके श्रृंगार का वर्णन नहीं करता। शिव पार्वती विविध प्रकार के भोग-विलास करते हुए अपने गणों सहित कैलाश पर्वत पर रहने लगे। वे नित्य नये विहार करते थे। इस प्रकार, बहुत समय बीत गया। तब छः मुख वाले (स्वामी कार्तिकेय) का जन्म हुआ, जिन्होंने युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद, शास्त्र और पुराणों में स्वामी कार्तिकेय के जन्म की कथा को सारा जगत जानता है।

अन्तर्कथा–यद्यपि सती-मोह और पार्वती विवाह की कथा तुलसीदास ने ४७ दोहे से १०२ दोहे तक, यानी ५५ दोहे और उतनी ही चौपाइयों में १५८ पृष्ठ में वर्णित की है, उसका निष्कर्ष केवल एक पंक्ति में समाप्त कर दिया।

"तब जनमेउ षट बदन कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा।"

कार्तिकेय का जन्म तारकासुर का बध करने के लिए हुआ था (देखिये अन्तर्कथा ऊपर पृष्ठ १२१ पर)। यह पार्वती के औरस पुत्र नहीं थे। इनके जन्म की कथा "ब्रह्मवैवर्त पुराण" में कही गई है। उसी को आधार मान कर कालीदास ने "कुमारसम्भव" लिखा। "कुमारसम्भव" के दसवें सर्ग के अनुसार एक बार जब शिव पार्वती के साथ सम्भोग कर रहे थे, तब अग्निदेव कबूतर का वेष धारण कर काम-क्रीड़ा देखने चला गया। अग्नि को पक्षी के छद्मवेष में देखकर शंकर जी को बड़ा क्रोध आया। बीच में ही रंग में भंग हो जाने के कारण, उन्होंने अपने अत्यन्त असहनीय, तीनों लोकों को जलाने वाले अमोघ वीर्य को तत्काल ही अग्नि के शरीर में डाल दिया। उस परम दाहक एवं अत्यन्त कठिनाई से सहने योग्य वीर्य-रूपी तेज से अग्नि जल उठा और अपने शरीर को भी ढोने में असमर्थ हो गया। इन्द्र भगवान ने उसे समझाया 'गंगा जी भगवान शंकर की ही जलमयी मूर्ति हैं। अतः वे महादेव जी के तेजस्वी वीर्य को तुमसे लेकर अपने में रख लेंगी।' यह सुनकर अग्नि ने गंगा जी में तुरन्त डुबकी लगाई। इस प्रकार जब गंगा जी द्वारा शंकर

जी का वह तेजस्वी वीर्य ग्रहण कर लिया गया, तो अग्नि को शांति मिली। परंतु शंकर जी के उस भयानक तेज से गंगा जी का जल अत्यन्त तप्त हो गया। इसके बाद एक बार माघ के महीने में एक दिन जब भगवान भास्कर उदयोन्मुख थे तब छः कृत्तिकाएं (चन्द्रमा की स्त्री) गंगा में स्नान करने के लिए आईं। जिस समय कृत्तिकाएं गंगा जी में स्नान कर रहीं थी, उसी समय शंकर जी का वह अमोघ वीर्य उनके शरीर में समाविष्ट हो गया। जब कृत्तिकाओं ने ध्यान से देखा कि शंकर जी का वह तेज तो गर्भ के रूप में बदल गया है, तो लोक-लज्जा और पति के भय के कारण वे एक साथ ही सरपत के एक जंगल में अपने गर्भों को त्यागकर अपने घर वापस चली आईं। उन कृत्तिकाओं ने उस सरपत के बन में जो गर्भ को त्याग दिया था, उसने तेजस्वी बालक का रूप धारण कर लिया। देवनदी गंगा ने स्त्री का रूप धारण कर उस बालक को अपने अमृत से भरे स्तन का पान कराया। गंगा जी के स्तन की धारा का पान कर वह बालक क्षण में ही वेग से बढ़ने लगा और जब छहों कृत्तिकाएं भी आकर उसकी सेवा करने लगीं, तब तो उसका स्वरूप, कुछ विचित्र ढंग से सुन्दर हो गया।

जब बालक छः दिन का हुआ तो शिव-पार्वती स्वच्छन्द विहार करने के लिये विमान से आकाश में विचरण कर रहे थे। उस दिव्य बालक को देखकर पार्वती का स्वाभिक पुत्रप्रेम उमड़ पड़ा। शिव जी ने ऊपर की सारी अन्तर्कथा पार्वती को सुनाई और उनसे कहा : 'अब देर न करो और अपने पुत्र को उठाकर अपनी गोद में ले लो।'

छः कृत्तिकाओं के गर्भ से पैदा हुआ बालक षडानन और कार्तिकेय कहलाया। बड़े होकर इन्होंने ब्रह्मा की कन्या देवसेना से विवाह किया। इन्होंने देवसेना को परिचालित करके, तारकासुर को परास्त करके, उसका वध किया।

छं०—जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहि कहा॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥

दो०—चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु॥ १०३॥

भावार्थ–षडानन (स्वामी कार्तिकेय) के जन्म, कर्म, प्रताप और महान पुरुषार्थ को सारा जगत जानता है। इसलिये मैंने वृषकेतु (शिवजी) के पुत्र का चरित्र संक्षेप में ही कहा है। शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को जो स्त्री-

पुरुष कहेंगे या गायेगें वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मंगलों में सदा सुख पायेगें। गिरिजापति महादेव जी का चरित्र समुद्र के समान (अपार) है। उसका पार वेद भी नहीं पा सकते। तब अत्यन्त मन्द बुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है।

संभु चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥
प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥
सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू॥
सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥

भावार्थ-श्री शिव जी के रसयुक्त और सुहावने चरित्र को सुनकर भरद्वाज जी ने बहुत ही सुख पाया। तथा कथा सुनने की उनकी लालसा बहुत बढ़ गई। नेत्रों में जल भर आया तथा रोमावली खड़ी हो गयी। भरद्वाज प्रेम में मग्न हो गये, मुख से वाणी नहीं निकलती। उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुये (और बोले) "हे मुनीश! तुम्हारा जन्म धन्य है, तुमको गौरी पति शिवजी प्राणों के समान प्रिय हैं। श्री शिव जी के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्री रामचन्द्र जी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्री शिव जी के चरणों में निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना, यही रामभक्त का लक्षण है। श्री शिव जी के समान रघुनाथ जी (की भक्ति) का व्रत धारण करने वाला कौन है? जिन्होंने बिना ही पाप के सती जैसी स्त्री को त्याग दिया और प्रतिज्ञा करके श्री रघुनाथ जी की भक्ति को दिखा दिया। हे भाई! श्री रामचन्द्र जी को श्री शिव जी के समान कौन प्यारा है?"

दो०—प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार॥ १०४॥

भावार्थ-याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि "हे भरद्वाज! मैंने पहले ही शिव जी का चरित्र कहकर तुम्हारा अन्तःकरण जान लिया; और मुझे ज्ञात हो गया कि तुम रामचन्द्र के पवित्र सेवक हो और समस्त दोषों से रहित हो।

मैं जाना तुम्हार गुन सीला । कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला ।।
सुनु मुनि आजु समागम तोरें । कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें ।।
राम चरित अति अमित मुनीसा । कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा ।।
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी । सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ।।
सारद दारुनारि सम स्वामी । रामु सूत्रधर अंतरजामी ।।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी । कबि उर अजिर नचावहिं बानी ।।
प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा । बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा ।।
परम रम्य गिरिबरु कैलासू । सदा जहाँ सिव उमा निवासू ।।

भावार्थ—मैंने तुम्हारा गुण और शील जान लिया । अब मैं श्री रघुनाथ जी की लीला कहता हूँ, सुनो । हे मुनि ! सुनो, आज तुम्हारे मिलने से मेरे मन में जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता । हे मुनिश्वर ! रामचरित्र अत्यन्त अपार है । उसे करोड़ शेष जी भी नहीं कह सकते । तथापि जैसा मैंने सुना है वैसा वाणी के स्वामी (प्रेरक) और हाथ में धनुष लिये हुए प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण करके कहता हूँ । सरस्वती जी कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी स्वामी श्री रामचन्द्र जी (सूत पकड़कर कठपूतली को नचाने वाले) सूत्रधार हैं । अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उसके हृदय रूपी आंगन में सरस्वती को वह नचाया करते हैं । उन्हीं कृपालु रघुनाथ जी को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हीं के निर्मल गुणों की कथा कहता हूँ । कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है, जहाँ श्री शिव-पार्वती जी सदा निवास करते हैं ।

दो०—सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद ।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहि सिव सुखकंद ।। १०५ ।।

भावार्थ—सिद्ध, तपस्वी, योगीगण, देवता, किन्नर और मुनियों के समूह उस पर्वत पर रहते हैं । वे सब बड़े पुण्यात्मा हैं और आनन्दकन्द श्री महादेव जी की सेवा करते हैं ।

हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं । ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं ।।
तेहि गिरि पट बट बिटप बिसाला । निज नूतन सुंदर सब काला ।।
त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया । सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया ।।
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ । तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ ।।
निज कर डासि नागरिपु छाला । बैठे सहजहिं संभु कृपाला ।।

कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा ।।
तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना ।।
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबि हारी ।।

भावार्थ—जो भगवान् विष्णु और महादेव जी से विमुख हैं और जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे लोग स्वप्न में भी वहाँ नहीं जा सकते। उस पर्वत पर एक विशाल बरगद का पेड़ है, जो नित्य नवीन और सब काल (छहों ऋतुओं) में सुन्दर रहता है। वहाँ तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगन्ध) वायु बहती रहती है और उसकी छाया बड़ी ठंडी रहती है। वह शिव जी के विश्राम करने का वृक्ष है, जिसे वेदों ने गाया है। एक बार प्रभु (शिवजी) उस वृक्ष के नीचे गये और उसे देखकर उनके हृदय में बहुत आनन्द हुआ। उस वृक्ष के नीचे पहुँच कर आनन्दित अवस्था में होने के कारण आडंबर विहीन श्री शिव अपने हाथ से ही बाघम्बर बिछाकर सहज स्वभाव से ही बिना कुछ सोच-विचार किये अर्थात् प्रयोजन रहित होकर आनन्दावस्था में विराजमान हो गये। कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान उनका गौर वर्ण था। उनकी लम्बी भुजायें थीं और वे मुनियों के समान वल्कल धारण किये हुए थे। उनके चरण नये (पूर्णरूप से खिले हुए) लाल कमल के समान थे। उनके नखों की ज्योति भक्तों के हृदय का अन्धकार हटाने वाली थी। साँप और भस्म ही उनके भूषण थे। और उन त्रिपुरासुर के शत्रु शिव जी का मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमा की शोभा को भी हरने वाला (फीकी करने वाला) था।

दो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल ।। १०६ ।।

भावार्थ—उनके सिर पर जटाओं का मुकुट और गंगा जी (शोभायमान) थीं। कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र थे। उनका नील कण्ठ था और वे सुन्दरता के भण्डार थे। उनके मस्तक पर द्वितीया का चन्द्रमा शोभित था।

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें ।।
पारबती भल अवसरु जानी। गई संभु पहिं मातु भवानी ।।
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा ।।
बैठीं सिव समीप हरषाई। पूरुब जन्म कथा चित आई ।।
पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी ।।
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी ।।

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ।।
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा ।।

भावार्थ—कामदेव के शत्रु शिव जी वहाँ बैठे हुये ऐसे शोभित हो रहे थे, मानों शान्त रस ही शरीर धारण कर बैठा हो। अच्छा अवसर जानकर माता पार्वती जी उनके पास गईं। अपनी प्रिय पत्नी जानकर शिवजी ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया और अपने बायीं ओर बैठने के लिये आसन दिया। पार्वती जी प्रसन्न होकर शिवजी के पास बैठ गईं। उन्हें पिछले जन्म की कथा स्मरण हो आयी। अपने पति के हृदय में (अपने ऊपर पहले की अपेक्षा) अधिक प्रेम समझ कर श्री पार्वती जी हंस कर प्रिय वचन बोलीं। जो कथा सब लोगों का हित करने वाली है, उसे ही पार्वती जी पूछना चाहती हैं।" श्री पार्वती जी ने कहा—"हे संसार के स्वामी ! हे मेरे नाथ ! हे त्रिपुरासुर का वध करने वाले ! आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आप के चरण कमलों की सेवा करते हैं।

टिप्पणी—दोहा ३६ में कहा गया है कि "रामचरितमानस" में जो चार संवाद हैं—वहीं मानों इस मानसरोवर के चार घाट हैं। पहला संवाद याज्ञवल्क्य भरद्वाज संवाद है, जिसमें सती मोह और पार्वती-विवाह की कथा बहुत विस्तार पूर्वक दोहा ४३ के अंत से दोहा १०६ के पूर्व तक १६८ पृष्ठों में कही गई है। दोहा १०६ के बाद शिव-पार्वती का दूसरा संवाद प्रारम्भ होता है।

दो०—प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ।। १०७ ।।

भावार्थ—हे प्रभो ! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के निधान हैं, और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भण्डार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिये कल्पवृक्ष है।

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी ।।
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ।।
जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई ।।
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ।।
प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी ।।
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना ।।

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहु अनँग आराती ।।
रामु सो अवध नृपति सुत सोई । की अज अगुन अलखगति कोई ।।

भावार्थ—हे सुख के राशि ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी जानते हैं, तो हे प्रभो ! आप श्री रघुनाथ जी की नाना प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये । जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दुख को क्यों सहेगा । हे शशि भूषण ! हे नाथ ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिए । हे प्रभो ! जो परमार्थ तत्व ब्रह्म के ज्ञाता और वक्ता मुनि हैं, वे श्रीरामचन्द्र जी को अनादि ब्रह्म कहते हैं; और शेष, सरस्वती, वेद और पुराण सभी श्री रघुनाथ जी का गुण गाते हैं । और हे कामदेव के शत्रु ! आप भी दिन-रात आदर पूर्वक राम-राम जपा करते हैं । ये राम वही अयोध्या के राजा के पुत्र हैं ? या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर कोई और राम हैं ?

दो०—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि ।। १०८।।

भावार्थ—यदि वे राज पुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे ? और यदि वे ब्रह्म हैं तो स्त्री के विरह में उनकी मति बावली कैसे हो गई ? इधर उनके ऐसे चरित्र देखकर और उधर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि अत्यन्त चकरा रही है ।

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ।।
अग्य जानि सिर उर जनि धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ।।
मैं वन दीखि राम प्रभुताई । अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ।।
तदपि मलिन मन बोधु न आवा । सो फलु भली भाँति हम पावा ।।
अजहूँ कछु संसउ मन मोरें । करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें ।।
प्रभु तब मोहि वहु भाँति प्रबोधा । नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ।।
तव कर अस विमोह अब नाहीं । रामकथा पर रुचि मन माहीं ।।
कहहु पुनीत राम गुन गाथा । भुजगराज भूषन सुरनाथा ।।

भावार्थ—यदि इच्छा रहित, व्यापक, समर्थ, ब्रह्म कोई और है तो हे नाथ ! मुझे उसे समझाकर कहिये । मुझे नादान समझ कर मन में क्रोध न लाइये । जिस तरह मेरा मोह दूर हो वही कीजिए । मैंने पिछले जन्म में वन में श्री रामचन्द्र जी की प्रभुता देखी थी, परन्तु अत्यन्त भयभीत होने के कारण मैंने वह बात आपको सुनायी नहीं । तो भी मेरे मलिन मन को बोध न हुआ । उसका फल भी मैंने अच्छी

तरह पा लिया। अब भी मेरे मन में कुछ संदेह हैं। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो! आप ने उस समय मुझे बहुत तरह से समझाया था। फिर भी मेरा संदेह नहीं गया। हे प्रभो! यह सोचकर मुझ पर क्रोध न कीजिए। मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है, अब तो मेरे मन में राम कथा सुनने की रुचि है। हे शेष नाग को अलंकार के रूप में धारण करने वाले देवताओं के नाथ! आप श्री रामचन्द्र जी के गुणों की पवित्र कथा कहिये।

दो०–बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१०९॥

भावार्थ–मैं पृथ्वी पर सिर टेक कर आपके चरणों की वन्दना करती हूँ। और हाथ जोड़कर बिनती करती हूँ। आप वेदों के सिद्धान्त निचोड़ कर श्री रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन कीजिए।

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु जथा जानकी बिवाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं ॥
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला ॥

भावार्थ—यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन और कर्म से आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्तअधिकारी पाते हैं, वहाँ तत्व भी उनसे नहीं छिपाते। हे देवताओं के स्वामी! मैं बहुत ही आर्त-भाव(दीनता) से पूँछती हूँ, आप मुझ पर दया करके श्री रघुनाथ जी की कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचार कर बतलाइये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है। फिर हे नाथ श्रीरामचन्द्र जी के अवतार जन्म की कथा कहिये, तथा उनका उदार बालचरित्र कहिये। फिर जिस प्रकार श्री जानकी जी से विवाह किया, वह कथा कहिए, और फिर यह बतलाइये कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा सो किस लिये। हे नाथ! फिर उन्होंने बन में रह कर जो अपार चरित्र किये तथा जिस तरह रावण को मारा, वह कहिये! हे सुखस्वरूप शंकर! फिर आप उन सारी लीलाओं को कहिए जो उन्होंने राज्य सिंहासन पर बैठ कर की थीं।

टिप्पणी—पृष्ठ ५५ और ८६ पर बताया गया है कि आजकल के उपन्यासकार कहानी समापन से प्रारम्भ करते हैं और किसी नायक या नायिका के मुख से समस्त बीती हुई घटनाओं का वर्णन कराते हैं। तुलसीदास ने इस Flash-back की उल्टी विधा अपनाई है। बालकाण्ड में बार-बार पाठकों को आगे की समस्त कथा से अवगत करा दिया है। पार्वती शिवजी से उसी शंका का समाधान चाहती हैं जो उनके पूर्वजन्म में सती को हुई थी। परन्तु अब वह इतनी अज्ञानी नहीं हैं। वह मानकर चलती हैं कि राम परब्रह्म के अवतार हैं। सिर्फ इस तर्क की शिवजी के मुख से पुष्टि चाहती हैं। साथ में वह समस्त रामकथा सुनने की उत्सुक हैं। और अपने ही आप समस्त रामकथा संक्षेप में कह जाती हैं। शिव जी से कहती हैं कि वह बतायें कि राम-अवतार क्यों हुआ ? और फिर राम की बाल-लीला और जानकी विवाह की कथा सुनायें। किस दोष के कारण उन्हें राज्य त्यागना पड़ा और बनवास हुआ ? रावण को उन्होंने कैसे मारा ? और फिर राम-राज की कथा सुनाते हुए बतावें कि राम अपनी प्रजा-सहित बैकुण्ठ कैसे सिधारे ? इस प्रकार एक चौपाई और दोहे में तुलसीदास ने पार्वती जी के मुख से समस्त राम कथा सुना दी।

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजासहित रघुबंसमनि किमी गवने निज धाम ॥११०॥

भावार्थ—हे कृपाधाम ! फिर वह अद्भुत चरित्र कहिये जो श्रीरामचन्द्र जी ने किया। वे रघुकुल शिरोमणि प्रजा सहित किस प्रकार अपने धाम को गये।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥
औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥
हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा ॥

भावार्थ—हे प्रभु ! फिर आप उस तथ्य को समझाकर कहिये, जिसकी अनुभूति में ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं; और फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का विधान सहित वर्णन कीजिये। इसके अतिरिक्त श्री रामचन्द्र जी

के और भी जो अनेक रहस्य छिपे हुये भाव अथवा चरित्र कहिये । हे नाथ ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है । हे प्रभो जो बात मैंने न पूछी हो, हे दयालु उसे भी आप छिपा न रखियेगा । वेदों ने आपको तीनों लोकों का गुरु कहा है । पामर जीव इस रहस्य को क्या जाने !" पार्वती जी के सहज सुन्दर और छलरहित (सरल) प्रश्न सुनकर शिवजी के मन को बहुत अच्छे लगे । श्री महादेव जी के हृदय में सारे राम चरित्र आ गये । प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में जल भर आया । श्री रघुनाथ जी का रूप उनके हृदय में आ गया, जिससे स्वयं परमानन्द स्वरूप शिवजी ने भी अपार सुख पाया ।

दो०—मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह ।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनैं लीन्ह ॥१११॥

भावार्थ—शिवजी दो घड़ी तक ध्यान के रस आनन्द में डूबे रहे; फिर उन्होंने मन को बाहर खींचा और तब वे प्रसन्न होकर श्री रघुनाथ जी का चरित्र वर्णन करने लगे ।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें । जिमि भुजग विनु रजु पहिचानें ॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई । जागें जथा सपन भ्रम जाई ॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू । सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि सुधा सम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी । तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी ॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकल लोक जग पावनि गंगा ।
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी । कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी ॥

भावार्थ—जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य मालूम होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है; और जिसके जान लेने पर जगत् का उसी तरह लोप हो जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है । मैं उन्हीं श्रीराम चन्द्र जी के बालरूप की वन्दना करता हूँ, जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं । मंगल के धाम, अमंगल के हरने वाले और श्री दशरथ जी के आँगन में खेलने वाले बालरूप श्री रामचन्द्र जी मुझ पर कृपा करें । त्रिपुरासुर का वध करने वाले शिवजी श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम करके आनन्द में भर कर अमृत के समान वाणी बोले—"हे गिरिराज कुमारी पार्वत ! तुम धन्य हो ! धन्य हो ! तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है । जो तुमने रघुनाथ

जी का कथाप्रसंग पूछा है, जो कथा समस्त लोकों के लिये जगत को प्रसन्न करने वाली गंगा जी के समान है। तुमने जगत के कल्याण के लिये ही प्रश्न पूछे हैं। तुम श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रेम रखने वाली हो।

दो०–राम कृपा तें पारबति सपनेहुं तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं ॥११२॥

भावार्थ–हे पार्वती ! मेरे विचार से तो श्री राम जी की कृपा से तुम्हारे मन में स्वप्न में भी शोक, मोह, सन्देह और भ्रम कुछ भी नहीं है।

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥
जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवन सब समान तेइ प्रानी ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला ॥

भावार्थ--फिर भी तुमने इसलिये वही पुरानी शंका की है कि इस प्रसंग के कहने सुनने से सबका कल्याण होगा। जिन्होंने अपने कानों से भगवान की कथा नहीं सुनी, उनके कानों के छिद्र सांप के बिल के समान हैं। जिन्होंने अपने नेत्रों से संतों के दर्शन नहीं किये, उनके वे नेत्र मोर के पंखों पर दीखने वाले नकली आंखों की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तूंबी के समान हैं जो श्री हरि और गुरु के चरण तल पर नहीं झुकते। जिन्होंने भगवान की भक्ति को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया, वे प्राणी होते हुये भी मुर्दे के समान हैं। जो जीभ श्री रामचन्द्र जी के गुणों का गान नहीं करती, वह मेठक की जीभ के समान है। वह हृदय वज्र के समान कड़ा और निष्ठुर है जो भगवान के चरित्र सुनकर हर्षित नहीं होता। हे पार्वती ! श्री रामचन्द्र जी की लीला सुनो, यह देवताओं का कल्याण करने वाली और दैत्यों को विशेष रूप से मोहित करने वाली है।

दो०–रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि ॥११३॥

भावार्थ--श्री रामचन्द्र जी की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से

सब सुखों को देने वाली है, और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा।

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सारद सुनु गिरिराजकुमारी॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥
तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥
एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

भावार्थ—श्री रामकथा हाथ की सुन्दर ताली है, जो सन्देह रूपी पक्षियों को उड़ा देती है। फिर रामकथा कलियुग रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ी है। हे गिरिराज कुमारी! तुम इसे आदर पूर्वक सुनो। वेदों ने श्रीरामचन्द्र जी के सुन्दर नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे हैं। जिस प्रकार भगवान् श्री रामचन्द्र जी अनन्त हैं, उसी तरह उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त हैं। तो भी तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर, जैसा कुछ मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसी के अनुसार मैं कहूँगा। हे पार्वती! तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और संत की मति के अनुरूप है और मुझे बहुत अच्छा लगा। परन्तु हे पार्वती! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी, यद्यपि तुमने मोह के वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा कि वे राम कोई और हैं जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान करते हैं।

दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥११४॥

भावार्थ—जो मोह रूपी पिशाच से ग्रसित हैं, पाखण्डी हैं, भगवान के चरणों से विमुख हैं और जो झूठ सच कुछ भी नहीं जानते, ऐसे अधम मनुष्य ही इस तरह कहते सुनते हैं।

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी॥

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना । राम रूप देखहिं किमि दीना ॥
जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत बिबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥

भावार्थ—जो अज्ञानी मूर्ख, अंधे और भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्पण पर विषय रूपी काई जमी हुई है; जो व्यभिचारी, छली और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्न में भी संत-समाज के दर्शन नहीं किये; और जिन्हें अपनी लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही वेदों के विरुद्ध ऐसी बातें कहा करते हैं। जिनका हृदय रूपी दर्पण मैला है और जो नेत्रों से हीन हैं वे बेचारे श्री रामचन्द्र जी का रूप कैसे देखें। जिनको निर्गुण सगुण का कुछ भी विवेक नहीं है, वो अनेक मनगढंत बातें बका करते हैं। जो श्री हरि की माया के वश में होकर जगत् में जन्म मृत्यु के चक्र में भ्रमते फिरते हैं, उनके लिये कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है। जिन्हें वायु का रोग (सन्निपात, उन्माद आदि) हो गया है, जो भूत के वश हो गये हैं, और जो नशे में हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नहीं बोलते हैं। जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा पी रखी है, उनके कहने पर कान न देना चाहिये।

सो०—अस निज हृदयँ बिचारि तजु संसय भजु राम पद ।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम ॥ ११४ ॥

भावार्थ—अपने हृदय में ऐसा विचार कर सन्देह छोड़ दो और श्री रामचन्द्र जी के चरणों को भजो ! हे पार्वती। भ्रमरूपी अन्धकार के नाश करने के लिये सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनों।

सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकासरूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना । जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना । परमानंद परेस पुराना ॥

भावार्थ—सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है (मुनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप (निराकार) अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेम-वश सगुण हो जाता है। जो निर्गुण है वही सगुण कैसे है ? जैसे जल और ओले में भेद नहीं है। दोनों जल ही हैं, ऐसे ही निर्गण और सगुण एक ही हैं। जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार (के मिटाने) के लिए सूर्य है, उसके लिए मोह का प्रसंग भी कैसे कहा जा सकता है ? श्री रामचन्द्र जी सचिदानन्द स्वरूप सूर्य हैं। वहाँ मोह रूपी रात्रि का लवलेश भी नहीं है। वे स्वभाव से ही प्रकाशरूप भगवान हैं; वहां तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल भी नहीं होता। (अज्ञानरूपी रात्रि हो तब तो विज्ञानरूपी प्रातःकाल हो; भगवान तो नित्य ज्ञान स्वरूप हैं)। हर्ष, शोक, ज्ञान, अहंकार और अभिमान, ये सब जीव के धर्म हैं। श्री रामचन्द्र जी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराणपुरुष हैं। इस बात को सारा जगत जानता है।

टिप्पणी—दोहा १२ के नीचे की चौपाई की समीक्षा में शंकराचार्य से लेकर बल्लभाचार्य तक हिन्दु वाङ्मय का सारांश बता दिया गया है। (देखिए पृष्ठ ३३-३५)। परब्रह्म के स्वरूप को लेकर कई वाद—अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत—चल पड़े थे। इन वादों से हटकर रामानन्द ने गीता का अवतारवाद अपनाया और भक्ति का सहज मार्ग दिखाया। तुलसीदास ने अवतार की जो व्याख्या दोहे १२ के नीचे की चौपाई में की, उसकी पुष्टि ऊपर की चौपाई में शिव जी के मुख से करवाई है।

पार्वती के पूछने पर कि दशरथ पुत्र राम जो साधारण नर-लीला कर रहे हैं वही क्या परब्रह्म हैं, शिव जी उत्तर देते हैं कि सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं। जो निर्गुण 'अरूप, अलख और अज' है, वह ही भक्तों के प्रेम वश सगुण रूप धारण कर लेता है। जैसे बरफ पिघल कर पानी हो जाती है, वैसे ही निर्गुण पिघलकर सगुण हो जाता है। दोनों का वस्तुस्वरूप एक ही है। राम ब्रह्म के अवतार हैं। वह सत् (आत्मा), चित् (द्रव्य) और आनन्द—सच्चिदानन्द हैं।

यहाँ पर एक और स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। तुलसीदास राम को कभी हरि, कभी ब्रह्म कहकर सम्बोधित करते हैं। ब्रह्म से ब्रह्मा की अवधारणा भिन्न है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ब्रह्म के गुणावतार हैं। ब्रह्मा में रजोगुण है, विष्णु में सतोगुण है, महेश में तमोगुण है। सतोगुण सबसे उत्तम होने के कारण आगे के अवतार सब विष्णु के अवतार माने गये। इसीलिए राम को तुलसीदास कभी ब्रह्म कहते हैं, कभी हरि (विष्णु)।

दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥ ११६ ॥

भावार्थ—"जो (पुराण) पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रगट हैं, जीव, माया और जगत सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुल मणि श्री रामचन्द्र जी मेरे स्वामी हैं।" ऐसा कहकर शिव जी ने उनको मस्तक नवाया।

निज भ्रम नहि समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥
बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥

भावार्थ—"अज्ञानी पुरुष अपने भ्रम को तो समझते नहीं और वे मूर्ख प्रभू (श्री रामचन्द्र जी) पर उसका आरोप करते हैं। जैसे आकाश में बादलों का पर्दा देखकर कुविचारी अज्ञानी लोग कहते हैं कि बादलों ने सूर्य को ढक लिया है। जो मनुष्य आँख में ऊँगली लगाकर देखता है उसके लिए तो दो चन्द्रमा प्रगट दिखते हैं। हे पार्वती ! श्री रामचन्द्र जी के विषय में मोह की कल्पना करना वैसा ही है जैसा आकाश में अन्धकार, धुंए और धूल का सोहना (दिखना)। आकाश जैसे निर्मल और निर्लेप है, उसको कोई मलीन या स्पर्श नहीं करता, इसी प्रकार भगवान श्री रामचन्द्र जी निर्मल और निर्लेप हैं। विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के देवता और जीवात्मा ये सब एक ही सहायता से एक चेतन होते हैं अर्थात विषयों का प्रकाश इन्द्रियों से, इन्द्रियों का इन्द्रियों के देवता से और इन्द्रिय देवताओं का चेतन जीवात्मा से प्रकाश होता है। इन सबका जो परम प्रकाशक है अर्थात जिससे इन सबका प्रकाश होता है वही अनादि ब्रह्म अयोध्या नरेश श्री रामचन्द्र जी हैं। यह जगत प्रकाश्य है और इसके प्रकाशक श्री राम चन्द्र जी हैं। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणों के धाम हैं। जिनकी सत्ता से मोह की सहायता पाकर यह माया भी सत्य सी भासित होती है।

दो०—रजत सीप महुं भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम नसकइ कोउ टारि ॥ ११७ ॥

भावार्थ—जैसे भ्रम के कारण सीपी में चाँदी की और (बालू पर पड़ने वाली) सूर्य की किरणों में पानी की (बिना हुए भी) प्रतीति होती है। यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालों में झूठ है, तथापि इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता।

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

भावार्थ—इसी तरह यह संसार भगवान के आश्रित रहता है। यद्यपि यह असत्य है तो भी दुःख तो देता ही है। जिस तरह स्वप्न में कोई सिर काट ले तो बिना जागे वह दुःख दूर नहीं होता। हे पार्वती! जिनकी कृपा से इस प्रकार का भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु श्री रामचन्द्र जी हैं। जिनका आदि और अन्त किसी ने नहीं जान पाया। वेदों ने अपनी बुद्धि से अनुमान करके इस प्रकार नीचे लिखे अनुसार गाया है। वह ब्रह्म बिना ही पैर के चलता है, बिना ही कान के सुनता है, बिना ही हाथ के नाना प्रकार के काम करता है, बिना मुँह जिह्वा के ही सारे छहों रसों का आनन्द लेता है और बिना ही बाणी के बहुत योग्य वक्ता है। वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना ही आँखों के देखता है और बिना ही नाक के सब गन्धों को ग्रहण करता (सूंघता) है। उस ब्रह्म की करनी सभी प्रकार से ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

दो०—जेहि इमि गावहि बेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥११८॥

भावार्थ—जिसका वेद और पण्डित इस प्रकार वर्णन करते हैं और मुनि जिनका ध्यान करते हैं, वही दशरथ नन्दन, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी श्री रामचन्द्र जी हैं।

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ।।
सादर सुमिरन जे नर करहीं । भव बारिधि गोपद इव तरहीं ।।
राम सो परमातमा भवानी । तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी ।।
अस संसय आनत उर माहीं । ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं ।।
सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना । मिटि गै सब कुतरक कै रचना ।।
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती । दारुन असंभावना बीती ।।

भावार्थ—जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं उसे राममन्त्र देकर शोक रहित कर देता हूँ (मुक्त कर देता हूँ), वही मेरे प्रभु श्री रामचन्द्र जी जड़ चेतन के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले हैं। विवश होकर (बिना इच्छा के) भी नाम लेने से मनुष्यों के अनेक जन्मों में किए हुए पाप जल जाते हैं। फिर जो मनुष्य आदर पूर्वक स्मरण करते हैं, वे तो संसार रूपी (दुस्तर) समुद्र को गाय के खुर (से बने गड्ढे) के समान (अर्थात् बिना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं। हे पार्वती ! वही परमात्मा जो श्री रामचन्द्र जी हैं, उनमें भ्रम (देखने में आता) है। तुम्हारा ऐसा कहना अत्यन्त ही अनुचित है। इस प्रकार संदेह मन में लाते ही मनुष्य के ज्ञान, वैराग्य आदि सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।" शिव जी के भ्रमनाशक बचनों को सुनकर सब कुतर्कों की रचना मिट गयी। श्री रघुनाथ जी के चरणों से उनका प्रेम और विश्वास हो गया और कठिन संभावना (जिसका होना संभव नहीं ऐसा मिथ्या कल्पना) जाती रही।

दो०—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकरुह पानि ।
बोलीं गिरिजा बचन बर मनहुँ प्रेम रस सानि ।।११६।।

भावार्थ—बार-बार स्वामी शिवजी के चरण कमलों को पकड़कर और अपने कमल के समान हाथों को जोड़कर, पार्वती जी मानों प्रेम रस में सानकर सुन्दर बचन बोलीं।

ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी । मिटा मोह सरदातप भारी ।।
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ । राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ।।
नाथ कृपाँ अब गयउ बिषादा । सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा ।।
अब मोहि आपनि किंकरि जानी । जदपि सहज जड़ नारि अयानी ।।
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू । जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ।।

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी । सर्ब रहित सब उर पुर बासी ।।
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू । मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ।।
उमा बचन सुनि परम बिनीता । रामकथा पर प्रीति पुनीता ।।

भावार्थ—"आपकी चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल वाणी सुनकर मेरा अज्ञान रूपी शरद ऋतु (क्वार) की धूप का भारी ताप मिट गया । हे कृपालु ! आपने मेरा सब सन्देह हर लिया । अब श्री रामचन्द्र जी का यथार्थ स्वरूप मेरी समझ में आ गया । हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरा विषाद जाता रहा और आपके चरणों के अनुग्रह से मैं सुखी हो गयी । यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूँ तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर, हे प्रभु ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हों तो जो बात मैंने आपसे पहले पूँछी थी वही कहिए । (यह सत्य है) कि श्री रामचन्द्र जी ब्रह्म हैं, ज्ञानस्वरूप और अविनाशी हैं । सबसे रहित और सबके हृदय रूपी नगरी में निवास करने वाले हैं । फिर हे नाथ ! उन्होंने मनुष्य का शरीर किस कारण से धारण किया । हे वृषम को ध्वजा में धारण करने वाले प्रभु ! यह मुझे समझाकर कहिए ।" पार्वती के अत्यन्त नम्र वचन सुनकर और श्री रामचन्द्र जी की कथा में उनका विशुद्ध प्रेम देखकर—

दो०—हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान ।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान ।।१२०(क)।।

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल ।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़ ।।१२०(ख)।।
सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगें कहब ।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ।।१२०(ग)।।
हरि गुन नाम अपार कथा रूप अगनित अमित ।
मैं निज मति अनुसार कहउँ उमा सादर सुनहु ।।१२०(घ)।।

भावार्थ—तब कामदेव के शत्रु स्वाभाविक ही सुजान, कृपानिधान शिवजी मन में बहुत हर्षित हुए और बहुत प्रकार पार्वती की बड़ाई करके फिर बोले "हे पार्वती ! निर्मल रामचरितमानस की यह मंगलमयी कथा सुनों, जिसे काकभुशुण्डि ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़ जी ने सुना । वह श्रेष्ठ संवाद जिस प्रकार हुआ, वह मैं आगे कहूँगा । अभी तुम श्री रामचन्द्र जी के अवतार का परम सुन्दर और पवित्र (पापनाशक) चरित्र सुनो । श्री हरि के

गुण, नाम, कथा और रूप सभी अपार, अगणित और असीम हैं। हे पार्वती ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, तुम आदर पूर्वक सुनो।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी ॥
तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

भावार्थ :—हे पार्वती ! सुनो, वेद शास्त्रों ने श्री हरि के सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित्रों का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण "बस यही है" ऐसा नहीं कहा जा सकता (अनेकों कारण हो सकते हैं) और ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें कोई जान ही नहीं सकता। हे सयानी ! सुनो, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणी से श्री रामचन्द्र जी की तर्कना नहीं की जा सकती। तथापि संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं और जैसा कुछ मेरी समझ में आता है, हे सुमुखि ! वही कारण मैं तुमको सुनाता हूँ। जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता; ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपा निधान प्रभु भाँति-भाँति के (दिव्य) शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।

टिप्पणी—दोहा १२ के नीचे की चौपाई में गीता के चौथे अध्याय के सातवें श्लोक का केवल संकेत मात्र है (देखिये पृष्ठ ३४), किन्तु ऊपर की चौपाई में उस श्लोक का भाषा में पूर्णरूपेण भावार्थ है। सम्बद्ध श्लोक और चौपाई नीचे पुनः उद्धृत किये जा रहे हैं।

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥"

तथा

"जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सोंचहि विप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥"

दो०—असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

भावार्थ—वे असुरों को मार कर देवताओं को स्थापित करते हैं। अपने वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्री रामचन्द्र जी के अवतार का यह कारण है।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥
राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक तें एका ॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु बिजय जान सब कोऊ ॥
विप्र श्राप तें दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन । जगत बिदित सुरपति मद मोचन ॥
बिजई समर बीर बिख्याता । धरि वराह बपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जन प्रह्लाद सुजस बिस्तारा ।

भावार्थ—श्री शिव अब स्पष्ट ही कहते हैं कि उसी यश को गाकर भक्तजन भवसागर से तर जाते हैं। कृपा सागर भगवान भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं। श्री रामचन्द्र जी के जन्म लेने के अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढ़कर विचित्र हैं। हे सुन्दर बुद्धि वाली भवानी ! मैं उनके दो एक जन्मों का विस्तार से वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। श्री हरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं। उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण के श्राप से असुरों का तामसी शरीर पाया। एक का नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरे का हिरण्याक्ष। ये देवराज इन्द्र के गर्व को छुड़ाने वाले सारे जगत में प्रसिद्ध हुए। वे युद्ध में विजय पाने वाले विख्यात वीर थे। इनमें से एक हिरण्याक्ष को भगवान ने बराह (सुअर) का शरीर धारण करके मारा, फिर दूसरे हिरण्य-कशिपु का नरसिंह रूप धारण कर बध किया और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया।

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान ।
कुम्भकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान ॥१२२॥

भावार्थ—वे ही दोनों जाकर देवताओं को जीतने वाले बड़े योद्धा रावण और कुम्भकर्ण नाम के बड़े बलवान और महावीर राक्षस हुए, जिन्हें सारा जगत जानता है।

मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना ।।
एक बार तिन्ह के हित लागी । धरेउ सरीर भगत अनुरागी ।।
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता । दसरथ कौसल्या बिख्याता ।।
एक कलप एहि बिधि अवतारा । चरित पवित्र किए संसारा ।।
एक कलप सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ।।
संभु कीन्ह संग्राम अपारा । दनुज महाबल मरइ न मारा ।।
परम सती असुराधिप नारी । तेहिं बल ताहि न जितहिं पुरारी ।।

भावार्थ—भगवान के द्वारा मारे जाने पर भी वे (हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु) इसीलिये मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मण के वचन (श्राप) का प्रमाण तीन जन्म के लिये था। अत: एक बार उनके कल्याण के लिये भक्त-प्रेमी भगवान ने फिर अवतार लिया। वहाँ उस अवतार में कश्यप और अदिति उनके पिता-माता हुए, जो दशरथ और कौसिल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं। एक कल्प में सब देवताओं को जलंधर दैत्य से युद्ध में हार जाने के कारण दुखी देखकर शिवजी ने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया, पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरा। उस दैत्य राज की स्त्री परम सती बड़ी ही पतिव्रता थी। उसी के प्रताप से त्रिपुरासुर जैसे अजेय शत्रु को विनाश करने वाले शिवजी भी उस दैत्य को नहीं जीत सके।

टिप्पणी—यह चौपाई केवल सात विषम पंक्तियों की है। दोहा ७७ के नीचे की चौपाई के समान (देखिए पृष्ठ ११६) यह चौपाई भी बालकाण्ड में एक अपवाद रूप विद्यमान है। विष्णु अवतार का पहले सामान्य प्रयोजन बताकर–धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश–शिवजी राम अवतार के विशेष कारण बताते हैं। सबसे पहला कारण था जय-विजय को श्राप से मुक्त कराना, जिसकी अन्तर्कथा इस प्रकार है :—

अन्तर्कथा—जय-विजय दोनों विष्णु के द्वार रक्षक थे। एक समय इन लोगों ने सनकादिक ऋषियों को विष्णु के यहाँ जाने से रोका, अतएव ऋषियों ने इन्हें शापित किया। पुन: जब इन्होंने प्रार्थना की तो ऋषि बोले–"हम लोगों का शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। अतएव तुम लोगों की दो प्रकार से मुक्ति हो सकती है। एक तो विष्णु की शत्रुता करने से और दूसरे मित्रता करने से।" इन लोगों ने शीघ्र बैकुण्ठ जाने के लिए शत्रुभाव से मुक्ति की प्रार्थना की। मुनियों के शाप से जय सतयुग में हिरण्याक्ष, त्रेता में रावण और द्वापर में शिशुपाल हुआ था। तीनों युगों में विष्णु अवतार के हाथ से मारे जाने के कारण इसकी मुक्ति हुई थी।

सतयुग में वाराह अवतार ने इसे मारा, त्रेता में राम ने और द्वापर में कृष्ण ने। इसी प्रकार विजय सतयुग में हिरण्यकशिपु* हुआ जिसे नरसिंह अवतार ने मारा, और त्रेता युग में कुम्भकरण हुआ जिसे राम ने मारा और द्वापर में दन्तवक्त्र जिसे श्रीकृष्ण ने मारा। सारांश में राम का अवतार रावण और उसके भाई कुम्भकरण को मारने के लिए हुआ।

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह ॥ १२३ ॥

भावार्थ—प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत भंग करके देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान को शाप दिया।

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ ॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी ॥
नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी ॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी ॥

भावार्थ—लीलाओं के भण्डार कृपालु हरि ने उस स्त्री के श्राप को प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। जलन्धर उस कल्प में रावण हुआ जिसे रामचन्द्र जी ने युद्ध में मारकर परमपद दिया। एक जन्म का कारण यह था कि जिससे श्री रामचन्द्र जी ने, मनुष्य देह धारण किया। हे भरद्वाज मुनि सुनो, प्रभु के प्रत्येक अवतार की कथा का कवियों ने नाना प्रकार से वर्णन किया है। एक बार नारद जी ने श्राप दिया, अतः एक कल्प में उसके लिये अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वती जी बड़ी चकित हुईं और बोली कि नारद जी तो विष्णु भक्त और ज्ञानी हैं। मुनि ने भगवान को शाप किस कारण दिया ? लक्ष्मी पति भगवान ने उनका क्या अपराध किया था ? हे पुरारि शंकर जी यह कथा मुझसे कहिये। मुनि नारद के मन में मोह होना बड़े आश्चर्य की बात है।

---

* अन्तर्कथा के लिए, देखिए पृष्ठ ५७ और ११८

अन्तर्कथा—दोहा १२१ के नीचे की चौपाई में एक कारण राम-जन्म का विष्णु के द्वारपाल जय को श्राप-मुक्त करना बताया गया है। दोहा १२२ और १२३ के नीचे की चौपाइयों में राम-जन्म का दूसरा कारण बताया गया है। उसकी अन्तर्कथा इस प्रकार है :—

जलन्धर—एक समय इन्द्र महादेव के दर्शन के लिए कैलास गये हुए थे। वहाँ उन्होंने एक भीमाकृति पुरुष को देखा और शिवजी कहाँ हैं, यह पूँछा। उसने इन्द्र को कुछ उत्तर नहीं दिया। इस पर क्रुद्ध होकर इन्द्र ने उस मनुष्य के सिर पर वज्र मारा। उस मनुष्य के मस्तक से अग्नि की ज्वाला निकली और वह इन्द्र को जलाने के लिए चली। इन्द्र ने अब समझ लिया कि मैंने जिसके मस्तक पर वज्रापात किया है वह शिव ही हैं। तब तो इन्द्र महादेव जी की स्तुति करने लगे। इन्द्र की स्तुति से सन्तुष्ट होकर महादेव जी ने अग्नि को समुद्र में फेंक दिया। उस अग्नि से एक बालक उत्पन्न हुआ और वह रोने लगा। उसके रोने से संसार बहरा हो गया। इसका कारण जानने के लिए ब्रह्मा समुद्र के तीर पर उपस्थित हुए। समुद्र ने ब्रह्मा से कहा यह हमारा पुत्र है, आप इसको लेकर पालन करें। ब्रह्मा ने उस बालक को गोदी में ले लिया। उस लड़के ने ब्रह्मा की मूँछ इस प्रकार जोर से पकड़ी कि उनकी आँखों से जल निकल पड़ा। इस कारण ब्रह्मा ने उस लड़के का नाम 'जलन्धर' रखा और उसको वर दिया कि रुद्र के अतिरिक्त और कोई इस बालक को मार नहीं सकता। ब्रह्मा ने उस बालक को असुर राज्य पर स्थापित किया। धीरे-धीरे वह प्रतापी हो गया और स्वर्ग राज्य पर चढ़ाई करके उसने उसे भी अपने हस्तगत कर लिया। स्वर्गच्युत होकर इन्द्र महादेव की शरण में गये। महादेव ने जलन्धर को मारकर इन्द्र को पुनः स्वर्ग का राजा बना दिया। जलन्धर को वर था कि जब तक इसकी स्त्री वृन्दा का चरित्र निष्कलंक रहेगा, तब तक उसे कोई नहीं मार सकता। विष्णु ने जलन्धर का रूप धारण कर उसका सतीत्व नष्ट किया, जिससे शिव ने थोड़े ही परिश्रम से उसे मार डाला।

वृन्दा ने विष्णु को श्राप दिया कि जैसे छद्म से तुमने मुझे अपने पति से विरक्त किया है, उसी प्रकार दूसरे जन्म में मेरा पति छद्म से तुम्हें अपनी पत्नी से विरक्त करेगा। अतएव जलन्धर मर कर रावण हुआ और उसने साधु का वेष धारण करके सीता का अपहरण किया।

दो०—बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तेहि छन होइ ॥१२४(क)॥

सो०—कहउँ राम गुन गाथ भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भजु तुलसी तजि मान मद ॥१२४(ख)॥

भावार्थ—तब महादेव जी ने हँसकर कहा -"न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्री रघुनाथ जी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है।" याज्ञवल्क्य जी कहते हैं "हे भरद्वाज मैं श्रीरामचन्द्र जी के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो।" तुलसीदास जी कहते हैं—"मान और मद को छोड़कर भव-भय का नाश करने वाले रघुनाथ जी को भजो।"

टिप्पणी—पृष्ठ ७५ पर बताया गया है कि 'मानस' के चार संवाद हैं जिनकी तुलना तुलसीदास ने 'मानस' के चार घाटों से दी है। पहला संवाद याज्ञवल्क्य-भरद्वाज का है जिसमें सती-मोह और पार्वती-विवाह का वर्णन बहुत विस्तार से पृष्ठ ८२ से पृष्ठ १४५ तक किया गया है। इसके बाद शिव-पार्वती संवाद चलता है जिसमें राम-जन्म के कई कारण बताये गये हैं। पहला कारण विष्णु के द्वार-पाल जय-विजय को श्राप-मुक्त कराना है। दूसरा कारण, विष्णु को जलन्धर की पत्नी वृन्दा द्वारा दिये हुए श्राप को प्रमाणित करना है। तीसरा कारण विष्णु को नारद ने जो श्राप दिया था उसको चरितार्थ करना है। जब पार्वती जी सुनती हैं कि नारद ने विष्णु को श्राप दिया था तो उनको विश्वास नहीं होता क्योंकि नारद तो विष्णु-भक्त हैं और परम ज्ञानी हैं। उनकी शंका समाधान के लिए शिवजी नारद के श्राप की अन्तर्कथा बहुत विस्तारपूर्वक दोहा १२४ के नीचे की चौपाई से लेकर दोहा १३६ के नीचे की चौपाई तक वर्णित करते हैं।

इस शंकर-पार्वती संवाद में भ्रमवश तुलसीदास ने भरद्वाज और स्वयं अपने को श्रोताओं में शामिल कर लिया है। देखिये नीचे रेखांकित शब्द—

"प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु **मुनि** बरनि कबिन्ह घनेरी॥
'कहऊँ राम गुन गाथ **भरद्वाज** सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ भज **तुलसी** तजि मान मद॥"

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥
मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू॥
सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥

भावार्थ—हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके समीप ही सुन्दर गंगा जी बहती थी। वह परम पवित्र सुन्दर आश्रम देखने पर नारद जी के मन को सुहावना लगा। पर्वत, नदी और वन के (सुन्दर) विभागों को देखकर नारद जी का लक्ष्मीकान्त भगवान के चरणों में प्रेम हो गया। भगवान का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के श्राप की (जो श्राप उन्हें दक्ष प्रजापति ने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) गति रुक गयी और मन के स्वाभाविक ही निर्मल होने से उनकी समाधि लग गयी। नारद मुनि की (यह तपोमयी) स्थिति देखकर देवराज इन्द्र डर गया। उसने कामदेव को बुला कर उसका आदर सत्कार किया और कहा कि मेरे हित के लिए तुम अपने सहायकों सहित (नारद की समाधि को भंग करने को) जाओ। यह सुनकर मीनध्वज कामदेव मन में प्रसन्न होकर चला। इन्द्र के मन में यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं। जगत में जो कामी लोभी होते हैं वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं।

दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज ॥ १२५ ॥

भावार्थ—जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे की कहीं इस हड्डी को सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्र को नारद जी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते हुए लाज नहीं आयी।

पात्र-परिचय—क्योंकि इस दोहे के आगे नारद प्रसंग प्रारम्भ होता है, इसलिए यहाँ पात्र-परिचय करा देना आवश्यक है :—

नारद—ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। ब्रह्मा ने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा नारद की सृष्टि की। 'नार' शब्द का अर्थ है जल। सर्वदा तर्पण करने के कारण इनका नाम नारद पड़ा। प्रजापति दक्ष ने प्रजा-सृष्टि की उत्कट इच्छा के कारण वीरण प्रजापति की कन्या अश्विनी को ब्याहा और उसके गर्भ से ५ हजार कन्यायें उत्पन्न कीं। हर्यश्व, शबलाश्व आदि दक्ष पुत्रों को नारद ने योगशास्त्र का उपदेश देकर संसार त्यागी बना दिया। इससे दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुए और शाप देकर उन्होंने नारद को नाश कर दिया। दक्ष के निकट आकर ब्रह्मा ने नारद के जीवन की प्रार्थना की, तब दक्ष ने अपनी एक कन्या ब्रह्मा को देकर कहा कि कश्यप इस कन्या को ब्याहे और इसी के गर्भ से पुनः नारद उत्पन्न होगा। ब्रह्मा ने दक्ष कन्या कश्यप को दी और उसके गर्भ से पुनः नारद उत्पन्न हुए। अधिक जानकारी के लिए, देखिए अन्तर्कथा पृष्ठ १०१-१०२ पर।

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी ॥
रंभादिक सुरनारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना ॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा ॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥
काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भयँ डरेउ मनोभव पापी ॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू ॥

भावार्थ—जब कामदेव उस आश्रम में गया तो उसने अपनी माया से वहाँ वसन्त ऋतु को उत्पन्न किया। तरह-तरह के वृक्षों पर रंग-बिरंगे फूल खिल गये और उन पर कोयलें कूकने लगी और भौंरे गुँजार करने लगे। कामाग्नि को भड़काने वाली तीन प्रकार की शीतल, मन्द और सुगन्ध सुहावनी हवा चलने लगी। रम्भा आदि नवयुवती देवांगनाएं जो सब की सब काम कला में निपुण थी, वे बहुत प्रकार की तानों की तरंग के साथ गाने लगी और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार के खेल खेलने लगी। कामदेव अपने इन सहायकों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकार के माया जाल किये। परन्तु कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही नाश के भय से डर गया। लक्ष्मीपति भगवान जिसके बड़े रक्षक हों, भला उसकी सीमा मर्यादा को कोई दबा सकता है।

दो०—सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन ॥ १२६ ॥

भावार्थ—तब अपने सहायकों समेत कामदेव ने बहुत डरकर और अपने मन से हार मानकर बहुत ही अति दीन बचन कहते हुए मुनि के चरणों को जा पकड़ा।

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई ॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी ॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥
तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं ॥

मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥
बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥

भावार्थ—नारद जी के मन में कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कह कर कामदेव को सन्तुष्ट किया। तब मुनि के चरणों में सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकों सहित लौट गया। देवराज इन्द्र की सभा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत सब कही, जिसे सुन-कर सबके मन में आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनि की बड़ाई करके श्री हरि को सिर नवाया। तब नारद जी शिव जी के पास गये। उनके मन में इस बात का अहंकार हो गया कि हमने कामदेव को जीत लिया। उन्होंने कामदेव के चरित्र शिवजी को सुनाये और महादेव जी ने उन (नारद जी) को अत्यन्त प्रिय जानकर इस प्रकार शिक्षा दी। "हे मुनि! मैं तुमसे बार-बार विनती करता हू कि जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनाई है, उस तरह भगवान श्री हरि को कभी मत सुनाना। चर्चा भी चलें तो इसे छिपा जाना।"

दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु हरि इच्छा बलवान॥ १२७॥

भावार्थ—यद्यपि शिवजी ने यह हित की शिक्षा दी, पर नारद जी को वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज! अब कौतुक सुनो। हरि की इच्छा बड़ी बलवान है।

लोकोक्ति—दोहा १२७ और उसके नीचे की चौपाई में दो लोकोक्ति हैं, जो सोरठा ५१ के नीचे की चौपाई की लोकोक्ति का रूपान्तर हैं। तीनों लोको-क्तियों का एक ही आशय है।

'हरि इच्छा बलवान'—दोहा १२७

'राम कीन्ह चाहहिं सोई होई'—दोहा १२७ के नीचे की पंक्ति

'होइहि सोइ जो राम रचि राखा'—सोरठा ५१ के नीचे की अन्तिम चौपाई। तीनों लोकोक्तियों की समीक्षा के लिए देखिये पृष्ठ ९२-९३।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तव बिरंचि के लोक सिधाए॥
एक बार करतल बर वीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥

हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता ॥
बोले बिहसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया ॥
काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे ॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

भावार्थ—श्री राम चन्द्र जी जो करना चाहते हैं वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्री शिव जी के वचन नारद जी के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को चल दिये। एक बार गान विद्या में निपुण मुनिनाथ नारद जी हाथ में सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागर को गये, जहाँ वेदों के मस्तकस्वरूप (वेदान्त तत्व) श्री निवास भगवान नारायण रहते हैं। रामनिवास भगवान उठकर बड़े आनन्द से उनसे मिले और ऋषि (नारद जी) के साथ आसन पर बैठ गये। चराचर के स्वामी भगवान हँसकर बोले: 'हे मुनि, आज आपने बहुत दिनों पर दया की।' यद्यपि श्री शिव जी ने उन्हें पहले से ही बरज रखा था, तो भी नारद जी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान को कह सुनाया। श्री रघुनाथ जी की माया बड़ी ही प्रबल है। जगत में ऐसा कौन जन्मा है, जिसे उसने मोहित न किया हो।

दो०—रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान ॥ १२८ ॥

भावार्थ—भगवान रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले—'हे मुनिराज, आपका स्मरण करने से दूसरों के मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है)।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें ॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी ॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई ॥
तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई ॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ॥

भावार्थ—हे मुनि ! सुनिये मोह तो उसके मन में होता है जिसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्य-व्रत में तत्पर और बडे धीरबुद्धि हैं।

भला कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है।' नारद जी ने अभिमान के साथ कहा—'भगवान, यह सब आपकी कृपा है।' करूनानिधान भगवान ने मन में विचार कर देखा कि इनके मन में गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है। मैं उसे तुरन्त ही उखाड़ फेकूँगा, क्योंकि सेवकों का हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा जिससे मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो। तब नारद जी भगवान के चरणों में सिर नवाकर चले। उनके हृदय में अभिमान और भी बढ़ गया। तब लक्ष्मीपति भगवान ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी सुनो।

दो०—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥ १२९॥

भावार्थ—उस हरिमाया ने रास्ते में सौ योजन (चार सौ कोस) का एक नगर रचा। उस नगर की भाँति-भाँति की रचनाएं लक्ष्मी निवास भगवान विष्णु के नगर वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर थीं।

बसहिं नगर सुंदर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥
सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥
सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥
मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूप गृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए॥

भावार्थ—उस नगर में ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे मानों बहुत से कामदेव और उसकी स्त्री रति ही मनुष्य शरीर धारण किये हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नामक राजा रहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेना के समूह थे। उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रों के समान था। वह रूप, तेज, बल और नीति का घर था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मी जी भी मोहित हो जायें। वह सब गुणों की खान भगवान की माया ही थी। उसकी शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है। वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आये हुए थे। खिलवाड़ी मुनि नारद जी उस नगर में गये और नगर-निवासियों से उन्होंने सब हाल पूँछा।

सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आये। राजा ने पूजा करके मुनि को (आसन पर) बैठाया।

दो०—आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि॥ १३०॥

भावार्थ—फिर राजा ने राजकुमारी को लाकर नारद जी को दिखलाया (और पूछा कि) 'हे नाथ आप अपने हृदय में विचार कर इसके सब गुण-दोष कहिये।'

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदयँ हरष नहिं प्रगट बखाने॥
जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥

भावार्थ:—उसके रूप को देखकर मुनि वैराग्य भूल गये और बड़ी देर तक उसकी ओर देखते ही रह गये। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गये और हृदय में हर्षित हुए पर प्रकट रूप में उन लक्षणों को नहीं कहा। (लक्षणों को देखकर और उन पर विचार कर वे मन में कहने लगे कि) जो इसे व्याहेगा, वह अमर होगा और रणभूमि में कोई उसे जीत न सकेगा। यह शील-निधि की कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे। सब लक्षणों को विचार कर मुनि ने अपने हृदय में रख लिया और राजा से कुछ दूसरे ही बनाकर कह दिये। राजा से लड़की के सुलक्षण कहकर नारद जी चल दिये। पर उनके मन में यह चिन्ता थी कि—मैं जाकर सोच-विचार कर अब वही उपाय करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तप (से तो) कुछ हो नहीं सकता। हे विधाता! मुझे यह कन्या किस प्रकार मिलेगी।

दो०—एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥ १३१॥

भावार्थ—इस समय तो बड़ी शोभा और विशाल सुन्दर रूप चाहिए, जिसे देखकर राजकुमारी मुझ पर रीझ जाय और तब जयमाल मेरे गले में डाल दे।

हरि सन मागौं सुँदरताई । होइहि जात गहरु अति भाई ।।
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ । एहि अबसर सहाय सोइ होऊ ।।
बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।।
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने । होइहि काजु हिएँ हरषाने ।।
अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा करि होहु सहाई ।।
आपन रूप देहु प्रभु मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही ।।
जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा । करहु सो बेगि दास मैं तोरा ।।
निज माया बल देखि बिसाला । हियँ हँसि बोले दीनदयाला ।।

भावार्थ—एक काम करूँ कि भगवान से सुन्दरता माँगूँ। पर भाई उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जायेगी। किन्तु श्री हरि के समान मेरा कोई हित भी नहीं है, इसलिए इस समय वे ही मेरे सहायक हों। उस समय नारद जी ने भगवान की बहुत प्रकार से विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु (वहीं) प्रकट हो गये। स्वामी को देखकर नारद जी के नेत्र शीतल हो गये और वे मन में बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जायेगा। नारद जी ने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनायी (और प्रार्थना की कि) कृपा कीजिये और कृपा करके मेरे सहायक बनिये। हे प्रभो! आप अपना रूप मुझको दीजिये, और किसी प्रकार मैं उस (राजकन्या) को नहीं पा सकता। हे नाथ! जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिये। मैं आपका दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देख, दीनदयाल मन ही मन हँसकर बोले—

दो०—जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार ।। १३२ ।।

भावार्थ—'हे नारद जी सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा हम वही करेंगे, और कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होगा।

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ।।
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ । कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ।।
माया बिबस भए मुनि मूढ़ा । समुझी नहीं हरि गिरा निगूढ़ा ।।
गवने तुरत तहाँ रिषिराई । जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई ।।
निज निज आसन बैठे राजा । बहु बनाव करि सहित समाजा ।।
मुनि मन हरष रूप अति मोरें । मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें ।।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा ॥

भावार्थ—हे योगी मुनि ! सुनिये जैसे रोग से व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता, उसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने की ठान ली है।' ऐसा कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। (भगवान की) माया के वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान की अगूढ़ स्पष्ट वाणी को भी न समझ सके। ऋषिराज नारद जी तुरन्त वहाँ गये जहाँ स्वयंवर की भूमि बनायी गयी थी। राजा खूब सज-धज कर समाज सहित अपने-अपने आसन पर बैठे थे। मुनि (नारद) मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरे को न बरेगी। कृपानिधान भगवान ने मुनि के कल्याण के लिए उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, पर यह चरित्र कोई भी न जान सका। सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया।

दो०--रहे तहाँ दुइ रुद्र गन ते जानहिं सब भेउ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं परम कौतुकी तेउ ॥ १३३ ॥

भावार्थ—वहाँ दो शिव जी के गण भी थे। सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का भेष बनाकर सारी लीला देखते-फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ ॥
करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी ॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभु गन अति सचु पाएँ ॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम सानी ॥
काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा ॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदयँ क्रोध भा तेही ॥

भावार्थ—नारद जी अपने हृदय में रूप का बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे, वे शिव जी के गण भी वहीं बैठ गये। ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी इस चाल को कोई नहीं जान सका। वे नारद जी को सुना-सुना कर व्यंग्य बचन कहते थे। भगवान ने इनको अच्छी सुन्दरता दी है। इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जायगी और हरि जानकर इन्हीं

को खास तौर से बरेगी। नारद मुनि को मोह हो रहा था। क्योंकि उनका मन दूसरे के हाथ माया के वश में था। शिव जी के गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी हुई होने के कारण ये बातें उनकी समझ में नहीं आती थीं। उनकी बातों को वह अपनी प्रसंशा समझ रहे थे। इस विशेष चरित्र को और किसी ने नहीं जाना। केवल राजकन्या ने (नारद जी का) वह रूप देखा। उनका बंदर का सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया।

दो०—सखी संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब कर सरोज जयमाल॥ १३४॥

भावार्थ—तब राजकुमारी सखियों को साथ लेकर इस तरह चली मानों राजहंसिनी चल रही है। वह अपने कमल जैसे हाथों में जय माला लिये सब राजाओं को देखती हुई घूमने लगी।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥
धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भयँ भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

भावार्थ—जिस ओर नारद जी (रूप के गर्व में) फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं देखा। नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी दशा देखकर शिवगण मुस्कराते हैं। कृपालु भगवान जी राजा का शरीर धारण कर वहाँ जा पहुँचे। राजकुमारी ने हर्षित होकर उनके गले में जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान दुलहिन ले गये। सारी राजमण्डली निराश हो गई। मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट हो गयी थी। इससे वे (राजकुमारी को गयी देख) बहुत ही विकल हो गये। मानो गाँठ से मणि गिर गयी हो। तब शिव जी के गणों ने मुस्कराकर कहा—'जाकर दर्पण में अपना मुँह तो देखिये।' ऐसा कह कर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनि ने जल में झाँक कर अपना मुँह

देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजी के उन गणों को अत्यन्त कठोर श्राप दिया।

दो०—होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥ १३५॥

भावार्थ—तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चखो। अब फिर किसी मुनि की हँसी करना।

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयँ संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥
देहउँ श्राप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥
बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥
पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥

भावार्थ—नारद ने फिर अपने मुख का प्रतिबिम्ब जल में देखा। फिर भी हृदय में सन्तोष नहीं आया। विश्वास नहीं हुआ। क्रोध के मारे उनके होंठ फड़कने लगे और वह तुरन्त विष्णुधाम (बैकुण्ठ) की ओर चल पड़े। (मन में सोचते जाते थे) जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगत में मेरी हँसी करायी। दैत्यों के शत्रु भगवान हरि उन्हें बीच रास्ते में ही मिल गये। साथ में लक्ष्मी जी और वही राजकुमारी थी। देवताओं के स्वामी भगवान ने मीठी वाणी में कहा 'हे मुनि ! व्याकुल की तरह कहा चले।' ये शब्द सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया। माया के वशीभूत होने के कारण मन में चेत नहीं रहा। मुनि ने कहा "तुम दूसरों की सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे और बहुत कपट हैं। समुद्र मथते समय तुमने शिव को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया।

दो०—असुर सुरा बिष संकरहि आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट ब्यवहारु॥ १३६॥

भावार्थ—असुरों को मदिरा और शिवजी को विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर (कौस्तुभ) मणि ली। तुम बड़े धोखे बाज और मतलबी हो। सदा कपट का व्यवहार करते हो।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ।।
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू ।।
डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू ।।
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ।।
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ।।
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ।।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ।।

भावार्थ—तुम परम स्वतंत्र हो, सिर पर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मन को भाता है, (स्वच्छन्दता से) वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो। हृदय में हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते। सब को ठग-ठग कर परक गये हो, और अत्यन्त निडर हो गये; इसी से (ठगने के काम में) मन में सदा उत्साह रहता है। शुभ और अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते। अब तक तुमको किसी ने ठीक नहीं किया था। अब की तुमने अच्छे घर बायना (न्यौता) दिया है (मेरे जैसे जबरदस्त आदमी से छेड़खानी की है)। अतः अपने किये का फल अवश्य पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा श्राप है। तुमने हमारा रूप बन्दर का सा बना दिया था इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेगें। (मैं जिस स्त्री को चाहता था उससे मेरा वियोग करा कर) तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होगे।"

दो०—श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि ।। १३७ ।।

भावार्थ—श्राप को सिर पर चढ़ाकर, हृदय में हर्षित होते हुए, नारद जी से बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली।

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ।।
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारित हरना ।।
मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला ।।
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ।।

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा ॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें ॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई ॥

भावार्थ—जब भगवान ने अपनी माया को हटा लिया, तब न वहाँ लक्ष्मी ही रह गई और न राजकुमारी ही। तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर श्री हरि के चरण पकड़ लिये और कहा—'हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपालु ! मेरा श्राप मिथ्या हो जाय।' तब दीनों पर दया करने वाले भगवान ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा (से हुआ) है। मुनि ने कहा—'मैंने आपको अनेक खोटे वचन कहे हैं। मेरे पाप कैसे मिटेगें ?' (भगवान ने कहा)—'जाकर शंकर जी के शतनाम का जाप करो, इससे हृदय में तुरन्त शान्ति (मिलेगी) होगी। शिव जी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना। हे मुनि ! पुरारि (शिवजी) जिस पर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी पर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आयेगी।'

टिप्पणी—ऊपर कहा जा चुका है कि यद्यपि रामचरितमानस शांत-रस प्रधान ग्रंथ है, तथापि तुलसीदास ने यत्र-तत्र शेष आठ रसों के पुट भी इस महा-काव्य में डाल दिये हैं। श्रृंगार और वीभत्स रस के उदाहरण क्रमशः पृष्ठ १२३-२६ और १३३ पर दिये जा चुके हैं। दोहा १२४ से लेकर दोहा १३८ के नीचे की चौपाईया (पृष्ठ १६८-१८२) हास्य रस परिपूर्ण हैं। नारद को कामदेव पर विजय पाने का बहुत गर्व हो गया था। इस गर्व को दूर करने के लिए विष्णु भगवान ने एक माया नगरी का सृजन किया। वहाँ अपनी पत्नी लक्ष्मी को विश्वमोहिनी के रूप में भेज दिया। विश्वमोहिनी का रूप देखकर नारद उस पर मुग्ध हो गए। उससे विवाह करने की उनमें प्रबल इच्छा जागृत हो गई। उन्होंने भगवान विष्णु से प्रार्थना की कि वह अपना सुन्दर रूप उन्हें दे दें ताकि विश्वमोहिनी स्वयंबर में उन्हीं के गले में वरमाला डाले। याद करते ही विष्णु भगवान प्रकट हो गये और उन्होंने नारद को आश्वासन दिया

'जेहि विधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोई हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार ॥'

तब नारद को पूर्ण विश्वास हो गया कि विष्णु भगवान ने उनको अपना रूप दे दिया है और विश्वमोहिनी अवश्य उनको वरेगी। वास्तव में, विष्णु भगवान ने उन्हें बन्दर की आकृति दे दी।

उस स्वयंबर में ब्राह्मण का वेश धर के शिव जी के दो गण भी आये थे। वह बराबर नारद जी को झूठा आश्वासन दे रहे थे कि आप बहुत सुन्दर लग रहे हैं। राजकुमारी जयमाला आपही के गले में डालेगी। परन्तु नारद जी का भयंकर रूप देकर राजकुमारी को बड़ा क्रोध आया। वह नारद से दूर हट कर योग्य वर ढूढने लगी। इतने में विष्णु भगवान स्वयं नृप का रूप धारण कर स्वयंबर में आ गये और विश्वमोहिनी ने उनके गले में वरमाला डाल दी। यह देखकर जब नारद बहुत विकल हुए, तो शिव के गणों ने उनसे कहा "जरा शीशे में जाकर अपना मुँह तो देखिये।" जब नारद ने जल में अपना प्रतिबिम्ब देखा, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने दोनों गणों को और विष्णु को श्राप दिया। श्राप को शिरोधार्य करके विष्णु ने अपनी माया हटा ली और नारद अपने वास्तविक रूप में आ गए। न कहीं स्वयंबर था, न कोई विश्वमोहिनी और न कोई प्रणीत राजा। इस पूरे चमत्कार की कथा पढ़ने में शेक्सपियर के "A Midsummer Night's Dream" का आनन्द आता है।

दो०—बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान॥ १३८॥

भावार्थ—बहुत प्रकार से मुनि को समझा बुझा कर (ढाढस देकर) तब प्रभु अन्तर्द्धान हो गये और नारद जी श्री रामचन्द्र जी के गुणों का गान करते हुए सत्यलोक (ब्रह्मलोक) को चले।

हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगतमोह मन हरष बिसेषी॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत वचन सुनाए॥
हर गन हम न बिप्र मुनिराया। वड़ अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥
निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव विपुल तेज वल होऊ॥
भुजबल विस्व जितव तुम्ह जहिया। धरिहहिं विष्नु मनुज तनु तहिआ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई॥

भावार्थ—श्री शिव के गणों ने जब मुनि नारद को मोह रहित देखा और साथ ही मनमें अति प्रसन्न होकर जाते देखा, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारद जी के पास आये और उनके चरण पकड़ कर दीन बचन बोले। 'हे मुनिराज! हम ब्राह्मण नहीं हैं। शिवजी के गण हैं। समने बड़ा अपराध किया जिसका फल

हमने पा लिया। हे कृपालु! (शाप देकर) अब शाप दूर करने की कृपा कीजिए।' दीनों पर दया करने वाले नारद जी ने कहा—'तुम दोनों जाकर राक्षस होओ। तुम्हें महान ऐश्वर्य, तेज और बल की प्राप्ति होगी। तुम अपनी भुजाओं के बल से जब सारे विश्व को जीत लोगे, तब भगवान विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे। युद्ध में श्री हरि के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसार में जन्म नहीं लोगे।' वे दोनों मुनि के चरणों में सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए।

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुबि भार॥ १३९॥

भावार्थ—देवताओं को प्रसन्न करने वाले, सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले, भगवान ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का अवतार लिया था।

एहि बिधि जनम करम हरिकेरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाबिधि करहीं॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥
हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥
यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमायाँ मोहहिं मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुख हारी॥

भावार्थ—इस प्रकार भगवान के अनेकों सुन्दर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं। प्रत्येक कल्प में जब जब भगवान अवतार लेते हैं और नाना प्रकार की सुन्दर लीलाएं करते हैं, तब तब मुनीश्वरों ने परम पवित्र काव्य रचना करके उनकी कथाओं का गान किया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है। जिनको सुनकर समझदार (विवेकी) लोग आश्चर्य नहीं करते। श्री हरि अनन्त हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनकी कथा भी अनन्त हैं। सब सन्त लोग उसे बहुत प्रकार से कहते सुनते हैं। श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र करोड़ काव्यों में भी गाये नहीं जा सकते। (शिव जी कहते हैं कि) 'हे पार्वती! मैंने यह बतलाने के लिये इस प्रसंग को कहा कि ज्ञानी मुनि भी भगवान की माया से मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागत

का हित करने वाले हैं। वे सेवा करने में भी बहुत सुलभ और सब दुःख हरने वाले हैं।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई में एक बहुत मार्मिक लोकोक्ति है जिसके विभिन्न दृष्टिकोण से विभिन्न अर्थ निकलते हैं :

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।'

भगवान के न केवल अनेक रूप है, अपितु उनके विषय में अनेक कथाएं हैं। तुलसीदास ने रामावतार के छः कारण बताये हैं:--

१. जय-विजय विष्णु के द्वारपाल थे। इन्होंने सनकादि ऋषियों को विष्णु के यहाँ जाने से रोका। ऋषियों ने इन्हें श्राप दिया। फलस्वरूप सतयुग में यह हिरण्याक्ष और हिरण्यकाशिपु दानव हुए। और त्रेता में रावण और कुम्भकरण हुए। इनके उद्धार के लिए राम ने अवतार लिया (पृष्ठ १६४-१६६, दोहा १२१-१२२ के नीचे की चौपाई)।

२. ब्रह्मा ने जलन्धर दैत्य को वरदान दिया था कि शिव के अतिरिक्त उसे कोई नहीं मार सकेगा। साथ में उसे यह भी वरदान था कि जब तक उसकी पत्नी वृन्दा सती रहेगी, उसे कोई नहीं मार सकेगा। विष्णु ने छल से जलन्धर रूप धारण कर वृन्दा का सतीत्व हरा। वृन्दा ने श्राप दिया कि जिस प्रकार छल से तुमने मुझे अपने पति से विरक्त किया, उसी प्रकार दूसरे जन्म में मेरा पति छल से तुम्हें तुम्हारी पत्नी से विरक्त करेगा। वृन्दा के शाप को प्रमाणित करने के लिए राम का अवतार हुआ (पृष्ठ १६५-१६७; दोहा १२२-१२३ के नीचे की चौपाई)।

३. कामदेव पर विजय पाने का नारद को बहुत गर्व हो गया। इस गर्व को दूर करने के लिए विष्णु ने एक कौतुक किया। एक मायावी नगरी की रचना की और उसमें मायावी विश्वमोहिनी कुमारी का स्वयंबर रचा। स्वयंबर में जाने के लिए नारद ने विष्णु का रूप माँगा। विष्णु ने उन्हें बन्दर का रूप दे दिया। नारद की जगत हँसाई हुई। नारद ने विष्णु को शाप दिया कि जैसे मैं विश्वमोहिनी के लिए तड़प रहा हूँ, तुम भी दूसरे जन्म में अपनी पत्नी के लिए तड़पोगे और बन्दर ही तुम्हारी मदद करेंगे। नारद के शाप को प्रमाणित करने के लिए राम का अवतार हुआ (पृष्ठ १६८-१८० ; दोहा १२४-१३७ के नीचे की चौपाई)।

४. विश्वमोहिनी के स्वयंबर में शिव के दो गण बिप्र का रूप धारण करके आ गए। उन्होंने नारद का मजाक उड़ाया। नारद ने उन्हें शाप दिया। फलस्वरूप

वह रावण और कुम्भकरण हो गए। उनके उद्धार के लिए राम का अवतार हुआ (पृष्ठ १७६-१७८ और १८१-१८२, दोहा १३३-१३४ और १३८ के नीचे की चौपाई)।

५. आदिमनु स्वायंभुव और उनकी पत्नी सतरूपा ने नैमिषारण्य में घोर तपस्या की। अन्त में उन्होंने विष्णु भगवान से वर माँगा, कि उनके भगवान के समान सुन्दर पुत्र हो। भगवान विष्णु ने कहा कि मैं अपने सदृश कोई व्यक्ति नहीं पाता। अतएव मैं स्वयं आपके पुत्र के रूप में जन्म लूँगा। इसी कारण अगले जन्म में स्वायंभुव और सतरूपा दशरथ और कौशल्या हुए और विष्णु भगवान उनके पुत्र राम हुए (पृष्ठ १८६-१९६; दोहा १४१-१५१ के नीचे की चौपाई)।

६. कैकेय देश का राजा सत्यकेतु था। उसके दो पुत्र प्रतापभानु और अरिमर्दन थे। बड़े लड़के को राज देकर सत्यकेतु ने सन्यास ले लिया। प्रतापभानु बहुत यशस्वी और धर्म परायण राजा हुआ। एक बार वह आखेट खेलते हुए वन में अपना रास्ता भूल गया। वन में एक राजा मुनि के वेश में रहता था जिसका राज्य प्रतापभानु ने उसे समर में हराकर छीन लिया था। यह नृप-मुनि प्रतापभानु का विश्वासपात्र बन गया और उनसे एक महान यज्ञ कराया। ब्रह्म भोज के समय स्वयं रसोईया बन गया। ब्राह्मणों को छल ले मांसाहार करा दिया। ब्राह्मणों ने प्रतापभानु को शाप दिया। प्रतापभानु और उसके वंशज सब राक्षस हो गए। प्रतापभानु रावण हुआ, उसका भाई अरिमर्दन कुंभकरण और उसका मंत्री विभीषण। इन तीनों को तारने के लिए रामावतार हुआ (पृष्ठ १९६-२१६; दोहा १५२-१७५ के नीचे की चौपाई)।

जब हम 'हरि अनन्त' कहते हैं, तो हमें रामावतार तक सीमित नहीं रहना चाहिए। भागवतपुराण में विष्णु के २२ अवतारों का वर्णन है, जिसमें प्रमुख १० हैं--वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, मत्स्य, कूर्म और कल्कि। इन १० अवतारों में से उत्तर भारत में केवल दो ही अवतार—राम और कृष्ण—विशेषतया पूज्य और प्रतिष्ठित हुए। दक्षिण भारत में विष्णु के अवतारों की अपेक्षा ब्रह्म के दो गुणावतारों की पूजा होती है—अय्यर ब्राह्मण शिवोपासक हैं और अयङ्गर ब्राह्मण विष्णोपासक। दक्षिण-पूर्व में शिव के ज्येष्ठ पुत्र कार्तकेय पूजे जाते हैं और दक्षिण-पश्चिम (महाराष्ट्) में कनिष्ठ पुत्र गणेश।

व्यापक अर्थ में 'हरि अनन्त' का संकेत परब्रह्म की ओर है जिसको तुलसीदास ने 'अनीह, अरूप, अनाम, अज और सच्चिदानन्द' कहकर सम्बोधित किया। यह परब्रह्म सृष्टि का सरजनहार है। इसको न केवल हिन्दू, परन्तु संसार के सभी धर्म वाले मानते हैं। इसाई उसे गॉड (God) कहते हैं, यहुदी जेहोवा

(Jehova), मुसलमान अल्लाह और हिन्दू ब्रह्म कहते हैं। 'हरि अनन्त' में सर्व-धर्म सम्भाव है। भगवान के हजारों रूप हैं :

नमोस्त्वनन्ताय सहस्र मूर्तये।
सहस्रपादाक्षि शिरोरुबाहवे॥
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते।
सहस्रकोटि युग धारिणे नमः॥

सो०—सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि॥ १४०॥

भावार्थ—देवता, मनुष्य और मुनियों में ऐसा कोई नहीं है जिसे भगवान की महान बलवती माया मोहित न कर दे। मन में ऐसा विचार कर उस महा-माया के स्वामी प्रेरक श्री भगवान का भजन करना चाहिए।

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥
जो प्रभु बिपिन फिरत तुम्ह देखा। बंधु समेत धरें मुनिबेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी॥
अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥
भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू॥

भावार्थ—हे गिरिराज कुमारी ! अब भगवान के अवतार का वह दूसरा कारण सुनो। मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ। जिस कारण से जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित (अव्यक्त सच्चिदानन्द) ब्रह्म अयोध्यापुरी के राजा हुए। जिन प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को तुमने भाई लक्ष्मण जी के साथ मुनियों के वेष में वन में फिरते हुए देखा था, और हे भवानी ! जिनके चरित्र देखकर, सती के शरीर में तुम ऐसी बावली हो गयी थी कि अब भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया नहीं मिटती, उन्हीं के भ्रमरूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र सुनो। उस अवतार में भगवान ने जो-जो लीला की वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कहूँगा।" याज्ञवल्क्य जी ने कहा 'हे भरद्वाज शंकर जी के बचन सुनकर पार्वती जी सकुचाकर मुसकायी। फिर वृषकेतु शिवजी जिस कारण से भगवान का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे।'

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहउँ सबु सुनु मुनीस मन लाइ ।
राम कथा कलि मल हरनि मंगल करनि सुहाइ ।। १४१ ।।

भावार्थ—हे मुनीश्वर (भरद्वाज) मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगा कर सुनो । रामचन्द्र जी की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली, कल्याण करने वाली बड़ी सुन्दर है ।'

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ।।
दंपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ।।
नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ।।
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही । बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ।।
देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ।।
आदिदेव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ।।
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्त्व बिचार निपुन भगवाना ।।
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला । प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला ।।

भावार्थ—स्वायंभुव मनु और (उनकी पत्नी) शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे । आज भी वेद इनकी मर्यादा का गान करते हैं । राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र प्रसिद्ध हरिभक्त ध्रुव जी हुए । उन (मनु जी) के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिसकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं । पुन: देवहुति उनकी कन्या थी जो कर्दभ मुनि की प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदिदेव, दीनों पर दया करने वाले समर्थ एवं कृपालु भगवान कपिल को गर्भ में धारण किया । तत्वों का विचार करने में अत्यन्त निपुण जिन कपिल भगवान ने सांख्यशास्त्र का प्रकटरूप में वर्णन किया । उन (स्वायंम्भुव) मनु जी ने बहुत समय तक राज्य किया और सब प्रकार से भगवान की आज्ञा (शास्त्रों की मर्यादा) का पालन किया ।

पात्र-परिचय (स्वायंभुव मनु)—मनु ब्रह्मा के पुत्र हैं और मनुष्य जाति के आदि पुरुष । प्रत्येक कल्प में चौदह मनु उत्पन्न होते हैं । इनके नाम ये हैं—स्वायंभुव स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्तु, सावर्णि, दक्षसावर्णि, रुद्र-सावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि । इस समय सप्तम वैवस्वत मनु का अधिकार चलता है ।

सो०—होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन ।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु ।। १४२ ।।

भावार्थ—घर में रहते बुढ़ापा आ गया। परन्तु विषयों से वैराग्य नहीं होता। (इस बात को सोचकर) उनके मन में बड़ा दुःख हुआ कि श्री हरि की भक्ति के बिना जन्म यों ही चला गया।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥
जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए॥
कृस सरीर मुनिपट परिधाना। सत समाज नित सुनहिं पुराना॥

भावार्थ—तब मनु जी ने अपने पुत्र को जबर्दस्ती राज्य दिया और स्वयं स्त्री सहित वन को गमन किया। अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्धि देने वाला तीर्थों में श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है। वहाँ मुनियों और सिद्धों के समूह बसते हैं। राजा मनु हृदय में हर्षित होकर वहीं चले। वे धीर बुद्धि वाले राजा-रानी मार्ग में जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये हुए जा रहे हों। जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनियों ने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिये। उनका शरीर दुर्बल हो गया था, वे मुनियों के से वस्त्र धारण करते थे और सन्तों के समाज में नित्य पुराण सुनते थे।

दो०—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥ १४३॥

भावार्थ—और द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेम सहित जप करते थे। भगवान वासुदेव के चरण कमलों में उन राजा-रानी का मन बहुत ही लग गया।

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई ॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥

भावार्थ—वे साग, फल और कन्द का आहार करते थे और सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर वे श्री हरि के लिए तप करने लगे और मूल फल को त्याग कर केवल जल के सहारे रहने लगे। हृदय में निरन्तर यही अभिलाषा हुआ करती थी कि हम (कैसे) उस परम प्रभु को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनादि और अनन्त हैं और परमार्थवादी (ब्रह्म-ज्ञानी, तत्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं। जिन्हें वेद नेति-नेति कहकर निरूपण करते हैं। जो आनन्द स्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं, जिनके अंश से अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान प्रगट होते हैं। ऐसे (महान) प्रभु भी सेवक के वश में हैं और भक्त के लिए (दिव्य) लीला शरीर धारण करते हैं। यदि वेदों में यह वचन सत्य कहा है तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी।

दो०—एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्त्र पुनि रहे समीर अधार ॥ १४४ ॥

भावार्थ—इस प्रकार जल का आहार करके (तप करते) छः हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे वायु के आहार पर रहे।

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा ॥
मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ॥
प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी ॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृत सानी ॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रंध्र होइ उर जब आई ॥
हृष्टपुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहिं भवन ते आए ॥

भावार्थ—दस हजार वर्ष तक उन्होंने वायु का आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी कई बार मनु जी के पास आये। उन्होंने इन्हें अनेक प्रकार से ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगों, पर ये परम धैर्यवान (राजा-रानी) अपने तप से किसी के डिगाये

नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में जरा भी पीड़ा नहीं थी। सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्य गति (भक्ति) वाले तपस्वी राजा-रानी को निज दास जाना। तब परम गम्भीर और कृपारूपी अमृत से सनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि वर माँगो, वर माँगो। मुर्दे को भी जिला देने वाली यह सुन्दर वाणी कानों के छिद्रों से होकर जब हृदय में आयी तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हो गये, मानों अभी घर से आये हैं।

दो०—श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात ॥ १४५ ॥

भावार्थ—कानों से अमृत के समान लगने वाले बचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मनु जी दण्डवत करके बोले। प्रेम हृदय में समाता नहीं था।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुख दायक। प्रनतपाल सचराचर नायक ॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारित मोचन ॥
दंपति वचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे ॥
भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥

भावार्थ—'हे प्रभो! सुनिये आप सेवकों के लिए कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपकी चरण-रज की ब्रह्मा, विष्णु और शिव जी भी बन्दना करते हैं। आप सेवा करने में सुलभ हैं तथा सब सुखों को देने वाले हैं। आप शरणागत के रक्षक और जड़ चेतन के स्वामी हैं। हे अनाथों का कल्याण करने वाले। यदि हम लोगों पर आपका स्नेह है तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिव जी के मन में बसता है और जिस (की प्राप्ति) के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं, जो काकभुशुण्डि के मनरूपी मानसरोवर में विहार करने वाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागत के दुःख मिटाने वाले प्रभो! ऐसी कृपा कीजिये कि हम उसी रूप को नेत्र भर देख सकें।' राजा-रानी के कोमल, विनययुक्त और प्रेमरस में पगे हुए वचन भगवान को बहुत ही प्रिय लगे। भक्तवत्सल कृपानिधान सम्पूर्ण विश्व के निवास स्थान (या समस्त विश्व में व्यापक) भगवान प्रकट हो गये।

दो०—नील सरोरुह नील मनि नीलधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥ १४६॥

भावार्थ—भगवान के नीले कमल, नीलमणि और नीले जलयुक्त मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण शरीर की शोभा को देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं।

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

भावार्थ—उनका मुख शरद (पूर्णिमा) के चन्द्रमा के समान छवि की सीमा स्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुन्दर थे। गला शंख के समान (त्रिरेखायुक्त चढ़ाव-उतार वाला) था, लाल ओंठ, दाँत और नाक (अत्यन्त) सुन्दर थे। उनकी हँसी चन्द्रमा की किरणावली को नीचा दिखाने वाली थी। नेत्रों की छवि नये (खिले हुए) कमल के समान बड़ी सुन्दर थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। टेढ़ी भौंहे कामदेव के धनुष की शोभा को हरने वाली थीं। ललाटपटल पर प्रकाशमय तिलक था। कानों में मकराकृत (मछली के आकार के) कुण्डल और सिर पर मुकुट सुशोभित था। टेढ़े (घुँघराले) काले बाल ऐसे सघन थे, मानों भौंरों के झुण्ड हों। हृदय पर श्रीवत्स, सुन्दर वनमाला, रत्नजटित हार और मणियों के आभूषण सुशोभित थे। सिंह की सी गर्दन थी, सुन्दर जनेऊ था। भुजाओं में जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे। हाथी की सूँड के समान (उतार-चढ़ाव वाले) सुन्दर भुजदण्ड थे। कमर में तरकस और हाथ में बाण और धनुष शोभा पा रहे थे।

दो०—तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छबि छीनि॥ १४७॥

भावार्थ—(स्वर्ण वर्ण का प्रकाशमय) पीताम्बर बिजली को लजाने वाला

था। पेट पर सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिबली) थी, मानों यमुना जी के भँवरों की छबि को छीने लेती हैं।

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥
हरष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुनापुंजा॥

भावार्थ—जिनमें मुनियों के मनरूपी भौंरे बसते हैं, भगवान के उन चरण कमलों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भगवान के बाएँ भाग में सदा अनुकूल रहने वाली, शोभा की राशि, जगत की मूलकारण रूपा आदि शक्ति श्री जानकी जी सुशोभित हैं। जिनके अंश से गुणों की खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्मणी (त्रिदेवों की शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं, तथा जिनकी भौंह के इशारे से ही जगत की रचना हो जाती है, वही (भगवान की स्वरूपाशक्ति) श्री सीता जी श्री रामचन्द्र जी के बायीं ओर स्थित हैं। शोभा के समुद्र श्री हरि के रूप को देखकर मनु-शतरूपा नेत्रों के पट पलकें रोके हुए एक टक (स्तब्ध) रह गये। उस अनुपम रूप को वे आदर सहित देख रहे थे और देखते-देखते अधाते ही न थे। आनन्द के अधिक बश में हो जाने के कारण उन्हें अपने देह की सुध भूल गयी। वे हाथों से भगवान के चरण पकड़कर दण्ड की तरह (सीधे) भूमि पर गिर पड़े। कृपा की राशि प्रभु ने अपने करकमलों से उनके मस्तकों का स्पर्श किया और उन्हें तुरन्त ही उठा लिया।

दो०—बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥ १४८॥

भावार्थ—फिर कृपानिधान भगवान बोले मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मन में आये वही वर मांग लो।

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली मृदु बानी॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥

एक लालसा बड़ि उर माहीं । सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं ।।
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं । अगम लाग मोहि निज कृपनाईं ।।
जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई । बहु संपति मागत सकुचाई ।।
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई । तथा हृदयँ मम संसय होई ।।
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी । पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ।।
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही । मोरें नहिं अदेय कछु तोही ।।

भावार्थ—प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धर कर राजा ने कोमल वाणी कही "हे नाथ ! आपके चरण कमलों को देखकर हमारी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो गयीं। फिर भी मन में एक बड़ी लालसा है । उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसी से उसे कहते नहीं बनता । हे स्वामी ! आपके लिये तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता (दीनता) के कारण वह अत्यन्त कठिन मालूम होता है । जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक द्रव्य माँगने में संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदय में संशय हो रहा है । हे स्वामी ! आप अन्तर्यामी हैं, इसलिए उसे जानते ही हैं । मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिए ।" भगवान ने कहा, "हे राजन, संकोच छोड़कर मुझसे माँगो । तुम्हें न दे सकूँ, ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है ।"

दो०—दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ ।। १४९ ।।

भावार्थ—(राजा ने कहा)—"हे दानियों के शिरोमणि! हे कृपा के भण्डार! हे नाथ ! मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ । प्रभू से भला क्या छिपाना ।"

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले । एवमस्तु करुनानिधि बोले ।।
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होव मैं आई ।।
सतरूपहि बिलोकि कर जोरें । देवि मागु बरु जो रुचि तोरें ।।
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा । सोइ कृपाल मोहि अति प्रियलागा ।।
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई । जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई ।।
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी । ब्रह्म सकल उर अंतरजामी ।।
अस समुझत मन संसय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ।।
जे निज भगत नाथ तव अहहीं । जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ।।

भावार्थ—राजा की प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणा-निधान भगवान् बोले—"ऐसा ही हो। हे राजन ! मैं अपने समान (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ। अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।" शतरूपा जी को हाथ जोड़े देखकर भगवान ने कहा—"हे देवि तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर माँग लो।" शतरूपा ने कहा—"हे नाथ ! चतुर राजा ने जो वर माँगा है, कृपालु ! वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा। परन्तु हे प्रभु ! बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि भक्तों का हित करने वाले वह ढिठाई भी आपको अच्छी लगती है। आप ब्रह्मा आदि के भी पिता (उत्पन्न करने वाले) जगत के स्वामी और सबके हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हैं। ऐसा समझ कर मन में सन्देह होता है, फिर भी प्रभु ने जो कहा प्रमाण (सत्य) है। (मैं तो यह माँगती हूँ कि) हे नाथ ! आप के जो निज जन हैं, वे जो (अलौकिक अखण्ड) सुख पाते हैं, और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं।

दो०—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥ १५०॥

भावार्थ—हे प्रभो ! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिये।"

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु वचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥
मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥
बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥
सुत विषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जलबिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥
अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

भावार्थ—(रानी के) कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ (वचनों की) रचना सुनकर कृपा के समुद्र भगवान कोमल बचन बोले—"तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे माता ! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा।" तब मनु ने भगवान के चरणों की वन्दना करके फिर कहा—"हे प्रभु मेरी एक विनती और है। आपके चरणों में मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसे पुत्र के लिये पिता की होती है। चाहे मुझे कोई बड़ा भारी

मूर्ख ही क्यों न कहें। जैसे मणि के बिना साँप और जल के बिना मछली (नहीं रह सकती है) वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके बिना न रह सके)।" ऐसा बर माँग कर राजा भगवान के चरण पकड़े रह गये। तब कृपा के भण्डार भगवान ने कहा—"ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्र की राजधानी (अमरावती) में जाकर वास करो।

सो०—तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥ १५१ ॥

भावार्थ—हे तात! वहाँ स्वर्ग के बहुत से भोग भोग कर, कुछ काल बीत जाने पर तुम अवध के राजा होगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।"

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥
जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी ॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना ॥
दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा ॥

भावार्थ—इच्छानिर्मित मनुष्य रूप सजकर मैं तुम्हारे घर में प्रकट होऊँगा। हे तात्! मैं अपने अंशों सहित देह धारण करके भक्तों के सुख देने वाले चरित्र करूँगा। जिन (चरित्रों) को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदर सहित सुनकर, ममता और मद त्याग कर, भवसागर से तर जायेंगे। आदि शक्ति ये मेरी (स्वरूप भूता) माया भी, जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी। इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है।" कृपा निधान भगवान बार-बार ऐसा कह कर अन्तर्द्धान हो गये। भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान को हृदय में धारण करके कुछ काल तक राजा मनु और रानी शतरूपा उस आश्रम में रहे। फिर उन्होंने समय पाकर, सहज ही बिना किसी कष्ट के शरीर छोड़कर अमरावती में जाकर वास किया।

टिप्पणी—स्वायंभू मनु और उनकी पत्नी सतरूपा की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर, विष्णु भगवान उनके सामने साक्षात प्रकट हुये और उनसे वरदान

माँगने के लिये कहा। मनु ने यह वरदान माँगा कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। इस पर भगवान ने उत्तर दिया कि मैं अपने समान दूसरा व्यक्ति कहाँ ढूंढूं। अतएव मैं ही आपके दूसरे जन्म में आपका पुत्र होऊँगा। तत्पश्चात स्वायंभू मनु और उनकी पत्नी ने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया और अमरावती में जाकर वास करने लगे। स्वर्ग के बहुत से सुख भोगकर वह पुनः त्रेतायुग में अवध के राजा दशरथ और उनकी पत्नी कौशल्या हुये। और कौशल्या के गर्भ से विष्णु भगवान ने राम का अवतार लिया। इसीलिये ऊपर की चौपाई की पहली दो पंक्तियों में और बीच की पंक्ति में भगवान कहते हैं :—

"इच्छामय नरवेष सँवारे। होईहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥
× × × ×
आदि शक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥"

जब रावण के आतंक से देवता दुखी हो गये तो उन्होंने बैकुन्ठ में जाकर भगवान विष्णु की स्तुति की। उनकी स्तुति सुनकर आकाशवाणी हुई : (दोहा १८६ के नीचे की चौपाई पृष्ठ २२७)

"जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।
अंसह्न सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥
कस्यप अदिति महतप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्ही।
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपूरी प्रगट नरभूपा ॥
तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परमसक्ति समेत अवतरिहऊँ ॥"

दोनों उद्धरणों में एक ही बात कही गई है कि स्वायंभू मनु और सतरूपा दूसरे जन्म में दशरथ और कौशल्या हुये और विष्णु भगवान ने उनके पुत्र रूप में अवतार लिया।

ऊपर के उद्धरणों में दो बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। भगवान ने स्पष्ट कह दिया था कि वह न केवल अपनी "माया" आदि शक्ति सीता सहित अवतार लेंगे अपितु "अंसन्ह सहित" अवतार लेंगे। यहाँ पर उनके तीनों भाई—भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की ओर संकेत है। वैसे तो जीवात्मा परमात्मा का एक अंश है। जैन धर्म की मान्यता है कि चौथे काल—सुखमा—दुखमा—में नौ बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण होते हैं। बलभद्र नायक होता है, नारायण

उसका छोटा भाई होता है और प्रतिनारायण खलनायक होता है। इस प्रकार त्रेतायुग में राम बलभद्र थे, लक्ष्मण नारायण थे और रावण प्रतिनारायण। द्वापर युग में बलराम बलभद्र थे*, कृष्ण नारायण थे और कंस प्रतिनारायण। भरत और शत्रुघ्न भी भगवान के अंश हैं। हनुमान तो स्वयं सूर्य-पुत्र हैं। और रावण पहले जन्म में धर्मपरायण पराक्रमी प्रतापभानु राजा था। व्यापक रूप में जब तुलसीदास जी ने "अंसन्ह सहित" शब्द-बंध का प्रयोग किया तो सम्भवतः उनका तात्पर्य यह रहा होगा कि राम अपनी लीला करने के लिये सभी पात्रों सहित अवतार लेगें।

दो०—यह इतिहास पुनीत अति उमहि कही बृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु॥ १५२॥

भावार्थ—(याज्ञवल्का जी कहते हैं)—"हे भरद्वाज! इस अत्यन्त पवित्र इतिहास को शिवजी ने पार्वती से कहा था। अब श्री राम के अवतार लेने का दूसरा कारण सुनों।

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥
धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा॥
राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

भावार्थ—हे मुनि! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो शिव जी ने पार्वती से कही थी।" संसार में प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतुनाम का राजा रहता (राज्य करता) था। वह धर्म की धुरी को धारण करने वाला, नीति का भण्डार, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान था। उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणों के भण्डार और बड़े ही रणधीर थे। राज्य का उत्तराधिकारी जो बड़ा लड़का था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्र का नाम अरिमर्दन था,

*किम्वदन्ति है कि शेषनाग ने विष्णु भगवान से कहा कि आप जब भी अवतार लेते हैं मुझे अपना छोटा भाई ही बनाते है। कभी तो बड़ा भाई हो जाने दीजिये। इसलिये त्रेतायुग में शेषनाग के अवतार लक्ष्मण हुये और द्वापर में बलराम।

जिसकी भुजाओं में अपार बल था और जो युद्ध में पर्वत के समान अटल रहता था। भाइयों में बड़ा मेल और सब प्रकार के दोषों और छलों से रहित सच्ची प्रीति थी। राजा ने जेठे पुत्र को राज्य दे दिया और आप भगवान के भजन के लिये बन को चल दिया।

दो०—जब प्रतापरबि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति बेदबिधि कतहुँ नहीं अघ लेस॥ १५३॥

भावार्थ—जब प्रतापभानु राजा हुआ, देश में उसकी दुहाई फिर गयी। वह वेद में बताई हुई विधि के अनुसार उत्तम रीति से प्रजा का पालन करने लगा। उसके राज्य में पाप का कहीं लेश भी नहीं रह गया।

नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रतापपुँज रनधीरा॥
सेन संग चतुरग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥
बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥
जहँ तहँ परीं अनेक लराईं। जीते सकल भूप बरिआईं॥
सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। लै लै दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

भावार्थ—राजा का हित करने वाला और शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान धर्मरूचि नामक उसका मन्त्री था। इस प्रकार बुद्धिमान मन्त्री और बलवान और वीर भाई के साथ ही राजा भी बड़ा प्रतापी और रणधीर था। साथ में अपार चतुराङ्गिणी सेना थी जिसमें असंख्य योद्धा थे, जो सब के सब रण में जूझ मरने वाले थे। अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और धमाधम नगाड़े बजने लगे। दिग्विजय के लिये सेना सजाकर, वह राजा शुभ दिन मुहूर्त साधकर और डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ बहुत सी लड़ाइयाँ हुईं। उसने बलपूर्वक सब राजाओं को जीत लिया। अपनी भुजाओं के बल से उसने सातों द्वीपों (भूमिखण्डों) को वश में कर लिया और राजाओं से दण्ड (कर) ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का उस समय प्रतापभानु ही एक मात्र चक्रवती राजा था।

दो०—स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख सेवइ समयँ नरेसु॥ १५४॥

भावार्थ—संसार भर को अपनी भुजाओं के बल से वश में करके राजा ने अपने नगर में प्रवेश किया। राजा अर्थ, धर्म और काम आदि के सुखों का समयानुसार सेवन करता था।

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सुहाई ॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नर नारी ॥
सचिव धरमरुचि हरि पद प्रीती। नृप हित हेतु सिखव नित नीती ॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा ॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करइ सादर सुख माने ॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना ॥
नाना बापीं कूप तड़ागा। सुमन बाटिका सुंदर बागा ॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए ॥

भावार्थ—राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु (मनचाही वस्तु देने वाली) हो गयी। उसके राज्य में प्रजा सब प्रकार के दुखों से रहित और सुखी थी, और सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे। धर्मरूचि मन्त्री का श्री हरि के चरणों में प्रेम था। वह राजा के हित के लिए सदा उसको नीति सिखाया करता था। राजा गुरू, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण—इन सबकी सदा सेवा करता रहता था। वेदों में राजाओं के जो धर्म बताए गये हैं, राजा सदा आदर पूर्वक और सुख मानकर उन सबका पालन करता था। प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था। उसने बहुत सी बावलियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाड़ियाँ, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणों के लिये घर और देवताओं के सुन्दर विचित्र मन्दिर सब तीर्थों में बनवाये।

दो०—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग ॥ १५५ ॥

भावार्थ—वेद और पुराण में जितने प्रकार के यज्ञ कहे गये हैं, राजा ने एक-एक करके उन सब यज्ञों को प्रेम सहित हजार-हजार बार किया।

हृदयँ न कछु फल अनुसधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना ॥
करइ जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥
चढ़ि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा ॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥

फिरत बिपिन नृप दीख बराहु । जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ।।
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं । मनहुँ क्रोधबस उगिलत नाहीं ।।
कोल कराल दसन छबि गाई । तनु बिसाल पीवर अधिकाई ।।
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ । चकित बिलोकत कान उठाएँ ।।

भावार्थ—(राजा के) हृदय में किसी फल की कामना नहीं थी । राजा बड़ा ही बुद्धिमान और ज्ञानी था । वह ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो कुछ भी धर्म करता था, सब भगवान वासुदेव को अर्पित करके करता था । एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़े पर सवार होकर, शिकार का सब सामान सजाकर, विन्ध्याचल के घने जंगल में गया और वहाँ उसने बहुत से उत्तम-उत्तम हिरन मारे । राजा ने वन में फिरते हुए एक सुअर को देखा । (दाँतों के कारण वह ऐसा दीख पड़ता था) मानों चन्द्रमा को ग्रसकर (मुँह में पकड़कर) राहु वन में आ छिपा हो । चन्द्रमा बड़ा होने से उसके मुंह में समाता नहीं है और मानों क्रोधवश वह भी उसे उगलता नहीं है । यह तो सुअर के भयानक दाँतों की शोभा कही गयी । (इधर) उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था । घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाए चौकन्ना होकर देख रहा था ।

दो०—नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराहु ।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु ।। १५६ ।।

भावार्थ—नीले पर्वत के शिखर के समान विशाल (शरीर वाले) उस सुअर को देखकर राजा घोड़े को चाबुक लगाकर तेजी से चला और उसने सुअर को ललकारा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता ।

आवत देखि अधिक रव बाजी । चलेउ बराह मरुत गति भाजी ।।
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना । महि मिलि गयउ बिलोकत बाना ।।
तकि तकि तीर महीस चलावा । करि छल सुअर सरीर बचावा ।।
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा । रिस बस भूप चलेउ सँग लागा ।।
गयउ दूरि घन गहन बराहू । जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू ।।
अति अकेल बन बिपुल कलेसू । तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ।।
कोल बिलोकि भूप बड़ धीरा । भागि पैठ गिरिगुहाँ गभीरा ।।
अगम देखि नृप अति पछिताई । फिरेउ महाबन परेउ भुलाई ।।

भावार्थ—अधिक शब्द करते हुए घोड़े को (अपनी तरफ) आता देखकर सुअर पवन वेग से भाग चला । राजा ने तुरंत ही बाण को धनुष पर चढ़ाया ।

सुअर बाण को देखते ही धरती में दुबक गया। राजा तक-तक कर तीर चलाता है, परन्तु सुअर छल करके शरीर को बचाता जाता है। वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भागा जाता था। और राजा भी क्रोध के वश उसके साथ पीछे लगा चला जाता था। सुअर बहुत दूर ऐसे घने जंगल में चला गया जहाँ हाथी-घोड़े का निबाह (गमन) नहीं था। राजा बिल्कुल अकेला था और वन में क्लेश भी बहुत थे, फिर भी राजा ने उस पशु का पीछा नहीं छोड़ा। राजा को बड़ा धैर्यवान देखकर, सुअर भागकर पहाड़ की गहरी गुफा में जा घुसा। उसमें जाना कठिन देखकर राजा को बहुत पछता कर लौटना पड़ा; पर उस घोर वन में वह रास्ता भूल गया।

दो०—खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत ॥ १५७ ॥

भावार्थ—बहुत परिश्रम करने से थका हुआ और घोड़े-समेत भूख-प्यास से व्याकुल राजा नदी-तालाब खोजता-खोजता पानी बिना बेहाल हो गया।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनि बेषा ॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई ॥
समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी ॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस कें साजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि तेहिं तब चीन्हा ॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥

भावार्थ—वन में फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा। वहाँ कपट मुनि का वेष बनाये एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो सेना को छोड़कर युद्ध से भाग गया था। प्रतापभानु का समय (अच्छे दिन) जानकर और अपना कुसमय (बुरे दिन) अनुमान कर उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई, इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होने के कारण राजा प्रतापभानु से ही मिला (मेल किया)। दरिद्र की भाँति मन ही में क्रोध को मारकर वह राजा तपस्वी के भेष में वन में रहता था। राजा प्रतापभानु उसी के पास गया। उसने तुरंत पहचान लिया कि यह प्रतापभानु है। राजा प्यासा होने के कारण (व्याकुलता में) उसे न पहचान सका। सुन्दर वेष देखकर राजा ने उसे

महामुनि समझा और घोड़े से उतर कर उसे प्रणाम किया। परन्तु बड़ा चतुर होने के कारण राजा ने उसे अपना नाम नहीं बतलाया।

दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहिं सरबरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ॥ १५८॥

भावार्थ--राजा को प्यासा देखकर उसने सरोवर दिखला दिया। हर्षित होकर राजा ने घोड़े सहित उसमें स्नान और जलपान किया।

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥
को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुन्दर जुबा जीव परहेलें॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधिआरा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥

भावार्थ--सब थकावट मिट गई, राजा सुखी हो गया। तब तपस्वी उसे अपने आश्रम में ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर उसने राजा को बैठने के लिये आसन दिया। फिर वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला। "तुम कौन हो। सुन्दर युवक होकर, जीवन की परवा न करके, वन में अकेले क्यों फिर रहे हो? तुम्हारे चक्रवर्ती राजा के लक्षण देखकर मुझे बड़ी दया आती है।" राजा ने कहा—"हे मुनीश्वर! सुनिये, प्रतापभानु नाम का एक राजा है, मैं उसका मंत्री हूँ। शिकार के लिये फिरते हुए राह भूल गया हूँ। बड़े भाग्य से यहाँ आकर मैंने आपके चरणों के दर्शन पाये हैं। हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कुछ भला होने वाला है।" मुनि ने कहा—"हे तात! अँधेरा हो गया, तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन पर है।

दो०—निसा घोर गंभीर बन पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह जाएहु होत बिहान॥१५९(क)॥
तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥१५९(ख)॥

भावार्थ--हे सुजान सुनो ! घोर अँधेरी रात है, घना जंगल है, रास्ता नहीं है, ऐसा समझकर आज यहीं ठहर जाओ, सबेरा होते ही चले जाना ।" तुलसीदास जी कहते हैं जैसी भवितव्यता होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है, या उसको वहाँ ले जाती है।

लोकोक्ति--ऊपर के दोहे में तुलसीदास एक अटल सत्य को समझाते हुए कहते हैं-कि जैसा भविष्य में होने वाला होता है वैसे ही प्रथम से ही बानक बन जाते हैं। प्राय: यही होता है कि परिस्थितियाँ या तो स्वयं ही मनुष्य के पास आ जाती हैं या मनुष्य स्वयं उन परिस्थितियों के पास चला जाता है। जिससे वह होनहार के अनुसार कार्य करने को बाध्य हो जाता है और उसका परिणाम सुख या दुःख जो भी उसके लिये पूर्व निश्चित है उसे भुगतना पड़ता है। इसके लिये मानव दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि होनहार तो पहले से ही निश्चित है। उसी के अनुसार भगवान लीला अवश्य ही करायेंगे। और जब उनका निश्चित किया हुआ कार्यक्रम चलना ही है, तो मानव तो केवल साधन मात्र ही रह जाता है। उसे वैसा ही करने को विवश होना पड़ता है, जैसा भगवान उससे करवाना चाहते हैं। इसके लिये मानव के मन व बुद्धि में विचार भी उसी के अनुसार उत्पन्न हो जाते हैं और परिस्थितियाँ भी वैसी ही उपस्थित हो जाती हैं, जिससे मानव को उन्हीं के अनुसार आचरण करने को बाध्य हो जाना पड़ता है। ऊपर की लोकोक्ति की पुष्टि में एक दृष्टान्त पर्याप्त है।

डा० अमर नारायण अग्रवाल, अध्यक्ष वाणिज्य विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय कार्यवश मद्रास गये हुए थे। वहाँ से उन्हें एक मीटिंग में भाग लेने के लिए तुरन्त दिल्ली लौटना था। हवाई जहाज में कोई जगह न मिली। उन्होंने एक यात्री से, जिसकी सीट का पहले से आरक्षण हो गया था, प्रार्थना की कि वह अपना टिकट इनको दे दे और स्वयं दूसरी उड़ान से आ जाये। यात्री सज्जन था, इनकी आवश्यकता को देखते हुए राजी हो गया। यह विमान पालम के निकट मारुति कारखाने के पास दुर्घटनाग्रस्त हो गया। और एक भी यात्री नहीं बचा। डा० अग्रवाल का आयुकर्म पूरा हो गया था और दूसरे यात्री को बचना था। इसीलिये आपस में टिकट बदल लिये। तभी तो शेक्सपियर ने कहा है—

"There's a divinity that shapes our end,
Rough–hew them how we will"*

*Hamlet, Act V, Scene 2

भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥
तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥
समुझि राजसुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥
सरल बचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदयँ हरषाना॥

भावार्थ--"हे नाथ बहुत अच्छा" ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ाकर घोड़े को वृक्ष से बाँधकर राजा बैठ गया। राजा ने उसकी बहुत प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वन्दना करके अपने भाग्य की सराहना की। फिर सुन्दर कोमल वाणी से कहा "हे प्रभो, आपको पिता जानकर में ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश्वर, मुझे अपना पुत्र और सेवक समझकर अपना नाम-धाम सविस्तार बतलाइये।" राजा ने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजा को पहचान गया था। राजा तो शुद्ध हृदय था और वह कपट करने में चतुर था। एक तो बैरी, फिर जाति का क्षत्रिय, फिर राजा, वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था। वह शत्रु अपने राज्य सुख को समझकर स्मरण करके दुःखी था, उसकी छाती कुम्हार के आँवे की आग की तरह भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। राजा के सरल बचन कान से सुनकर अपने बैर को याद कर वह हृदय में हर्षित हुआ।

दो०—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत॥ १६०॥

भावार्थ—वह कपट में डुबोकर बड़ी युक्ति के साथ कोमल वाणी बोला—'अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन और अनिकेत (घर द्वार हीन) हैं।'

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥
तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला ॥

भावार्थ—राजा ने कहा–'जो आपके सदृश विज्ञान के निधान और सर्वथा ाभिमान रहित होते हैं, वह अपने स्वरूप को सदा छिपाये रहते हैं, क्योंकि कुवेष ानाकर रहने में ही सब तरह का कल्याण है (प्रकट संत वेष में मान होने की म्भावना है और मान से पतन की)। इसीसे तो संत और वेद पुकार कर कहते ं कि परम आकिन्चन (सर्वथा अहंकार, ममता और मान रहित) ही भगवान को प्रय होते हैं। आप सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनों को देखकर ब्रह्मा और शवजी को भी सन्देह हो जाता है (कि ये वास्तविक संत हैं या भिखारी)। आप ो हों सो हों (अर्थात जो कोई भी हों) मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। स्वामी! अब मुझपर कृपा कीजिये।' अपने ऊपर राजा की स्वाभाविक प्रीत ौर अपने विषय में अधिक विश्वास देखकर, सब प्रकार से राजा को अपने वश ं करके, अधिक स्नेह दिखाता हुआ, वह (कपटी तपस्वी) बोला–'हे राजन सुनों! तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया।

दो०—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु ॥१६१(क)॥

सो०—तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥१६१(ख)॥

भावार्थ—अब तक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपने को किसी पर कट करता हूँ, क्योंकि लोक में प्रतिष्ठा अग्नि के समान है जो तपरूपी बन को स्म कर डालती है।' तुलसीदास जी कहते हैं–'सुन्दर वेष देखकर मूढ़ नहीं (मूढ़ ो मूढ़ ही है) चतुर नर भी धोखा खा जाते हैं। सुन्दर मोर को देखो। उसका चन तो अमृत के समान है और आहार साँप का है।'

ातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ॥
भु जानत सब बिनहिं जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ ॥
ुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरें। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरें ॥
ब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही ॥
जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥
ेखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बगध्यानी ॥

नाम हमार एकतनु भाई । सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी । मोहि सेबक अति आपन जानी ॥

भावार्थ—(कपटी तपस्वी ने कहा)—'इसीसे मैं जगत में छिपकर रहता हूँ । श्री हरि को छोड़कर किसी से कोई भी प्रयोजन नहीं रखता । प्रभु तो बिना जनाये ही सब जानते हैं । फिर कहो, संसार को रिझाने से क्या सिद्धि मिलेगी । तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धि वाले हो इससे मुझे बहुत ही प्यारे हो; और तुम्हारी भी मुझपर प्रीति और विश्वास है । हे तात ! अब मैं यदि तुमसे कुछ छिपाता हूँ तो मुझे बहुत ही भयानक दोष लगेगा ।' ज्यों-ज्यों वह तपस्वी उदासीनता की बातें कहता था, त्यों त्यों राजा को विश्वास उत्पन्न होता जाता था । जब उस बगुले की तरह ध्यान लगाने वाले (कपटी) मुनि ने राजा को कर्म, मन और वचन से अपने वश में जाना, तब वह बोला—'हे भाई ! हमारा नाम एकतनु है ।' यह सुनकर राजा ने फिर सिर नवाकर कहा—'मुझे अपना अत्यन्त अनुरागी सेवक जान कर अपने नाम का अर्थ समझा कर कहिये ।'

दो०—आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि ।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि ॥ १६२ ॥

भावार्थ—(कपटी मुनि ने कहा) 'जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी । तब से मैंने फिर दूसरी देह धारण नहीं की । इसी से मेरा नाम एकतनु है ।

जनि आचरजु करहु मन माहीं । सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तपबल तें जग सृजइ बिधाता । तपबल बिष्नु भए परित्राता ॥
तपबल संभु करहिं संघारा । तप तें अगम न कछु संसारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा । कथा पुरातन कहै सो लागा ॥
करम धरम इतिहास अनेका । करइ निरूपन बिरति बिवेका ॥
उदभव पालन प्रलय कहानी । कहेसि अमित आचरज बखानी ॥
सुनि महीप तापस बस भयऊ । आपन नाम कहन तब लयऊ ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही । कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥

भावार्थ—हे पुत्र ! मन में आश्चर्य मत करो । तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है । तप के बल से ब्रह्मा जगत को रचते हैं, तप के ही बल से विष्णु संसार का पालन करने वाले हैं । तप के ही बल से रुद्र संहार करते है । संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तप से न मिल सके ।' यह सुनकर राजा को बड़ा अनुराग हुआ ।

तब वह (तपस्वी) पुरानी कथाएँ कहने लगा। कर्म-धर्म और अनेकों प्रकार के इतिहास कहकर वह वैराग्य और ज्ञान का निरूपण करने लगा। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, स्थिति और संहार (प्रलय) की अपार आश्चर्यभरी कथाएँ विस्तार से कहीं। राजा सुनकर उस तपस्वी के वश में हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा। तपस्वी ने कहा—'राजन ! मैं तुमको जानता हूँ। तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा।

सो०—सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता बिचारि तब ॥ १६३ ॥

भावार्थ—हे राजन ! सुनो ! ऐसी नीति है कि राजा लोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते। तुम्हारी यही चतुरता समझ कर तुम पर मेरा बड़ा प्रेम हो गया।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तब पिता नरेसा ॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥
देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरें। कहउँ कथा निज पूछे तोरें ॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। मागु जो भूप भाव मन माहीं ॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना ॥
कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें ॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउँ असोकी ॥

भावार्थ—तुम्हारा नाम प्रताप भानु है। महाराज सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन ! गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझ कर नहीं कहता। हे तात ! तुम्हारा स्वाभाविक सीधापन (सरलता), प्रेम, विश्वास और नीति में निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गयी है। इसीलिये मैं तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कहता हूँ। अब मैं प्रसन्न हूँ इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन ! जो मन को भाये माँग लो।' सुन्दर (प्रिय) बचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और मुनि के पैर पकड़ कर उसने बहुत प्रकार से बिनती की। 'हे दयासागर मुनि ! आपके दर्शन से ही चारों पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष मेरी मुट्ठी में आ गये हैं। तो भी स्वामी को प्रसन्न देखकर मैं यह दुर्लभ बर माँग कर (क्यों न) शोक रहित हो जाऊँ।

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ।। १६४

भावार्थ—मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख से रहित हो जाय; युद्ध में कोई जीत न सके; और पृथ्वी पर मेरा सौ कल्प तक एकछत्र अकण राज्य हो ।'

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ । कारन एक कठिन सुनु सोऊ
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा । एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा
तपबल बिप्र सदा बरिआरा । तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा । तौ तुअ बस बिधि विष्नु महेसा
चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनेहुँ काला
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना । मो कहुँ सर्ब काल कल्याना

भावार्थ—तपस्वी ने कहा—'हे राजन ! ऐसा ही हो । पर एक बात कि है । उसे भी सुन लो । हे पृथ्वी के स्वामी ! केवल ब्राह्मण कुल को छोड़कर क भी तुम्हारे चरणों में सिर नवायेगा । तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान रहते है उनके क्रोध से रक्षा करने वाला कोई नहीं है । हे नरपति ! यदि तुम ब्राह्मणों बश में कर लो, तो ब्रह्मा, बिष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जायेगें । ब्राह्म कुल से जोर जबरदस्ती नहीं चल सकती । मैं दोनों भुजा उठा कर सत्य कहता हूँ हे राजन ! सुनो, ब्राह्मणों के शाप के बिना तुम्हारा नाश किसी काल में न होगा ।' राजा उसके वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—'हे स्वा मेरा नाश अब नहीं होगा । हे कृपानिधान प्रभु ! आपकी कृपा से मेरा सब सम कल्याण होगा ।'

दो०—एवमस्तु कहि कपटमुनि बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार भुलाब निज कहहु त हमहि न खोरि ।। १६५

भावार्थ—एवमस्तु (ऐसा ही हो) कह कुटिल कपटी मुनि फिर बोल 'किन्तु तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूल जाने की बात किसी से कहना न यदि कह दोगे तो हमारा दोष नहीं ।

तातें मैं तोहि बरजउँ राजा । कहें कथा तव परम अकाजा ॥
छठें श्रवण यह परत कहानी । नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥
यह प्रगटें अथवा द्विजश्रापा । नास तोर सुनु भानुप्रतापा ॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं । जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं ॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा । द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥
राखइ गुर जौं कोप विधाता । गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता ॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारें । होउ नास नहिं सोच हमारें ॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा । प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा ॥

भावार्थ--हे राजन ! तुमको इसलिए मना करता हूँ कि इस प्रसंग को कहने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी । छठे कान में यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायेगा । मेरा यह वचन सत्य मानना । हे प्रतापभानु ! सुनो, इस बात के प्रकट करने से अथवा ब्राह्मणों के श्राप से तुम्हारा नाश होगा । और किसी उपाय से चाहे ब्रह्मा और शंकर भी मन में क्रोध करें, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ।' राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा--'हे स्वामी ! सत्य ही है । ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से, कहिए, कौन रक्षा कर सकता है ! यदि ब्रह्मा भी क्रोध करे, तो गुरु बचा लेते हैं ; पर गुरु से विरोध करने पर जगत में कोई भी बचाने वाला नहीं है । यदि मैं आपके कथन के अनुसार नहीं चलूँगा तो (भले ही) मेरा नाश हो जाय । मुझे इससे चिन्ता नहीं है । मेरा मन तो है प्रभो, (केवल) एक ही डर से डर रहा है कि ब्राह्मणों का श्राप बड़ा भयानक होता है ।

दो०--होहिं बिप्र बस कवन बिधि कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ ॥ १६६ ॥

भावार्थ--(वे) ब्राह्मण किस प्रकार से वश में हो सकते हैं, कृपा करके वह भी बताइये । हे दीनदयालु ! आपको छोड़कर और किसी को मैं अपना हितु नहीं देखता ।'

सुनु नृप बिबिध जतन जग माहीं । कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥
अहइ एक अति सुगम उपाई । तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥
मम आधीन जुगुति नृप सोई । मोर जाब तव नगर न होई ॥
आजु लगें अरु जब तें भयऊँ । काहू के गृह ग्राम न गयऊँ ॥
जौं न जाउँ तव होइ अकाजू । बना आइ असमंजस आजू ॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी । नाथ निगम असि नीति बखानी ॥

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन ध
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रे

भावार्थ—(तपस्वी ने कहा)—'हे राजन ! सुनो संसार में उपाय तो ब
पर वे कष्टसाध्य हैं (बड़ी कठिनता से बनने में आते हैं), और इस पर भी सि
या न हों (उनकी सफलता निश्चित नहीं है)। हाँ, एक उपाय बहुत सहज है,
उसमें भी एक कठिनता है। हे राजन ! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर मेरा
तुम्हारे नगर में नहीं हो सकता। जबसे मैं पैदा हुआ हूँ, तबसे आजतक मैं
के घर अथवा गाँव नहीं गया। परन्तु यदि नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा
बिगड़ता है। आज यह बड़ा असमंजस आ पड़ा है।' यह सुनकर राजा क
वाणी से बोला—'हे नाथ ! वेदों में ऐसी नीति कही है कि बड़े लोग छोट
स्नेह करते ही हैं। पर्वत अपने सिरों पर सदा तृण (घास) को धारण किये
हैं। अगाध समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करता है, और धरती
सिर पर सदा धूलि को धारण किये रहती है।'

दो०—अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहित प्रभु सज्जन दीनदयाल॥ १६

भावार्थ—ऐसा कह कर राजा ने मुनि के चरण पकड़ लिये (और क
'हे स्वामी ! कृपा कीजिए। आप संत हैं। दीनदयालु हैं। (अतः) हे प्रभो
लिए इतना कष्ट (अवश्य) सहिये।'

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीन
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोहि
अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन बचन भगत तैं मोर
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिअ दुराउ
जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न को
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसर
पुनि तिन्ह के गृह जेवँइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सो
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संबत भरि संकलप कर

भावार्थ—राजा को अपने अधीन जानकर कपट में प्रवीण तपस्वी ब
'हे राजन ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जगत में मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है
तुम्हारा कार्य अवश्य करूगा ; (क्योंकि) तुम मन, वाणी और शरीर (त

से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मन्त्रों का प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपाकर किये जाते हैं। हे नरपति ! मैं यदि रसोई बनाऊँ और तुम उसे परसो, और कोई जानने न पावे तो उस अन्न को जो-जो खायेगा, सो-सो तुम्हारा आज्ञाकारी बन जायेगा। फिर उन (भोजन करने वालों) के घर भी तो कोई भोजन करेगा। हे राजन ! सुनो वह भी तुम्हारे अधीन हो जायेगा। हे राजन ! जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर भोजन कराने का संकल्प कर लेना।

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार ॥ १६८ ॥

भावार्थ—नित्य नये एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित निमन्त्रित करना। मैं तुम्हारे संकल्प (के काल अर्थात् एक वर्ष) तक प्रति दिन भोजन बना दिया करूँगा।

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरें। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरें ॥
करिहहिं बिप्र होम मख सेवा। तेहिं प्रसंग सहजेहिं बस देवा ॥
और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहिं बेष न आउब काऊ ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया ॥
तपबल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परवाना ॥
मैं धरि तासु बेषु सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा ॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेंट दिन तीजे ॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता ॥

भावार्थ—हे राजन ! इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रम से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायेंगे। ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग (सम्बन्ध) में देवता भी सहज ही वश में हो जायेगें। मैं एक और पहचान तुमको बताये देता हूँ कि मैं इस रूप में कभी न आऊँगा। हे राजन ! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर जाऊँगा। तप के बल से उसे अपने समान बनाकर एक वर्ष तक यहीं रखूंगा, और हे राजन ! सुनों, मैं उसका रूप बनाकर सब प्रकार से तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा। हे राजन ! रात बहुत बीत गयी, अब सो जाओ। आज से तीसरे दिन मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। तप के बल से मैं तुमको घोड़े सहित सोते हुये ही तुम्हारे घर पहुँचाऊँगा।

दो०—मैं आउब सोइ बेषु धरि पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकांत बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि ॥ १६९ ॥

भावार्थ—मैं वही (पुरोहित का) भेष धर कर आऊँगा। जब एकान्त में तुमको बुलाकर सब कथा सुनाऊँगा, तब तुम मुझे पहचान लेना।'

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छलग्यानी ॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहिं सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानइ सो अति कपट घनेरा ॥
तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई ॥
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र संत सुर देखि दुखारे ॥
तेहिं खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र बिचारा ॥
जेहिं रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ ॥

भावार्थ—राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपटज्ञानी आसन पर जा बैठा। राजा थका था, (उसे) खूब गहरी नींद आ गई। पर वह कपटी कैसे सोता। उसे तो बहुत चिन्ता हो रही थी। (उसी समय) वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने सुअर बनकर राजा को भटकाया था। वह तपस्वी राजा का बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपन्च जानता था। उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े ही दुष्ट, किसी से न जीते जाने वाले और देवताओं को दुःख देने वाले थे। ब्राह्मणों, संतों और देवताओं को दुःखी देखकर राजा ने उन सबको पहले ही युद्ध में मार डाला था। उस दुष्ट ने पिछला बैर याद करके, तपस्वी राजा से मिलकर सलाह विचारी (षडयन्त्र किया) और जिस प्रकार शत्रु का नाश हो, वही उपाय रचा। भाविवश राजा (प्रतापभानु) कुछ भी न समझ सका।

दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु ॥ १७० ॥

भावार्थ—तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो, तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। जिसका सिर मात्र बचा था, वह राहु आज तक सूर्य-चन्द्रमा को दुःख देता है।

लोकोक्ति--ऊपर के दोहे में एक लोकोक्ति है, जो स्वयं स्पष्ट है। शत्रु अकेला भी हो, तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। राहु के केवल सिर है (धड़ नहीं) फिर भी वह आज तक सूर्य और चन्द्रमा से वैर निकाल रहा है। अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ २१।

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥
कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथें दिवस मिलब मैं आई॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥
भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माझ निकेता॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई। हयगृहँ बाँधेसि बाजि बनाई॥

भावार्थ—तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ। उसने मित्र को सब कथा कह सुनाई, तब राक्षस आनन्दित होकर बोला–'हे राजन ! सुनो, जब तुमने मेरे कहने के अनुसार (इतना) काम कर लिया, तो अब मैंने शत्रु को काबू में कर ही लिया (समझो)। तुम अब चिन्ता त्याग सो रहो। विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया। कुल सहित शत्रु को जड़-मूल से उखाड़ बहाकर, आज से चौथे दिन मैं तुमसे आ मिलूंगा।' इस प्रकार तपस्वी राजा को खूब दिलासा देकर वह महामायावी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला। उसने प्रतापभानु राजा को घोड़े-सहित क्षण भर में घर पहुँचा दिया। राजा को रानी के पास सुलाकर, घोड़े को अच्छी तरह से घुड़साल में बाँध दिया।

दो०—राजा के उपरोहित हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि॥ १७१॥

भावार्थ—फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया, और माया से उसकी बुद्धि को भ्रम में डालकर उसे उसने पहाड़ की खोह में ला रक्खा।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥
मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥
गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

भावार्थ—वह आप पुरोहित का रूप बनाकर उसकी सुन्दर सेज पर जा लेटा। राजा सबेरा होने से पहले ही जागा और अपना घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना। मन में मुनि की महिमा करके, वह धीरे से उठा जिससे रानी न जान जाये। फिर उसी घोड़े पर चढ़कर बन को चला गया। नगर के किसी भी स्त्री पुरुष ने नहीं जाना। दोपहर बीत जाने पर राजा आया। घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजा ने पुरोहित को देखा, तब वह (अपने) उसी कार्य का स्मरण कर, उसे आश्चर्य से देखने लगा। राजा को तीन दिन युग के समान बीते। उसकी बुद्धि कपटी मुनि के चरणों में लगी हुई थी। निश्चित समय जानकर पुरोहित (बना हुआ राक्षस) आया और राजा के साथ की हुई गुप्त सलाह के अनुसार (उसने अपनी) सब बातें उसे समझा कर कह दीं।

दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत ॥ १७२ ॥

भावार्थ—(संकेत के अनुसार) गुरु को (उस रूप में) पहचान कर राजा प्रसन्न हुआ भ्रम वश उसे चेत न रहा (कि यह तापस मुनि है या कालकेतु राक्षस) उसने तुरन्त एक लाख उत्तम ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित निमन्त्रण दे दिया।

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला॥
बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुर माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

भावार्थ—पुरोहित ने छः रस और चार प्रकार के भोजन, जैसा कि वेदों में वर्णन है, बनाये। उसने मायामयी रसोई की तैयारी की और इतने व्यन्जन बनाये जिन्हें कोई गिन नहीं सकता। अनेक प्रकार के पशुओं का मास पकाया और उसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणों को भोजन के लिये बुलाया और चरण धोकर आदरसहित बैठाया। ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी समय आकाश वाणी हुई—हे ब्राह्मणों उठ कर अपने घर जाओ, यह अन्न मत खाओ। इस (के खाने) में बड़ी हानि है। रसोई में ब्राह्मणों का मांस

बना है। (आकाशवाणी का) विश्वास मान कर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा व्याकुल हो गया। (परन्तु) उसकी बुद्धि मोह में भूली हुई थी। होनहार के वश उसके मुँह से एक बात भी न निकली।

दो०—बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥ १७३॥

भावार्थ—तब ब्राह्मण क्रोध सहित बोल उठे। उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया। 'अरे मूर्ख राजा तू जाकर परिवार सहित राक्षस हो।

छत्रबंधु तें बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥
संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥
बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥
तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥

भावार्थ—रे नीच क्षत्रिय! तूने तो परिवार सहित ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें नष्ट करना चाहा था। ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की। अब तू परिवार समेत नष्ट होगा। एक वर्ष के भीतर तेरा नाश हो जायेगा। तेरे कुटुम्ब में कोई पानी देने वाला तक नहीं रहेगा।' श्राप सुनकर राजा भय के मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई। 'हे ब्राह्मणों! तुमने विचार कर श्राप नहीं दिया। राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया।' आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये। तब राजा वहाँ गया जहाँ भोजन बना था। (देखा तो) वहाँ न भोजन था, न रसोईया ब्राह्मण ही था। तब राजा मन में अपार चिन्ता करता हुआ लौटा। उसने ब्राह्मणों को सब वृतान्त सुनाया और (बड़ा ही) भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दो०—भूपति भावी मिटइ नहिं जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर॥ १७४॥

भावार्थ—'हे राजन! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का श्राप बहुत ही भयानक होता है। यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता।'

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुरलोगन्ह पाए ।।
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं ।।
उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ।।
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए ।।
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई ।।
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ।।
सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा ।।
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई ।।

भावार्थ—ऐसा कहकर सब चले गये। नगरवासियों ने (जब) यह समाचार पाया, तो वे चिन्ता करने और विधाता को दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया (ऐसे पुण्यात्मा राजा को देवता बनना चाहिये था, सो राक्षस बना दिया)। पुरोहित को उसके घर पहुंचाकर असुर (कालकेतु) ने (कपटी) तपस्वी को खबर दी। उस दुष्ट ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब (बैरी) राजा सेना सजा-सजा कर (चढ़) दौड़े। (और) उन्होंने डंका बजाकर नगर को घेर लिया। नित्यप्रति अनेक प्रकार से लड़ाई होने लगी। प्रतापभानु के सब योद्धा करनी करके युद्ध में जूझ मरे (तथा) राजा भी भाई सहित खेत रहा। सत्यकेतु के कुल में कोई नहीं बचा। ब्राह्मण का श्राप झूठा कैसे हो सकता है। शत्रु को जीतकर नगर को फिर से बसाकर कर सब राजा विजय और यश पाकर अपने-अपने नगर को चले गये।

दो०—भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम ।। १७५ ।।

भावार्थ- (याज्ञयवल्वय जी कहते हैं) 'हे भरद्वाज ! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं तब उसके लिये धूल सुमेरु पर्वत के समान (भारी और कुचल डालने वाली) पिता यम के समान (कालरूप) और रस्सी सांप के समान (काट खाने वाली) हो जाती है।

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ।।
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा ।।
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा ।।
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू ।।

नाम विभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना ।।
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे ।।
कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका ।।
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी ।।

भावार्थ—हे मुनि ! सुनो समय पाकर वही राजा परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूर वीर था। अरिमर्दन नामक, जो राजा का छोटा भाई था, वह बल का धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका मन्त्री जो धर्मरूचि था, वह रावण का सौतेला भाई हुआ। उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जग जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञान का भण्डार था। और जो राजा के सेवक और पुत्र थे, वे सभी भयानक राक्षस हुए। वे सब अनेकों जाति के, मन-भाता रूप धारण करने वाले, दुष्ट, कुटिल, भंयकर, विवेक रहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसार भर को दु:ख देने वाले हुए, उनका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप ।। १७६ ।।

भावार्थ—यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल में उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के श्राप के कारण ये सब पाप-रूप हुए।'

पात्र-परिचय (रावण)—पुलस्त्य सप्तर्षियों में से एक हैं। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं और प्रजापतियों में गिने जाते हैं। पुलस्त्य के पुत्र का नाम विश्रवा था। विश्रवा की पहली पत्नी से कुबेर और केकसी के गर्भ से रावण, कुम्भकरण और विभीषण तीन भाई उत्पन्न हुए थे।

रावण त्रिलोक प्रसिद्ध लंकाधिपति था। कहते हैं, इसके दस सिर और बीस भुजायें थीं। एक बार इसने रम्भा नाम की अप्सरा पर कुदृष्टि डाली थी। वह नल कुबेर के यहाँ अभिसारिका के वेष में जाती थी। रावण के अत्याचार से क्रुद्ध होकर रम्भा ने उसे शाप दिया कि यदि तुम अबसे किसी रमणी से बलात्कार करोगे तो तुम्हारा मस्तक फट जायेगा। इसी कारण यद्यपि सीता को छल करके पंचवटी से रावण हर तो लाया, परन्तु उसने सीता से अपनी अशोक वाटिका में कोई दुर्व्यवहार नहीं किया।

रावण रामायण का खल-नायक है। उसके बिना राम का चरित्र रामायण में उभर कर आ ही नहीं सकता था। राम की रावण पर विजय, सत्य की असत्य

पर विजय है, पुण्य की पाप पर। रावण अभिशप्त व्यक्ति था। विविध पुराणों में उसके जन्म की विविध अर्न्तकथाएँ हैं। कहीं लिखा है कि विष्णु के द्वारपाल जय-विजय मरकर रावण और कुम्भकरण हुए (पृष्ठ १६४-१६६)। कहीं लिखा है कि शिव के मस्तक की अग्नि की ज्वाला से पैदा हुए जलन्धर को छल से शिव जी ने ही मारा। यह जलन्धर मरकर रावण हुआ (पृष्ठ १६५-१६७)। कहीं कहा गया है कि शिव के दो गण जिन्होंने नारद का उपहास किया था, नारद के श्रापवश रावण और कुम्भकरण हुए (पृष्ठ १६८-१८०)। इस तरह से शापित रावण को श्राप देने वालों ने आश्वासन दिया था कि जब विष्णु शरीर धारण करके उसका हनन करेंगे तभी उसकी मुक्ति होगी। यही कारण है कि रावण ने छल से पंचवटी में सीता का अपहरण किया और अपनी पत्नी मन्दोदरी के बार-बार समझाने पर भी राम से बैर लिया। वह चाहता था कि राम उसे किसी तरह मारें, जिससे दानव योनि से उसको सदा के लिए मुक्ति मिले।

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देखि विधाता। मागहु बर प्रसन्न मैं ताता॥
करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ॥
जौं एहिं खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥

भावार्थ—तीनों भाइयों ने अनेकों प्रकार की बड़ी ही कठिन तपस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। (उनका उग्र) तप देखकर ब्रह्मा जी उनके पास गये और बोले—"हे तात मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।" रावण ने विनय करके और चरण पकड़ कर कहा-"हे जगदीश्वर! सुनिये, बानर और मनुष्य इन दो जातियों को छोड़कर हम और किसी के मारे न मरें (यह वर दीजिये)।" (शिवजी कहते हैं कि) "मैने और ब्रह्मा ने मिलकर उसे वर दिया। कि ऐसा ही हो, तुमने बड़ा तप किया है।" फिर ब्रह्मा जी कुंभकर्ण के पास गये। उसे देखकर उसके मन में बड़ा आश्चर्य हुआ। जो यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो सारा संसार ही उजाड़ हो जायेगा। ऐसा विचार कर ब्रह्मा जी ने सरस्वती को प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी। जिससे उसने छः महीने की नींद माँगी। अन्तर्कथा के लिए देखिये पृष्ठ १६।

दो०—गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥ १७७ ॥

भावार्थ—फिर ब्रह्मा जी विभीषण के पास गये और बोले—"हे पुत्र ! वर माँगो।" उसने भगवान के चरण कमलों में निर्मल (निष्काम और अन्यान्य) प्रेम माँगा।

तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए ॥
मय तनुजा मदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा ॥
सोइ मयँ दीन्हि गवनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी ॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥
गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनिभवन अपारा ॥
भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्रनिवासा ॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका ॥

भावार्थ—उनको वर देकर ब्रह्मा जी चले गये और वे (तीनों भाई) हर्षित होकर अपने घर लौट आये। मयदानव की मन्दोदरी नाम की कन्या परमसुन्दरी और स्त्रियों में शिरोमणि थी। मयने उसे लाकर रावण को दिया। उसने जान लिया कि यह राक्षसों का राजा होगा। अच्छी स्त्री पाकर रावण प्रसन्न हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयों का विवाह कर दिया। समुद्र के बीच में त्रिकूट नामक पर्वत पर ब्रह्मा का बनाया हुआ एक बड़ा भारी किला था। (महान मायावी और निपुण कारीगर) मयदानव ने उसको फिर से सजा दिया। उसमें मणियों से जड़े हुए सोने के अनगिनत महल थे। जैसी नागकुल के रहने की (पाताल लोक में) भोगावती पुरी है और इन्द्र के रहने की (स्वर्गलोक) में अमरावती पुरी है, उनसे भी अधिक सुन्दर और बाँका वह दुर्ग था। जगत में उसका नाम लंका प्रसिद्ध हुआ।

दो०—खाईं सिंधु गभीर अति चारिहुँ दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव ॥१७८ (क)॥

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुलबल दल समेत बस सोइ ॥१७८ (ख)॥

भावार्थ—उसे चारों से समुद्र की अत्यन्त गहरी खाई घेरे हुए है। उस (दुर्ग) के मणियों से जड़ा हुआ सोने का मजबूत परकोटा है, जिसकी कारीगरी

का वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान की प्रेरणा से जिस काल में जो राक्षसों का राजा (रावण) होता है, वही शूर, प्रतापी, अतुलित बलवान अपनी सेना सहित उस दुर्ग में रहता है।

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संघारे।।
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे।।
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई।।
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई।।
फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा।।
सुँदर सहज अगम अनुगामी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी।।
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे।।
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा।।

भावार्थ—(पहले) वहाँ बड़े-बड़े योद्धा राक्षस थे। देवताओं ने उन सब को युद्ध में मार डाला। अब इन्द्र की प्रेरणा से वहाँ कुबेर के एक करोड़ रक्षक (यक्ष लोग) रहते हैं। रावण को कहीं ऐसी खबर मिली, तब उसने सेना सजाकर किले को जा घेरा। उस विकट योद्धा और उसकी बड़ी सेना को देखकर यक्ष अपने प्राण लेकर भाग गये। तब रावण ने घूम-फिरकर सारा नगर देखा। उसकी (स्थान सम्बन्धी) चिन्ता मिट गई और उसे बहुत ही सुख हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही सुन्दर और (बाहर वालों के लिए) दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी कायम की। योग्यता के अनुसार घरों को बांटकर रावण ने सब राक्षसों को सुखी किया। एक बार वह कुबेर पर दौड़ा और उससे पुष्पक विमान को जीत कर ले आया।

दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ।। १७९।।

भावार्थ—फिर उसने जाकर (एक बार) खिलवाड़ में कैलाश पर्वत को उठा लिया, और मानों अपनी भुजाओं का बल तौलकर, बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चला आया।

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई।।
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।।
अतिबल कुँभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता।।

करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ।।
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई ।।
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना ।।
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ।।
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई ।।

भावार्थ–सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बलबुद्धि और बड़ाई, ये सब उसके नित्य नये (वैसे ही) बढ़ते जाते थे, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। अत्यन्त बलवान कुम्भकर्ण सा उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा जगत में पैदा ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छः महीने सोया करता था। उसके जागते ही तीनों लोकों में तहलका मच जाता था। यदि वह प्रतिदिन भोजन करता तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (खाली) हो जाता। रणधीर ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (लंका में) उसके ऐसे असंख्य बलवान वीर थे। मेघनाद रावण का बड़ा लड़का था, जिसका जगत के योद्धाओं में पहला नम्बर था। रण में कोई उसका सामना नहीं कर सकता था। स्वर्ग में तो (उसके भय से) नित्य भगदड़ मची रहती थी।

दो०—कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय ।। १८० ।।

भावार्थ–(इनके अतिरिक्त) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूमकेतु और अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत को जीत सकते थे।

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया ।।
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा ।।
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती ।।
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी ।।
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध वरूथा ।।
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सवल रिपु जाहिं पराई ।।
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई ।।
द्विजभोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ।।

भावार्थ–सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और (आसुरी) माया जानते थे। उनके दया, धर्म स्वप्न में भी नहीं था। एक बार सभा में बैठे हुए

रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा। पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और सेवक ढेर के ढेर थे। (सारी) राक्षसों की जातियों को तो गिन ही कौन सकता था। अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व से सनी हुई वाणी बोला। 'हे समस्त राक्षसों के दलों! सुनो, देवता गण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर युद्ध नहीं करते। बलवान शत्रु को देखकर भाग जाते हैं। उनका मरण एक ही उपाय से हो सकता है। मैं समझाकर कहता हूँ। अब उसे सुनो। (उनके बल को बढ़ाने वाले) ब्राह्मणों के भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध—इन सबमें जाकर तुम बाधा डालो।

दो०—छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ॥ १८१॥

भावार्थ—भूख से दुर्बल और बलहीन होकर देवता सहज ही में आ मिलेंगे। तब मैं उनको मार डालूँगा अथवा भली-भाँति अपने अधीन करके (सर्वथा पराधीन करके) छोड़ दूँगा।'

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥
तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥
चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥
दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

भावार्थ—फिर उसने मेघनाद को बुलवाया और सिखा पढ़ाकर उसके बल और (देवताओं के प्रति) वैर-भाव को उत्तेजना दी। फिर कहा—'हे पुत्र! जो देवता रण में धीर और बलवान हैं, और जिन्हें लड़ने का अभिमान है, उन्हें युद्ध

में जीतकर बाँध लाना। हे पुत्र ! उठो और पिता की आज्ञाओं को शिरोधार्य करो।' इसी तरह उसने सबको आज्ञा दी और आप भी हाथ में गदा लेकर चल दिया। रावण के चलने से पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी गर्जना से देव रमणियों के गर्भ गिरने लगे। रावण को क्रोध सहित आते हुए सुनकर देवताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाएं तकीं। (भागकर सुमेरु की गुफाओं का आश्रय लिया)। दिक्पालों के सारे सुन्दर लोकों को रावण ने सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंहनाद (गर्जना) करके देवताओं को ललकार-ललकार कर गालियां देता था। रण के मद में मतवाला होकर वह अपनी जोड़ी का योद्धा खोजता हुआ जगत भर में दौड़ता फिरा, परन्तु उसे ऐसा योद्धा कहीं नहीं मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर अग्नि, काल और यम आदि सब अधिकारी, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभी के पीछे वह हठ पूर्वक पड़ गया। (किसी को भी उसने शान्तिपूर्वक नहीं बैठने दिया)। ब्रह्मा जी की सृष्टि में जहां तक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे, सभी रावण के अधीन हो गये। डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रता पूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई १३ विषम पंक्तियों की है। यह 'मेघनाद' शब्द से शुरू होती है और इसके बाद की चौपाई 'इन्द्रजीत' से। दोनों व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ पर्यायवाची हैं। मेघनाद रावण का ज्येष्ठ पुत्र था। उसके नाद का स्वर मेघों की गर्जन के समान था। इसीलिए इसका नाम 'मेघनाद' रखा गया। देवराज इन्द्र को युद्ध में पराजित करने के कारण यह इन्द्रजीत नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

शेष चौपाई में रावण के शौर्य और पराक्रम का वर्णन है। कुछ अतिशयोक्ति भी है। तुलसीदास जी कहते हैं कि रावण सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम, किन्नर, सिद्ध, देवता, नाग और मनुष्य सभी के पीछे पड़ गया। किसी को चैन से बैठने नहीं दिया। उसने अपने सौतेले भाई कुबेर को परास्त करके, उसका पुष्पक विमान उससे छीन लिया। (देखिए २१६ पृष्ठ पर चौपाई की अन्तिम पंक्ति)।

दो०—भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र ॥(१८२क)॥
देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि ॥(१८२ख)॥

भावार्थ—उसने भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश में कर लिया, किसी को स्वतंत्र नहीं रहने दिया। (इस प्रकार) मण्डलीक राजाओं का शिरोमणी

(सार्वभौम सम्राट) रावण अपने इच्छानुसार राज्य करने लगा। देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथा बहुत सी अन्य सुन्दर स्त्रियों को उसने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर व्याह लिया ।

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ । सो सब जनु पहलेहिं करि रहेऊ ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा । तिन्ह कर चरित सुनहु जो कीन्हा ॥
देखत भीमरूप सब पापी । निसिचर निकर देव परितापी ॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहिं करि माया ॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई । देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना । सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥

भावार्थ—मेघनाद से उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेघनाद ने) मानों पहले से ही कर रखा था (अर्थात रावण के कहने भर की देर थी, उसने आज्ञा-पालन में तनिक भी देर नहीं की) । जिनको (रावण ने मेघनाद से) पहले से आज्ञा दे रखी थी, उन्होंने जो करतूतें की उन्हें सुनों । सब राक्षसों के समूह देखने में भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे । वे असुरों के समूह उपद्रव करते थे और माया से अनेकों प्रकार के रूप धारण करते थे। जिस प्रकार धर्म की जड़ कटे, वे वही सब वेद विरुद्ध काम करते थे । जिस-जिस स्थान में वे गौ और ब्राह्मणों को पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवे में आग लगा देते थे । (उनके डर से) कहीं भी शुभ आचरण (ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, श्राद्ध आदि) नहीं होते थे । देवता, ब्राह्मण, गुरू को कोई नहीं मानता था । न हरिभक्ति थी न यज्ञ, तप और ज्ञान था । वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे ।

छं०—जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा ।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना ॥

सो०—बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥ १८३ ॥

भावार्थ—जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञ में (देवताओं के) भाग पाने की बात रावण कहीं कानों से सुनपाता तो (उसी समय) स्वयं उठ दौड़ता । कुछ

भी रहने नहीं पाता, वह सब को पकड़कर विध्वंस कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों से भी सुनने में नहीं आता था। जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरह से त्रास देता और देश से निकाल देता था। राक्षस जो घोर अत्याचार करते थे, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है उनके पापों का क्या ठिकाना।

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भय भीता ॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई ॥

भावार्थ—पराये धन और पराई स्त्री पर मन चलाने वाले, दुष्ट, चोर और जुआरी बहुत बढ़ गये। लोग माता-पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं (की सेवा करना तो दूर रहा, उलटे उन) से सेवा करवाते थे। (शिवजी कहते हैं कि) "हे भवानी! जिनके ऐसे आचरण हैं, उन सब प्राणियों को राक्षस ही समझना। इस प्रकार धर्म के प्रति (लोगों की) अतिशय ग्लानि (अरुचि, अनास्था) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गयी। (वह सोचने लगी कि) पर्वतों, नदियों और समुद्रों का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता जितना भारी एक परद्रोही (दूसरों का अनिष्ट करने वाला) लगता है। पृथ्वी सारे धर्मों को विपरीत देख रही है, पर रावण से भयभीत हुई वह कुछ बोल नहीं सकती। (अन्त में) हृदय में सोचविचार कर, गौ का रूप धारण कर धरती वहाँ गयी जहाँ सब देवता और मुनि (छिपे) थे। पृथ्वी ने रोकर उनको अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना।

छं०—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ॥
ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जाकरि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ॥

सो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥१८४॥

भावार्थ—तब देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्माजी के लोक को गये। भय और शोक से अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौ का शरीर धारण किये हुये उनके साथ थी। ब्रह्मा जी सब जान गये। उन्होंने मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी बस नहीं चलेगा। तब उन्होंने पृथ्वी से कहा कि जिसकी तुम दासी हो, वही अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनों का सहायक है। (ब्रह्माजी ने कहा)—"हे धरती! धीरज धर करके श्री हरि (विष्णु) के चरणों का स्मरण करो। प्रभु अपने दासो की पीड़ा को जानते हैं। वे तुम्हारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे"।

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥

भावार्थ—सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पायें, ताकि उनके सामने पुकार (फर्याद) करें। कोई देवता बैकुण्ठ जाने को कहता था, और कोई कहता था कि वे प्रभु क्षीरसागर में निवास करते हैं। जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिए) सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। (शङ्कर जी कहते हैं) "हे पार्वती! उस समाज में मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही। 'मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान सब जगह समान रूप से व्यापक हैं, प्रेम से वे प्रगट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है जहाँ प्रभु न हों। वे चराचर मय (चराचर में व्याप्त) होते हुये भी, सब से रहित हैं, और विरक्त हैं (उनकी कहीं आसक्ति नहीं है)। वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि। (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं, परन्तु जहाँ उसके लिए अरणिमन्थनादि साधन किये जाते हैं, वहाँ वह प्रकट होती है। इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान भी प्रेम से प्रकट होते हैं)'। मेरी बात सबको प्रिय लगी। ब्रह्माजी ने "साधु-साधु" कहकर बड़ाई की।

दो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥१८५॥

भावार्थ—येरी बात सुनकर ब्रह्मा जी के मन में बड़ा हर्ष हुआ । तन पुलकित हो गया । नेत्रों से प्रेम के आँसू बहने लगे । तब वे धीर बुद्धि ब्रह्मा जी सावधान होकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ।"

छं०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रणतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्‌भुत करनी मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा ।
अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरल सकल सुर जूथा ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पियारे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

भावार्थ—"हे देवताओं के स्वामी ! सेवकों को सुख देने वाले, शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान आपकी जय हो, जय हो ! हे गो, ब्राह्मणों का हित करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले समुद्र की कन्या श्री लक्ष्मी के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो ! हे देवता और पृथ्वी का पालन करने वाले ! आपकी लीला अद्‌भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता । ऐसे जो स्वभाव से ही कृपालु और दीन-दयालु हैं, वे ही हम पर कृपा करें । हे अविनाशी, सब के हृदय में निवास करने वाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियों से परे, पवित्र-चरित्र, माया से रहित, मुकुन्द (मोक्षदाता) आपकी जय हो ! जय हो ! (इस

लोक और परलोक के सब भोगों से) विरक्त तथा मोह से सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बन कर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणों के समूह का गान करते हैं, उन सच्चिदानन्द की जय हो। जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी (अथवा सहायक) के अकेले ही, या स्वयं अपने को त्रिगुणरूप—ब्रह्मा, बिष्णु, शिवरूप—बनाकर अथवा बिना किसी उपादानकरण के अर्थात् स्वयं ही सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण बनकर (तीन प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की), वे पापों का नाश करने वाले भगवान हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा। जो संसारके (जन्म-मृत्यु के) भय का नाश करने वाले, मुनियों के मन को आनन्द देने वाले, और विपत्तियों के समूह को नष्ट करने वाले हैं, हम सब देवताओं के समूह मन, वचन और कर्म से चतुराई करने की बान छोड़कर उन (भगवान) की शरण आये हैं। सरस्वती, वेद, शेष जी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकार कर कहते हैं, वे ही श्री भगवान हम पर दया करें। हे संसार रूपी समुद्र को मथने के लिये मन्दराचलरूप सब प्रकार से सुंदर, गुणों के धाम और सुखों की राशि नाथ ! आपके चरण कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय से अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

टिप्पणी—यों तो समस्त "मानस" गेय है, किन्तु तुलसीदास के छन्दों का अपना ही माधुर्य हैं। जहाँ कहीं स्तुति होती है, वहाँ तुलसीदास १६ पंक्तियों के छंद का प्रयोग करते हैं। जब परलोक और भूलोक रावण के अत्याचार से पीड़ित हो उठे, तब शिवजी के कहने पर ब्रह्मा जी ने विष्णु की स्तुति की। आगे चलकर जब श्रीराम ने अहिल्या का उद्धार किया, तो वह उनकी ऐसी ही एक उत्कृष्ट स्तुति करके, परलोक सिधार गई (देखिए दोहा २१० के नीचे का छन्द)।

दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥१८६॥

भावार्थ—देवताओं और पृथ्वी को भयभीत जानकर और उनके स्नेह युक्त वचन सुनकर शोक और सन्देह को हरने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥

तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई ।।
नारद वचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ ।।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ।।
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ।।
तव ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा ।।

भावार्थ—"हे मुनि, सिद्ध और देवताओं के स्वामियों ! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्य का रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंश में अंशों सहित मनुष्य का अवतार लूँगा। कस्यप और अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप में मनुष्यों के राजा होकर श्री अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं। उन्हीं के घर जा कर मैं रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में अवतार लूँगा। नारद के सब बचन मैं, सत्य करुँगा और अपनी परमशक्ति के सहित अवतार लूँगा। मैं पृथ्वी का सब भार हर लूँगा। हे देववृन्द ! निर्भय हो जाओ।" आकाश में ब्रह्म (भगवान) की वाणी को कान से सुनकर देवता तुरन्त लौट गये। उनका हृदय शीतल हो गया। तब ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को समझाया। वह भी निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा (ढाढस) आ गया।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई नौ विषम पंक्तियों की है। उसकी निम्न पंक्तियाँ पुनः अद्धृत की जा रही हैं।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस अवतारा ।।
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा ।।
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा ।।
तिन्ह के गृह अवतरिहऊँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउँ भाई ।।
नारद वचन सत्य सब करिहऊँ। परमशक्ति समेत अवतरिऊ ।।

यही भाव पहले दोहा १५० और १५२ के ऊपर की चौपाईयों में व्यक्त किया गया है :—

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होव मैं आई ।।
× × × × ×
इच्छा मय नर वेष सँवारे। होइहऊँ प्रगट निकेत तुम्हारे ।।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहऊँ चरित भगत सुखदाता ।।
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोंउ अवतरिहि मोर यह माया ।।

यद्यपि घोर तपस्या स्वायम्भु-मनु और सतरूपा ने की और भगवान ने उन्हीं को वरदान दिया था कि वह स्वयं उनके पुत्र के रूप में अवतार लेंगे (देखिये

पृष्ठ २३९) परन्तु ऊपर की चौपाई में मनु और सतरूपा के स्थान पर कश्यप और अदिति का नाम लिया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार मनु ब्रह्मा के पुत्र थे और कश्यप पौत्र। कश्यप के पिता का नाम मरीचि था। तुलसीदास के अनुसार एक कल्प में जो स्वायम्भु मनु थे, दूसरे कल्प में कश्यप हुए और तीसरे कल्प में दशरथ।

ऊपर के उद्धरणों में तीन वाक्य ध्यान देने योग्य हैं :–

1–अंसन्ह सहित मनुज अवतारा–भगवान ने मनु-सतरूपा कश्यप-अदिति को वरदान दिया था कि वह अपने अंश-सहित अवतार लेगें। अतएव लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी भगवान के ही अंश हैं—विश्लेषण के लिए, देखिए पृष्ठ १९५।

2–परम शक्ति समेत अवतरिहऊँ–भगवान ने केवल पुत्र-रूप अवतरित होने का आश्वासन दिया था, परन्तु यह भी घोषणा कर दी थी कि वह अपनी शक्ति समेत अवतार लेंगे। देवताओं की अर्धांगिनीयों को उनकी पत्नी कहना उचित नहीं है। वह उनकी शक्ति का प्रतीक हैं। सरस्वती ब्रह्मा की शक्ति, पार्वती शिव शक्ति और लक्ष्मी विष्णु शक्ति हैं। जब राम का अवतार हुआ तब सीता भी उनकी शक्ति के रूप में अवतरित हुईं। सीता की दैविक शक्ति का आभास दोहा ३०६ और उसके ऊपर की चौपाई से मिलता है। जब दशरथ मिथिला बरात लेकर आये, तब सीता ने सब सिद्धियों को आहूत किया। सिद्धियों ने सीता का आदेश पाकर हर बराती के ठहरने के स्थान को समस्त ऐश्वर्य से भर दिया। सब बराती जनक की प्रशंसा करने लगे, परन्तु असली रहस्य राम के अतिरिक्त और कोई नहीं जान पाया।

3–नारद वचन सत्य सब करिहऊँ–देखिये दोहा १८७ के नीचे की चौपाई पर टिप्पणी, पृष्ठ २३०।

दो०—निज लोकहि बिरंचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥१८७॥

भावार्थ—देवताओं को यही सिखाकर कि वानरों का शरीर धर-धर कर तुम लोग पृथ्वी पर जाकर भगवान के चरणों की सेवा करो, ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये।

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ बिश्रामा ॥
जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा ॥

वनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मतिधीरा ॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा ॥
अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँगपानी ॥

भावार्थ—सब देवता अपने-अपने लोक को गये। पृथ्वी सहित सब के मन को शान्ति मिली। ब्रह्मा जी ने जो कुछ आज्ञा दी उससे देवता बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने (वैसा करने में) देर नहीं की। पृथ्वी पर उन्होंने वानर देह धारण की। उनमें अपार बल और प्रताप था। सभी शूरवीर थे। पर्वत, वृक्ष और नख ही उनके शस्त्र थे। ये वीर बुद्धिवाले (वानर रूप देवता) भगवान के आने की राह देखने लगे। वे (बानर) पर्वतों और जंगलों में जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुन्दर सेना बनाकर भरपूर छा गये। यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा। अब वह चरित्र सुनों जिसे बीच ही में छोड़ दिया था। अवधपुरी में रघुकुल शिरोमणि दशरथ नाम के राजा हुए, जिनका नाम बेदों में विख्यात है। ये धर्म धुरन्धर, गुणों के भण्डार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में सारंग धनुष धारण करने वाले भगवान की भक्ति थी, और उनकी बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई में निम्न पंक्ति का विश्लेषण आवश्यक है—

"यह सब रूचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा।"

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि देवताओं का बन्दर का शरीर धारण करके दक्षिण भारत में जन्म लेना रामकथा के लिये अप्रसांगिक हैं। अतएव इस विषय को वह इस चौपाई तक ही सीमित रखते हैं और पुनः आगे राम-कथा कहते हैं। जो दोहा १८७ के ऊपर उन्होंने छोड़ी।

भले ही शिव जी को (तुलसीदास को) देवताओं का बानर-रूप में जन्म लेना अप्रसांगिक लगा हो, परन्तु पूरे शिव-पार्वती संवाद में (पृष्ठ १८४ से २८८) रामजन्म के अनेक कारण बताये गये हैं। उनमें से एक कारण था नारद के श्राप को प्रमाणित करना। नारद ने श्राप दिया था कि जैसे तुमने मुझे विश्वमोहिनी से वंचित किया, उसी प्रकार तुम भी अपनी पत्नी के विरह में तड़पोगे। और फिर दोहा १३७ के ऊपर की चौपाई में नारद कहते हैं :—

"कपि आकृति तुम्ह किन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥"

अर्थात्, तुमने मुझे बन्दर की आकृति दी, ये ही बन्दर तुम्हारी मदद करेंगे।

ब्रह्मा ने जब विष्णु की स्तुति की, तब इस आशय की आकाश वाणी हुई। दोहा १८७ के ऊपर की चौपाई में विष्णु भगवान स्वयं कहते हैं :—

"नारद वचन सत्य सब करहऊँ। परम सक्ति समेत अवतरिहऊँ।।"

इस वाक्य को सार्थक करने के लिए देवताओं का बन्दर के रूप में जन्म लेना आवश्यक था। दोहा १८७ में भी ब्रह्मा ने देवताओं को ये ही सीख दी :

"बानर तनु धरि-धरि महि हरि पद सेवहु जाई।।'

अर्थात्, तुम पृथ्वी पर बन्दर का शरीर धारण करके, विष्णु भगवान की सेवा करो। ब्रह्मा का आदेश पाकर देवताओं ने बन्दर का शरीर धारण करके दक्षिण भारत में जन्म लिया। यह बानर-देवता अपना बल और प्रतिभा पहले से प्रकट करना नहीं चाहते थे ताकि उनका भेद असुरों पर खुल न जाये। वह सामान्य वानरों का आचरण करते हुए पर्वतों और जंगलों में विचरते रहे। वह राम की प्रतीक्षा कर रहे थे ताकि समय आने पर ही राम की सेवा में अपने बल और पराक्रम का उत्तम रूप से सदुपयोग करें।

वास्तव में रावण के ऊपर राम की विजय का श्रेय बन्दरों और उनके नायक हनुमान को है। राम लंका पहुँच ही नहीं सकते थे यदि नल-नील समुद्र के ऊपर सेतु न बाँधते, लंका में आग लगाने और द्रोणागिरि से संजीवनी बूटी लाने का श्रेय हनुमान को है, रावण को बन्दरों के अतुल बल का आभास तब मिला, जब उसका कोई योद्धा अंगद का पैर तक न हिला पाया। हनुमान तो पुष्पक विमान में राम के साथ अध्योया लौटे और फिर वहीं रह गए। उन्होंने अपना शेष जीवन राम की सेवा में लगा दिया। वह राम-भक्ति के प्रतीक हैं।

ऊपर की चौपाई का एक और पहलू है। कुछ समीक्षकों का मत है कि जाम्बवान् और हनुमान अनार्य जाति के थे, पशु नहीं। जो जाति जिस जन्तु या पदार्थ की पूजा करती है, उस जाति को उस पूज्य जन्तु या पदार्थ से हानि होने का भय नहीं रहता और वह जाति भी अपने उसी पूज्य के नाम से पुकारी जाती है। जैसे भारत का राष्ट्रीय चिन्ह चतुरानन सिंह है, वैसे ही जामवन्त जाती का भालू और हनुमान की जाति का बन्दर चिन्ह (totem) था।

दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत।।१८८।।

भावार्थ—उनकी कौसल्या आदि प्रिय रानियाँ सभी पवित्र आचरण वाली थीं और श्री हरि के चरण कमलों में उनका दृढ़ प्रेम था।

एक बार भूपति मन माहीं । भै गलानि मोरें सुत नाहीं ।।
गुर गृह गयउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि बिनय बिसाला ।।
निज दुख सुख सब गुरहि सुनायउ । कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ ।।
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी । त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी ।।
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा । पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें । प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें ।।
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा । सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ।।
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई । जथा जोग जेहि भाग बनाई ।।

भावार्थ—एक बार राजा के मन में बड़ी ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है । राजा तुरंत ही गुरू के घर गये और चरणों में प्रणाम कर बहुत विनय की । राजा ने अपना सारा दुख सुख गुरू को सुनाया । गुरू वशिष्ट जी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया (और कहा) "धीरज धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध और भक्तों के भय को हरने वाले होंगे ।" वशिष्ट जी ने श्रृंगी ऋषि को बुलाया और उनसे शुभ पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया । मुनि के भक्ति सहित आहुतियाँ देने पर अग्निदेव हाथ में चरू (हविष्यान्न, खीर) लिये प्रकट हुये । (और दशरथ से बोले) "वशिष्ट जी ने हृदय में जो कुछ विचारा था, तुम्हारा वह सब काम सिद्ध हो गया । हे राजन् ! (अब) तुम जाकर हविष्यान्न (पायस) को, जिसको जैसा उचित हो, वैसा भाग बना कर बांट दो ।"

दो०—तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ ।।१८९।।

भावार्थ—तदनन्तर अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अन्तर्द्धान हो गये । राजा परमानन्द में मग्न हो गये, उनके हृदय में हर्ष समाता न था ।

तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं । कौसल्यादि तहाँ चलि आईं ।।
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा । उभय भाग आधे कर कीन्हा ।।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ । रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ।।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ।।
एहि बिधि गर्भसहित सब नारी । भईं हृदयँ हरषित सुख भारी ।।
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए । सकल लोक सुख संपति छाए ।।
मंदिर महँ सब राजहिं रानीं । सोभा सील तेज की खानीं ।।
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ । जेहिं प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ।।

भावार्थ—उसी समय राजा ने अपनी प्यारी पत्नियों को बुलाया। कौसल्या आदि सब (रानियाँ) वहाँ चली आईं। राजा ने (पायस का) आधा भाग कौसल्या को दिया, (और शेष) आधे के दो भाग किये। वह (उसमें से एक भाग) राजा ने कैकेयी को दिया। शेष जो बच रहा, उसके फिर, दो भाग हुए और राजा ने उनको कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर (अर्थात् उनकी अनुमति लेकर) और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके सुमित्रा को दिया। इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय में बहुत हर्षित हुईं, उन्हें बड़ा सुख मिला। जिस दिन से श्री हरि (लीला से ही) गर्भ में आये, सब लोकों में सुख और सम्पत्ति छा गई। शोभा, शील और तेज की खान (बनी हुई) तब रानियाँ महल में सुशोभित हुईं। इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जिसमें प्रभु को प्रकट होना था।

टिप्पणी—सुमित्रा को चरु के १/८ और १/८ करके दो भाग मिले। इसी कारण उनके जुड़वा (twins) दो पुत्र हुए—लक्ष्मण और शत्रुघ्न।

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल ॥१९०॥

भावार्थ—योग, लगन, ग्रह, वार और तिथि सभी अनुकूल हो गये। जड़ और चेतन सब हर्ष से भर गये। (क्योंकि) श्रीराम का जन्म सुख का मूल है।

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ। हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा॥
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधि लावहिं निज निज सेवा॥

भावार्थ—पवित्र चैत का महीना था, नवमी तिथि थी। शुक्ल पक्ष और भगवान का अभिजित नक्षत्र था। दोपहर का समय था। न बहुत सर्दी थी, न धूप (गर्मी) थी। वह पवित्र समय सब लोकों को शान्ति देने वाला था। शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन बह रहा था। देवता हर्षित थे और सन्तों के मन में बड़ा

चाव था। बन फूले हुए थे, पर्वतों के समूह मणियों से जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृत की धारा बहा रही थी। जब ब्रह्मा जी ने वह भगवान के प्रकट होने का अवसर जाना, तब उनके समेत सारे देवता विमान सजा-सजा कर चले। निर्मल आकाश देवताओं के समूहों से भर गया। गन्धर्वों के दल गुणों का गान करने लगे। और सुन्दर अञ्जलियों में सजा-सजा कर पुष्प बरसाने लगे। आकाश में धमाधम नगाड़े बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकार से अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेट करने लगे।

दो०—सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम॥ १९१॥

छं०—भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

दो०—बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥ १९२॥

भावार्थ—देवताओं के समूह विनती करके अपने-अपने लोक में जा पहुँचे। समस्त लोकों को शान्ति देने वाले जगताधार या जगत भर में व्यापक प्रभु प्रकट

हुए। दीनों पर दया करने वाले, कौसल्या जी के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मनको हरने वाले उनके अद्‌भुत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गयी। नेत्रों को आनन्द देने वाले, मेघ के समान श्याम शरीर था; चारों भुजाओं में अपने (विशेष) आयुध (धारण किये हुए) थे, (दिव्य) आभूषण और वनमाला पहने थे। बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारने वाले भगवान प्रकट हुए। दोनों हाथ जोड़कर माता कहने लगी–'हे अनन्त ! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति करूँ। वेद और पुराण तुमको माया, गुण और ज्ञान से परे और परिमाणरहित बतलाते हैं। श्रुतियों और संतजन दया और सुख का समुद्र, सब गुणों का धाम कहकर जिनका गान करते हैं, वहीं भक्तों पर प्रेम करने वाले लक्ष्मीपति भगवान मेरे कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं। वेद कहते हैं कि तुम्हारे प्रत्येक रोम में माया के रचे हुए अनेकों ब्रह्माण्डों के समूह हैं। वे तुम मेरे गर्भ में रहे–इस हँसी की बात के सुनने पर धीर (विवेकी) पुरुषों की बुद्धि भी स्थिर नहीं रहती (विचलित हो जाती है)।' जब माता को ज्ञान उत्पन्न हुआ तब प्रभु मुसकराये। वे बहुत प्रकार के चरित्र करना चाहते हैं। अत: उन्होंने (पूर्वजन्म) सुन्दर कथा कहकर माता को समझाया, जिससे उन्हें पुत्र (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो (भगवान के प्रति पुत्र भाव हो जाय)। माता की वह बुद्धि बदल गई, तब वह बोली–"हे तात ! यह रूप छोड़कर अत्यन्त प्रिय बाललीला करो (मेरे लिये)। यह सुख परम अनुपम होगा।" (माता का) यह वचन सुनकर देवताओं के स्वामी सुजान भगवान ने बालक (रूप) होकर रोना आरम्भ कर दिया। (तुलसीदास जी कहते हैं–)जो इस चरित्र का गान करते हैं, वे श्री हरि का पद पाते हैं और फिर संसार रूपी कूप में नहीं गिरते। ब्राह्मण, गो, देवता और संतों के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया। वे (अज्ञानमयी, मलिना) माया और उसके गुण (सत, रज, तम) और बाहरी तथा भीतरी इन्द्रियों से परे हैं। उनका (दिव्य) शरीर अपनी इच्छा से ही बना है, किसी कर्मबन्धन से परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थों के द्वारा नहीं। देवताओं और संतों के लिए मनुष्य का अवतार लिया। यहाँ ब्राह्मण का अर्थ ब्रह्म को जानने वाला है नहीं तो कम से कम अटूट श्रद्धावान होना तो आवश्यक ही है।

टिप्पणी–श्रीराम जन्म की घोषणा तुलसीदास १६ पंक्तियों के छन्द से करते हैं। वैसे तो भगवान समस्त संसार के लिए कृपालु और दीनदयालु हैं, पर वह विशेषकर कौशल्या के हितकारी हैं। कारण ?–१५वें दोहे के नीचे की चौपाई देखिये (पृष्ठ ४०)। दशरथ से पहले तुलसीदास ने कौशल्या की वन्दना की है, क्योंकि वह 'सूर्यकुल के सूर्य' की जन्मदात्री हैं। उनकी कीर्ति सारे संसार को निरन्तर प्रकाश प्रदान करती रहेगी। इसी कारण तुलसीदास ने शुरू में ही उनकी

तुलना 'प्रातःकालीन पूर्व दिशा' से दी है। कौशल्या स्वयं आश्चर्य करती हैं कि जिसके प्रत्येक रोम में माया के रचे हुए अनेकों ब्रह्माण्डों के समूह हैं, वे उनके गर्भ में नौ मास तक कैसे रहे। जैसे कृष्ण ने अर्जुन को अपना विराट स्वरूप दिखाया था, वैसा ही विराट स्वरूप राम ने कौशल्या को दिखाया। उसको देखकर कौशल्या डर गईं और भगवान से विनती करी कि वह शीघ्र ही अपने विराट रूप को त्याज्य दें और 'शिशुलीला' करें। (देखिए दोहा २०२)।

कौशल्या को अपने पूर्व जन्म की याद नहीं आई। पूर्वजन्म में वह अदिति थीं और उसके पहले सतरूपा। सतरूपा ने भगवान से वर माँगा था। 'सुत विषइक तव पद रति होऊ', और उनके पति स्वायम्भुव ने भी यही बरदान माँगा था : 'चाहउँ तुम्हहि समान सुत।' 'एवमस्तु' कह भगवान ने दम्पति की प्रार्थना स्वीकार की :—

'होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत ॥'

(देखिए दोहा १४६, दोहा १५० के नीचे की चौपाई और सोरठा १५१)

एक बात और ध्यान में रखने की है। इस छंद के पहले अर्थात राम-जन्म के पहले, शिव-पार्वती संवाद समाप्त हो जाता है और राम-जन्म, धनुर्यज्ञ और चारों भाइयों के विवाह का कथानक स्वयं तुलसीदास श्रोताओं को सुनाते हैं।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी ॥
दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा ॥
गुर बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा ॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई ॥

भावार्थ—बच्चे के रोने की बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ी चली आयीं। दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं। सारे पुरवासी आनन्द में मग्न हो गये। राजा दशरथ पुत्र का जन्म कानों से सुनकर मानो ब्रह्मानन्द में समा गये। मन में अतिशय प्रेम है, शरीर पुलकित हो गया। (आनन्द में अधीर हुई) बुद्धि को धीरज देकर (और प्रेम से शिथिल हुए शरीर को संभालकर) वे उठना चाहते हैं। जिनका नाम सुनते ही कल्याण होता है, वही

प्रभु मेरे घर आते हैं। (यह सोचकर) राजा का मन परम आनन्द से पूर्ण हो गया। उन्होंने बाजे वालों को बुलाकर कहा—बाजा बजाओ। गुरू वशिष्ठ जी के पास बुलावा गया। वे ब्राह्मणों को साथ लिये राजद्वार पर आये। उन्होंने जाकर अनुपम बालक को देखा, जो रूप की राशि है और जिसके गुण कहने से समाप्त नहीं होते।

दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥ १९३ ॥

भावार्थ—फिर राजा ने नन्दीमुख श्राद्ध करके सब नीति कर्म-संस्कार आदि किये और ब्राह्मणों को सोना, गौ, वस्त्र और मणियों का दान दिया।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा ॥
सुमनबृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानद मगन सब लोई ॥
बृंद बृंद मिली चलीं लोगाईं। सहज सिंगार किएँ उठ धाईं ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥
करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥
सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा ॥

भावार्थ—ध्वजा, पताका और तोरणों से नगर छा गया। जिस प्रकार से वह सजाया गया, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। आकाश से फूलों की वर्षा हो रही है, सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। स्त्रियाँ झुंड की झुंड मिलकर चलीं। स्वाभाविक श्रृंगार किये ही वे उठ दौड़ीं। सोने के कलश लेकर और थालों में मंगल दृव्य भरकर गाती हुई राजद्वार में प्रवेश करती हैं। वे आरती करके निछावर करती हैं और बराबर बच्चे के चरणों पर गिरती हैं। मागध, सूत, बन्दीजन और गवैये रघुकुल के स्वामी के पवित्र गुणों का गान करते हैं। राजा ने सब किसी को भरपूर दान दिया। जिसने पाया उसने भी नहीं रखा (लुटा दिया)। (नगर की) सभी गलियों के बीच-बीच में कस्तूरी, चन्दन और केसर की कीच मच गयी।

दो०—गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद ॥ १९४ ॥

भावार्थ—घर-घर मंगलमय बधावा बजने लगा, क्योंकि शोभा के मूल भगवान प्रकट हुए हैं। नगर के स्त्री-पुरुषों के झुंड के झुंड जहाँ-तहाँ आनन्दमग्न हो रहे हैं।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुँदर सुत जनमत भैं ओऊ॥
वह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा॥
अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥
अगर धूप बहु जनु अँधिआरी। उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥
भवन बेदधुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समयँ जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥

भावार्थ—कैकेयी और सुमित्रा इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। उस सुख, सम्पत्ति, समय और समाज का वर्णन सरस्वती और सर्पों के राजा शेष जी भी नहीं कर सकते। अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो रात्रि प्रभु से मिलने आयी हो और सूर्य को देखकर मानो मन में सकुचा गयी हो, परन्तु फिर भी मन में विनय कर वह मानो सन्ध्या बनकर (रह गयी) गयी हो। अगर की धूप का बहुत सा धुँआ मानो (सन्ध्या का) अन्धकार है और जो अबीर उड़ रहा है, वह उसकी ललाई है। महलों में जो मणियों के समूह हैं, वे मानों तारागण हैं। राजमहल का जो कलश है, वही मानो श्रेष्ठ चन्द्रमा है। राजमहल में जो अतिकोमल वाणी से वेदध्वनि हो रही है, वही मानो समय से (समयानुकूल) सनी हुई पक्षियों की चहचहाहट है। यह कौतुक देखकर सूर्य भी (अपनी चाल) भूल गए। एक महीना उन्होंने जाता हुआ न जाना। (अर्थात उन्हें एक महीना वहीं बीत गया)।

दो०—मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥ १९५॥

भावार्थ—महीने भर का दिन हो गया। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथ सहित वहीं रुक गये, फिर रात किस तरह होती।

यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा॥

औरउ एक कहउँ निज चोरी । सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी ॥
काकभुसुँडि संग हम दोऊ । मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ ॥
परमानंद प्रेमसुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥
यह सुभ चरित जान पै सोई । कृपा राम कै जापर होई ॥
तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा । दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा ॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा । दीन्हे नृप नानाबिधि चीरा ॥

भावार्थ—यह रहस्य किसी ने नहीं जाना । सूर्यदेव (भगवान श्री राम जी का) गुणगान करते हुए चले । यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले । हे पार्वती ! तुम्हारी (श्री राम जी के चरणों में) बहुत दृढ़ मति है, इसलिये मैं और भी अपनी एक चोरी (छिपाव) की बात कहता हूँ, सुनो । काकभुसुण्डि और मैं दोनों वहाँ साथ-साथ थे, परन्तु मनुष्य रूप में होने के कारण हमें कोई जान न सका । परम आनन्द और प्रेम के सुख में फूले हुए हम दोनों मग्न मन से (मस्त हुए) गलियों में (तन-मन की सुधि) भूले हुए फिरते थे । परन्तु यह शुभ चरित्र वही जान सकता है जिस पर श्री राम जी की कृपा हो । उस अवसर पर जो जिस प्रकार आया, और जिसके मन को जो अच्छा लगा, राजा ने उसे वही दिया । हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गौएं, हीरे और भाँति-भाँति के वस्त्र राजा ने दिये ।

दो०—मन संतोषे सबन्हि के जहँ तहँ देहिं असीस ।
सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस ॥ १९६ ॥

भावार्थ—राजा ने सब के मन को सन्तुष्ट किया । (इसी से) सब लोग जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे थे कि तुलसीदास के स्वामी सब पुत्र (चारों राजकुमार) चिरंजीवी (दीर्घायु) हों ।

कछुक दिबस बीते एहि भाँती । जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी । भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥
करि पूजा भूपति अस भाषा । धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
इन्ह के नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
जो आनंद सिंधु सुख रासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक बिश्रामा ॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

भावार्थ—इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। दिन और रात जाते हुए जान नहीं पड़ते। तब नामकरण संस्कार का समय जानकर, राजा ने ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी को बुला भेजा। मुनि की पूजा करके राजा ने कहा—हे मुनि! आपने मन में जो विचार रखे हों, वे नाम रखिये। (मुनि ने कहा) "हे राजन! इनके अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा। वे जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि हैं। जिस (आनन्द सिन्धु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम' है, जो सुख का भवन और सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देने वाला है। जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा। जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध 'शत्रुघन' नाम है।"

दो०—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥ १९७॥

भावार्थ—जो शुभ लक्षणों के धाम, श्री राम जी के प्यारे और सारे जगत के आधार हैं, गुरु वशिष्ट जी ने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा।

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। वेद तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥
बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा॥
हृदयँ अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दलारइ कहि प्रिय ललना॥

भावार्थ—गुरू जी ने हृदय में विचार करके नाम रक्खे और कहा "हे राजन तुम्हारे चारों पुत्र वेद के तत्व साक्षात् परात्पर भगवान हैं। जो मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं, उन्होंने इस समय तुम लोगों के प्रेमवश बाललीला के रस में सुख माना है।" बचपन से ही श्री रामचन्द्र जी को स्वामी बनाकर लक्ष्मण जी ने उनके चरणों में प्रीति जोड़ ली। भरत और शत्रुघन दोनों भाइयों में स्वामी और सेवक की जिस प्रीति की प्रशंसा है वैसी प्रीति हो गयी। श्याम और गौर शरीर वाली दोनों सुन्दर जोड़ियों की शोभा को देखकर माताएं तृण तोड़ती हैं। जिसमें दीठ न लग जाय। यों तो चारों पुत्र ही शील, रूप और

गुण के धाम हैं, तो भी सुख के समुद्र श्री रामचन्द्र जी सबसे अधिक हैं। उनके हृदय में कृपारूपी चन्दमा प्रकाशित है। उनकी मनको हरने वाली हँसी उस कृपा रूपी चन्द्रमा की किरणों को सूचित करती है। कभी गोद में लेकर और कभी उत्तम पालने में लिटाकर माता "प्यारे ललना !" कहकर दुलार करती हैं।

दो०—ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ।। १९८ ।।

भावार्थ—जो सर्वव्यापक, निरन्जन, मायारहित, निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म है, वही प्रेम और भक्ति के वश कौसल्या की गोद में खेल रहे हैं।

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा ।।
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ।।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ।।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गंभीर जान जेहिं देखा ।।
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ।।
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा ।।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ।।
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ।।
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ।।
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ।।
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ।।
रूप सकहि नहि कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा ।।

भावार्थ—उनके नील कमल और गम्भीर जल से भरे हुए मेघ के समान श्याम शरीर में करोड़ों कामदेव की शोभा है। लाल-लाल चरणकमलों के नखों की शुभ्र ज्योति ऐसी मालूम होती है जैसे लाल कमल के पत्तों पर मोती स्थिर हो गये हों। चरण कमलों में बज्र, ध्वजा, और अंकुश के चिन्ह शोभित हैं। नुपूर (पैंजनी) की ध्वनि सुनकर मुनियों का भी मन मोहित हो जाता है। कमर में करधनी और पेट पर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं। नाभि की गम्भीरता तो वही जानते हैं जिन्होंने उसे देखा है। बहुत से आभूषणों से सुशोभित विशाल भुजाएँ हैं। हृदय पर बाघ के नख की बहुत ही निराली छटा है। छाती पर रत्नों से युक्त मणियों के हार की शोभा और ब्राह्मण भृगु के चरण चिन्ह को देखते ही मन लुभा जाता है। कंठ शंख के समान उतार चढ़ाव वाला, तीन रेखाओं से सुशोभित हैं और ठोडी बहुत ही सुन्दर है। मुख पर असंख्य कामदेवों की छठा छा रही है। दो-दो सुन्दर दँतुलियाँ हैं, लाल-लाल ओठ हैं। नासिका और तिलक के सौन्दर्य का तो वर्णन ही कौन कर सकता है। सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं। मधुर तोतले शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं। जन्म के समय से

रक्खे हुए चिकने और घुंघराले बाल हैं, जिनको माता ने बहुत प्रकार से बनाकर सँवार दिया है। शरीर पर पीली झँगुली पहनाई हुई है। उनका घुटनों और हाथों के बल चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। उनके रूप का वर्णन वेद और शेष जी भी नहीं कर सकते, उसे वही जानता है जिसने कभी स्वप्न में भी देखा है।

टिप्पणी–ऊपर की चौपाई १२ सम पंक्तियों की है। इसमें तुलसीदास ने बाल राम का नख-शिख वर्णन किया है।

दो०– सुख संदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस कर सिसुचरित पुनीत ।। १९९ ।।

भावार्थ–जो सुख के पुँज, मोह से परे तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं, वे भगवान दशरथ-कौशल्या के अत्यन्त प्रेम के वश होकर पवित्र बाल-लीला करते हैं।

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता ।।
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रगट भवानी ।।
रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी ।।
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सों भय भाखे ।।
भृकुटि बिलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कहु काही ।।
मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहि रघुराई ।।
एहि बिधि सिसुबिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगर बासिन्ह सुख दीन्हा ।।
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालनें घालि झुलावै ।।

भावार्थ–इस प्रकार (सम्पूर्ण) जगत के माता-पिता श्रीराम जी अवधपुर के निवासियों को सुख देते हैं। जिन्होंने श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति जोड़ी है, हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है कि भगवान उनके प्रेमवश बाललीला करके आनन्द दे रहे हैं। श्री रघुनाथ जी से विमुख रहकर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे, परन्तु उसका संसार बन्धन कौन छुड़ा सकता है। जिसने सब चराचर जीवों को अपने वश में कर रक्खा है, वह माया भी प्रभु से भय खाती है। भगवान उस माया को भौंह के इशारे पर नचाते हैं। ऐसे प्रभु को छोड़कर कहो, और किसका भजन किया जाय। मन, वचन और कर्म से चतुराई छोड़कर भजते ही श्री रघुनाथ जी कृपा करेंगे। इस प्रकार प्रभु रामचन्द्र जी ने बालक्रीड़ा की और समस्त नगरवासियों को सुख दिया। कौशल्या जी कभी उन्हें गोद में लेकर हिलाती डुलातीं और कभी पालने में लिटाकर सुलाती थीं।

दो०– प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ।। २०० ।।

भावार्थ–प्रेम में मग्न कौशल्या जी रात और दिन का बीतना नहीं जानती थीं। पुत्र के स्नेहवश माता उनके बालचरित्रों का गान किया करती थीं।

एक बार जननीं अन्हवाए । करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ॥
करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देख सुत जाई ॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई । हृदयँ कंप मन धीर न होई ॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा ॥
देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥

भावार्थ– एक बार माता ने श्री रामचन्द्र जी को स्नान कराया और श्रृंगार करके पालने पर पौढ़ा दिया । फिर अपने कुल के इष्टदेव भगवान की पूजा के लिये स्नान किया । पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया, और स्वयं वहाँ गई जहाँ रसोई बनाई गई थी । फिर माता वहीं (पूजा के स्थान में)लौट आयीं, और वहाँ आने पर पुत्र को (इष्टदेव भगवान् के लिए चढ़ाये हुए नैवेद्य का) भोजन करते देखा । माता भयभीत होकर (पालने में सोया था, यहाँ किसने लाकर बैठा दिया, इस बात से डरकर)पुत्र के पास गयी, तो वहाँ बालक को सोया हुआ देखा । फिर (पूजा स्थान में लौटकर)देखा कि वही पुत्र वहाँ (भोजन कर रहा) है । उनके हृदय में कंपन होने लगा और मन को धीरज नहीं होता । (वह सोचने लगीं कि)यहाँ और वहाँ मैने दो बालक देखें । यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या और कोई विशेष कारण है । प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने माता को घबड़ाती हुई देखकर मधुर मुस्कान से हंस दिया ।

दो०– देखरावा मातहि निज अद्‌भुत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ।। २०१ ।।

भावार्थ– फिर उन्होंने माता को अपना अखण्ड अद्‌भुत रूप दिखलाया, जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रहमाण्ड लगे हुए हैं ।

अगनित रबि ससि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अथि सभीत जोरें कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावइ जाही । देखी भगति जो छोरइ ताही ॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूदि चरननि सिरु नावा ॥
बिसमयवंत देखि महतारी । भए बहुरि सिसुरूप खरारी ॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना । जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥
हरि जननी बहुबिधि समुझाई । यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ॥

भावार्थ— अगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव देखे और वे पदार्थ भी देखे जो कभी सुने भी न थे। सब प्रकार से बलवती माया को देखा कि वह भगवान के सामने अत्यन्त भयभीत, हाथ जोड़े खड़ी है। जीव को देखा जिसे वह माया नचाती है, और (फिर) भक्ति को देखा, जो इस जीव को (माया से) छुड़ा देती है। (माता का) शरीर पुलकित हो गया, मुख से वचन नहीं निकलता। तब आँख मूँदकर उसने श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सिर नवाया। माता को आश्चर्यचकित देखकर खर के शत्रु श्रीराम जी फिर बाल-रूप हो गये। माता से स्तुति भी नहीं की जाती। वह डर गयी कि मैंने जगतपिता परमात्मा को पुत्र करके जाना। श्री हरि ने माता को बहुत प्रकार से समझाया और कहा "हे माता! सुनो, यह बात कहीं पर कहना नहीं।"

दो०— बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि ।। २०२ ।।

भावार्थ—कौसल्या जी बार-बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो! मुझे आप की माया अब कभी न व्यापे।

टिप्पणी— पृष्ठ २३४ दोहा, १९२ के ऊपर के छंद में निम्न पंक्ति हैं :

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा ॥

इस छंद को तुलसीदास ने आगे चलकर दोहा २०० और २०१ के नीचे की चौपाइयों और दोहा २०२ में स्पष्ट किया है। एक दिन कौशल्या ने शिशु राम को निल्हा-धूला कर, पालने में सुला कर, स्वंय स्नान करके, कुल के इष्ट देव की पूजा की और उन्हें नैवेद्य चढ़ाया। फिर रसोई घर गई। वहाँ से लौटीं तो देखा उनका पुत्र स्वयं नैवेद्य का भोजन कर रहा है। फिर पालने की ओर दौड़ीं तो पुत्र को सोता हुआ पाया। दो-दो राम को देखकर कौशल्या भयभीत हो गई। इस पर राम ने माता को अपना अखण्ड अद्‌भुत रूप दिखाया, जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं। माता और डर गई कि मैंने जगत्पिता परमात्मा को पुत्र करके जाना। श्री हरि ने माता को समझाया और कहा "हे माता! यह बात तुम अपने ही तक सीमित रखना।" कौशल्या जी फिर हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि "हे प्रभो! मुझे आपकी माया अब कभी न व्यापे।"

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा ॥
कछुक काल बीतें सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई ॥
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥

मन क्रम बचन अगोचर जोई । दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवत तजि बाल समाजा ॥
कौसल्या जब बोलन जाई । ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई ॥
निगम नेति सिव अंत न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ॥
धूसर धूरि भरें तनु आए । भूपति बिहसि गोद बैठाए ॥

भावार्थ— भगवान ने बहुत प्रकार से बाल लीलाएँ की, और अपने सेवकों को अत्यन्त आनन्द दिया । कुछ समय बीतने पर चारों भाई बड़े होकर कुटुम्बियों को सुख देने वाले हुए । तब गुरूजी ने आकर चूड़ाकर्म संस्कार किया । ब्राह्मणों ने फिर बहुत सी दक्षिणा पाई। चारों सुन्दर राजकुमार बड़े ही मनोहर आचार चरित्र करते फिरते है । जो मन, वचन और कर्म से अगोचर है, वही प्रभु दशरथ जी के आँगन में विचर रहे हैं । भोजन करने के समय जब राजा बुलाते है, तब वे अपने बाल सखाओं के समाज को छोड़कर नहीं आते । कौसल्या जी जब बुलाने जाती हैं, तब प्रभु ठुमुक ठुमुक कर भाग चलते हैं । जिनका वेद नेति (इतना ही नहीं)कहकर निरूपण करते हैं, और शिवजी ने जिनका अन्त नहीं पाया, माता उन्हें हठपूर्वक पकड़ने के लिये दौड़ती है । वे शरीर में धूल लपेटे हुए आते हैं और राजा हँसकर उन्हें गोद में बैठा लेते हैं ।

टिप्पणी—ऊपर की चौपाई में नौ विषम पंक्तियाँ है । जिस बाल-लीला का वर्णन सूर ने 'सूरसागर' के दशम् स्कंध के १००० पदों में किया है, उसको तुलसी दास ने केवल एक चौपाई में समाप्त कर दिया । जो ब्रह्म मन, वचन और कर्म से अगोचर हैं, वह दशरथ के आँगन में खेल रहे हैं । अपने साथियों के साथ खेल में इतने लीन हैं, कि बुलाने पर भी खाना खाने नहीं आते । कौशल्या उनको पकड़ने भागती हैं, पर वह पकड़ में नहीं आते । अन्त में धूल में भरे, पिता की गोदी में आकर बैठ जाते हैं ।

दो० — भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ।।२०३।।

भावार्थ—भोजन करते हैं पर चित्त चंचल है । अवसर पाकर मुँह में दही, भात लपटाये किलकारी मारते हुए इधर-उधर भाग चलते हैं ।

बालचरित अति सरल सुहाए । सारद सेष संभु श्रुति गाए ॥
जिन्ह कर मन इन्ह सन नहिं राता । ते जन बंचित किए बिधाता ॥
भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई । अलप काल बिद्या सब आई ॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ॥

बिद्या बिनय निपुन गुन सीला । खेलहिं खेल सकल नृपलीला ॥
करतल बान धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई । थकित होहिं सब लोग लुगाई ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी की बहुत ही सरल (भोली)और सुन्दर (मनभावनी) बाललीलाओं का सरस्वती, शेष जी, शिव जी और वेदों ने गान किया है । जिनका मन इन लीलाओं में अनुरक्त नहीं हुआ, विधाता ने उन मनुष्यों को वञ्चित कर दिया (नितान्त भाग्यहीन बनाया)। ज्यों ही सब भाई कुमारावस्था के हुए, त्यों ही गुरू, पिता और माता ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया । श्री रघुनाथ जी भाईयों सहित गुरू के घर में विद्या पढ़ने गये और थोड़े ही समय में उनको सब विद्याएँ आ गयीं । चारों वेद जिनके स्वाभाविक स्वास हैं, वे भगवान पढ़े, यह बड़ा कौतुक (अचरज)है । चारों भाई विद्या, विनय, गुण और शील में निपुण हैं और सब राजाओं की लीलाओं के ही खेल खेलते हैं । हाथों में बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते हैं । रूप देखते ही चराचर (जड़-चेतन) मोहित हो जाते हैं । वे सब भाई जिन गलियों में खेलते हुए निकलते हैं, उन गलियों के सभी स्त्री-पुरूष उनको देखकर स्नेह से शिथिल हो जाते हैं अथवा ठिठक कर रह जाते हैं ।

दो०– कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल ।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल ॥

भावार्थ– कोसलपुर के रहने वाले स्त्री, पुरूष, बूढ़े और बालक सभी को कृपालु श्री रामचन्द्र जी प्राणों से भी बढ़कर प्रिय लगते हैं ।

बंधु सखा संग लेहिं बोलाई । बन मृगया नित खेलहिं जाई ॥
पावन मृग मारहिं जियँ जानी । दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी ॥
जे मृग राम बान के मारे । ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं । मातु पिता अग्या अनुसरहीं ॥
जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा । करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई । आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा । देखि चरित हरषइ मन राजा ॥

भावार्थ–श्री रामचन्द्र जी भाइयों और इष्टमित्रों को बुलाकर साथ ले लेते हैं और नित्य वन में जाकर शिकार खेलते हैं । मन में जिनको पवित्र समझते हैं उन्हीं मृगों को मारते हैं, और प्रतिदिन लाकर राजा (दशरथ जी)को दिखलाते हैं । जो मृग श्री रामचन्द्र जी के बाण से मारे जाते थे , वे शरीर छोड़कर देवलोक को चले जाते । श्री रामचन्द्र जी अपने छोटे भाईयों और सखाओं के साथ भोजन करते हैं और माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं । जिस प्रकार नगर के लोग सुखी हो, कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी वही संजोग

(लीला) करते हैं। वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते हैं और फिर छोटे भाईयों को समझाकर कहते हैं। श्री रघुनाथ जी प्रातःकाल उठकर माता, पिता और गुरू को मस्तक नवाते हैं, और आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं। उनके चरित्र देख-देखकर राजा मन में बड़े हर्षित होते हैं।

दो०— ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ।।२०५।।

भावार्थ—जो व्यापक, अकल (बुद्धि से अगम्य), इच्छा रहित, अजन्मा और निर्गुण हैं, जिनका न नाम है न रूप, वही भक्तों के लिये नाना प्रकार के अनुपम अलौकिक चरित्र करते हैं।

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई ।।
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी ।।
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ।।
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ।।
गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ।।
तब मुनिबर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।।
एहूँ मिस देखौं पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई ।।
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना ।।

भावार्थ—यह सब चरित्र मैने गाकर कहा। अब आगे की कथा मन लगा कर सुनों। ज्ञानी महामुनि विश्वामित्र जी वन में शुभ आश्रम (पवित्र स्थान)जानकर बसते थे। जहाँ वे मुनि जप, यज्ञ और योग करते थे, वहाँ मारीच और सुबाहु से बहुत डरते भी थे। यज्ञ देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचाते थे, जिससे मुनि (बहुत) दुःख पाते थे। गाधि के पुत्र विश्वामित्र जी के मन में चिंता छा गई कि ये पापी राक्षस भगवान के (मारे)बिना न मरेगें। तब श्रेष्ठ मुनि ने मन में विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी का भार हरने के लिये अवतार लिया है। इसी बहाने जाकर मै उनके चरणों के दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाईयों को ले आऊँ। (अहा)जो ज्ञान, वैराग्य और सब गुणों के धाम हैं, उन प्रभु को मै नेत्र भरकर देखूँगा।

दो०— बहुबिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार ।।२०६।।

भावार्थ— बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाने में देर नहीं लगी। सरयू जी के जल में स्नान करके वे राजा के दरबार में पहुँचे।

मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गयउ लै बिप्र समाजा ॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा । मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा ॥
पुनि चरननि मेले सुत चारी । राम देखि मुनि देह बिसारी ॥
भए मगन देखत मुख सोभा । जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥
तब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावउँ बारा ॥
असुर समूह सतावहिं मोही । मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥

भावार्थ– राजा ने जब मुनि का आना सुना, तब वे ब्राह्मणों के समाज को साथ लेकर मिलने गये, और दण्डवत करके मुनि का सम्मान करते हुए उन्हे लाकर अपने आसन पर बैठाया । चरणों को धोकर बहुत पूजा की और कहा 'मेरे समान धन्य आज दूसरा कोई नहीं है ।' फिर अनेक प्रकार के भोजन करवाये, जिससे श्रेष्ठ मुनि ने अपने हृदय में बहुत ही हर्ष प्राप्त किया । फिर राजा ने चारों पुत्रों को मुनि के चरणों में डाल दिया (उनसे प्रणाम कराया) । श्री रामचन्द्र जी को देखकर मुनि अपनी देह की सुधि भूल गए । वे श्री रामजी के मुख की शोभा देखते ही ऐसे मग्न हो गये, मानों चकोर पूर्ण चन्द्रमा को देखकर लुभा गया हो । तब राजा ने मन में हर्षित होकर ये वचन कहे-" हे मुनि ! ऐसी कृपा तो आपने कभी नहीं की । आज किस कारण से आपका शुभागमन हुआ ? कहिये, मैं उसे पूरा करने में देर नहीं लगाऊँगा ।" (मुनि ने कहा) "हे राजन ! राक्षसों के समूह मुझे बहुत सताते हैं। इसलिये मै तुमसे कुछ माँगने आया हूँ । छोटे भाई सहित श्री रघुनाथ जी को मुझे दे दीजिये। राक्षसों के मारे जाने पर मैं सनाथ (सुरक्षित)हो जाऊँगा ।

टिप्पणी–ऊपर की चौपाई दस सम पंक्तियों की है । दोहा २०६ के ऊपर की चौपाई में कहा गया है कि राक्षस लोग विश्वामित्र के यज्ञों में उपद्रव करते थे और विघ्न-बाधा डालते थे । विश्वामित्र सम्यग्दर्शी थे । वह भली प्रकार जानते थे कि दशरथ के पुत्र के रूप में भगवान ने पृथ्वी का भार हरने के लिए अवतार लिया है । ऊपर की चौपाई में विश्वामित्र का सरयू पार करके अवधपुरी आना, राजा दशरथ का उनका स्वागत करना, उनके आने का अभिप्राय पूँछना, उनका 'अनुज समेत' राम को 'निसिचर बध' के लिए दशरथ से माँगना—वर्णन किया गया है ।

दो०—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान ।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौं इन्ह कहँ अति कल्यान ।।२०७।।

भावार्थ–हे राजन ! प्रसन्न मन से इनको दो । मोह और अज्ञान को छोड़ दो । हे स्वामी! इससे तुमको धर्म और सुख की प्राप्ति होगी और इनका परम कल्याण होगा ।''

सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी ॥
चौथेंपन पायऊँ सुत चारी । बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी ॥
मागहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्बस देऊँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देऊँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं । राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुंदर सुत परम किसोरा ॥
सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी । हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी ॥
तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा । नृप संदेह नास कहँ पावा ॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए । हृदयँ लाई बहु भाँति सिखाए ॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ । तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥

भावार्थ–इस अत्यन्त अप्रिय वाणी को सुनकर राजा का हृदय काँप उठा और उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गई । (उन्होने कहा)–'' हे ब्राह्मण ! मैंने चोथेपन में चार पुत्र पाय हैं, आपने विचार कर बात नहीं कही । हे मुनि ! आप पृथ्वी, गौ, धन , खजाना माँग लीजिये, मैं आज बड़े हर्ष के साथ अपना सर्वस्व दे दूँगा । सभी पुत्र मुझे प्राणों के समान प्यारे हैं, उनमें भी हे प्रभो ! राम को तो (किसी प्रकार भी)देते नहीं बनता । कहाँ अत्यन्त, डरावने और क्रूर राक्षस, और कहाँ परम किशोर अवस्था के (बिल्कुल सुकुमार)मेरे सुन्दर पुत्र ।'' प्रेम रस से सनी हुई राजा की वाणी को सुनकर ज्ञानी विश्वामित्र जी ने हृदय मे बड़ा हर्ष माना । तब वशिष्ठ जी ने राजा को बहुत प्रकार से समझाया, जिससे राजा का सन्देह नाश को प्राप्त हुआ । राजा ने बड़े ही आदर से दोनो पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगाकर बहुत प्रकार से उन्हें शिक्षा दी । फिर कहा– ''हे नाथ ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं, हे मुनि !(अब)आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नहीं ।''

टिप्पणी–ऊपर की चौपाई में दस सम पंक्तियाँ है । इसके पहले की चौपाई में बतलाया जा चुका है कि अपने आश्रम से विश्वामित्र अयोध्या पधारे और राजा दशरथ से 'निसिचर-बध' के लिए राम-लक्ष्मण को माँगा । पुत्रेष्टि-यज्ञ करने पर बड़ी मुश्किल से राजा दशरथ को चौथे पन चार पुत्र मिले थे । स्वाभाविक था कि वह इन पुत्रों को अपनी दृष्टि से एक पल के लिए भी अलग नहीं करना चाहते थे । उन्होंने विश्वामित्र से मनुहार किया कि वह जितनी सम्पत्ति चाहे लेलें, भले ही उनके प्राण लेलें , परन्तु उनके पुत्रों को उनसे अलग न करें । कुलगुरू वशिष्ट के समझाने पर उनका मोह भंग हुआ । राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र की सेवा में भेजने के लिए राजी हो गये । चलते समय उन्होंने विश्वामित्र से कहा, ''अब आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नहीं ।''

दो०— सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस ।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस ।।२०८(क)।।

सो०— पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन ।।२०८ (ख)।।

भावार्थ— राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर पुत्रों को ऋषि के हवाले कर दिया। फिर प्रभु माता के महलों में गये और उनके चरणों में सिर नवाकर चले। पुरुषों में सिंह (राम-लक्ष्मण)दोनों वीर मुनि का भय हरने के लिये प्रसन्न होकर चले। वे कृपा के सागर, धीर- बुद्धि और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी कारण हैं।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला । नील जलज तनु स्याम तमाला ।।
कटि पट पीत कसें बर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ।।
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिस्वामित्र महानिधि पाई ।।
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना । मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ।।
चले जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।।
तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीन्ही । बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही ।।
जाते लाग न छुधा पिपासा । अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ।।

भावार्थ—भगवान के लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और तमाल के वृक्ष की तरह श्याम शरीर है, कमर में पीताम्बर (पहने) और तरकस कसे हुए हैं। दोनों हाथों में (क्रमशः)सुन्दर धनुष-बाण हैं। श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई परम सुन्दर हैं। विश्वामित्र जी को महान् निधि प्राप्त हो गई। (वे सोचते हैं)प्रभु ब्रह्मण्यदेव (ब्राह्मणों के भक्त) हैं, मै जान गया। मेरे लिये भगवान् ने अपने पिता को भी छोड़ दिया। मार्ग में चले जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखलाया। शब्द सुनते ही वह क्रोध कर दौड़ी। श्री राम जी ने एक ही बाण से उसके प्राण हर लिये* और दीन जानकर उसको निजपद (अपना दिव्य धाम)दिया। तब ऋषि (विश्वामित्र) ने प्रभु को विद्या का भण्डार समझते हुए भी (लीला को पूर्ण करने के लिये) ऐसी विद्या दी जिससे भूख प्यास न लगे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश हो।

---

* अन्तंकथा के लिए, देखिए ऊपर पृष्ठ ५४।

दो०—आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि ।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि ।।२०९।।

भावार्थ—सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके मुनि प्रभु श्रीराम जी को अपने आश्रम में ले आये, और उन्हें परम हित जानकर भक्ति पूर्वक कंद, मूल और फल का भोजन कराया।

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई।।
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी।।
सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही।।
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा।।
पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा।।
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी।।
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया।।
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना।।
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई।।
धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा।।
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं।।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कहा बिसेषी।।

भावार्थ—प्रातःकाल होने पर श्री रघुनाथजी ने मुनि से कहा "आप जाकर निडर होकर यज्ञ कीजिए।" यह सुनकर सब मुनि हवन करने लगे। आप (श्रीरामजी) यज्ञ की रखवाली पर रहे। यह समाचार सुनकर मुनियों का शत्रु क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। श्रीरामजी ने बिना फलवाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजन के विस्तार वाले समुद्र के पार जा गिरा। फिर सुबाहु को अग्निबाण मारा। इधर छोटे भाई लक्ष्मण जी ने राक्षसों की सेना का संहार कर डाला। इस प्रकार श्रीराम जी ने राक्षसों का संहार कर ब्राह्मणों को निर्भय किया। तब सारे देवता और मुनि स्तुति करने लगे। श्री रघुनाथ जी ने वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणों पर दया की। भक्ति के कारण ब्राह्मणों ने उन्हें पुराणों की बहुत सी कथाएँ सुनाईं, यद्यपि प्रभु सब जानते थे। तदनन्तर मुनि ने आदरपूर्वक समझाकर कहा—"हे प्रभो! चलकर एक चरित्र देखिए।" रघुकुल के स्वामी रामचन्द्र जी धनुषयज्ञ (की बात) सुनकर मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र जी के साथ प्रसन्न होकर चले। मार्ग में एक आश्रम दिखायी पड़ा। वहाँ पशु-पक्षी, कोई भी जीव-जन्तु नहीं था। पत्थर की एक शिला को देखकर प्रभु ने पूछा, तब मुनि ने विस्तार पूर्वक सब कथा कही।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई १२ सम पंक्तियों की है। आखिरी दो पंक्ति और उनके बाद के दोहे और छंद में अहल्या-उद्धार का प्रकरण है।

दो०— गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ।।२१०।।

भावार्थ—गौतम मुनि की स्त्री (अहल्या) शाप वश पत्थर की देह धारण किये बड़े धीरज से आपके चरण कमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर ! इस पर कृपा कीजिए।

छं०— परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुख दायक सनमुख होइ कर जोरि रही ।।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ।।
धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई ।
अति निर्मल बानीं अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ।।
मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रिपु जन सुखदाई ।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई ।।
मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना ।।
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मांगउँ बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ।।
जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ।।
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार-बार हरि चरन परी ।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी ।।

भावार्थ—श्रीरामजी के पवित्र और शोक का नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रगट हो गई। भक्तों को सुख देने वाले श्रीरामचन्द्र जी को देखकर, वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गई। अत्यन्त प्रेम के कारण वह अधीर हो गयी। शरीर पुलकित हो उठा, मुख से वचन कहने में नहीं आते थे। वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभु के चरणों से लिपट गयी और उसके दोनो नेत्रों से जल (प्रेम और आनन्द के आँसुओं) की धारा बहने लगी। फिर उसने मन में धीरज धरकर प्रभु को पहचाना और श्री रघुनाथ जी की कृपा से भक्ति प्राप्त की। तब अत्यन्त निर्मल वाणी से उसने (इस प्रकार) स्तुति प्रारम्भ की—"हे ज्ञान से जानने योग्य श्री रघुनाथ जी आपकी जय हो। मैं (सहज ही) अपवित्र स्त्री हूँ, और हे प्रभो। आप जगत को पवित्र करने वाले, भक्तों को सुख देने वाले और रावण के शत्रु हैं। हे कमल नयन ! हे संसार के (जन्म-मृत्यु के) भय को दूर करने वाले ! मैं आपकी शरण आई हूँ, (मेरी) रक्षा कीजिए; रक्षा कीजिए। मुनि ने मुझे जो शाप दिया, सो बहुत ही अच्छा किया। मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह करके मानती हूँ, (कि जिसके कारण) मैनें संसार से

से बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो ! मैं बुद्धि की बड़ी भोली हूँ, मेरी एक विनती है। हे नाथ! मैं और कोई वर नहीं माँगती, (केवल यही चाहती हूँ कि)मेरा मन रुपी भौरा आपके चरण कमल की रज के प्रेम रूपी रस का सदा पान करता रहे। जिन चरणों से परम पवित्र देवनदी (गंगाजी)प्रकट हुई, जिन्हे शिवजी ने सिर पर धारण किया, और जिन चरण कमलों को ब्रह्मा जी पूजते हैं, कृपालु हरि (आप)ने उन्ही को मेरे सिर पर रखा।'' इस प्रकार (स्तुति करती हुई)बार-बार भगवान के चरणों में गिरकर, जो मन को बहुत ही अच्छा लगा उस वर को पाकर गौतम की स्त्री (अहल्या)आनन्द में भरी हुई पति लोक को चली गयी।

टिप्पणी— ऊपर का छंद बालकाण्ड का सबसे सुंदर छन्द है। इस छंद में अहल्या ने राम की स्तुति की है। अन्तर्कथा के लिये देखिए, पृष्ठ ५४।

दो०— अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल।।२११।।

भावार्थ— प्रभु रामचन्द्र जी ऐसे दीन बन्धु और बिना ही कारण दया करने वाले हैं। हे शठ तुलसीदास तू कपट जंजाल छोड़कर उन्हीं का भजन कर।

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा।।
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।।
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए।।
हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया।।
पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी।।
बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना।।
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा।।
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता।।

भावार्थ— श्रीराम और लक्ष्मण मुनि के साथ चले। वे वहाँ गये जहाँ जगत को पवित्र करने वाली गंगा जी थीं। गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने सब कथा कह सुनायी जिस प्रकार गंगा पृथ्वी पर आयी थीं। तब प्रभु ने ऋषियों समेत गंगा में स्नान किया। ब्राह्मणों ने भाँति-भाँति के दान पाये। फिर मुनिवृन्द के साथ वे प्रसन्न होकर चले और शीघ्र ही जनकपुर के निकट पहुँच गये। श्रीराम जी ने जब जनकपुर की शोभा देखी, तब वे छोटे भाई (लक्ष्मण)सहित अत्यन्त हर्षित हुए। वहाँ अनेकों बावलियाँ, कुँए, नदी और तालाब हैं, जिनमें अमृत के समान जल है और मणियों की सीढ़ियाँ है। मकरंद रस से मतवाले होकर भौरें सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। रंग-बिरंगे (बहुत)पक्षी मधुर शब्द कह रहे हैं। रंग-रंग के कमल खिले हैं । सदा (सब ऋतुओं में)सुख देने वाला शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बह रहा है।

अन्तर्कथा— ऊपर की चौपाई की पहली दो पंक्तियों में संकेत है कि विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को गंगावतरण की कथा सुनाई। वह कथा इस प्रकार है :

महाराज दिलीप भगीरथ को राज्यभार देकर हिमालय के शिखर पर तपस्या करने के लिए चले गए। वहाँ उन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की। तदनंतर देहपात करके स्वर्ग प्राप्त किया। पिता की मृत्यु के बाद भगीरथ राज्य पाकर चिंता करने लगे कि किस प्रकार गंगा स्वर्ग से लाई जा सकती है। भगीरथ प्रजावत्सल और धर्मात्मा राजा थे, परन्तु अभाग्यवश उनका कोई पुत्र नहीं था। मंत्रियों को राज्य का भार सौंपकर गंगा को ले आने के लिए वे निकल पड़े। भगीरथ हिमालय के गौकर्ण तीर्थ पर उपस्थित हुए और वहाँ ऊर्ध्वबाहु होकर घोर तपस्या करने लगे। भगवान् ब्रह्मा भगीरथ की सहस्त्र वर्षों की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हे वर देने के लिए उपस्थित हुए। भगीरथ ने दो वर माँगे (१) कपिल के शाप से भस्म हुए हमारे साठ हजार प्रपितामह गंगा के जल से पवित्र होकर स्वर्गगामी हों और (२) संतान के अभाव से हमारा वंश लुप्त न होने पाए। ब्रह्मा ने प्रथम वर के उत्तर में कहा- "तुम्हारी कामना पूर्ण होगी, परंतु गंगा के पतनवेग को पृथ्वी सहन नहीं कर सकेगी और महादेव के अतिरिक्त और कोई इस वेग को धारण नहीं कर सकेगा। अतः महादेव गंगा को धारण करना स्वीकार करें, इसका प्रबंध तुम करो।" द्वितीय वर के उत्तर में ब्रह्मा ने कहा- "तुम्हारे वंश की रक्षा होगी।" ब्रह्मा के कहने से भगीरथ तप द्वारा महादेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। एक वर्ष की कठोर तपस्या करने पर महादेव उनके समीप आये। महादेव बोले—"तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं गंगा को धारण करूँगा। महादेव के मस्तक पर बड़े वेग से गंगा गिरने लगीं। एक बार गंगा की इच्छा हुई थी कि तीव्र वेग से गिरकर महादेव को लेकर पाताललोक चली जाएँ, परंतु भूतनाथ महादेव ने गंगा का यह गर्वभाव जानकर अपनी जटा में ही गंगा को एक हजार वर्ष तक छिपाकर रखा। महादेव के जटाजूट से गंगा को बाहर न निकलते देखकर भगीरथ पुनः महादेव की स्तुति करने लगे। भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर महादेव ने अपने जटाजूट से गंगा को बाहर निकाल दिया। गंगा महादेव के मस्तक से सात श्रोतों से भूमि पर उतरीं। ह्रादिनी, पावनी और नलिनी नामक तीन प्रवाह पूर्व की ओर बहे और वङ्क्षु, सीता तथा सिंधु नामक तीन प्रवाह पश्चिम की ओर गए और बचा हुआ एक प्रवाह भगीरथ के बताए हुए मार्ग से चला। भगीरथ पैदल गंगा के साथ नहीं चल सकते, इस कारण उन्हें एक रथ दिया गया था। भगीरथ की कामना पूर्ण हुई। भगीरथ के बताये मार्ग से जो गंगा का प्रवाह चला वह भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दो०— सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास ।।२१२।।

भावार्थ—पुष्पवाटिका (फुलवारी), बाग और वन जिसमें बहुत से पक्षियों का निवास है, फूलते-फलते और सुन्दर पत्तों से लदे हुए नगर के चारों ओर सुशोभित हैं।

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई ।।
चारु बजारु बिचित्र अँबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारी ।।
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना ।।

मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें ॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता ॥
अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू ॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥

भावार्थ— नगर की सुन्दरता का वर्णन करते नहीं बनता। मन जहाँ जाता है वहाँ पर लुभा (रम) जाता है। सुन्दर बाजार है, मणियों से बने हुए छज्जे हैं, मानों ब्रह्मा ने उन्हे अपने हाथों से बनाया है। कुबेर के समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकार की अनेक वस्तुएँ लेकर (दुकानों में) बैठे हैं। सुन्दर चौरा और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्ध से सिची रहती हैं। सबके घर मंगलमय हैं और उन पर चित्र कढ़े हुए हैं, जिन्हें मानों कामदेव रूपी चित्रकार ने अंकित किया है। नगर के सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, साधूस्वभाव वाले, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान हैं। जहाँ जनक जी का अत्यन्त अनुपम् (सुन्दर) निवासस्थान (महल) हैं, वहाँ के विलास (ऐश्वर्य) को देखकर देवता भी थकित (स्तम्भित) हो जाते हैं (मनुष्यों की तो बात ही क्या)। कोट (राजमहल के परकोट) को देखकर चित्त चकित हो जाता है, (ऐसा मालूम होता है) मानों उसने समस्त लोकों की शोभा को रोक (घेर) रक्खा है।

दो०— धवल धाम मनि पुरट पट सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन सोभा किमि कहि जाति ॥२१३॥

भावार्थ— उज्ज्वल महलों में अनेक प्रकार के सुन्दर रीति से बने हुए मणिजड़ित सोने के किवाड़ लगे हैं। सीता जी के रहने के सुन्दर महल की शोभा का वर्णन किया ही कैसे जा सकता है।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला ॥
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे ॥
पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ॥
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना ॥
भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तहँ मुनिबृंद समेता ॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए ॥

भावार्थ— राजमहल के सब दरवाजे सुन्दर हैं, जिनमें बज्र के (मजबूत अथवा हीरों के चमकते हुए) किवाड़ लगे हैं। वहाँ मातहत राजाओं, नटों, मागधों और भाटों की भीड़ लगी रहती है। घोड़ों और हाथियों के लिये बहुत बड़ी-बड़ी घुड़सालें और गजशालायें (पीलखानें) बनी हुई हैं, जो सब समय घोड़े, हाथी और रथों से भरी रहती हैं। बहुत से शूरवीर मन्त्री और सेनापति हैं। उन सब के घर भी राज-महल सरीखे ही हैं। नगर के

बाहर तालाब और नदी के निकट जहाँ तहाँ बहुत से राजा लोग उतरे हुए (डेरा डाले हुए) हैं। वहाँ आमों का एक अनुपम बाग देखकर, जहाँ सब प्रकार के सुभीते थे और जो सब तरह से सुहावना था, विश्वामित्र जी ने कहा—"हे सुजान रघुवीर ! मेरा मन कहता है कि यहां रहा जाय।" कृपा के धाम श्रीरामचन्द्र जी "बहुत अच्छा स्वामिन !" कहकर, वहीं मुनियों के समूह के साथ ठहर गए। मिथिलापति जनक जी ने यह समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्र आयें हैं।

दो०— संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुंर ग्याति ।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति ।।२१४।।

भावार्थ—तब पवित्र हृदय के मन्त्री, बहुत से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरू (शातनन्द जी) और अपनी जाति के श्रेष्ठ लोगों को साथ लिया और इस प्रकार प्रसन्नता के साथ राजा मुनियों के स्वामी विश्वामित्र जी से मिलने चले।

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ।।
बिप्रबंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड राउ अनंदे ।।
कुसल प्रश्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा ।।
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई ।।
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा ।।
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए ।।
भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता ।।
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी ।।

भावार्थ—राजा ने मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम किया। मुनियों के स्वामी विस्वामित्र जी ने प्रसन्न होकर आशिर्वाद दिया। फिर राजा ने सारी ब्राह्मण मण्डली को आदर सहित प्रणाम किया और अपना बड़ा भाग्य जानकर आनन्दित हुए। बार-बार कुशल प्रश्न करके विश्वामित्र जी ने राजा को बैठाया। उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, जो फुलवारी देखने गये थे। सुकुमार किशोर अवस्था वाले श्याम और गौर वर्ण के दोनों कुमार नेत्रों को सुख देने वाले और सारे विश्व के चित्त को चुराने वाले हैं। जब रघुनाथ जी आये तब सभी उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्र जी ने उनको अपने पास बैठा लिया। दोनों भाईयों को देखकर सभी सुखी हुए। सब के नेत्रों में जल भर आया (आनन्द और प्रेम के आँसू उमड़ पड़े)और शरीर रोमांचित हो उठे। राम जी की मधुर मनोहर मूर्ति देखकर विदेह (जनक)विशेष रूप से विदेह (देह की सुध-बुध से रहित)हो गये।

दो०— प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर ।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर ।।२१५।।

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होई अलीका ॥
ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी । मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी ॥
रघुकुल मनि दसरथ के जाए । मम हित लागि नरेस पठाए ॥

भावार्थ– ''हे नाथ ! कहिये, ये दोनों सुन्दर बालक मुनिकुल के आभूषण हैं, या किसी राजवंश के पालक ? अथवा जिनका वेदों ने 'नेति' कहकर गान किया है, वही वह ब्रह्म तो युगल रूप धरकर नहीं आया है ? मेरा मन जो स्वभाव से ही वैराग्य रूप (बना हुआ)है, (इन्हे देखकर)इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर । हे प्रभो ! इसलिये मैं आपसे सत्य (निश्छल) भाव से पूछता हूँ, हे नाथ ! बताइये, छिपाव न कीजिए । इनको देखते ही अत्यन्त प्रेम के वश होकर मेरे मन ने जबर्दस्ती ब्रह्म सुख को त्याग दिया है ।'' मुनि ने हँसकर कहा- ''हे राजन ! आपने ठीक (यथार्थ) ही कहा । आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता । जगत में जहाँ तक (जितने भी) प्राणी है, ये सभी को प्रिय हैं ।'' मुनि की (रहस्यभरी)वाणी सुनकर श्रीराम जी मन ही मन मुसकराते हैं (हंसकर मानों संकेत करते हैं कि रहस्य खोलिये नहीं)। तब मुनि ने कहा– ''वे रघुकुलमणि महाराज दशरथ के पुत्र हैं । मेरे हित के लिये राजा ने इन्हे मेरे साथ भेजा है ।

दो०– रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम ।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम ।।२१६।।

भावार्थ–ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बल के धाम हैं । सारा जगत (इस बात का)साक्षी है कि इन्होंनें युद्ध में असुरों को जीतकर मेरे यज्ञ की रक्षा की हैं।''

मुनि तब चरन देखि कह राऊ । कहि सकउँ निज पुन्य प्रभाऊ ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता । आनँदहू के आनँद दाता ॥
इन्ह कै प्रीति परसपर पावनि । कहि न जाई मन भाव सुहावनि ॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू । ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू । पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू । चलेउ लवाइ नगर अवनीसू ॥
सुंदर सदनु सुखद सब काला । तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला ॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई । गयउ राउ गृह बिदा कराई ॥

भावार्थ– राजा ने कहा –"हे मुनि ! आपके चरणों के दर्शन कर मैं अपना पुण्य-प्रभाव नहीं कह सकता । ये सुन्दर श्याम और गौर वर्णों के दोनों भाई आनन्द को भी आनन्द देने वाले हैं । इनकी आपस की प्रीति बड़ी पवित्र और सुहावनी है, वह मन को बहुत भाती है, पर (वाणी से)कहीं नहीं जा सकती ।" विदेह (जनक) आनन्दित होकर कहते हैं - "हे नाथ ! सुनिये, ब्रह्म और जीव की तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है ।" राजा बार-बार प्रभु को देखते हैं (दृष्टि वहाँ से हटना ही नहीं चाहती)। प्रेम से शरीर पुलकित हो रहा है और हृदय में बड़ा उत्साह है । (फिर)मुनि की प्रशंसा करके और उनके चरणों में सिर नवाकर राजा उन्हें नगर में लिवा चले । एक सुन्दर महल जो सब समय (ऋतुओं)में सुखदायक था, वहाँ राजा ने उन्हें ले जाकर ठहराया । तदनन्तर सब प्रकार से पूजा और सेवा करके राजा विदा माँगकर अपने घर गये ।

दो०–रिषय संग रघुबंस मनि करि भोजनु बिश्रामु ।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु ॥२१७॥

भावार्थ–रघुकुल के शिरोमणि प्रभु रामचन्द्रजी ऋषियों के साथ भोजन और विश्राम करके भाई (लक्ष्मण) समेत बैठे । उस समय पहर भर दिन रह गया था ।

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी । जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं । प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं ॥
राम अनुज मन की गति जानी । भगत बछलता हियँ हुलसानी ॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुर अनुसासन पाई ॥
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं । नगर देखाइ तुरत लै आवौं ॥
सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीती ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम बिबस सेवक सुखदाता ॥

भावार्थ–लक्ष्मण जी के हृदय में विशेष लालसा है कि जाकर जनकपुर देख आवें । परन्तु प्रभु रामचन्द्र जी का डर है, और फिर मुनि से भी सकुचाते हैं । इसलिए प्रकट में कुछ

नहीं कहते, मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं । (अन्तरयामी) श्री रामचन्द्र जी ने छोटे भाई के मन की दशा जान ली, (तब) उनके हृदय में भक्तवत्सलता उमड़ आई । वे गुरू जी की आज्ञा पाकर बहुत ही विनय के साथ सकुचाते बोले —'' हे नाथ ! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं, किन्तु प्रभु (आप)के डर और संकोच के कारण स्पष्ट नहीं कहते । यदि आप की आज्ञा पाऊँ, तो मैं इनको नगर दिखाकर तुरंत ही (वापस) ले आऊँ ।'' यह सुनकर मुनीश्वर विश्वामित्र ने प्रेम सहित वचन कहे- ''हे राम ! तुम नीति की रक्षा कैसे न करोगे, हे तात! तुम धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले और प्रेम के वशीभूत होकर सेवकों को सुख देने वाले हो ।

दो०—जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ ।।२१८।।

भावार्थ—सुख के निधान दोनों भाई जाकर नगर देख आओ । अपने सुन्दर मुख दिखलाकर सब (नगर निवासियों)के नेत्रों को सफल करो ।''

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक लोचन सुख दाता ।।
बालक बृंद देखि अति सोभा । लगे संग लोचन मनु लोभा ।।
पीत बसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ।।
तन अनुहरत सुचंदन खोरी । स्यामल गौर मनोहर जोरी ।।
केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ।।
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन मयंक तापत्रय मोचन ।।
कानन्हि कनक फूल छबि देहीं । चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ।।
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ।।

भावार्थ—सब लोगों के नेत्रों को सुख देने वाले दोनों भाई मुनि के चरण कमलों की वन्दना करके चले । बालकों के झुंड इन (इनके सौन्दर्य)की अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गये । उनके नेत्र और मन (इनकी माधुरी पर)लुभा गये । (दोनों भाईयों के)पीले रंग के वस्त्र है, कमर के पीछे, दुपट्टों में तरकस बँधे हैं, हाथों में सुन्दर धनुष-बाण सुशोभित हैं। श्याम और गौर वर्ण के शरीरों के अनुकूल (अर्थात जिस पर जिस रंग का चन्दन अधिक फबे, उस पर उसी रंग के)सुन्दर चन्दन की खोर लगी है । साँवरे और गोरे (रंग) की मनोहर जोड़ी है । सिंह के समान पुष्ट गर्दन (गले का पिछला भाग) है, विशाल भुजाएँ हैं। (चौड़ी)छाती पर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ता की माला है, सुन्दर लाल कमल के समान नेत्र हैं, तीनों तापों से छुड़ाने वाला चन्द्रमा के समान मुख है । कानों में सोने के कर्णफूल

(अत्यन्त) शोभा दे रहे हैं और देखते ही (देखने वालों के) चित्त को मानो चुरा लेते हैं। उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है, और भौहें तिरछी एवं सुन्दर हैं। माथे पर तिलक की रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं मानों (मूर्तिमती) शोभा पर मोहर लगा दी गयी है।

दो०—रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ।।२१९।।

भावार्थ—सिर पर सुन्दर चौकोनी टोपियाँ (दिए) हैं। काले और घुँघराले बाल हैं। दोनों भाई नख से लेकर शिखा तक (एड़ी से चोटी तक) सुन्दर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिये वैसी ही है।

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए ॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥
जुबती भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं ॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं ॥
बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही ॥

भावार्थ—जब पुरवासियों ने यह समाचार पाया कि दोनों राजकुमार नगर देखने के लिये आये हैं, तब वे सब घर-बार और काम-काज छोड़कर ऐसे दौड़े मानों दरिद्री खजाना लूटने दौड़े हैं। स्वभाव से ही सुन्दर दोनो भाईयों को देखकर वे लोग नेत्रों का फल पाकर सुखी हो रहे हैं। युवती स्त्रियाँ घर के झरोखों से लगी हुई प्रेमसहित श्री रामचन्द्र जी के रूप को देख रही है। वे बड़े प्रेम से आपस में बातें कर रही हैं – "हे सखी ! इन्होंने करोड़ों कामदेवों की छवि को जीत लिया है। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियों में ऐसी शोभा तो कहीं सुनने में भी नहीं आती। भगवान विष्णु के चार भुजाएँ हैं , ब्रह्मा जी के चार मुख हैं, शिव जी का विकट (भयानक) वेष है और उनके पाँच मुँह हैं। हे सखी ! दूसरा देवता भी कोई ऐसा नहीं है जिसके साथ इस छवि कि उपमा दी जाय।

दो०—बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम ।।२२०।।

भावार्थ–इनकी किशोर अवस्था है, ये सुन्दरता के घर, साँवले और गोरे रंग के तथा सुख के धाम हैं। इनके अंग-अंग पर करोड़ों कामदेवों को निछावर कर देना चाहिये।

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी।।
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।।
ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा।।
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे।।
स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मदु मोचन।।
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी।।
गौर किसोर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें।।
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता।।

भावार्थ–हे सखी! (भला) कहो तो ऐसा कौन शरीरधारी होगा जो इस रूप को देखकर मोहित न हो जाय। अर्थात् यह रूप जड़-चेतन सबको मोहित करने वाला है।'' (तब) कोई दूसरी सखी प्रेम सहित कोमलवाणी से बोली - ''हे सयानी! मैंने जो सुना है उसे सुनो! ये दोनों महाराज दशरथ जी के पुत्र हैं। बाल राजहंसों का सा सुन्दर जोड़ा हैं। ये मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं। इन्होंने युद्ध के मैदान में राक्षसों को मारा है। जिनका श्याम शरीर है और सुन्दर कमल जैसे नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहु के मद को चूर करने वाले और सुख की खान हैं, और जो धनुष-बाण हाथ में लिये हुए हैं, वे कौसल्या जी के पुत्र हैं, इनका नाम राम है। जिनका रंग गोरा और किशोर अवस्था है, और जो सुन्दर वेष बनाए और हाथ में धुनुष-बाण लिए रामजी के पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे इनके छोटे भाई हैं, इनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी! सुनो उनकी माता सुमित्रा हैं।

दो०–बिप्रकाजु करि बंधु दोउ मग मुनिबधू उधारि।
आए देखन चापमख सुनि हरषीं सब नारि।।२२१।।

भावार्थ–दोनों भाई ब्राह्मणों का काम करके और रास्ते में मुनि गौतम की स्त्री (अहल्या) का उद्धार करके यहाँ धनुष यज्ञ देखने आये हैं।'' यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं।

देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई।।
जौं सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू।।
कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने।।

सखि परंतु पनु राउ न तजई । बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई ॥
कोऊ कह जौं भल अहइ बिधाता । सब कहँ सुनिअ उचित फलदाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । नाहिन आलि इहाँ संदेहू ॥
जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥
सखि हमरें आरति अति तातें । कबहुँक ए आवहिं एहि नातें ॥

भावार्थ–श्री राम जी की छवि देखकर कोई एक दूसरी सखी से कहने लगी – "यह वर जानकी के योग्य हैं। हे सखी ! यदि कहीं राजा इन्हे देख लें, तो प्रतिज्ञा छोड़कर हठपूर्वक इन्ही से विवाह कर देंगे ।" किसी ने कहा– "राजा ने इन्हे पहचान लिया है, और मुनि के सहित इनका आदरपूर्वक सम्मान किया है । परन्तु हे सखी ! राजा अपना प्रण नहीं छोड़ेंगे। वह होनहार के वशीभूत होकर हठपूर्वक अविवेक का ही आश्रय लिए हुए हैं ।" कोई कहती है– "यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि वे सब को उचित फल देते हैं, तो जानकी जी को यही वर मिलेगा । हे सखी! इसमें सन्देह नहीं है । जो दैवयोग से ऐसा संयोग बन जाय, तो हम सब लोग कृतार्थ हो जायेंगे ।

दो०–नाहिं त हम कहुं सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि ।
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि ।।२२२।।

भावार्थ–नहीं तो (विवाह न हुआ तो) हे सखी ! सुनो, हमको इनके दर्शन दुर्लभ हैं। यह संयोग तभी हो सकता है जब हमारे पूर्व जन्मों के बहुत पुण्य हों ।"

बोली अपर कहेहु सखि नीका । एहिं बिआह अति हित सबही का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा । ए स्यामल मृदुगात किसोरा ॥
सबु असमंजस अहइ सयानी । यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी ॥
सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं । बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥
परसि जासु पद पंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें । यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥
जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी । तेहिं स्यामल वरु रचेउ बिचारी ॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं । ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं ॥

भावार्थ–दूसरी ने कहा – "हे सखी ! तुमने बहुत अच्छा कहा । इस विवाह से सभी का परम हित है ।" किसी ने कहा – "शंकर जी का धनुष कठोर है और ये साँवले राजकुमार

कोमल शरीर के बालक हैं। हे सयानी ! सब असमंजस ही है।'' यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणी से कहने लगी – ''इनके संबंध में कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखने में तो छोटे हैं, पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है। जिनके चरण कमल की धूलि का स्पर्श पाकर अहल्या तर गई, जिसने बड़ा भारी पाप किया था, वे क्या शिवजी का धनुष बिना तोड़े रहेंगे? इस विश्वास को भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिये। जिस ब्रह्मा ने सीता को संवार कर (बड़ी चतुराई से) रचा है, उसी ने विचार कर साँवला वर भी रच रक्खा है।'' उसके ये वचन सुनकर सब हर्षित हुई और कोमल वाणी से कहने लगीं ''ऐसा ही हो।''

दो०—हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ॥२२३॥

भावार्थ—सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियाँ समूह की समूह हृदय में हर्षित होकर फूल बरसा रही हैं। जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते हैं वहाँ - वहाँ परम आनन्द छा जाता है।

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई॥
अत बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥
चहुँ दिसि कंचन मंच बिसाला। रचे जहाँ बैठहिं महिपाला॥
तेहि पाछें समीप चहुँ पासा। अपर मंच मंडली बिलासा॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई॥
तिन्ह के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहुबरन बनाए॥
जहँ बैठें देखहिं सब नारी। जथाजोगु निज कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि-कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥

भावार्थ— दोनों भाई नगर के पूरब ओर गयें, जहाँ धनुष यज्ञ के लिये (रंग) भूमि बनाई गई थी। बहुत ही लंबा-चौड़ा सुन्दर ढला पक्का आँगन था, जिस पर सुन्दर और निर्मल बेदी सजायी गयी थी। चारों ओर सोने के बड़े-बड़े मंच बने थे, जिन पर राजा लोग बैठेंगे। उनके पीछे समीप ही चारों ओर दूसरे मचानों का मण्डलाकार घेरा सुशोभित था। वह कुछ उँचा था और सब प्रकार से सुन्दर था, जहाँ जाकर नगर के लोग बैठेंगे। उन्हीं के पास विशाल एवं सुन्दर मकान अनेक रंगों के बनाये गये हैं। जहाँ अपने कुल के अनुसार सब स्त्रियाँ यथायोग्य (जिसको जहाँ बैठना उचित है) बैठकर देखेंगी। नगर के बालक कोमल वचन कह-कह कर आदरपूर्वक प्रभु श्री रामचन्द्र जी को (यज्ञशाला की) रचना दिखला रहे हैं।

दो०—सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात ।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात ।।२२४।।

भावार्थ—सब बालक इसी बहाने प्रेम के वश होकर श्री रामजी के मनोहर अंगो को छूकर शरीर से पुलकित हो रहे हैं और दोनों भाइयों को देखकर उनके हृदय में अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

सिसु सब राम प्रेमबस जाने । प्रीति समेत निकेत बखाने ॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥
राम देखावहिं अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया । रचइ जासु अनुसासन माया ॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला । चितवत चकित धनुष मखसाला ॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं । जानि बिलंबु त्रास मन माहीं ॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई । भजन प्रभाउ देखावत सोई ॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाई । किए बिदा बालक बरिआई ॥

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी ने सब बालकों को प्रेम के वश जानकर यज्ञभूमि के स्थानों की प्रेमपूर्वक प्रशंसा की। इससे बालकों का उत्साह और भी बढ़ गया, और वे सब अपनी-अपनी रूचि के अनुसार उन्हें बुला लेते हैं और प्रत्येक के बुलाने पर दोनों भाई प्रेम सहित उनके पास चले आते हैं। कोमल, मधुर और मनोहर वचन कहकर, श्री रामजी अपने छोटे भाई (लक्ष्मण) को (यज्ञभूमि की)रचना दिखलाते हैं। जिनकी आज्ञा पाकर माया लव निमेष (पलक गिरने के चौथाई समय)में ब्रह्मान्डों के समूह रच डालती है, वही दीनों पर दया करने वाले श्री राम जी भक्ति के कारण धनुष-यज्ञशाला को चकित होकर (आश्चर्य के साथ) देख रहे हैं। इस प्रकार सब कौतुक (विचित्र रचना) देखकर, वे गुरू के पास चले। देर हुई जानकर उनके मन में डर है। जिनके भय से डर को भी डर लगता है, वही प्रभु भजन का प्रभाव दिखला रहे हैं। उन्होंने कोमल, मधुर और सुन्दर बातें कहकर बालकों को जबर्दस्ती विदा किया।

दो०— सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाई ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ।।२२५।।

भावार्थ—फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोच के साथ दोनों भाई गुरु के चरण कमलों में सिर नवाकर, आज्ञा पाकर, बैठे।

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा । सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी । करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुर पद कमल पलोटत प्रीते ॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही । रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ । सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पौढ़े धरि उर पद जलजाता ॥

भावार्थ– रात्रि का प्रवेश होते ही (सन्ध्या के समय)मुनि ने आज्ञा दी, तब सबने सन्ध्यावन्दन किया । फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुन्दर रात्रि दो पहर बीत गयी । तब श्रेष्ठ मुनि ने जाकर शयन किया । दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे । जिनके चरण कमलों के (दर्शन एवं स्पर्श के) लिये वैराग्यवान पुरूष भी भाँति-भाँति के जप और योग करते हैं , वे ही दोनो भाई मानों प्रेम से जीते हुए प्रेमपूर्वक गुरूजी के चरण कमलों को दबा रहे हैं । मुनि ने बार-बार आज्ञा दी, तब श्री रघुनाथ जी ने जाकर शयन किया । श्री रामजी के चरणों को हृदय से लगाकर, भय और प्रेम सहित परम सुख का अनुभव करते हुए लक्ष्मण जी उनको दबा रहे हैं । प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने बार-बार कहा 'हे तात ! (अब)सो जाओ । ' तब वे उन चरणकमलों को हृदय में धरकर सो रहे ।

दो०–उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान ।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान ।।२२६।।

भावार्थ– रात बीतने पर, मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मण जी उठे । जगत के स्वामी सुजान श्री रामचन्द्र जी भी गुरू से पहले ही जाग गये।

सकल सौच करि जाइ नहाए । नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥
समय जानि गुर आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥
भूप बागु बर देखेउ जाई । जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥
लागे बिटप मनोहर नाना । बरन बरन बर बेलि बिताना ॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए । निज संपति सुर रूख लजाए ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा । कूजत बिहग नटत कल मोरा ॥

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥

भावार्थ—सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाये। फिर (सन्ध्या-अग्निहोत्रादि) नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनि को मस्तक नवाया। समय जानकर, गुरू की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले। उन्होंने जाकर राजा का सुन्दर बाग देखा जहाँ बसन्त ऋतु लुभाकर रह गई है। मनको लुभाने वाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओं के मण्डप छाये हैं। नये पत्तों, फलों और फूलों से सुशोभित वृक्ष अपनी-अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को भी लजा रहे हैं। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं, और मोर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं। बाग के बीचो-बीच सुहावना सरोवर सुशोभित है, जिसमें मणियों की सीढ़ियाँ विचित्र ढंग से बनी हैं। उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगों के कमल खिले हुये हैं, जल के पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं।

दो०— बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत॥२२७॥

भावार्थ—बाग और सरोवर को देखकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी भाई (लक्ष्मण) सहित हर्षित हुए। यह बाग परम रमणीय है, जो (जगत को सुख देने वाले) श्री रामचन्द्र जी को सुख दे रहा है।

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा॥
एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

भावार्थ— चारो ओर दृष्टि डालकर और मालियों से पूछकर वे प्रसन्न मन से पत्र-पुष्प लेने लगे। उसी समय सीता जी वहाँ आईं। माता ने उन्हे गिरिजा (पार्वती) जी की पूजा

करने के लिये भेजा था। साथ में सब सुन्दरी और सयानी सखियाँ है, जो मनोहर वाणी से गीत गा रही हैं। सरोवर के पास गिरिजा जी का मन्दिर सुशोभित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, देखकर मन मोहित हो जाता है। सखियों सहित सरोवर में स्नान करके सीता जी प्रसन्न मन से गिरिजा जी के मन्दिर में गईं। उन्होंने बड़े प्रेम से पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वर माँगा। एक सखी सीता जी का साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने चली गयी थी। उसने जाकर दोनों भाईयों को देखा और प्रेम से विह्वल होकर वह सीता जी के पास आई।

दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नैन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बैन ।।२२८।।

भावार्थ—सखियों ने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रों में जल भरा है। सब कोमल वाणी से पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नता का कारण बता।

देखन बागु कुअँर दुइ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए।।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हियँ अति उतकंठा जानी।।
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।।
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू।।
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई।।

भावार्थ— (उसने कहा) ''दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। किशोर अवस्था के हैं और सब प्रकार से सुन्दर हैं। वे साँवले और गोरे (रंग के)हैं, उनके सौन्दर्य को मैं कैसे बखान कर कहूँ। वाणी बिना नेत्र की है और नेत्रों के वाणी नहीं है।'' यह सुनकर और सीता जी के हृदय में बड़ी उत्कण्ठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुईं। तब एक सखी कहने लगी—''हे सखी! ये वहीं राजकुमार हैं जो सुना है कि कल मुनि (विश्वामित्र)के साथ आये हैं। और जिन्होंने अपने रूप की मोहिनी डालकर नगर के स्त्री-पुरुषों को अपने वश में कर लिया है। जहाँ-तहाँ लोग उन्ही की छवि का वर्णन कर रहे हैं। अवश्य (चलकर) उन्हे देखना चाहिये, वे देखने ही योग हैं।'' उसके वचन सीता को अत्यन्त ही प्रिय लगें और दर्शन के लिये उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखी को आगे करके सीता जी चलीं। पुरानी प्रीति को कोई जान नहीं पाता।

लोकोक्ति — ऊपर की चौपाई में एक बहुत ही सुन्दर लोकोक्ति है। सीता की एक ा ने वाटिका में राम-लक्ष्मण को देखा। उनके श्याम और गौर शरीर की सुन्दरता का वर्णन नहीं कर पा रही है। मनुष्य जो कुछ भी आँख से देखता है, उसका सम्पूर्ण विवरण दूसरे से नहीं कर सकता। कारण–

"गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।।"

नेत्रों के वाणी नहीं हैं, और जिह्वा के नेत्र नहीं हैं। जो भाव तुलसीदास ने पाँच शब्दों ाक्त कर दिया, उसको अंग्रेजी कवि शेक्सपियर ने चार पंक्तियों में स्पष्ट किया :

"And for they look'd but with divine eyes,
They had not skill enough your worth to sing :
For we which now behold these present days,
Have eyes to wonder, but lack tongues to praise." *

दो०– सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, मनु सिसु मृगी सभीत।।२२९।।

भावार्थ — नारद जी के वचनों का स्मरण करके सीता जी के मन में पवित्र प्रीति ा हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही है मानों डरी हुई मृगछौनी -उधर देख रही हो।

टिप्पणी — इस दोहे में और इसके ऊपर की चौपाई के अंतिम पद में तीन वाक्य हैं, ा भावार्थ समझने के लिये हम अध्यात्म रामायण के बालकाण्ड के श्लोक ६३ से ६६ ा पाठ करना होगा।

एक दिन जब जनक एकान्त में बैठे हुये थे, तब नारद अपनी वीणा बजाते हुये आये प्रसन्नता पूर्वक बोले "राजन्! अपने कल्याण का कारण रूप यह परम गुप्त वचन —

जातो राम इति ख्यातो मायामानुष वेष धृक।

आस्ते दाशरर्थिभूत्वा चतर्धा परमेश्वरः।।६४।।

Oxford Book of English Verse, page 203, Sonnet XVI

योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ।।६५।।
नान्येभ्य पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः
इत्युक्त्वा प्रययौ देवगति देवमुनिस्तद ।।६६।।

अर्थात् ,परमात्मा माया- मानव रूप से अवतीर्ण होकर राम नाम से विख्यात हुये हैं। वे परमेश्वर अपने चार अंशों से दशरथ के पुत्र होकर अयोध्या में रहते हैं। और इधर योग माया ने तुम्हारे यहां सीता के रूप से जन्म लिया है। अतः तुम प्रयत्न पूर्वक इस सीता का पाणिग्रहण रघुनाथ जी के साथ ही करना और किसी से नहीं, क्योंकि यह पहले से ही परमात्मा राम की भार्या हैं।'' ऐसा कहकर, देवर्षि नारद जी आकाश मार्ग से चले गये।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि ।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सियमुख ससि भए नयन चकोरा ।।
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ।।
देखि सीय सोभा सुखु पावा । हृदयँ सराहत बचनु न आवा ।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरंचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई । छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई ।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी ।।

भावार्थ–कंकण (हाथों के कड़े), करधनी और पायजेब की ध्वनि सुनकर रामचन्द्र जी हृदय में विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं–'यह ध्वनि ऐसी आ रही है मानों कामदेव ने विश्व को जीतने का संकल्प करके डंके पर चोट मारी है।' ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्र जी ने फिरकर उस ओर देखा। श्री सीता जी के मुख रूपी चंद्रमा को निहारने के लिए उनके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये (टकटकी लग गयी)। जनक के पूर्वज निमि* थे। उनका निवास सब की पलकों पर माना गया है। लड़की-दामाद के मिलन प्रसंग को देखना उचित न समझ कर, सकुचा कर,उन्होंने पलकों में रहना छोड़ दिया, जिससे पलकों का झपकना बन्द हो गया। अर्थात, राम के नेत्र स्थिर हो गए, वह एक टक सीता को देखते रहे। सीता की शोभा देखकर श्रीराम ने बड़ा सुख पाया। हृदय मे वे उसकी सराहना करते

* निमि के पुत्र मिथी और मिथि के पुत्र जनक।

ं, किन्तु मुख से वचन नहीं निकलते। (वह शोभा ही ऐसी अनुपम है)मानों ब्रह्मा ने अपनी ारी निपुणता को मूर्तिमान कर संसार को प्रकट करके दिखा दिया हो। वह (सीता जी की ोभा)सुन्दरता को भी सुन्दर करने वाली है। वह ऐसी मालुम होती है मानों सुन्दरता रूपी ार में दीपक की लौ जल रही हो। उपमाओं को तो कवियों ने झूठा कर रखा है। मैं जनक ान्दिनी सीता जी की किससे उपमा दूं।

टिप्पणी — यद्यपि दोहे ८ के बाद की अंतिम चौपाई में (पृष्ठ२४) तुलसीदास जी ा बड़े विनम्र भाव से कहा है कि "कवित विवेक एक नहिं मोरे" फिर भी वाग्वैदग्ध और ाब्द-चातुर्य में वह किसी भी रीति-काल के कवि से कम नहीं थे। उदाहरण के लिये देखिये ऊपर की पहली चौपाई में उनका अनुकरण अलंकार (Onomatopoeia)

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।"

ऊपर के शब्दों का जब वक्ता उच्चारण करता है, तब श्रोता के कानों में तीनों आभूषणों ी ध्वनि झंकृत हो उठती है। और उसके बाद की पंक्ति में कितना सुन्दर उत्प्रेक्षा अलंकार :

"मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।।"

सीता के चलने से जो उनके कंकण, करधनी और नूपुर से स्वर निकल रहे हैं, मानों ामदेव विश्व को जीतने का डंका बजा रहा है।

और आगे देखिये। तुलसीदास कहते हैं कि सीता को रचने में ब्रह्मा ने अपनी समस्त ौशल लगा दिया। सीता की सुन्दरता "सुन्दर" शब्द को ही अलंकृत करती है। उस सुन्दरता ा वर्णन करने के लिए, तुलसीदास को सभी उपमान झूठे लगते हैं। वह उपमान किस प्रकार ठे हैं, इसके लिये देखिए आगे दोहे २३७ के नीचे की चौपाई पर टिप्पणी।

दो०— सिय सोभा हियं बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि।।२३०।।

भावार्थ— हृदय में सीताजी की शोभा का वर्णन करके और अपनी दशा को विचार र, प्रभु श्री रामचन्द्र जी पवित्र मन से अपने छोटे भाई लक्ष्मण से समयानुकूल बचन ले।

तात जनकतनया यह सोई । धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आई । करत प्रकास फिरइ फुलवाई ॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सबु कारन जान बिधाता । फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ॥

भावार्थ– "हे तात ! यह वही जनक जी की कन्या है जिसके लिये धनुषयज्ञ हो रहा है । सखियाँ इसे गौरी पूजन के लिये ले आयी हैं । यह फुलवाड़ी में प्रकाश करती हुई फिर रही है । जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है, वह सब कारण (अथवा उनका सब कारण) तो विधाता जाने । किन्तु हे, भाई ! सुनो, मेरे मंगलदायक (दाहिने)अंग फड़क रहे हैं । रघुवंशियों का यह सहज (जन्मगत)स्वभाव हैं कि उनका मन कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखता । मुझे तो अपने मन का अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने (जागृत की कौन कहे)स्वप्न में भी परायी स्त्री पर दृष्टि नहीं डाली है , रण में शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाता (अर्थात जो लड़ाई के मैदान में भागते नहीं), पराई स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टि को नहीं खींच पाती और भीखारी जिनके यहाँ से "नाहीं" नहीं पाते (खाली हाथ नहीं लौटते), ऐसे श्रेष्ठ पुरूष संसार में थोड़े हैं । "

टिप्पणी –– दोहा २३० और उसके नीचे की चौपाई में तुलसीदास किशोर अवस्था के सहज़ और स्वाभाविक प्रेम का बहुत ही संयत रूप में वर्णन करते हैं । वर्णन में रीतिकाल के कवियों की श्रृंगारिकता और अश्लीलता का लेशमात्र पुट नहीं हैं । राम लक्ष्मण से कहते हैं :

"रघुवंशी स्वभाव से कभी कुमार्ग पर नहीं चलते । मुझे विश्वास है कि मैंने न जागृत अवस्था में, न स्वप्न में, पराई स्त्री पर कभी दृष्टि डाली है । फिर भी न जाने सीता की सुन्दरता को देखकर मेरा स्वभाव से ही पवित्र मन क्यों क्षुब्ध हो रहा है । इसका कारण तो विधाता ही जानते हैं । मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मेरा दाहिना अंग फड़क रहा है । यह शुभ और मंगलसूचक है । "

दो०– करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान ।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान ।।२३१।।

भावार्थ—यों श्रीराम जी छोटे भाई से बातें कर रहे हैं, पर मन सीता जी के रूप में लुभाया हुआ उनके मुख रूपी कमल के छवि रूपी मकरन्द रस को भौरें की तरह पी रहा है।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता।।
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।।
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।।

भावार्थ— सीता जी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं। मन इस बात की चिन्ता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गये। बाल मृगनयनी (मृग के छौने की सी आँख वाली) सीता जी जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानों श्वेत कमलों की कतार बरस जाती है। तब सखियों ने लता की ओट में सुंदर श्याम और गौर कुमारों को दिखलाया। उनके रूप को देखकर नेत्र ललचा उठे, वे ऐसे प्रसन्न हुये मानों उन्होंने अपना खजाना ही पहचान लिया। श्री रघुनाथ जी की छवि देखकर नेत्र थकित (निश्चल) हो गये। पलकों ने भी गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेह के कारण शरीर विह्बल (बेकाबू) हो गया। मानों शरद ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी (बेसुध हुई) देख रही है। नेत्रों के रास्ते श्रीराम जी को हृदय में लाकर चतुर-शिरोमणि जानकी जी ने पलकों के किवाड़ लगा दिये (अर्थात नेत्र मूँद कर उनका ध्यान करने लगीं)। जब सखियों ने सीता जी को प्रेमवश जाना, तब वे मन में सकुचा गयीं, कुछ कह नहीं सकती थीं।

टिप्पणी—तुलसीदास के वाग्वैदग्ध और शब्द चातुर्य के कुछ उदाहरण २२९ दोहे के नीचे की चौपाई की टिप्पणी में दिए जा चुके हैं। एक और उदाहरण ऊपर की चौपाई से लिया जा सकता है —

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सियानी।।

नेत्रों के रास्ते से सीता जी ने राम की छवि को अपने हृदय में उतार लिया और फिर अपनी आँखे मूँद ली। मानों, राम की प्रतिमा को सर्वदा के लिए अपने हृदय में बन्दी कर लिया। कवि की कितनी सुन्दर कल्पना है।

दो०—लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।।२३२।

भावार्थ—उसी समय दोनों भाई लतामण्डप (कुंज) में से प्रकट हुए। मानों दो निर्मल चन्द्रमा बादलों के पर्दे को हटाकर निकले हों।

सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नीलपीत जलजाभ सरीरा ।।
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ।।
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए ।।
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ।।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला ।।
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ।।
उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा ।।
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना ।।

भावार्थ—दोनो सुन्दर वीर शोभा की सीमा हैं। उनके शरीर की आभा नीले और पीले कमल की सी है। सिर पर सुन्दर मोरपंख सुशोभित हैं। उनके बीच-बीच में फूलों की कलियों के गुच्छे लगे हुये हैं। माथे पर तिलक और पसीने की बूँदें शोभायमान हैं। कानों में सुन्दर भूषणों की छवि छायी हुई है। टेढ़ी भौहें और घुँघराले बाल हैं। नये लाल कमल के समान रतनारे (लाल)नेत्र हैं। ठोड़ीं, नाक और गाल बड़े सुन्दर हैं, और हँसी की शोभा तो मन को मोल ही लिये लेती हैं। मुख की छवि तो मुझसे कही ही नहीं जाती, जिसे देखकर बहुत से कामदेव लजा जाते हैं।वक्षस्थल पर मणियों की माला है। शंख के सदृश सुन्दर गला है। कामदेव के हाथी के बच्चे की सूँड़ के समान (उतार चढ़ाव वाली एवं सुन्दर)भुजाएँ है, जो बल की सीमा हैं। ''जिनके बाँये हाथ में फूलों सहित दोना है, हे सखी ! यह साँवला कुँअर तो बहुत ही सलोना है।''

दो०— केहर कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान ।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान ।।२३३।।

भावार्थ—सिंह की सी (पतली लचीली)कमर वाले, पीताम्बर धारण किये हुए, शोभा और शील के भण्डार, सूर्यकुल के भूषण श्रीरामचन्द्र जी को देखकर सखियाँ अपने आप को भूल गईं ।

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ।।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू ।।
सकुचि सीयँ तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघ निहारे ।।
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा ।।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ।।
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली । अस कहि मन बिहसी एक आली ।।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी । भयउ बिलंबु मातु भय मानी ।।
धरि बड़ि धीर रामु उर आने । फिरी अपनपउ पितु बस जाने ।।

भावार्थ–एक चतुर सखी धीरज धरकर, हाथ पकड़कर सीता जी से बोली–"गिरिजा जी का ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमार को क्यों नहीं देख लेतीं ।" तब सीता जी ने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुल के दोनों सिंहों को अपने सामने (खड़े) देखा । नख से शिखा तक श्रीराम जी की शोभा देखकर और पिता का प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया । जब सखियों ने सीता जी को परवश (प्रेम के वश) देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं –"बड़ी देर हो गयी (अब चलना चाहिये)। कल इसी समय फिर आयेंगी।" ऐसा कहकर एक सखी मन में हँसी । सखी की यह रहस्यमयी वाणी सुनकर सीता जी सकुचा गयीं । देर हो गयी जान उन्हे माता का भय लगा । बहुत धीरज धरकर वे श्री रामचन्द्र जी को हृदय में ले आयीं, और (उनका ध्यान करती हुई) अपने को पिता के अधीन जानकर लौट चलीं ।

दो०– देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ।।२३४।।

भावार्थ–मृग, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने सीता जी बार-बार घूम जाती हैं और श्री रामजी की छवि को देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है (अर्थात बहुत ही बढ़ता जाता है) ।

जानि कठिन सिब चाप बिसूरति । चली राखि उर स्यामल मूरति ।।
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन खानी ।।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही ।।
गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ।।
जय जय गिरिबरराज किसोरी । जय महेस मुख चंद चकोरी ।।
जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।
नहिं तब आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ।।
भव भव बिभव पराभव कारिनि । बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ।।

भावार्थ–शिव जी के धनुष को कठोर जानकर वे विसूरती (मन में विलाप करती) हुई, हृदय में श्रीराम जी की साँवली मूर्ति को रखकर चलीं । (शिवजी के धनुष की कठोरता का स्मरण आने से उन्हे चिन्ता होती थी कि वे सुकुमार रघुनाथ जी उसे कैसे तोड़ेंगे, पिता

के प्रण की स्मृति से उनके हृदय में क्षोभ भी था ही, इसलिये मन में विलाप करने लगीं। प्रेमवश ऐश्वर्य की विस्मृति हो जाने से ही ऐसा हुआ, फिर भगवान के बल का स्मरण आते ही वे हर्षित हो गईं और साँवली छवि को हृदय में धारण कर चलीं)। प्रभु श्रीराम जी ने जब सुख, स्नेह, शोभा और गुणों की खान श्री जानकी जी को जाते हुए जाना, तब परम प्रेम की कोमल स्याही बनाकर उनके स्वरूप को अपने सुन्दर चित्ररूपी भित्ति पर चित्रित कर लिया। सीता जी पुनः भवानी जी के मन्दिर में गयीं और उनके चरणो की वन्दना करके हाथ जोड़कर बोलीं —'' हे श्रेष्ठ पर्वतों के राजा हिमाचल की पुत्री पार्वती ! आपकी जय हो, जय हो। हे महादेव जी के मुख रूपी चन्द्रमा की ओर (टकटकी लगाकर)देखने वाली चकोरी ! आपकी जय हो। हे हाथी के मुखवाले गणेश जी और छः मुखवाले स्वामिकार्तिक जी की माता ! हे जगजननी ! हे बिजली की सी कान्तियुक्त शरीरवाली ! आपकी जय हो। आपका न आदि है, न मध्य है, और न अन्त है। आपके असीम प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। आप संसार को उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली हैं। विश्व को मोहित करने वाली और स्वतन्त्र रूप से बिहार करने वाली हैं।

दो०— पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष।।२३५।।

भावार्थ—पति को इष्टदेव मानने वाली श्रेष्ठ नारियों में, हे माता ! आपकी प्रथम गणना है। आपकी अपार महिमा को हजारों सरस्वती और शेष जी भी नहीं कह सकते।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी।।
देबि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।।
मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें।।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे बैदेहीं।।
बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी।।
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ।।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।।
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा।।

भावार्थ—हे (भक्तों को मुँह माँगा) वर देने वाली ! हे त्रिपुर के शत्रु (शिवजी) की प्रिय पत्नी ! आपकी सेवा करने से चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवि ! आपके चरण कमलों की पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं। मेरे मनोरथ को आप भली-भाँति जानती हैं, क्योंकि आप सदा सबके हृदय रूपी नगरी में निवास करती हैं। इसी कारण मैंने उसको प्रगट नहीं किया।'' ऐसा कहकर जानकी जी ने उनके चरण पकड़ लिये। गिरिजा जी सीता जी के विनय और प्रेम के वश में हो गयीं। उनकी (गले

की)माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुसकरायी। सीता जी ने आदरपूर्वक उस प्रसाद (माला)को सिरपर धारण किया। गौरी जी का हृदय हर्ष से भर गया और वे बोलीं, "हे सीता ! हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। नारद जी के वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषों से रहित)और सत्य हैं। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया वही वर तुमको मिलेगा।

छं०– मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो ।।
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली ।।

सो०– जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ।।२३६।।

भावार्थ–जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभाव से ही सुन्दर साँवला वर (श्रीरामचन्द्र जी)तुमको मिलेगा। वह करूनानिधान और सुजान (सर्वज्ञ) हैं, तुम्हारे शील और स्नेह को जानता है।" इस प्रकार श्री गौरी जी का आशीर्वाद सुनकर जानकी जी सब सखियों समेत हृदय में हर्षित हुई। तुलसीदास जी कहते हैं –भवानी जी को बार-बार पूजकर सीता जी प्रसन्न मन से राजमहल को लौट चलीं। गौरी जी को अनुकूल जानकर सीता जी के हृदय को जो हर्ष हुआ वह कहा नहीं जा सकता। सुन्दर मंगलों के मूल उनके बाएँ अंग फड़कने लगे।

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई ।।
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ।।
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ।।
सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। रामु लखनु सुनि भए सुखारे ।।
करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी ।।
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई ।।
प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा ।।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं ।।

भावार्थ–हृदय में सीता जी के सौन्दर्य की सराहना करते हुए दोनो भाई गुरू जी के पास गये। श्री रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र जी से सब कुछ कह दिया। क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे छूता भी नहीं है। फूल पाकर मुनि ने पूजा की। फिर दोनो भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुनकर श्री राम लक्ष्मण सुखी हुए।

श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्र जी भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे ।(इतने में)दिन बीत गया और गुरू की आज्ञा पाकर दोनो भाई सन्ध्या करने चले । (उधर)पूर्व दिशा में सुन्दर चन्द्रमा उदय हुआ । श्रीरामचन्द्र जी ने उसे सीता के मुख के समान देखकर सुख पाया । फिर मन में विचार किया कि यह चन्द्रमा सीता जी के मुख के समान नहीं है ।

दो०– जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक ।
सिय मुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंक ।।२३७।।

भावार्थ–खारे समुद्र से तो इसका जन्म हुआ है, (फिर उसी समुद्र से उत्पन्न होने के कारण) विष इसका भाई, दिन में यह मलिन (शोभाहीन, निस्तेज) रहता है, और कलंकी (काले दाग से युक्त)है । बेचारा गरीब चन्द्रमा सीताजी के मुख की बराबरी कैसे पा सकता है ।

घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई । ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई ।।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही । अवगुन बहुत चंद्रमा तोही ।।
बैदेही मुख पटतर दीन्हे । होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे ।।
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी । गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी ।।
करि मुनि चरन सरोज प्रनामा । आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ।।
बिगत निसा रघुनायक जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ।।
उयउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुखदाता ।।
बोले लखनु जोरि जुग पानी । प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी ।।

भावार्थ–फिर यह घटता-बढ़ता है और बिरहिणी स्त्रियों को दुख देने वाला है, राहु अपनी सन्धि में पाकर इसे ग्रस लेता है । चकवे को (चकवी के वियोग का) शोक देने वाला और कमल का बैरी (उसे मुरझा देने वाला)है । हे चन्द्रमा ! तुममे बहुत से अवगुण हैं (जो सीता जी में नहीं हैं) ।अतः जानकी जी के मुख की उपमा देने में बड़ा अनुचित कर्म करने का दोष लगेगा । इस प्रकार चन्द्रमा के बहाने सीता जी के मुख की छवि वर्णन करके बड़ी रात हो गयी जान, वे गुरू जी के पास चले । मुनि के चरण कमलों में प्रणाम करके, आज्ञा पाकर उन्होंने विश्राम किया । रात बीतने पर श्री रघुनाथ जी जागे और भाई को देखकर ऐसा कहने लगे — "हे तात ! देखो कमल, चक्रवाक और समस्त संसार को सुख देनेवाला अरूणोदय हुआ है ।" लक्ष्मण जी दोनों हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव को सूचित करने वाली कोमल वाणी बोले ।

टिप्पणी — पृष्ठ २६८ में बताया गया है कि सीता की सुन्दरता का वर्णन करने के लिए तुलसी दास सब उपमान हीन समझते हैं । रीति काल के कवि स्त्रियों के मुख की उपमा सर्वदा चन्द्रमा से दिया करते थे — स्त्रियों को "चन्द्रमुखी"बताते थे । तुलसीदास जी राम

के द्वारा कहते हैं कि सीता के मुख की चन्द्रमा से उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि चन्द्रमा में बहुत दोष हैं। उसका जन्म खारी समुद्र से हुआ है ; उसका सहोदर विष है ; वह घटता-बढ़ता रहता है । वह प्रोषित-पतिकाओं और चकवे को शोक देने वाला है, कमल को मुरझा देता है; मौका पाकर राहू उसे ग्रस जाता है और दिन में वह मलीन हो जाता है ।

दो०— अरुनोदयँ सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ।।२३८।।

भावार्थ—"अरूणोदय होने से कुमुदिनी सकुचा गई और तारागणों का प्रकाश फीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गए ।

नृप सब नखत करहिं उजिआरी । टारि न सकहिं चाप तम भारी ।।
कमल कोक मधुकर खग नाना । हरषे सकल निसा अवसाना ।।
ऐसेहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे । होइहहिं टूटें धनुष सुखारे ।।
उयउ भानु बिनु श्रम तम नासा । दुरे नखत जग तेजु प्रकासा ।।
रबि निज उदय ब्याज रघुराया । प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया ।।
तब भुज बल महिमा उदघाटी । प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी ।।
बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने । होइ सुचि सहज पुनीत नहाने ।।
नित्यक्रिया करि गुरु पहिं आए । चरन सरोज सुभग सिर नाए ।।
सतानंदु तब जनक बोलाए । कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए ।।
जनक बिनय तिन्ह आइ सुनाई । हरषे बोलि लिए दोउ भाई ।।

भावार्थ—सब राजारूपी तारे उजाला (मन्द प्रकाश) करते हैं, पर वे धनुष रूपी महान् अंधकार को हरा नहीं सकते । रात्रि का अन्त होने से जैसे कमल, चकवे, भौरे और नाना प्रकार के पक्षी हर्षित हो रहे हैं, वैसे ही हे प्रभो ! आपके सब भक्त धनुष टूटने पर सुखी होंगे। सूर्य उदय हुआ ; बिना ही परिश्रम अन्धकार नष्ट हो गया । तारे छिप गये, संसार में तेज का प्रकाश हो गया । हे रघुनाथ जी! सूर्य ने अपने उदय के बहाने सब राजाओं को प्रभु (आप) का प्रताप दिखलाया है । आपकी भुजाओं के बल की महिमा को उद्घाटित करने (खोलकर दिखाने) के लिये ही धनुष तोड़ने की यह पद्धति प्रकट हुई है ।" भाई के वचन सुनकर प्रभु मुस्कराये । फिर स्वभाव से ही पवित्र श्रीराम जी ने शौच से निवृत्त होकर स्नान किया और नित्य कर्म करके वे गुरू जी के पास आये । आकर उन्होने गुरू जी के सुन्दर चरण कमलों में सिर नवाया । तब जनक जी ने शतानन्द जी को बुलाया और उन्हें तुरन्त ही विश्वामित्र मुनि के पास भेजा । उन्होंने आकर जनक जी की बिनती सुनायी । विश्वामित्र जी ने हर्षित होकर दोनों भाईयों को बुलाया ।

टिप्पणी —यह चौपाई दस सम पंक्तियों की है । ऊपर दोहे २३८ में लक्ष्मण कहते हैं : "जैसे सूर्योदय होने पर, कुमुदनी सकुचा जाती है और तारे मलीन हो जाते हैं, ऐसे ही हे श्री

राम ! आपके आने से धनुर्यज्ञ में आए हुए समस्त राजाओं का बल जाता रहा।" इसी बात को दूसरे दृष्टिकोण से चौपाई में विस्तृत किया गया है। लक्ष्मण आगे कहते हैं :"धनुर्यज्ञ, राम के भुज-बल को प्रदर्शित करने के लिए ही किया जा रहा है। सूर्य ने उदय होकर सब राजाओं को राम का प्रताप दिखलाया। जैसे सूर्योदय पर कमल, चकवे, भौंरे और पक्षी हर्षित होते हैं, वैसे ही धनुष टूटने पर राम के भक्त प्रसन्न होंगे।"

दो०– सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ ।।२३९।।

भावार्थ–शतानंद जी के चरणों की बन्दना करके प्रभु श्रीरामचन्द्र जी गुरू के पास जा बैठे। तब मुनि ने कहा--"हे तात ! चलो, जनक जी ने बुला भेजा है।

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ।।
लखन कहा जस भाजनु सोई। नाथ कृपा तब जापर होई ।।
हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी ।।
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुषमख साला ।।
रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ।।
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी ।।
देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी ।।
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू ।।

भावार्थ–चलकर सीता जी के स्वयंवर को देखना चाहिये। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं।'' लक्ष्मण जी ने कहा –'' हे नाथ ! जिस पर आपकी कृपा होगी, वही बड़ाई का पात्र होगा। धनुष तोड़ने का श्रेय उसी को प्राप्त होगा।'' इस श्रेष्ठ वाणी को सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए। सभी ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। फिर मुनियों के समूह सहित दयालु श्री रामचन्द्र जी धनुष यज्ञशाला देखने चले। दोनों भाई रंगभूमि में आए हैं, ऐसी खबर जब सब नगर निवासियों ने पायी, तब बालक, जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरूष सभी घर और काम-काज को भुलाकर चल दिये। जब जनक जी ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गयी है, तब उन्होंने सब विश्वास पात्र सेवकों को बुलवा लिया और कहा– ''तुम लोग तुरंत सब लोगों के पास जाओ और सब किसी को यथायोग्य आसन दो।''

दो०– कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि ।।२४०।।

भावार्थ–उन सेवकों ने कोमल और नम्र वचन कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणी के) स्त्री-पुरूषों को अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठाया।

राजकुअँर तेहि अवसर आए । मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर नागर बर बीरा । सुंदर स्यामल गौर सरीरा ॥
राज समाज बिराजत रूरे । उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं रूप महा रनधीरा । मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई । नरभूषन लोचन सुखदाई ॥

भावार्थ—उसी समय राजकुमार (राम और लक्ष्मण) वहाँ आये । मानो साक्षात् मनोहरता उनके शरीरों पर छा रही हो । सुन्दर, साँवला और गोरा उनका शरीर है । वे गुणों के समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं । वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों तारागणों के बीच में पूर्ण चन्द्रमा हो । जिनकी जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उन्होने वैसी ही देखी । महान् रणधीर (राजालोग) श्रीरामचन्द्र जी के रूप को ऐसा देख रहे हैं मानों स्वयं वीर रस शरीर धारण किये हुए हों । कुटिल राजा प्रभु को देखकर डर गये, मानों बड़ी भयानक मूर्ति हो । छल से जो राक्षस वहाँ राजाओं के भेष में (बैठे) थे, उन्होंने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के समान देखा । नगरवासियों ने दोनों भाईयों को मनुष्यों के भूषण और नेत्रों को सुख देने वाला देखा ।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई में तुलसीदास ने एक महान लोकोक्ति का निरूपण किया है —

जिन्ह के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ।।

धनुष-यज्ञ में आये हुए दर्शकों में जिसकी जैसी भावना थी, उसने भगवान राम को उसी के अनुसार देखा । क्योंकि, प्रत्येक मानव अपने रूप को स्वयं देख पाने में सदा ही असमर्थ रहता है, अतः अपने को अपने भावों के आधार पर दूसरों में ही देखता है । अर्थात्, दूसरों में मानव अपने ही भावों को आरोपित कर, उसको भी अपने ही जैसा देखने की प्रवत्ति बना लेता है । ऐसा धनुष-यज्ञ में उपस्थित मानवों में श्रीराम को देखकर होना स्वाभाविक ही था । इस चौपाई में और इसके बाद की चौपाई में इस लोकोक्ति को समझाने के लिए तुलसीदास ने कई उदाहरण दिये हैं :

(१) रणधीर राजा रामचन्द्रजी के रूप को ऐसा देख रहे हैं, मानों स्वयं वीररस शरीर धारण किये हुए हो ।

(२) कायर राम को देखकर डर गये, मानों बड़ी भयानक मूर्ति है ।

(३) छल से जो राक्षस राजाओं के भेष में बैठे थे, उन्होंने प्रभु को प्रत्यक्ष काल के समान देखा ।

(४) नगरवासियों ने राम को पुरूषोत्तम और नैनाभिराम के रूप में देखा।

(५) स्त्रियों के लिए मानों श्रृंगार रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण करके आया हो।

(६) विद्वानों को प्रभु विराट् रूप में दिखायी दिये।

(७) जनक-समेत रानियाँ, राम को अपने बच्चे के समान देख रही हैं।

(८) योगियों को वे शान्त, शुद्ध, स्वतः प्रकाशमय, परम-तत्व के रूप में दिखे।

(९) हरिभक्तों ने दोनों भाईयों को सब सुखों के देने वाले इष्टदेव के समान देखा।

(१०) अन्त में सीता जी जिस भाव से राम को देख रही थीं, उस स्नेह और सुख को कोई कवि नहीं वर्णन कर सकता।

इस लोकोक्ति की एक दूसरे दृष्टिकोण से भी समीक्षा की जा सकती है। बाइबल के पहले अध्याय में लिखा है : "God created man in his own image."* ईश्वर ने मनुष्य को अपने रूप में बनाया। अतएव,मनुष्य भगवान को अपने रूप मे देखता है। इसाइयों के पैगम्बर यीशुमसीह भगवान के पुत्र माने जाते हैं। मुसलमानों में मूर्तिपूजा निषिद्ध है। अतएव वह अपने ईश्वर और अपने पैगम्बर मोहम्मद साहब के रूप की कल्पना ही नहीं कर सकते। शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुसार परब्रह्म "अनीह, अरूप, अनाम" है। रामानन्द ने सगुण ब्रह्म की कल्पना की। विष्णु ब्रह्म के तीन गुणावतारों में से एक है, और राम विष्णु के अवतार हैं। रामानन्द ने कृष्ण को भी अवतार माना है, परन्तु रुकमणि को उनकी शक्ति माना है। आगे चलकर विष्णुस्वामी, निम्बार्क, चैतन्य, बल्लभाचार्य और सूर पुष्टि मार्ग कवियों ने कृष्ण के साथ राधा की भी उपासना शुरू कर दी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तों ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार भगवान के स्वरूप को देखा और उसकी आराधना की।

दो०— नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरुप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप ।।२४१।।

भावार्थ—स्त्रियाँ हृदय में हर्षित होकर अपनी-अपनी रूचि के अनुसार उन्हें देख रही हैं। मानों श्रृंगार रस ही परम अनुपम मूर्ति धारण किये सुशोभित हो रहा हैं।

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ।।

---

* First Book of Genesis, Chapter I, Verse 27.

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
रामहि चितव भायँ जेहिं सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥
उर अनुभवति न कहि सक सोउ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

भावार्थ–विद्वानों को प्रभु विराट्रूप में दिखायी दिये, जिसके बहुत से मुँह, हाथ, पैर, नेत्र और सिर हैं। जनक जी के सजातीय (कुटुम्बी)प्रभु को किस तरह कैसे प्रिय रूप में देख रहे हैं, जैसे सगे सज्जन (सम्बन्धी)प्रिय लगते हैं। जनक समेत रानियाँ उन्हें अपने बच्चे के समान देख रही हैं, उनकी प्रीति का वर्णन नहीं हो सकता। योगियों को वे शान्त, शुद्ध, सम और स्वतः प्रकाश परम तत्व के रूप में दीखे। हरिभक्तों ने दोनों भाइयों को सब सुखों के देने वाले इष्टदेव के समान देखा। सीताजी जिस भाव से श्री रामचन्द्र जी को देख रही हैं, वह स्नेह और सुख कहने में नहीं आता। उस स्नेह और सुख का वे हृदय में अनुभव कर रही है, पर वे भी उसे कह नहीं सकती। फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है। इस प्रकार जिसका जैसा भाव था, उसने कोसलाधीश श्री रामचन्द्र जी को वैसा ही देखा।

दो०– राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥२४२॥

भावार्थ–सुन्दर, साँवले और गोरे शरीरवाले तथा विश्व भर के नेत्रों को चुराने वाले कोसलाधीश के कुमार राज समाज में इस प्रकार सुभोभित हो रहे हैं।

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहीं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला॥
कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाई। कुसुम कलीं बिच बीच बनाई॥
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ॥

भावार्थ–दोनों मूर्तियाँ स्वभाव से ही बिना किसी बनाव श्रृंगार के मन को हरने वाली हैं। करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके लिए तुच्छ है। उनके सुन्दर मुख शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा की भी निन्दा करने वाले (उसे नीचा दिखाने वाले) हैं और कमल के समान नेत्र मन को बहुत भाते हैं। सुन्दर चितवन सारे संसार के मन को हरने वाले कामदेव के भी मन को हरने वाली है। वह हृदय को बहुत ही प्यारी लगती है, पर उसका वर्णन नहीं किया जा

सकता। सुन्दर गाल हैं, कानों में चञ्चल झूमते हुए कुण्डल हैं। ठोड़ी और अधर (होंठ) सुन्दर हैं। कोमल वाणी है। हंसी चन्द्रमा की किरणों का तिरस्कार करने वाली है। भौंहे टेढ़ी और नासिका मनोहर है। ऊँचे चौड़े ललाट पर तिलक झलक रहा है (दीप्तमान हो रहा है)। काले घुँघराले बालों को देखकर भौरों की पंक्तियाँ लजा जाती हैं। पीली चौकोनी टोपियाँ सिरों पर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीच में फूलों की कलियाँ बनायी (काढ़ी) हुई हैं। शंख के समान सुन्दर गोल गले में मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो मानों तीनों लोकों की सुन्दरता की सीमा (को बता रही) हैं।

दो०— कुंजर मनि कंठा कलित उरन्हि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल ।।२४३।।

भावार्थ--हृदयो पर गजमुक्ताओं के सुन्दर कंठे और तुलसी की माला सुशोभित है। वृषभ के समान कंधे हैं, ऐंड (खड़े होने की शान) सिंह की सी है, और सुन्दर भुजाएँ विशाल एवं बल की भण्डार हैं।

कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें।।
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए।।
देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे।।
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई।।
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई।।
जहँ जहँ जाहिं कुअँर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ।।
निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा।।
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजाँ मुदित महासुख लहेऊ।।

भावार्थ--कमर में तरकस और पीताम्बर बांधे हैं। दाहिने हाथों में बाण और बाँये कंधों पर श्रेष्ठ धनुष तथा पीले यज्ञोपवित (जनेऊ) सुशोभित हैं। नख से लेकर शिखा तक सब अंग सुन्दर हैं। उन पर महान झबि छायी हुई है। उन्हे देखकर सब लोग सुखी हुये। नेत्र एकटक निमेश शून्य हैं, और तारे (पुतलियाँ) भी नहीं चलते। राजा जनक दोनो भाइयों को देखकर हर्षित हुए। तब उन्होंने जाकर मुनि के चरण कमलों को पकड़ लिया। विनती करके अपनी कथा सुनायी और मुनि को सारी रंगभूमि (यज्ञशाला) दिखलायी। मुनि के साथ दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित होकर उन्हीं को देखने लगते हैं। सबने रामजी को अपनी-अपनी ओर ही मुख किये हुए देखा, परन्तु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका। मुनि ने राजा से कहा --'रंगभूमि की रचना बड़ी सुन्दर है।' (विश्वामित्र जी जैसे निःस्पृह, विरक्तऔर ज्ञानी मुनि से रचना की प्रशंसा सुनकर) राजा प्रसन्न हुए और उन्हे बड़ा सुख मिला।

दो०—सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥२४४॥

भावार्थ— सब मञ्चों से एक मञ्च अधिक सुन्दर, उज्ज्वल और विशाल था। स्वयं जा ने मुनि सहित दोनों भाइयों को उस पर बैठाया।

प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेस उदय भएँ तारे॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥
बिनु भंजेहुँ भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गवाँई॥
बिहसे अवर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥
तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरें को कुआँरि बिआहा॥
एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥

भावार्थ—प्रभु को देखकर सब राजा हृदय में ऐसे हार गये (निराश एवं उत्साह हीन गये) जैसे पूर्ण चन्द्रमा के उदय होने पर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं। उनके तेज को ख़कर सब के मन में ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्र जी ही धनुष को तोड़ेंगे, इसमें देह नहीं। इधर उनके रूप को देखकर सब के मन में यह निश्चय हो गया कि शिवजी के शाल धनुष को जो सम्भव है न टूट सके, बिना तोड़े ही सीताजी श्री रामचन्द्रजी के गले जयमाल डालेंगी। अर्थात् दोनो ही तरह से हमारी हार होगी और विजय श्री रामचन्द्र के हाथ रहेगी। यों सोचकर वे कहने लगे—'हे भाई! ऐसा विचार कर यश, प्रताप, बल र तेज गँवाकर अपने-अपने घर चलो।' दूसरे राजा जो अविवेक से अंधे हो रहे थे, यह त सुनकर बहुत हँसे। उन्होंने कहा—'धनुष तोड़ने पर भी विवाह होना कठिन है। अर्थात्, ज ही में हम जानकी को हाथ से जाने नहीं देगें, फिर बिना तोड़ें तो राजकुमारी को ब्याह कौन सकता है। काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीता के लिये उसे भी हम युद्ध में जीत ।' यह घमंड की बात सुनकर दूसरे राजा, जो धर्मात्मा, हरिभक्त और सयाने थे, मुसकराये।

सो०— सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे॥२४५॥

भावार्थ—उन्होंने कहा— "राजाओं के गर्व दूर करके जो धनुष किसी से नहीं टूट सकेगा तोड़कर श्री रामचन्द्रजी सीता जी को ब्याहेंगे। रही खुद की बात, सो महाराज दशरथ रण में बाँके पुत्रों को युद्ध में कौन जीत सकता है?

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई॥
सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी । भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥
सुंदर सुखद सकल गुन रासी । ए दोउ बंधु संभु उर बासी ॥
सुधा समुद्र समीप बिहाई । मृग जलु निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाइ जा कहुँ जोइ भावा । हम तौ आजु जनम फलु पावा ॥
अस कहि भले भूप अनुरागे । रूप अनूप बिलोकन लागे ॥
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना । बरषहिं सुमन करहिं कल गाना ॥

भावार्थ—गाल बजाकर व्यर्थ ही मत मरो । मन के लड्डुओं से भी कहीं भूख बुझती है। हमारी परम पवित्र सीख को सुनकर सीता जी को अपने जी में साक्षात् जगज्जननी समझो (उन्हे पत्नि रूप में पाने की आशा एवं लालसा छोड़ दो) । और श्री रघुनाथ जी को जगत् का पिता परमेश्वर विचारकर, नेत्र भरकर उनकी छबि देख लो । ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा । सुन्दर, सुख देने वाले और समस्त गुणों की राशि ये दोनों भाई शिवजी के हृदय में बसने वाले हैं (स्वयं शिवजी भी इन्हें सदा हृदय में छिपाये रखते हैं) । वे तुम्हारे नेत्रों के सामने आ गये हैं । समीप आये हुए (भगवद्दर्शन रूप) अमृत के समुद्र को छोड़कर, तुम (जगजननी जानकी को पत्नी रूप मे पाने की दुराशा रूप मिथ्या)मृगजल को देखकर दौड़कर क्यों मरते हो । फिर भाई जिसको जो अच्छा लगे, वही जाकर करो, हमने तो श्री रामचन्द्र जी के दर्शन करके आज जन्म लेने का फल पा लिया।'' ऐसा कहकर अच्छे राजा प्रेममग्न होकर श्री रामजी का अनुपम रूप देखने लगे ।(मनुष्यों की तो बात ही क्या)देवता भी आकाश से विमानों पर चढ़े हुए दर्शन कर रहे हैं, और सुन्दर गान करते हुए फूल बरसा रहे हैं ।

दो०— जानि सुअवसरु सीय तब पठई जनक बोलाइ ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ ।।२४६।।

भावार्थ—तब सुअवसर जानकर जनक जी ने सीता जी को बुलाकर भेजा । सब चतुर और सुन्दर सखियां आदर पूर्वक उन्हें लिवा चलीं ।

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं । प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकबि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया । जग असि जुबति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमासम किमि बैदेही ॥
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥

भावार्थ—रूप और गुणों की खान जगज्जननी जानकी जी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। उनके लिए काव्य की सब उपमाएं तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियों के अंगों से अनुराग रखने वाली हैं। सीता जी के वर्णन में उन्हीं उपमाओं को देकर कौन कुकवि कहलाये और अपयश का भागी बने। यदि किसी स्त्री के साथ सीता जी की तुलना की जाय, तो जगत में ऐसी सुन्दर युवती है ही कहाँ जिसकी उपमा उन्हें दी जाये। पृथ्वी की स्त्रियों की तो बात की क्या, देवताओं की स्त्रियों को भी यदि देखा जाय, तो उनमें सरस्वती तो बहुत बोलने वाली हैं, पार्वती अर्द्धांगिनी हैं, कामदेव की स्त्री रति पति को बिना शरीर का (अनंग) जानकर बहुत दुखी हैं और जिनके विष और मदिरा जैसे प्रिय भाई हैं, उन लक्ष्मी के समान तो जानकी जी को कहा ही कैसे जाये। श्री लक्ष्मी जी निकली हैं खारेसमुद्र से, जिसको मथने के लिये भगवान् ने अति कर्कश पीठ वाले कच्छप का रूप धारण किया, रस्सी बनाई गयी महान् विषधर वासुकि नागकी, मथानी का कार्य किया अति कठोर मन्दराचल पर्वत ने और उसे मथा गया सारे देवताओं और दैत्य ने मिलकर। जिन लक्ष्मी को अतिशय शोभा की खान और अनुपम सुन्दरी कहते हैं उनके प्रकट करने में हेतु बने वे सब ही कठोर उपकरण। ऐसे असुन्दर और अस्वाभाविक उपकरणों से प्रकट हुई लक्ष्मी श्री जानकी की समता को कैसे पा सकती हैं। हाँ, इसके विपरीत यदि छवि रूपी अमृत का समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभा रूप रस्सी हो, श्रृंगार रस पर्वत हो और उस छवि के समुद्र को स्वयं कामदेव अपने ही कर कमलों से मथें –

टिप्पणी– पृष्ठ २७७ - ७८ में कहा गया है कि राम ने चन्द्रमा के अनेक अवगुण बताकर, उसे सीता के मुख की उपमा देने के लिए सर्वथा अयोग्य पाया। ऊपर की चौपाई में तुलसीदास कहते हैं कि पार्थिव जगत में कोई ऐसी रूपवती स्त्री नहीं है, जिससे सीता की सुन्दरता की उपमा दी जा सके। स्त्रियों की बात छोड़िये, देवियाँ भी उपयुक्त उपमान नहीं हैं। सरस्वती बहुत बोलती (वाचाल) हैं, पार्वती अर्द्धांगिनी (आधे अंग की) हैं, रति अपने पति को अनंग जानकर बहुत दुखी है। लक्ष्मी खारे समुद्र से उपजी है और विष और वारूणी (मदिरा) उसके बंधु हैं। उसका जन्म बहुत असुन्दर और अस्वाभाविक उपकरणों द्वारा हुआ। कच्छप की कर्कश पीठ पर, कठोर मन्दराचल पर्वत की मथनी और वासुकी नाग की रस्सी बना, देवों और दैत्यों ने समुद्र को मथा, तब कहीं जाकर लक्ष्मी का जन्म हुआ।

अन्तर्कथा—ऊपर पार्वती जी को अर्द्धांगिनी कहा गया है। अन्तर्कथा इस प्रकार है :-

ब्रह्मा ने प्रजा की सृष्टि के लिए प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप शंकर प्रसन्न हुए और उन्होने अपने शरीर से अर्धनारी नटेश्वर को उत्पन्न किया। उधर तपस्यारत पार्वती ने दुर्गा को महिषासुर बध करने का आदेश दिया। तदनंतर शंकर तपस्यारत पार्वती के पास अरूणाचल पर गए। उन्होंने प्रसन्न होकर पार्वती को अपने वामांग पर धारण किया। परम प्रणय के कारण पार्वती शंकर के वामांग में समन्वित हो गईं। ऐसी स्थिति में शिव का शरीर आधा पुरूष और आधानारी का बन गया। इसी कारण उन्हें अर्धनारी-नटेश्वर कहा गया।

दो०— एहि बिधि उपज लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल ।।२४७।।

भावार्थ—इस प्रकार का संयोग होने से जब सुन्दरता और सुख का मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो कवि उसे बहुत संकोच के साथ सीता जी के समान कहेंगे ।

चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं । बरषि प्रसून अपछरा गाईं ॥
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥

भावार्थ—सयानी सखियां सीता जी को साथ लेकर मनोहर वाणी से गीत गाती हुई चलीं । सीता जी के नवल शरीर पर सुन्दर साड़ी सुशोभित है । जगज्जननी की महान छवि अतुलनीय है । सब आभूषण अपनी-अपनी जगह पर शोभित हैं, जिन्हें सखियों ने अंग-अंग में भली भांति सजाकर पहनाया है । जब सीता जी ने रंगभूमि में पैर रक्खा, तब उनका रूप देकर स्त्री, पुरूष सभी मोहित हो गये । देवताओं ने हर्षित होकर नगाड़े बजाये और पुष्प बरसाकर अप्सराएं गाने लगीं । सीता जी के कर कमलों में जयमाला सुशोभित है । सब राजा चकित हो कर उनकी और देखने लगे । सीता जी चकित चित्त से श्रीराम जी को देखने लगी। तब सब राजा लोग मोह के वश हो गये । सीता जी ने मुनि के पास दोनों भाइयों को देखा तो उनके नेत्र अपना खज़ाना पाकर ललचा कर वहीं (श्री राम जी)में जा लगे ।

दो०— गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ।।२४८।।

भावार्थ—परन्तु गुरूजनों की लाज से तथा बहुत बड़े समाज को देखकर सीता जी सकुचा गयीं । वे श्री रामचन्द्र जी को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं ।

राम रूपु अरु सिय छबि देखें । नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमरि असि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू ॥
जगु भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अंतहुँ उर दाहू ॥
एहिं लालसाँ मगन सब लोगू। बरु साँवरों जानकी जोगू ॥
तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हियँ हरषु न थोरा ॥

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी का रूप और सीता जी की छवि देखकर स्त्री-पुरूषों ने पलक मारना छोड़ दिया। सब एकटक उन्हीं को देखने लगे। सभी अपने मन में सोचते हैं, पर कहते सकुचाते हैं। मन ही मन वे विधाता से विनय करते हैं। श्री रामचन्द्र जी का रूप और सीता जी की छवि देखकर वे प्रार्थना करते हुये मन ही मन कहते हैं "हे विधाता! जनक की मूर्खता को शीघ्र हर लीजिए और हमारी ही ऐसी सुन्दर बुद्धि उन्हें दीजिए कि जिससे बिना ही विचार किये राजा जनक अपना प्रण छोड़कर सीता जी का विवाह रामजी से कर दें। संसार उन्हे भला कहेगा, क्योंकि यह बात सब किसी को अच्छी लगती है। हठ करने से अन्त में हृदय जलता है।" सब लोग इसी लालसा में मग्न हो रहे हैं कि जानकी जी के योग्य वर तो यह साँवला (राम) ही है। तब राजा जनक ने बंदी जनों (भाटों) को बुलाया। वे विरूदावली (वंश की कीर्ति) कहते हुए चले आए। राजा ने कहा "जाकर मेरा प्रण सबसे कहो।" भाट चले। उनके हृदय में कम आनन्द नहीं था।

दो०— बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥२४९॥

भावार्थ—भाटों ने श्रेष्ठ बचन कहा—"हे पृथ्वी की पालना करने वाले सब राजागण! सुनिये— हम अपनी विशाल भुजा उठाकर जनक जी का प्रण कहते हैं।

नृप भुजबलु बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवँहिं सिधारे ॥
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही ॥
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माखे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥
तमकि ताकि तकि सिवधनु धरहीं। उठइ न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचारु मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं ॥

भावार्थ–राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्रमा है, शिवजी का धनुष राहू है, वह भारी है, कठोर है–यह सब को विदित है। बड़े भारी योद्धा रावण और बाणासुर भी इस धनुष को देखकर चुपके से चलते बने। उसे उठाना तो दूर रहा, छूने तक की हिम्मत नहीं हुई। उसी शिवजी के कठोर धनुष को आज इस राजसमाज में जो भी तोड़ेगा, तीनों लोको की जय के साथ ही उसको जानकी जी बिना किसी विचार के हठपूर्वक वरण करेंगी।'' प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जो वीरता के अभिमानी थे, वे मन में बहुत ही तमतमाये। कमर कसकर, अकुलाकर उठे और अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले। वे तमक कर बड़े ताव से धनुषकी ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं। करोड़ों भाँति से जोर लगाते हैं, पर वह उठता ही नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक है, वे तो धनुष के पास ही नहीं जाते।

टिप्पणी–ऊपर की चौपाई बहुत वादग्रस्त है। कई शंकायें उत्पन्न होती हैं, जिनका पूर्णतया समाधान नहीं हो पाता :

१. दोहे २४४ और २४५ के नीचे की चौपाईयों से ऐसा प्रतीत होता है कि सीता-स्वंयवर में आए हुए राजा दो दलों में बट गए। एक दल के राजाओं ने सीता को जगज्जननी और राम को विष्णु का अवतार समझकर, स्वयंवर में भाग लेने का विचार मन से निकाल दिया। परन्तु 'अविवेकी, अन्ध, अभिमानी' राजा शिव के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने की चेष्ठा में लगे रहे ताकि किसी प्रकार सीता को प्राप्त कर सकें। रावण और वाणासुर निर्दलयी तटस्थ थे। वे स्वंयवर में आए अवश्य थे, परन्तु शिव-धनुष को उन्होंने हाथ भी नहीं लगाया। दोनों के लिए बंदीजन कहते हैं 'देखि सरासन गवहिं सिधारे'। कारण शिव उनके उपास्य थे। देवाधिदेव के धनुष को छूने का वे साहस नहीं कर सकते थे। सम्भव है धनुष की गुरूता (भार)से वह पहले ही अवगत हों जैसा कि नीचे की अन्तर्कथा से प्रतीत होता है।

परन्तु फिर प्रश्न यह उठता है कि जब वे धनुष की गरिमा और गुरूता से पहले ही परिचित थे तो स्वयंवर में भाग लेने वह गए ही क्यों ? इसका एक ही उत्तर हो सकता है। जनक का प्रण उन्हें पहले से नहीं पता था। जनकपुरी पहुंचने पर पहली बार बन्दी जनों ने उन्हें स्वयंवर की शर्त से अवगत कराया।

२. दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि जब राजा जनक ने बंदीजनों को आदेश दिया कि वह उनके प्रण की घोषणा करें, तो बंदीजनों ने कहा कि ''राजाओं का बल चन्द्रमा के समान है और शिव धनुष राहु के समान है। रावण और वाणासुर जैसे सुरवीर 'सरासन'

को देखकर ही लौट गए।'' इससे यह सिद्ध होता है कि धनुष यज्ञ कई दिन चला। इस बात की पुष्टि दोहे २४४ और २४५ के नीचे की चौपाइयों से भी होती है। तुलसीदास ने बंदीजनों की जिस घोषणा का वर्णन ऊपर की चौपाई में किया है, वह आखिरी दिन की घोषणा है।

३. अन्त में, बन्दीजनों ने जो घोषणा की वह बहुत खटकने वाली बात है। शिव का धनुष जिसे देवताओं ने जनक के पूर्वजों के पास धरोहर रख दिया था, उसके तोड़ने की प्रतिज्ञा जनक कदापि भी नहीं कर सकते थे। प्रण का स्पष्ट रूप वाल्मीकि की रामायण के बालकाण्ड के छ्यासठवें सर्ग के श्लोक २० से स्पष्ट होता है :

"क्व गतिमानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे।
आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा"।।

अर्थात्, फिर इस धनुष को खींचने, चढ़ाने, इस पर बाण संधान करने, इसकी प्रत्यन्चा पर टंकार देने तथा इसे उठाकर इधर-उधर हिलाने में मनुष्यों की कहां शक्ति है ? दोहे २६० के नीचे की चौपाई में तुलसी दास स्वयं कहते हैं :

"लेत चढ़ावत खेंचत गाढ़े, काहूं न लखा देख सब ठाढ़ें।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा, भये भवन धुनि घोर कठोरा।।"

राम ने एक पल में धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। यह दूसरी बात है कि खेंचते ही धनुष सहसा टूट गया। अपने इष्टदेव का महाबल प्रतिष्ठित करने के लिये तुलसीदास ने धनुष के तोड़ने के प्रण की घोषणा बन्दीजनों से करा दी।

अन्तर्कथा—वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के छ्यासठवें सर्ग में शिव-धनुष की कथा इस प्रकार है :-

दक्षयज्ञ विध्वंस (देखिये अन्तर्कथा, पृष्ठ १०५) के पश्चात् शंकर ने अपने धनुष को उठाकर देवताओं से रोषपूर्वक कहा—'देवगण ! मैं यज्ञ में भाग प्राप्त करना चाहता था, किन्तु तुम लोगों ने नहीं दिया। इसलिये इस धनुष से मैं तुम सब लोगों के मस्तक काट डालूँगा।' यह सुनकर सम्पूर्ण देवता उदास हो गये और स्तुति द्वारा देवाधिदेव महादेव को प्रसन्न करने लगे। अन्त में उन पर भगवान शिव प्रसन्न हो गए। प्रसन्न होकर उन्होंने उन सब महामनस्वी देवताओं को धनुष अपना अर्पण कर दिया। धनुष-रत्न निमि के ज्येष्ठ पुत्र राजा देवरात के पास धरोहर के रूप में रखवा दिया गया।

एक दिन यज्ञ के लिये भूमिशोधन करते समय खेत में राजा जनक हल चला रहे थे। उसी समय हल के अग्रभाग से जोती गयी भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। सीता (हल के

अग्रभाग)से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम "सीता" रखा गया। अपनी इस अयोनिजा कन्या के विषय में जनक ने यह निश्चय किया कि जो अपने पराक्रम से मेरे पूर्वजों की धरोहर (शिवधनुष) पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसी से मैं इसका व्याह करूंगा। इस तरह सीता को वीर्यशुल्का (पराक्रमरूप शुल्क वाली)बनाकर जनक ने उन्हें अपने घर में रखा। एक किंबदन्ति यह भी है कि आंगन लीपते समय सीता जी ने धनुष को इधर से उठाकर उधर रख दिया। जब सीता जी ने धनुष को सहज में उठा लिया तो जनक ने यह निश्चय किया कि उनके वर में कम से कम इतना बल अवश्य होना चाहिए कि वह धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा सके।

धनुष की महिमा सुनकर, विश्वामित्र ने इच्छा प्रकट की कि वह धनुष दशरथ के दोनों पुत्रों को दिखा दिया जाए। धनुष आठ पहियों वाले लोहे के बहुत बड़े सन्दूक में रखा था। उसे मोटे-ताजे पांच हजार महामनस्वी बीर किसी तरह ठेलकर पुरी के बाहर लाए। तुलसीदास के अनुसार : "नृप सहस दस (१०,०००) एकहि वारा। लगे उठावन टरइ न टारा।" विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीराम ने उस सन्दूक को खोलकर कहा--"अच्छा अब मैं इस दिव्य एवं श्रेष्ठ धनुष में हाथ लगाता हूँ। मैं इसे उठाने और चढ़ाने का भी प्रयत्न करूंगा।" प्रत्यंचा चढ़ाकर श्रीराम ने ज्योंही उस धनुष को कानतक खींचा त्योंही वह बीच से टूट गया (लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े)।

पात्रपरिचय--वाण दैत्यराज बलि का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी राजधानी का नाम शोणितपुर था। श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरूद्ध ने इसकी कन्या उषा को व्याहा था।

दो०— तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ ।।२५०।।

भावार्थ--वे मूर्ख राजा तमककर (किटकिटाकर) धनुष को पकड़ते हैं, परन्तु जब नहीं उठता तो लजाकर चले जाते हैं। मानों वीरों की भुजाओं का बल पाकर वह धनुष अधिक-अधिक भारी होता जाता है।

नृप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा ।।
डिगइ न संभु सरासनु कैसें। कामी बचन सती मनु जैसें ।।
सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसें बिनु बिराग संयासी ।।
कीरती बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी ।।
श्रीहत भए हारि हियँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा ।।
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने ।।

दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥

देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ॥

भावार्थ—तब दस हजार राजा एक ही बार धनुष को उठाने लगे, तो भी वह उनके टाले नही टला । शिवजी का धनुष कैसे नहीं डिगता था, जैसे कामी पुरूष के वचनों से सती का मन कभी चलायमान नहीं होता । सब राजा उपहास के योग्य हो गये, जैसे वैराग्य के बिना सन्यासी उपहास के योग्य हो जाता है । कीर्ति, विजय, बड़ी वीरता इन सब को वे धनुष के हाथों बरबस हार कर चले गये । राजा लोग हृदय से हारकर श्रीहीन (निष्प्रभ)हो गये, और अपने-अपने समाज में जा बैठे । राजाओं को (असफल)देखकर जनक अकुला उठे और ऐसे बचन बोले जो मानो क्रोध से सने हुए थे —"मैने जो प्रण ठाना था, उसे सुनकर द्वीप-द्वीप के अनेकों राजा आये । देवता और दैत्य भी मनुष्य का शरीर धारण कर के आये तथा और भी बहुत से रणधीर वीर आये ।

दो०— कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ।।२५१।।

भावार्थ—परन्तु धनुष को तोड़कर मनोहर कन्या, बड़ी विजय और अत्यन्त सुन्दर कीर्ति को पाने वाला मानों ब्रह्मा ने किसी को रचा ही नहीं।

कहहु काहि यहु लाभु न भावा । काहुँ न संकर चाप चढ़ावा ॥

रहउ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि बूमि न सके छड़ाई ॥

अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥

तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न बिधि बैदेही बिबाहू ॥

सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ । कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ ॥

जौं जनतेऊँ बिनु भट भुबि भाई । तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई ॥

जनक बचन सुनि सब नर नारी । देखि जानकिहि भए दुखारी ॥

माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें । रदपट फरकत नयन रिसौंहें ॥

भावार्थ—कहिये, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता, परन्तु किसी ने भी शंकर जी का धनुष नहीं चढ़ाया । अरे भाई ! चढ़ाना और तोड़ना तो दूर रहा, कोई तिलभर भूमि भी छुड़ा न सका । अब कोई वीरता का अभिमानी नाराज न हो । मैने जान लिया, पृथ्वी वीरों से खाली हो गयी । अब आशा छोड़कर अपने-अपने घर जाओ । ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं । यदि प्रण छोड़ता हूँ तो पुण्य जाता है, इसलिये क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही

रहे। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरों से शून्य है तो प्रण करके उपहास का पात्र न बनता।'' जनक के वचन सुनकर सभी स्त्री-पुरूष जानकी जी की ओर देखकर दुखी हुए, परन्तु लक्ष्मण जी तमतमा उठे, उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोध से लाल हो गये।

लोकोक्ति–ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है जो आधुनिक सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है :

"वीर विहीन मही मैं जानी"

जब दस हजार राजा एक साथ मिलकर भी शिव-धनुष नहीं उठा पाये तो राजा जनक को बहुत खेद हुआ कि उनका प्रण पूरा नहीं होगा और उनकी पुत्री (सीता) कुआरी ही रह जायेगी। वेदना-ग्रस्त वह सहसा कह पड़े कि इस सारी पृथ्वी में कोई भी वीर नहीं है। "वीरता" से जनक का अभिप्राय बाहुबल से था जो शिव के धनुष को उठा कर उस पर प्रत्यन्चा चढ़ा सके। आज कल के संदर्भ में "वीरता" शारीरिक बल तक सीमित नहीं है। इसमें आत्मिक, मानसिक और चरित्र की वीरता भी अन्तर्निहित है। आज कल के नेताओं और अफसरों में न आत्मविश्वास है और न मनोबल। किसी भी समस्या को सुलझाना नहीं चाहते और न निर्णय लेना चाहते हैं। "Pass the Buck" — काम दूसरे पर टालो–आजकल की नौकर शाही का आदर्श-वाक्य है। भीरू कभी भी वीर नहीं हो सकता।

दो०— कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान।।२५२।।

भावार्थ–श्री रघुवीर जी के डर से कुछ कह तो सकते नहीं, पर जनक के वचन उन्हें बाण से लगे। (जब न रह सके तब) श्री रामचन्द्र जी के चरणकमलों में सिर नवाकर, वे यथार्थ वचन बोले।

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई।।
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी।।
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू।।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।।
काचे घट जिमी डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी।।
तव प्रताप महिमा भगवाना। को बापुरो पिनाक पुराना।।
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुकु करौं बिलोकिअ सोऊ।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं।।

भावार्थ—रघुवंशियों में कोई भी जहाँ होता है, उस समाज में ऐसे वचन कोई नहीं कहता, जैसे अनुचित वचन रघुकुल शिरोमणि श्री राम जी को उपस्थित जानते हुए भी जनक जी ने कहे हैं। हे सूर्यकुल-रूपी कमल के सूर्य ! सुनिये— मैं स्वभाव ही से कहता हूँ, कुछ अभिमान करके नहीं। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्माण्ड को गेंद की तरह उठा लूँ। और उसे कच्चे घड़े की तरह फोड़ डालूँ। मैं सुमेरू पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूँ।हे भगवन् ! आपके प्रताप की महिमा से यह बेचारा पुराना धनुष तो कौन चीज़ है। ऐसा जानकर हे नाथ ! आज्ञा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिए। धनुष को कमल की डंडी की तरह चढ़ाकर उसे सौ योजन तक दौड़ा लिये चला जाऊँ।

दो०— तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ ।।२५३।।

भावार्थ—हे नाथ ! आपके प्रताप के बल से धनुष को कुकुरमुत्ते (बरसाती छत्ते) की तरह तोड़ दूँ। यदि ऐसा न करूँ तो प्रभु के चरणों की शपथ है, फिर मैं धनुष और तरकस को कभी हाथ में भी न लूँगा।

लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले ।।
सकल लोग सब भूप डेराने। सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने ।।
गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं ।।
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे ।।
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी ।।
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा ।।
सुनि गुरू बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा ।।
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ।।

भावार्थ—ज्यों ही लक्ष्मण जी क्रोध भरे बचन बोले कि पृथ्वी डगमगा उठी और दिशाओं के हाथी काँप उठे। सभी लोग और सभी राजा डर गये, सीता जी के हृदय में हर्ष हुआ और जनक जी सकुचा गये। गुरू विश्वामित्र जी, श्री रघुनाथ जी और सब मुनि मन में प्रसन्न हुए और बार-बार पुलकित होने लगे। श्री रामचन्द्र जी ने इशारे से लक्ष्मण को मना किया और प्रेम सहित अपने पास बैठा लिया। विश्वामित्र जी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी बोले- "हे राम ! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात ! जनक का सन्ताप मिटाओ।" गुरू के वचन सुनकर श्री राम जी ने चरणों में सिर नवाया। उनके मन में न हर्ष हुआ, न विषाद और वे अपनी ऐंड (खड़ें होने की शान)से जवान सिंह को भी लजाते हुए सहज स्वभाव से ही उठ खड़े हुए।

दो०–उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ।।२५४।।

भावार्थ–मञ्चरूपी उदयाचल पर रघुनाथ जी रूपी बाल सूर्य के उदय होते ही सब संत रूपी कमल खिल उठे और नेत्र रूपी भौरे हर्षित हो गये ।

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवली न प्रकासी ।।
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ।।
भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा ।।
गुर पद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ।।
सहजहिं चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु बर कुंजर गामी ।।
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए सुखारी ।।
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे । जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ।।
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं । तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं ।।

भावार्थ–राजाओं की आशारूपी रात्रि नष्ट हो गयी । उनके वचन रूपी तारों के समूह का चमकना बंद हो गया (वे मौन हो गये)। अभिमानी राजा-रूपी कुमुद संकुचित हो गये और कपटी राजा-रूपी उलूक छिप गये । मुनि और देवता रूपी चकवे शोक रहित हो गये। वे फूल बरसाकर अपनी सेवा प्रकट कर रहे हैं । प्रेमसहित गुरू के चरणों की वन्दना करके श्री रामचन्द्र जी ने मुनियों से आज्ञा मांगी । समस्त जगत के स्वामी श्री रामजी सुन्दर मतवाले श्रेष्ठ हाथी की चाल से स्वाभाविक ही चले । रामचन्द्र जी के चलते ही नगर भर के सब स्त्री-पुरूष सुखी हो गये और उनके शरीर रोमाञ्च से भर गये । उन्होंने पितर और देवताओं की वन्दना करके अपने पुण्यों को स्मरण किया कि यदि हमारे पुण्यों का कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाईं ! रामचन्द्रजी शिवजी के धनुष को कमल की डंडी की भाँति तोड़ डालें।

दो०– रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ ।
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ ।।२५५।।

भावार्थ–रामचन्द्र जी को प्रेम (वात्सल्य) के साथ देखकर और सखियों को समीप बुलाकर सीता जी की माता स्नेहवश बिलखकर (विलाप करती हुई सी)ये वचन बोलीं ।

सखि सब कौतुकु देखनिहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ।।
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं । ए बालक असि हठ भलि नाहीं ।।
रावन बान छुआ नहीं चापा । हारे सकल भूप करि दापा ।।
सो धनु राजकुअँर कर देहीं । बाल मराल कि मंदर लेहीं ।।
भूप सयानप सकल सिरानी । सखि बिधि गति कछु जाति न जानी ।।
बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिअ न रानी ।।

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा । सोषेउ सुजसु सकल संसारा ॥
रबि मंडल देखत लघु लागा । उदयँ तासु तिभुवन तम भागा ॥

भावार्थ–''हे सखी ! ये जो हमारे हितैषी कहलाते हैं, वे भी सब तमाशा देखने वाले हैं । कोई भी (इनके) गुरू विश्वामित्र को समझाकर नहीं कहता कि ये (रामजी) बालक हैं, इनके लिये ऐसा हठ अच्छा नहीं । रावण और बाणासुर ने जिस धनुष को छुआ तक नहीं और सब राजा घमंड करके हार गये वही धनुष इस सुकुमार राजकुमार के हाथ में दे रहे हैं। हंस के बच्चे भी कहीं मंदराचल पहाड़ उठा सकते हैं । और तो कोई समझाकर कहे या नहीं राजा तो बड़े समझदार और ज्ञानी हैं, उन्हें तो गुरू को समझाने की चेष्टा करनी चाहिये थी, परन्तु मालूम देता है राजा का भी सारा सयानापन समाप्त हो गया । हे सखी ! विधाता की गति कुछ जानने में नहीं आती ।'' तब एक चतुर सखी कोमल वाणी से बोली —''हे रानी! तेजवान को छोटा नहीं गिनना चाहिए । कहाँ घड़े से उत्पन्न होने वाले (छोटे से) मुनि अगत्स्य* और कहां अपार समुद्र, किन्तु उन्होंने उसे सोख लिया, जिसका सुयश सारे संसार में छाया हुआ है । सूर्यमण्डल देखने में छोटा लगता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अन्धकार भाग जाता है ।

दो०– मंत्र परम लघु जासु बस विधि हरि हर सुर सर्ब ।
महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब ।।२५६।।

भावार्थ–मन्त्र अत्यन्त छोटा होता है, जिसके वश में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं। महान् मतवाले गजराज को छोटा सा अंकुश वश में कर लेता है ।

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे । सकल भुवन अपनें बस कीन्हे ॥
देबि तजिअ संसउ अस जानी । भंजब धनुष राम सुनु रानी ॥
सखी बचन सुनि भै परतीती । मिटा बिषादु बढ़ी अति प्रीति ॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही । सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही ॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सफल आपनि सेबकाई । करि हितु हरहु चाप गरुआई ॥
गननायक बरदायक देवा । आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा ॥
बार-बार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥

---

* अन्तर्कथा के लिए, देखिए पृष्ठ १२-१३ ।

भावार्थ—कामदेव ने फूलों का ही धनुष-बाण लेकर समस्त लोकों को अपने वश में कर रक्खा है। हे देवी ! ऐसा जानकर सन्देह त्याग दीजिए। हे रानी ! सुनिए, रामचन्द्र जी धनुष को अवश्य ही तोड़ेंगे।'' सखी के वचन सुन रानी को (श्री रामजी के सामर्थ्य के समबन्ध में)विश्वास हो गया। उस समय श्री रामचन्द्र जी को देखकर सीता जी भयभीत हृदय से जिस तिस (देवता)से विनती कर रही हैं। वे व्याकुल होकर मन ही मन मना रही हैं — ''हे महेश-भवानी ! मुझ पर प्रसन्न होइये, मैने जो आपकी सेवा की है उसे सुफल कीजिये और मुझ पर स्नेह करके धनुष के भारीपन को हर लीजिए। हे गणों के नायक, वर देने वाले देवता गणेश जी ! मैंने आज ही के लिये तुम्हारी सेवा की थी। बार-बार मेरी विनती सुनकर धनुष का भारीपन बहुत ही कम कर दीजिए।''

दो०— देखि देख रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ।।२५७।।

भावार्थ—श्री रघुनाथ जी की ओर देख-देख कर सीता जी धीरज धरकर देवताओं को मना रही हैं। उनके नेत्रों में प्रेम के आंसू भरे हैं और शरीर में रोमाञ्च हो रहा है।

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ।।
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी ।।
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई ।।
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ।।
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा ।।
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी ।।
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ।।
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं ।।

भावार्थ—अच्छी तरह नेत्र भरकर श्री रामजी की शोभा देखकर, फिर पिता के प्रण का स्मरण करके सीता जी का मन क्षुब्ध हो उठा।''अहो ! पिताजी ने बड़ा ही कठिन हठ माना है, वे लाभ-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं। मन्त्री डर रहे हैं, इसलिये कोई उन्हे सीख भी नहीं देता, पण्डितों की सभा में यह बड़ा अनुचित हो रहा है। कहाँ तो बज्र से भी बढ़कर कठोर धनुष और कहाँ ये कोमल शरीर, किशोर श्याम सुन्दर। हे विधाता ! मैं हृदय में किस तरह धीरज धरूँ, सिरस के फूल के कण से कहीं हीरा छेदा जाता है। सारी सभा की बुद्धि भोली बावली हो गई है, अतः हे शिव जी के धनुष ! अब तो मुझे तुम्हारा ही आसरा है। तुम अपनी जड़ता लोगों पर डालकर, श्री रघुनाथ जी (के सुकुमार शरीर) को देखकर (उतने ही)हल्के हो जाओ।'' इस प्रकार सीता जी के मन में बड़ा ही सन्ताप हो रहा है। निमेष का एक लव (अंश)भी सौ युगों के समान बीत रहा है।

दो०— प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ।।२५८।।

भावार्थ–प्रभु श्री रामचन्द्र जी को देखकर, फिर पृथ्वी की ओर देखती हुई, सीता जी के चञ्चल नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानों चन्द्रमंडल रूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ खेल रही हैं।

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी॥
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥
तौ भगवानु सकल उर बासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

भावार्थ–सीता जी की वाणी रूपी भ्रमरी को उनके मुख रूपी कमल ने रोक रखा है। लाजरूपी रात्रि को देखकर वह प्रकट नहीं हो रही है। नेत्रों का जल नेत्रों के कोने (कोए) में ही रह जाता है, जैसे बड़े भारी कंजूस का सोना कोने में ही गड़ा रह जाता है। अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता को जानकर सीता जी सकुचा गयीं, और धीरज धरकर हृदय में विश्वास ले आईं कि यदि तन मन और वचन से मेरा प्रण सच्चा है और श्री रघुनाथ जी के चरणों में मेरा चित्त वास्तव में अनुरक्त है, तो सब के हृदय में निवास करने वाले भगवान मुझे श्री रामचन्द्र जी की दासी अवश्य बनायेंगे। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। प्रभु की ओर देखकर सीता जी ने शरीर के द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात् यह निश्चय कर लिया) कि यह शरीर इन्हीं का होकर रहेगा। कृपानिधान श्री राम जी सब जान गये। उन्होंने सीता जी को देखकर धनुष की ओर कैसे ताका, जेसे गरुण छोटे से साँप की ओर देखते हैं।

लोकोक्ति–ऊपर की चौपाई में निम्न लोकोक्ति है :

"जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥"

अर्थात्, जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है--इसमें कुछ सन्देह नहीं। पृष्ठ २६७ पर दो वाक्यों की व्याख्या की गई–'प्रीति पुरातन लखई न कोई' और उपजी प्रीति पुनीत।' हिन्दू धर्म के अनुसार पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तर का साथ है। पृष्ठ १०४ पर बताया गया है कि पति का अपमान सती के लिए असह्य हो गया और वह योग अग्नि प्रज्वलित कर उसमें भस्म हो गई। मरते समय उन्होंने भगवान से यह ही वर मांगा कि उनका जन्म-जन्मान्तर शिव के चरणों में प्रेम रहे। अतएव उन्होंने मरके हिमालय पर्वत की पुत्री पार्वती के रूप में जन्म लिया, जिससे शिव जी का पुनर्विवाह हुआ। सावित्री ने अपने सतीत्व के बल पर यमराज से अपने मृतपति सत्यवान कों पुनः जीवन-दान दिलाया। राधा

यह दूसरी बात है कि फारसी कविता में प्रेमी प्रेमिका के लिए तड़प-तड़प कर मर गया परन्तु उसे अपनी प्रेमिका प्राप्त नहीं हुई। मजनू को लैला नहीं मिली, न फरहाद को शीरी। परन्तु इनके प्रेम में वासना थी। तुलसी दास का "सत्य सनेहू" निःस्वार्थ प्रेम का द्योतक है, जहाँ आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। भक्ति परम प्रीति है, जिसके हो जाने पर न मनुष्य कुछ चाहता है, और न कुछ सोचता है। निर्द्वन्द हो जाता है और भगवान में लीन हो जाता है।

दो०– लखन लखेउ रघुबंसमनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु।।२५९।।

भावार्थ–इधर जब लक्ष्मण जी ने देखा कि रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्र जी ने शिवजी के धनुष की ओर ताका है, तो वे शरीर से पुलकित हो ब्रह्माण्ड को चरणों से दबाकर निम्नलिखित वचन बोले।

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला।।
रामु चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा।।
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए।।
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू।।
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई।।
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा।।
संभुचाप बड़ बोहितु पाई। चढ़े जाइ सब संगु बनाई।।
राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पारु नहिं कोउ कड़हारू।।

भावार्थ–"हे दिग्गजों! हे कच्छप! हे शेष! हे बाराह! धीरज धरकर पृथ्वी को थामें रहो, जिसमें यह हिलने न पाये। श्री रामचन्द्र जी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं। मेरी आज्ञा सुन कर सब सावधान हो जाओ।" श्री रामचन्द्र जी जब धनुष के समीप आये, तब सब स्त्री-पुरुषों ने देवताओं और पुण्यों को मनाया। सब का अज्ञान और सन्देह, नीच राजाओं का अभिमान, परशुराम जी के गर्व की गुरुता, देवताओं और श्रेष्ठ मुनियों की कातरता (भय), सीता जी का सोच, जनक का पश्चाताप और रानियों के दारूण दुःख का दावानल– ये सब शिवजी के धनुष रूपी बड़े जहाज़ को पाकर, समाज बनाकर उस पर जा चढ़े। ये श्री रामचन्द्र जी की भुजाओं के बलरूपी अपार समुद्र के पार जाना चाहते हैं, परन्तु कोई केवट नहीं है।

दो०– राम बिलोके लोक सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि।।२६०।।

भावार्थ—श्री राम जी ने सब लोगों की ओर देखा और उन्हे चित्र में लिखे हुए से देखकर, फिर कृपाधाम श्री रामजी ने सीता जी की ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना।

देखी बिपुल बिकल बैदेही । निमिष बिहात कलप सम तेही ॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुएँ करइ का सुधा तड़ागा ॥
का बरषा सब कृषी सुखानें । समय चुकें पुनि का पछितानें ॥
अस जियँ जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी ॥
गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा । अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें । काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

भावार्थ—जानकी जी को बहुत ही विकल देखा, उनका एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहा था । यदि प्यासा आदमी पानी के बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जाने पर अमृत का तालाब भी क्या करेगा । सारी खेती के सूख जाने पर वर्षा किस काम की । समय बीत जाने पर पछताने से क्या लाभ । जी में ऐसा समझकर श्री रामजी ने जानकी जी की ओर देखा और उनका विशेष प्रेम लखकर वे पुलकित हो गये । मन ही मन उन्होंने गुरू को प्रणाम किया, और बड़ी फुर्ती से धनुष को उठा लिया । जब उसे (हाथ में)लिया, तब वह धनुष बिजली की तरह चमका और फिर आकाश में मण्डल जैसा (मण्डलाकार)हो गया। लेते, चढ़ाते और जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं देखा । (अर्थात् कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा इसका किसी को पता नहीं लगा), सब ने श्री रामजी को (धनुष खींचे)खड़े देखा । उसी क्षण श्री रामजी ने धनुष को बीच से तोड़ डाला । भयंकर कठोर ध्वनि से सब लोक भर गये ।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है :-

"का वरषा सब कृषी सुखाने"

जब फसल सूख कर नष्ट हो जाए, तब वर्षा होने से क्या लाभ ? किसान के लिए अनावृष्टि और अतिवृष्टि उतनी ही हानिकारक जितनी असामयिक वृष्टि । इस लोकोक्ति को किसान तक सीमित रखना उचित न होगा । व्यापक परिवेश में इसका भावार्थ है कि निःसहाय को यदि समय से सहायता न मिले तो उसके लिए वेकार है । इस बात को लोकोक्ति के ऊपर की पंक्ति में स्पष्ट कर दिया गया है :"यदि प्यासा आदमी पानी के बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जाने के बाद अमृत-कुण्ड का क्या लाभ?'' लोकोक्ति के बाद वाले पद में भी पुनः स्पष्ट किया गया है : "समय बीत जाने पर पछताने से क्या लाभ ?"

लोकोक्ति का एक दूसरा पहलू भी है । यह लोकोक्ति राम ने किसी को सम्मोधित करके नहीं कही । यह केवल उनका आत्म-चिन्तन है । गुरू ने अनुमति देने में बहुत बिलम्ब कर दी । जब जनक ने " बीर बिहीन मही मैं जानी" कहा (देखिए पृष्ठ २९२-९३), तो लक्ष्मण को बहुत क्रोध आया (देखिए दोहा २५२ के नीचे की चौपाई), सीता की माता और सीता बहुत क्षुब्ध हैं (देखिए क्रमशः दोहा २५५ और २५७ के नीचे की चौपाई) कि जो धनुष रावण और वाणासुर जैसे योद्धा हिला तक न सके, उसे राम जैसे सुकुमार कैसे उठा कर तोड़ सकते हैं । सीता का क्षोभ राम के लिए असहनीय है । अब अधिक बिलम्ब नहीं करनी चाहिए । पहले इसके कि कोई अनिष्ट हो जाये, उन्हें तुरन्त शिव-धनुष को उठाकर तोड़ डालना चाहिए ।

छं०— भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले ।।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं ।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ।।

भावार्थ—घोर कठोर शब्द से सब लोक भर गये;सूर्य के घोड़े मार्ग छोड़ कर चलने लगे; दिग्गज चिग्घाड़ने लगे; धरती डोलने लगी; शेष, बराह और कच्छप कलमला उठे; देवता, राक्षस और मुनि कानों पर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर विचारने लगे । जब सबको निश्चय हो गया कि रामजी ने धनुष को तोड़ डाला तब सब रामचन्द्र जी की जय बोलने लगे । शेष, बाराह और कच्छप पृथ्वी को धारण करने वाले हैं । इन्हें लक्ष्मण ने पहले ही सावधान कर दिया था । देखिये दोहा २५९ के नीचे की चौपाई की पहली पंक्ति ।

सो०— संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु ।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस ।।२६१।।

भावार्थ— शिव जी का धनुष जहाज़ है और रघुनाथ जी की भुजाओं का बल समुद्र है; धनुष टूटने से वह सारा समाज डूब गया जो मोहवश पहले इस जहाज पर चढ़ा था ।

टिप्पणी — दोहा २६० के ऊपर की चौपाई में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है जो इस सोरठे में है । तुलसीदास शिव जी के धनुष की उपमा एक जहाज से देते हैं ; और राम के बाहुबल की उपमा सागर से देते हैं । सभा में उपस्थित सब दर्शकों का संशय कि श्री राम किशोरावस्था के कारण कैसे सफल होंगे , अभिमानी राजाओं का यह विचार की जब वे असफल रहे तो श्री रामजी उनसे अवस्था में छोटे हैं कैसे सफल हो सकते हैं, श्री परशुराम जी के गर्व की गुरूता, देवताओं और श्रेष्ठ मुनियों का भय, जानकी जी का सोच, राजा जनक का पश्चाताप और रानियों का हृदय दाहक दुःख धनुष-रूपी जहाज के यात्री थे । ऊपर की चौपाई में कहा गया है कि यह सब यात्री समुद्र के पार जाना चाहते हैं, परन्तु उन्हें कोई

केवट नहीं मिल रहा है। रूपक को समाप्त करने के लिए इस सोरठे में कहा गया है कि जहाज़ के टूटने से सब यात्री डूब गए। अर्थात् सिव जी का धनुष कठोरता के कारण सब पर अपना प्रभाव डाले हुए था। वह सारा प्रभाव ही धनुष के टूटते ही डूब गया अर्थात् जाता रहा। अब उन सब को अपनी अज्ञानता और मोह वश भूल का पता स्वयं ही चल गया जिसके कारण उनमें जमीं हुई दुराशाएं एवं भय तथा पश्चाताप, अभिमान आदि सब लुप्त हो गये। एक ही क्रिया का सम्बन्ध अनेक पदार्थों से दिखाती हुई यह 'तुल्ययोगिता' बड़ी ही सटीक बैठी है।

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥
रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुषभंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

भावार्थ–प्रभु ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर डाल दिये। यह देखकर सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्र रूपी पवित्र समुद्र में, प्रेम रूपी अथाह जल भरा है। रामरूपी पूर्णचन्द्र को देखकर पुलकावली रूपी भारी लहरें बढ़ने लगीं। आकाश में बड़े ज़ोर से नगाड़े बजने लगे और देवांगनाये गान करके नाचने लगीं। ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनिश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं और आशीर्वाद दे रहे हैं। वे रंग विरंगे फूल और मालायें बरसा रहे हैं। किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं। सारे ब्रह्मांण्ड में जय जयकार की ध्वनि छा गयी, जिसमें धनुष टूटने की ध्वनि जान ही नहीं पड़ती थी। जहाँ तहाँ स्त्री पुरूष प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि श्री रामचन्द्र जी ने शिव जी के भारी धनुष को तोड़ डाला।

दो०— बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥२६२॥

भावार्थ–धीर बुद्धिवाले भाट, मागध और सूत लोग विरूदावली (कीर्ति)का बरवान कर रहे हैं। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं।

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए॥

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी । सूखत धान परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई । पैरत थकें थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटे । जैसें दिवस दीप छबि छूटे ॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती । जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥
रामहि लखनु बिलोकत कैसें । ससिहि चकोर किसोरकु जैसें ॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा । सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा ॥

भावार्थ—झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकार के सुन्दर बाजे बज रहे हैं । जहाँ तहाँ युवतियाँ मंगल गीत गा रही हैं । सखियों सहित रानी अत्यन्त हर्षित हुई । मानो सूखते हुए धान पर पानी पड़ गया हो । जनक जी ने सोच त्याग कर सुख प्राप्त किया ;मानो तैरते-तैरते थके हुए पुरूष ने थाह पा ली । धनुष टूट जाने पर राजा लोग ऐसे श्रीहीन (निस्तेज) हो गये जैसे दिन में दीपक की शोभा जाती रहती है। सीता जी का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाये, जैसे चातकी स्वाती का जल पा गई हो। श्री रामजी को लक्ष्मण जी किस प्रकार देख रहे हैं जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो । तब शतानन्द जी ने आज्ञा दी और सीता जी ने श्री रामजी के पास गमन किया ।

दो०— संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार ।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार ॥२६३॥

भावार्थ—साथ में सुंदर सखियाँ मंगलाचार के गीत गा रही हैं । सीता जी बाल हंसिनी की चाल से चलीं, उनके अंगों में अपार शोभा है ।

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें । छबिगन मध्य महाछबि जैसें ॥
कर सरोज जयमाल सुहाई । बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई ॥
तन सकोचु मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू ॥
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी ॥
चतुर सखीं लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि सभीत देत जयमाला ॥
गावहि छबि अवलोकि सहेली । सियँ जयमाल राम उर मेली ॥

भावार्थ—सखियों के मध्य में सीता जी कैसी शोभित हो रही है, जेसे बहुत सी छबियों के बीच महाछबि हो । कर कमल में सुन्दर जयमाला है, जिसमें विश्वविजय की शोभा छायी हुई है । सीता जी के शरीर में संकोच है, पर मन में परम उत्साह है । उनका यह गुप्त प्रेम

किसी को जान नही पड़ रहा है। समीप जाकर, राम जी की शोभा देखकर राजकुमारी सीता जी चित्र में लिखी सी रह गयीं। चतुर सखी ने यह दशा देखकर समझाकर कहा–'सुहावनी जयमाला पहनाओ'। यह सुनकर सीता जी ने दोने हाथों से माला उठायी, पर प्रेम के विवश होने से पहनायी नहीं जाती। उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो डंडियों सहित दो कमल चन्द्रमा को डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छवि को देखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीता जी ने राम जी के गले में जयमाला पहना दी।

दो०– रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन।।२६४।।

भावार्थ–श्री रघुनाथ जी के हृदय पर जयमाआ देखकर देवता फूल बरसाने लगे। समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गये मानो सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह सिकुड़ गया हो।

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे।।
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा।।
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार-बार कुसुमांजलि छूटीं।।
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं।।
महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा।।
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी।।
सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी।।
सखीं कहहिं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता।।

भावार्थ–नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। दुष्ट लोग उदास हो गये और सब सज्जन लोग प्रसन्न हो गये। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं। देवताओं की स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं। बार-बार हाथों से पुष्पों की अंजलियाँ छूट रही हैं। जहाँ-तहाँ ब्राह्मण वेद ध्वनि कर रहे हैं और भाट विरूदावली (कुल कीर्ति)बखान रहे हैं। पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकों में यश फैल गया कि श्री रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ दिया और सीता को वरण कर लिया। नगर के नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत)को भुलाकर (सामर्थ्य से बहुत अधिक)निछावर कर रहे हैं। श्री सीता-रामजी की जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो छवि और श्रृंगार एकत्र हो गये हों। सखियाँ कह रही हैं–'सीते-स्वामी के चरण छुओ,' किन्तु सीता जी अत्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं।

दो०– गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि।।२६५।।

दो०— गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि ।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ।।२६५।।

भावार्थ—गौतम जी की स्त्री अहल्या की गति* का स्मरण करके सीता जी श्री रामचन्द्र जी के चरणों को हाथों से स्पर्श नहीं कर रही हैं । सीता जी की अलौकिक प्रीति जानकर रघुवंश मणि श्री रामचन्द्र जी मन में हँसे ।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ।।
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ।।
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ।।
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई । जीवत हमहि कुअँरि को बरई ।।
जौं बिदेहु कछु करै सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई ।।
साधु भूप बोले सुनि बानी । राजसमाजहि लाज लजानी ।।
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई । नाक पिनाकहि संग सिधाई ।।
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई । असि बुधि तौ बिधि मुहँ मसि लाई ।।

भावार्थ—उस समय सीता जी को देखकर कुछ राजा ललचा उठे । वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा मन में बहुत तमतमाये । वे अभागे कवच पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे । कोई कहते हैं, सीता को छीन लो, और दोनो राजकुमारों को पकड़कर बाँध लो । धनुष तोड़ने से ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी)। हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है। यदि जनक कुछ सहायता करें, तो युद्ध में दोनों भाइयों सहित उन्हें भी जीत लो। ये वचन सुनकर साधु राजा बोले- ''इस (निर्लज्ज) राज समाज को देखकर तो लाज भी लजा गयी। अरे ! तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक (प्रतिष्ठा)तो धनुष के साथ ही चली गयी । वही वीरता अब कहाँ से मिली है ! ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुखों पर कालिख लगा दी ।

दो०— देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु ।
लखन दोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु ।।२६६।।

भावार्थ—ईर्ष्या, घमंड और क्रोध छोड़कर नेत्र भरकर श्री रामजी की छवि देख लो । लक्ष्मण के क्रोध को प्रबल अग्नि जानकर उसमें पतंगे मत बनो ।

बैनतेय बलि जिमि चह कागू । जिमि ससु चहै नाग अरि भागू ।।
जिमि चह कुसल अकारन कोही । सब संपदा चहै सिवद्रोही ।।

---

* देखिए अन्तर्कथा, पृष्ठ ५४

लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥
कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहँ रानी॥
रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥
रानिन्ह सहित सोचबस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥

भावार्थ—जैसे गरूड़ का भोज कौआ चाहे, सिंह का भोज खरगोश चाहे ; बिना कारण ही क्रोध करने वाले अपनी कुशल चाहें, शिवजी का विरोध करने वाला सब प्रकार की सम्पत्ति चाह, लोभी-लालची सुन्दर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता चाहे, तो क्या पा सकता है ? और जैसे श्री हरि के चरणों से विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे राजाओं ! सीता के लिये तुम्हारा लालच वैसे ही व्यर्थ है।" कोलाहल सुनकर सीता जी सशंकित हो गईं। तब सखियाँ उन्हे वहाँ ले गई जहाँ रानी (सीता जी की माता)थीं। श्री रामचन्द्र जी मन में सीता जी के प्रेम का बखान करते हुये स्वाभाविक चाल से गुरू जी के पास चले। रानियों सहित सीता जी (दुष्ट राजाओं के दुर्वचन सुनकर)सोच के वश में हैं कि न जाने विधाता अब क्या करने वाले हैं। राजाओं के वचन सुनकर लक्ष्मण जी इधर-उधर ताकते हैं, किन्तु श्री रामचन्द्र जी के डर से कुछ बोल नहीं पाते।

दो०— अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥२६७॥

भावार्थ—उनके नेत्र लाल और भौहें टेढ़ी हो गयीं, और वे क्रोध से राजाओं की ओर देखने लगे, मानों मतवाले हाथियों का झुंड देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ गया हो।

खरभरु देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥

भावार्थ–खलबली देखकर जनकपुर की स्त्रियाँ व्याकुल हो गयीं। और सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देने लगीं। उस अवसर पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगकुल रूपी कमल के सूर्य परशुराम जी आये। परनशुराम को देखकर ही सारे राजा डर गए। जैसे बाज को आता देखकर बटेर छिप जाते हैं। परशुराम के गोरे चिट्टे शरीर पर लगी हुई भस्म बहुत सुन्दर लग रही थी और उनके मस्तक पर त्रिपुण्ड का तिलक था। उनके सिर पर जटायें थीं। उनका चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख, क्रोध के मारे कुछ लाल हो गया था (तमतमा उठा था)। भौंहे टेढ़ी और आँखें क्रोध से लाल हैं। सहज ही देखते हैं तो भी ऐसा जान पड़ता है, मानों क्रोध कर रहे हैं। उनके कन्धे, वक्षस्थल और भुजा वृषभ के समान विशाल हैं। उनके कन्धे पर सुन्दर जनेऊ, गले में रूद्राक्ष, और पीठ पर मृगछाला पड़ी हुई थी। वे कटि में मुनिवस्त्र लपेटे दो-दो तुनीर बांधे, हाथ में धनुष बाण लिये और कन्धे पर (फरसा) कुठार टिकाये हुए हैं।

पात्र परिचय–परशुराम विष्णु के एक अवतार माने जाते हैं। ये जमदग्नि ऋषि के पुत्र थे और इनका नाम था राम। महादेव से परशु प्राप्त करने के कारण इनको परशुराम भी कहते हैं। एक समय जामदग्न्य की माता रेणुका स्नान करने गयी थी। वहाँ उन्होंने मृत्तिकावत् के राजा चित्ररथ को स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करते देखा। उसे देख रेणुका का भी मन विचलित हुआ। कामक्रीड़ा के अन्त में रेणुका अपने आश्रम में गयीं। रेणुका को देखते ही जमदग्नि ने समझ लिया और अपने पुत्रों को क्रमशः उसका सिरच्छेदन करने के लिए कहा। उनके चार पुत्रों ने उनका कहना अस्वीकार किया। तब क्रुद्ध होकर जमदग्नि ने पुत्रों को शाप दिया। उनके शाप से पुत्र अचेतन हो गये। पंचम पुत्र राम उस समय आश्रम में नहीं थे। थोड़ी देर बाद वे आये और पिता की आज्ञा से उन्होंने माता का सिर काट दिया। जमदग्नि का क्रोध दूर हो गया। उन्होंने अपने पुत्र से वर माँगने को कहा। परशुराम ने चार वर माँगे –

१. मेरी माता जीवित हो जाए, और उनको अपना वध किया जाना भूल जाये।

२. युद्ध में कोई मेरा सामना न कर सके।

३. बहुत दिनों तक मैं जीऊँ।

४. मेरे भाई पुनः जी उठें और अपने-अपने कार्य में लग जायें।

पिता ने प्रसन्न होकर ये चारों वर दे दिये।

एक समय हैहयराज कार्तवीर्य ने परशुराम की अनुपस्थिति के समय जमदग्नि को मार डाला। परशुराम ने घर आकर माता से पितृवध का सारा वृतान्त सुना और उसी समय हैहय देश में जाकर उन्होंने कार्तवीर्य को मार डाला तथा होम की धेनु का उद्धार किया

कार्तवीर्य का वध करके ही वह तृप्त नहीं हुए, पितृवध का बदला चुकाने के लिए उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया। उन्होंने क्षत्रियों के रूधिर से कुरुक्षेत्र के पास के समंतपंचक के पाँच तालाबों को भर दिया था और उन्हीं तालाबों में पितृ तर्पण करके महर्षि ऋचीक का दर्शन पाया था। महर्षि ऋचीक ने उनसे क्षत्रियों को न मारने के लिए कहा। तब जामदग्न्य कश्यप को पृथ्वी दान करके स्वयं महेन्द्र पर्वत पर जाकर रहने लगे। समुद्र को हटाकर परशुराम ने महेन्द्र पर्वत पर अपने रहने के लिए स्थान बनाया था।

परशुराम ने गंधमादन पर्वत पर तपस्या करके महादेव को प्रसन्न किया था और उनसे तेजोमय परशु पाया था।

तुलसीदास ने परशुराम का परिचय "भृगुलुक कमल पतंगा" (भृगुकुल—रूपी कमल के सूर्य)कहकर दिया है। भृगु परशुराम के वंश के आदि पुरुष थे। प्राचीनकाल में रुद्र ने वारुणी मूर्ति धारण करके एक यज्ञ का अनुष्ठान करा। उस यज्ञ में देवपत्नी और देवकन्यागण उपस्थित हुई थीं। उस समय ब्रह्मा दीक्षित होकर यज्ञाग्नि में आहुति दे रहे थे। देवकन्याओं को देखकर ब्रह्मा कामातुर हुए और उनका रेतःपात हुआ। अनन्तर ब्रह्मा ने अपनी किरणों से उस रेतस् को लेकर अग्नि में आहुति दी। आहुति देते ही अग्निशिखा के साथ भृगु, धूमयुक्त अंगिरा और निर्धूम अंगार से कवि की उत्पत्ति हुई। तीनों पुत्रों को अपनाने के लिये ब्रह्मा, महादेव और अग्नि में विवाद होने लगा। अन्ततः भृगु महादेव को, अंगिरा अग्नि को और कवि ब्रह्मा को मिले।

इस प्रकार महादेव परशुराम के कुल-देवता हुए। शिव-धनुष भंजन का नाद सुनकर परशुराम को बहुत क्रोध आया। इसी कारण वह तुरन्त जनकपुरी आ पहुँचे ताकि जिस दोषी ने शिवधनुष (जो जनक के पूर्वजों को देवताओं ने धरोहर दिया था)तोड़ा हो उसे दण्ड दें।

दो०— सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप॥२६८॥

भावार्थ—शान्त वेष है, परन्तु करनी बहुत कठोर है। स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीर रस ही मुनि का शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोग हैं वहाँ आ गया है।

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं । निज समाज लै गईं सयानीं ॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ॥
रामु लखनु दसरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन ॥

भावार्थ—परशुराम जी का भयानक रूप देखकर सब राजा भय से व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पिता सहित अपना नाम कह-कह कर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे। परशुराम जी हित समझ कर भी सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानों मेरी आयु पूरी हो गयी। फिर जनक जी ने आकर सिर नवाया और सीता जी को बुलाकर प्रणाम कराया। परशुराम जी ने सीता जी को आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुई और वे सयानी सखियाँ उनको अपनी मण्डली में ले गईं। फिर विश्वामित्र जी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को उनके चरण कमलों पर गिराया। विश्वामित्र जी ने कहा ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं। उनकी सुन्दर जोड़ी देखकर परशुराम जी ने आशीर्वाद दिया। कामदेव के भी मद को छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी के अपार रूप को देखकर उनके नेत्र थकित हो रहे।

दो०— बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूंछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर ।।२६९।।

भावार्थ—फिर सब देखकर, जानते हुए भी अनजान की तरह जनक जी से पूछते हैं कि कहो, यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है ?उनके शरीर में क्रोध व्याप्त हो गया।

समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखंड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ न त आजू । उलटऊँ महि जहँ लहि तव राजू ॥
अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं । कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछिताति सीय महतारी । बिधि अब सँवरी बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेष कलप सम बीता ॥

भावार्थ—जिस कारण सब राजा आये थे, राजा जनक ने वे सब समाचार कह सुनाये। जनक के बचन सुनकर परशुराम जी ने फिरकर दुसरी ओर देखा तो धनुष के टुकड़े पृथ्वी पर पड़े दिखायी दिये। अत्यन्त क्रोध में भरकर वे कठोर बचन बोले— "रे, मूर्ख जनक बता, धनुष किसने तोड़ा, उसे शीघ्र ही दिखा; नहीं तो अरे मूढ़ आज मै जहाँ तक तेरा राज्य है

वहां तक की पृथ्वी उलट दूँगा।" राजा को अत्यन्त डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते। यह देखकर कुटिल राजा मन में बड़े प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे। सब के हृदय में बड़ा भय है। सीता जी की माता मन में पछता रही हैं कि हाय विधाता ने अब बनी बनाई बात बिगाड़ दी। परशुराम जी का स्वभाव सुनकर सीता जी को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतने लगा।

दो०– सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु विषाद कछु बोले श्री रघुबीरु ।।२७०।।

भावार्थ–तब श्री रामचन्द्र जी लोगों को भयभीत और सीता जी को डरी हुई जानकर बोले। उनके हृदय में न कुछ हर्ष था न विषाद।

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा ।।
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ।।
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई ।।
सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ।।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा ।।
सुनि मुनि बचन लखन मुसकाने। बोले परसुधरहि अपमाने ।।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू ।।

भावार्थ–हे नाथ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आप का कोई एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रिसाकर बोले। सेवक वह जो सेवा का काम करे। शत्रु का काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिये। हे राम! सुनों जिसने शिवजी का धनुष तोड़ा है, वह सहसबाहू के समान मेरा शत्रु है। वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सभी राजा मारे जायेंगे। मुनि के वचन सुनकर लक्ष्मण जी मुसकराये और परशुराम जी का अपमान करते हुए बोले – "हे गोसाईं! लड़कपन में हमने बहुत सी धनुहियाँ तोड़ डालीं। किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर ममता किस कारण से है।" यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा-स्वरूप परशुराम जी कुपित होकर कहने लगे।

दो०– रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ।।२७१।।

भावार्थ– "अरे राजपुत्र! काल के वश होने से तुझे बोलने में कुछ भी होश नहीं है। सारे संसार में विख्यात शिवजी का यह धनुष क्या धनुही के समान है?"

लखन कहा हँसि हमरें जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ।।
का छति लाभु जून धनु तोरें । देखा राम नयन के भोरें ।।
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ।।
बोले चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ।।
बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानहि मोही ।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही ।।
भुजबल भूमिभूप बिनु कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ।।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा । परसु बिलोकु महीपकुमारा ।।

भावार्थ–लक्ष्मण जी ने हँस कर कहा–"हे देवता ! सुनिये हमारे जान में तो सभी धनुष एक से ही हैं । पुराने धनुष के तोड़ने से क्या हानि-लाभ । श्री रामचन्द्र जी ने इसे नवीन के धोके से देखा था । फिर वह तो छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथ जी का कोई दोष नहीं है । हे मुनि ! आप बिना ही कारण किस लिए क्रोध करते हैं ।" परशुरामजी अपने फरस की ओर देखकर बोले– "अरे दुष्ट ! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना । मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ । अरे मूर्ख ! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है ? मैं ब्रह्मचारी अत्यन्त क्रोधी हूँ । क्षत्रिय कुल का शत्रु तो विश्व भर में विख्यात हूँ । अपनी भुजाओं के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओं से रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणों को दे डाला । हे राजकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं को काटने वाले मेरे फरसे को देख ।

दो०– मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर ।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ।।२७२।।

भावार्थ–अरे राजा के बालक ! तू अपने माता-पिता को सोच के वश न कर । मेरा फरसा बड़ा भयानक है, यह गर्भों के बच्चों का भी नाश करने वाला है ।"

टिप्पणी–ऊपर कहा जा चुका है कि यद्यपि "मानस" में शांत रस प्रधान है फिर भी इसमें शेष आठ रस का भी पुट है । पृष्ठ १२४ पर श्रृंगार रस और पृष्ठ १३३ पर वीभत्स रस के उदाहरण दिये जा चुके हैं । ऊपर की चौपाई में रौद्र रस प्रधान है । परशुराम लक्ष्मण को सावधान करते हुए कहते हैं कि वह क्षत्रिय-कुल के द्रोही हैं । उन्होंने अपने फरसे से पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-हीन कर दिया और सहसबाहू की बाहों को काट डाला । उनका फरसा गर्भवती स्त्रियों के गर्भ का भी पात कर सकता है।

अन्तर्कथा–माहिष्मती पुरी का राजा अर्जुन था । उसके हजार हाथ थे । सहस्रबाहु अर्जुन एक समय शिकार करने के लिए जंगल में गया । वह घूमता-फिरता जमदग्नि ऋषि के आश्रम में पहुँचा । जमदग्नि ऋषि के पास कामधेनु गऊ थी । उससे जो सामग्री माँगो,

वही देती थी। जमदग्नि ने उसी गऊ के बल पर राजा को और उसकी सारी सेना को राजसी सामग्री से खिला-पिलाकर उसका सत्कार किया। यह देखकर सहस्त्रबाहु ने वह कामधेनु ऋषि से माँगी। ऋषि ने गऊ नहीं दी। तब वह ज़बरदस्ती गऊ खोलकर ले चला। सहस्त्रबाहु जब चला गया, तब परशुराम आये। राजा का अन्याय सुनकर शस्त्र लेकर वह दौड़ पड़े। पीछा करके उन्होंने राजा को ललकारा। घमासान लड़ाई हुई। परशुराम ने राजा को मार डाला। राजा के दस हज़ार पुत्र भय के मारे भाग गये।

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥
पुनि-पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

भावार्थ—लक्ष्मण जी हँसकर कोमल बाणी से बोले—"अहो, मुनीश्वर तो अपने को बड़ा भारी योद्धा समझते हैं। बार-बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं। यहाँ कोई कुम्हड़े की बतिया (छोटा कच्चा फल)नहीं है, जो तर्जनी (सब से आगे की ऊँगली)को देखते ही मर जाती है। कुठार और धनुषबाण देखकर ही मैंने कुछ अभिमान सहित कहा था। भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवित देखकर तो, जो कुछ आप कहते हैं उसे मैं क्रोध को रोककर सह लेता हूँ। देवता, ब्राह्मण, भगवान के भक्त और गौ, इन पर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखायी जाती। क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है, और इनसे हार जाने पर अपकीर्ति होती है। इसलिये आप मारें तो भी आपके पैर ही पड़ना चाहिये। आपका एक-एक वचन ही करोड़ों बज्रों के समान है। धनूष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण करते हैं।

लोकोक्ति—ऊपर की चौपी में एक बहुत प्रचलित लोकोक्ति है—

"इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।"

एक छुई-मुई का झाड़ होता है, जिसकी पत्तियाँ इतनी कोमल होती हैं कि यदि उनकी ओर हाथ की पहली उंगली दिखा दो तो वह कुम्हला कर सुकड़ जाती हैं। इसी प्रकार किम्वदन्ती है कि नई कोपल या फूल से बनते हुए छोटे कच्चे फल को यदि उंगली दिखा दी जाये तो वह सूख जाता है। इसी प्राकृतिक अनुभव को लेकर लक्ष्मण परशुराम को ललकारते हैं कि वह परशुराम की गीदड़ धमकी में आने वाले नहीं। वह इतने कोमल, कायर और

डरपोक नहीं है कि परशुराम की गर्जन, रौद्र-रूप, प्राचीन गौरव-गान या उनके फरसे से डर जायें।

दो०— जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गंभीर।।२७३।।

भावार्थ—इन्हें (धनुष-बाण और कुठार को) देखकर मैने कुछ अनुचित कहा हो, तो उसे हे महामुनि ! क्षमा कीजिये।" यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुराम जी क्रोध के साथ गम्भीर वाणी बोले।

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु।।
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।।
काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं।।
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा।।
लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा।।
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी।।
नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू।।
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।।

भावार्थ— "हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है, काल के वश होकर यह अपने कुल का घातक बन रहा है। यह सूर्यवंश रूपी पूर्ण चन्द्र का कलंक है। यह बिल्कुल उद्दण्ड, मूर्ख और निडर है। अभी क्षणभर में यह काल का ग्रास हो जायेगा। मैं पुकार कर कहे देता हूँ, फिर मुझे दोष नहीं है। यदि तुम इसे बचाना चाहते हो, तो इसे हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतला कर मना कर दो।" लक्ष्मण जी ने कहा— "हे मुनि! आपका सुयश आपके रहते दूसरा कौन वर्णन कर सकता है ? आपने अपने ही मुँह से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है। इतने पर भी सन्तोष न हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिए। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिये। आप वीरता का व्रत धारण करने वाले, धैर्यवान और क्षोभरहित हैं। गाली देते शोभा नहीं पाते।

दो०— सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु।।२७४।।

भावार्थ—शूरवीर तो युद्ध में करनी (शूरवीरता का कार्य) करते हैं, कहकर अपने को नहीं जनाते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं।

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा । बार बार मोहि लागि बोलावा ॥
सुनत लखन के बचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
अब जन देइ दोसु मोहि लोगू । कटुबादी बालकु बधजोगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा । अब यहु मरनिहार भा साँचा ॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू । बाल दोष गुन गनहिं न साधू ॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही । आगें अपराधी गुरुद्रोही ॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारें । केवल कौसिक सील तुम्हारें ॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें । गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें ॥

भावार्थ -- आप तो मानों काल को हाँक लगाकर बार-बार उसे मेरे लिए बुलाते हैं ''। लक्ष्मण जी के कठोर वचन सुनते ही परशुराम जी ने अपने भयानक फरसे को सुधार कर हाथ में ले लिया। (और बोले) ''अब लोग मुझे दोष न दें। यह कड़ुवा बोलने वाला बालक मारे जाने के ही योग्य है। इसे बालक देखकर मैनें बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरने को ही हो गया है।'' विश्वामित्र जी ने कहा-- ''अपराध क्षमा कीजिये। बालकों के दोष और गुण को साधु लोग नहीं गिनते।'' (परशुरामजी बोले) ''तीखी धार का कुठार, मैं दया रहित और क्रोधी, और यह गुरू द्रोही अपराधी मेरे सामने उत्तर दे रहा है ! इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, सो हे विश्वामित्र ! केवल तुम्हारे शील (प्रेम से) नहीं तो इसे इस कुठार से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरू से उऋण हो जाता।''

दो० -- गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ ॥२७५॥

भावार्थ --विश्वामित्र जी ने हृदय में हँसकर कहा-''मुनि को हरा-ही-हरा सूझ रहा है (अर्थात सर्वत्र विजयी होने के कारण ये श्रीराम, लक्ष्मण जी को भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे हैं)। किन्तु यह लौहमयी (केवल फौलाद की बनी हुई) खड्ग है, ऊख की (रस की) खाँड़ नहीं है (जो मुँह में लेते ही गल जाय)। खेद है मुनि अब भी बेसमझ बने हुए हैं (इनके प्रभाव को नहीं समझ रहे हैं)''।

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा । को नहिं जान बिदित संसारा ॥
माता पितहिं उरिन भय नीकें । गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें ॥
सो जनु हमरेहि माथे काढा । दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढा ॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली । तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥

मुनि कटु बचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही । बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही ॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े । द्विज देवता घरहिं के बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे ॥

भावार्थ — लक्ष्मण जी ने कहा-"हे मुनि ! आपके शील को कौन नहीं जानता ? यह संसार भर में प्रसिद्ध है । आप माता-पिता से तो अच्छी तरह उऋृण हो गये ! अब गुरू का ऋृण रहा, जिसका जी में बड़ा सोच लगा है । यह मानो हमारे ही माथे काढ़ा था ! बहुत दिन बीते, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा । अब किसी हिसाब करने वाले को बुला लाइये, तो मैं तुरन्त थैली खोल कर दे दूँ ।" लक्ष्मण जी के कडुए बचन सुनकर परशुराम जी ने कुठार सम्हाला । सारी सभा हाय! हाय ! करके पुकार उठी । (लक्ष्मण जी ने कहा)—"है भृगुश्रेष्ठ ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं! पर हे राजाओं के शत्रु ! मैं ब्राम्हण समझ कर बचा रहा हूँ (तरह दे रहा हूँ)। आपको कभी रणधीर बलवान वीर नहीं मिले । हे ब्राह्मण देवता ! आप घर ही में बड़े हैं ।" यह सुनकर 'अनुचित है', कहकर सब लोग पुकार उठे । तब रघुनाथ जी ने इशारे से लक्ष्मण जी को रोक दिया ।

दो०— लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु ।।२७६।।

भावार्थ— लक्ष्मण जी के उत्तर से, जो आहुति के समान थे, परशुराम जी के क्रोध रूपी अग्नी की बढ़त देखकर, रघुकुल के सूर्य श्री रामचन्द्र ज्री जल के समान (शान्ति करने वाले)बचन बोले।

नाथ करहु बालक पर छोहू । सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना ॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लखनु बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं । कालकूटमुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही । नीचु मीचु सम देख न मोही ॥

भावार्थ – "हे नाथ ! बालक पर कृपा कीजिये । इस सीधे और दुधमुंहे बच्चे पर क्रोध न कीजिये । यदि यह प्रभु का (आपका) कुछ भी प्रताप जानता, तो क्या यह बेसमझ आपकी बराबरी करता ? बालक यदि कुछ चंचलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मन में आनन्द से भर जाते हैं । अतः इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिये । आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और ज्ञानी मुनि हैं ।" श्री रामचन्द्र जी के बचन सुनकर वे कुछ ठंडे पड़े । इतने में लक्ष्मण जी कुछ कह कर फिर मुसकरा दिये । उनको हँसते देखकर परशुराम जी के नख से शिखा तक सारे शरीर में क्रोध छा गया । उन्होंने कहा- " हे राम ! तेरा भाई बड़ा पापी है । यह शरीर से गोरा, पर हृदय का बड़ा काला है । यह विषमुख है, दुधमुहा नहीं । स्वभाव से ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता (तेरे जैसा शीलवान नहीं है)। यह नीच मुझे काल के समान नहीं देखता हैं ।"

दो०- लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल ।।२७७।।

भावार्थ – लक्ष्मण जी ने हंस कर कहा- "हे मुनि ! सुनिये, क्रोध पाप का मूल है, जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं, और विश्वभर के प्रतिकूल चलते (सब का अहित करते) हैं ।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोपु करिअ अब दाया ।।
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहिं पाय पिराने ।।
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई ।।
बोलत लखनहिं जनकु डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ।।
थर थर काँपहिं पुर नर नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ।।
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी । रिस तन जरइ होइ बल हानी ।।
बोले रामहिं देइ निहोरा । बचउँ बिचारि बंधु लघु तोरा ।।
मनु मलीन तनु सुंदर कैसें । बिष रस भरा कनक घटु जैसें ।।

भावार्थ – हे मुनिराज मैं आपका दास हूँ । क्रोध त्याग कर दया कीजिये । टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से जुड़ नहीं जायगा । खड़े खड़े पैर दुखने लगे होगें, बैठ जाइये । यदि धनुष अत्यन्त ही प्रिय है तो कोई उपाय किया जाय और किसी बड़े गुणी (कारीगर)को बुलाकर जुड़वा दिया जाय ।" लक्ष्मण जी के बोलने से जनक जी डर जाते हैं और कहते हैं- 'बस, चुप रहिये अनुचित बोलना अच्छा नहीं ।' जनकपुर के स्त्री-पुरुष थर-थर काँप रहे हैं और मन ही मन कह रहे हैं कि छोटा कुमार बड़ा ही खोटा है । लक्ष्मण जी की निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुराम जी का शरीर क्रोध से जला जा रहा है, और उनके बल की हानि हो

रही है (उनका बल घट रहा है)। तब श्री राम जी पर एहसान जनाकर परशुराम बोले - "तेरा छोटा भाई समझ कर मैं इसे बचा रहा हूँ। यह मन का मैला और शरीर का कैसा सुन्दर है, जैसे विष के रस से भरा हुआ सोने का घड़ा है।"

टिप्पणी— २७० दोहे के नीचे की चौपाई से लेकर २७७ दोहे के नीचे की चौपाई तक लक्ष्मण-परशुराम संवाद चल रहा है। दोहा २७६ में कहा गया है कि परशुराम की क्रोधाग्नि को और प्रज्जवलित करने के लिए, लक्ष्मण के प्रत्युत्तर आहुति का काम कर रहे हैं। लक्ष्मण परशुराम के ऊपर कटाक्ष पर कटाक्ष करते चले जा रहे हैं। दोहा २७५ और २७७ के नीचे की चौपाइयों में तुलसीदास ने हास्य-रस का अच्छा पुट दिया है। दोहा २७५ के नीचे की चौपाई में लक्ष्मण परशुराम से कहते हैं "आप ने अभी तक गुरू-ऋण नहीं चुकाया। उसका बहुत ब्याज बढ़ गया होगा। इसका हिसाब करने वाले को बुलाइए, ताकि मैं तुरन्त थैली खोलकर रकम अदा कर दूँ।" और फिर दोहा २७७ के नाचे चौपाई में कहते हैं : "आप बड़ी देर से खड़े खड़ें चीख रहे हैं। बैठ जाइये, पैर थक गए होंगे। टूटा धनुष अब जुड़ तो सकता नहीं। फिर भी यदि आपको वह धनुष बहुत प्रिय है, तो उसको जोड़ने के लिए कहिए तो कोई बढ़ई बुलाया जाये।"

दो०- सुनि लछिमन बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ।।२७८।।

भावार्थ- यह सुनकर लक्ष्मण जी फिर हँसे। तब श्री रामचन्द्र जी ने तिरछी नजर से उनकी ओर देखा, जिससे लक्ष्मण जी सकुचाकर विपरीत बोलना छोड़कर गुरू जी के पास चले गये।

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिअ नहिं काना ।।
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ ।।
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ।।
कृपा कोपु बधु बँधब गोसाई। मो पर करिअ दास की नाई ।।
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई ।।
कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तब चितव अनैसें ।।
एहि कें कंठ कुठारु न दीन्हा। तो मैं काह कोपु करि कीन्हा ।।

भावार्थ- परशुराम जी से श्री रामचन्द्र जी दोनो हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय के साथ कोमल और शीतल वाणी बोले – "हे नाथ ! सुनिये, आप तो स्वभाव से ही सुजान हैं। आप बालक के वचन पर कान न दीजिए। उसे सुना-अनसुना कर दीजिए। बरैं और बालक का एक स्वभाव है, संत जन इन्हें कभी दोष नहीं लगाते। फिर उसने (लक्ष्मण ने) तो कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा है। हे नाथ ! आपका अपराधी तो मैं हूँ। अतः हे स्वामी ! कृपा, क्रोध, वध और बन्धन, जो कुछ करना हो, दास की तरह (अर्थात दास समझ) मुझ पर कीजिए। जिस प्रकार से शीघ्र आपका क्रोध दूर हो, हे मुनिराज, मैं वही उपाय करूँ।" मुनि ने कहा– "हे राम क्रोध कैसे जाये, अब भी तेरा छोटा भाई टेढ़ा ही ताक रहा है। इसकी गरदन पर मैनें कुठार न चलाया, तो क्रोध करके किया ही क्या ?

लोकोक्ति- ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति हैः

'बररै बालक एक सुभाऊ'

भिड़ (बर) और बालक का एक स्भाव है। इनको कोई छेड़ेगा तो यह एकदम उपद्रव मचा देंगे। बर्र तो डंक मारती है और बालक अपनी अवस्था का ध्यान न रखकर उल्टा सीधा बोलने लगता है, फिर उसकी चाहे जितनी हानि हो वह उसकी चिन्ता तक नहीं करता। इसलिए संत लोग इनके स्वभाव के कारण बर्र और बालकों को दोश नहीं लगाते। क्योंकि वे जानते हैं कि ये जो कुछ करते हैं अपने स्वभाव के ही कारण, अपनी सीमित समझ के कारण।

इससे मिलता-जुलता एक और मुहावरा है-'भिड़ के छत्ते में हाथ डालना।' Putting your hand in hornet's nest — अकारण आपत्ति बुला लेना या उसमें फँस जाना।

दो०- गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जिअत बैरी भूपकिसोर ।।२७९।।

भावार्थ- मेरे जिस कुठार की घोर करनी सुनकर राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर पड़ते हैं, उसी फरसे के रहते मैं इस शत्रु राजपुत्र को जीवित देख रहा हूँ।

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती ।।
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ।।
आजु दया दुखु दुसह सुहावा। मुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा ।।
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला ।।
जौं पै कृपाँ जरिहिं मुनि गाता। क्रोध भएँ तनु राख बिधाता ।।
देखु जनक हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ।।
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा ।।

भावार्थ- हाथ चलता नहीं, क्रोध से छाती जली जाती है ? (हाय) राजाओं का घातक यह कुठार भी कुण्ठित हो गया। विधाता विपरीत हो गया, इसी से मेरा स्वभाव बदल गया, नहीं तो भला मेरे हृदय में किसी समय भी कृपा कैसी ? आज दया मुझे यह दुःसह दुःख सहा रही है।" यह सुनकर लक्ष्मण जी ने मुस्कराकर सिर नवाया और कहा– "आपकी कृपा रूपी वायु भी आपकी मूर्ति के अनुकूल ही है, बचन बोलते हैं मानो फूल झड़ रहे हैं। हे मुनि ! यदि कृपा करने से आपका शरीर जला जाता है, तो क्रोध होने पर तो शरीर की रक्षा विधाता ही करेंगे।" परशुराम जी ने कहा– "हे जनक ! देख, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुरी में घर (निवास) करना चाहता है। इसको शीघ्र ही आँखों की ओट क्यों नहीं करते ? यह राजपुत्र देखने में छोटा है, पर है बड़ा खोटा !" लक्ष्मण जी ने हँसकर मन ही मन कहा "आँख मूँद लेने पर कहीं कोई नहीं है।"

दो०- परसुराम तब राम प्रति बोले उर अति क्रोध।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोध ॥२८०॥

भावार्थ- तब परशुराम जी हृदय में अत्यन्त क्रोध भरकर श्री राम जी से बोले "अरे शठ ! शिवजी का धनुष तोड़कर उल्टा हमी को ज्ञान सिखाता है।

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें ॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा ॥
छलु तजि करहिं समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही ॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ ॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥

भावार्थ – तेरा यह भाई तेरी ही सम्मति से कटु बचन बोलता है। और तू छल से हाथ जोड़कर विनय करता है। या तो युद्ध में मेरा सन्तोष कर, नहीं तो राम कहलाना छोड़ दे। अरे शिव द्रोही ! छल त्याग कर मुझ से युद्ध कर। नहीं तो भाई सहित तुझे मार डालूँगा।" इस प्रकार कुठार उठाये परशुराम जी बक रहे हैं और श्रीरामचन्द्र जी सिर झुकाये मन ही मन मुस्करा रहे हैं। (श्री राम जी ने मन ही मन कहा) "गुनाह (दोष) तो लक्ष्मण का और क्रोध मुझ पर करते हो। कहीं कहीं सीधेपन में भी बड़ा दोष होता है। टेढ़ा जानकर सब लोग किसी की भी वन्दना करते हैं। टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता।" श्री राम चन्द्रजी ने (प्रकट) कहा "हे मुनीश्वर क्रोध छोड़िये। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आगे है। जिस प्रकार आपका क्रोध जाय, हे स्वामी ! वही कीजिये। मुझे आपना अनुचर (दास) जानिये।

दो०- प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु ।।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहुं नहीं दोसु ।।२८१।।

भावार्थ- स्वामी और सेवक में युद्ध कैसा ? हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! क्रोध का त्याग कीजिए। आपका (वीरों का सा) वेष देखकर ही बालक ने कुछ कह डाला था, वास्तव में उसका भी कोई दोष नहीं है ।

देखि कुठार बान धनु धारी । भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ।।
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा । बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा ।।
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं । पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं ।।
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ।।
हमहिं तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा । कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ।।
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तोहारा ।।
देव एकु गुनु धनुष हमारे । नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ।।
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु बिप्र अपराध हमारे ।।

भावार्थ-आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किये देखकर और वीर समझकर बालक को क्रोध आ गया । यह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं । अपने वंश (रघुवंश)के स्वभाव के अनुसार उसने उत्तर दिया । यदि आप मुनि की तरह आते तो, हे स्वामी ! बालक आपके चरणों की धूलि सिर पर रखता । अनजाने की भूल को क्षमा कर दीजिये । ब्राह्मणों के हृदय में बहुत अधिक दया होनी चाहिये । हे नाथ ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी ? कहिये न, कहाँ चरण, कहाँ मस्तक । कहाँ मेरा राम मात्र छोटा सा नाम, और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा नाम । हे देव ! हमारे तो एक ही गुण धनुष है और आपके पास पवित्र (शम,दम, तप, शोच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, ये) नौ गुण हैं । हम तो सब प्रकार से आप से हारे हैं । हे विप्र ! हमारे अपराधों को क्षमा कीजिये ।''

दो०- बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम ।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधु सम बाम ।।२८२।।

भावार्थ- श्री रामचन्द्र जी ने परशुराम जी को बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा । तब भृगुपति (परशुराम जी)कुपित होकर अथवा क्रोध की हँसी हँस कर बोले ''तू भी अपने भाई के समान टेढ़ा है ।

निपटहिं द्विज करि जानहिं मोही । मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही ।।
चाप स्रुवा सर आहुति जानू । कोपु मोर अति घोर कृसानू ।।

समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

भावार्थ- तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है ? मैं जैसा हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुष को स्रवा, बाण को आहुति और मेरे को भयंकर अग्नि जान। चतुरंगिणी सेना सुन्दर समिधाएं (यज्ञ में जलाई जाने वाली लकड़ियां)हैं। बड़े बड़े राजा उसमें आकर बलि के पशु हुए हैं, जिनको मैंनें इसी फरसे से काट कर बलि दिया है। ऐसे करोड़ो जपयुक्त रणयज्ञ मैनें किये हैं। (अर्थात जैसे मन्त्रोच्चार पूर्वक'स्वाहा' शब्द के साथ आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैनें पुकार पुकार कर राजाओं की बलि दी है)। मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं है, इसी से तू ब्राह्मण के धोखें से मेरा निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड़ डाला। इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहंकार है मानो संसार को जीतकर खड़ा है।'' श्रीरामचन्द्र जी ने कहा ''हे मुनि विचार कर बोलिये। आपका क्रोध बहुत बड़ा है और मेरी भूल बहुत छोटी है। पुराना धनुष तो छूते ही टूट गया। मैं किस कारण अभिमान करूँ।

दो०- जौ हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥२८३॥

भावार्थ- हे भृगुनाथ ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कह कर निरादर करते हैं तो यह सत्य सुनिये, फिर संसार में ऐसा कौन योद्धा है जिसे हम डर के मारे मस्तक नवायें।

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहिं पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पाँवर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मतिके॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

भावार्थ- देवता, दैत्य, राजा या और बहुत से योद्धा, वे चाहे बल में हमारे बराबर हैं, चाहे अधिक बलवान हों यदि रण में हमें कोई भी ललकारे तो उससे हम सुख पूर्वक लड़ेंगे, चाहे काल ही क्यों न हो। क्षत्रिय का शरीर धर कर जो युद्ध में डर गया, उस नीच ने अपने

कुल पर कलंक लगा दिया। मैं स्वभाव से ही कहता हूं, कुल की प्रशंसा करके नहीं, कि रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते। ब्राह्मण वंश की ऐसी ही प्रभुता (महिमा) है कि जो आपसे डरता है वह सबसे निर्भय हो जाता है।'' श्रीरामचन्द्रजी के कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजी की बुद्धि के परदे खुल गये। परशुरामजी ने कहा-''हे राम, हे लक्ष्मीपति! धनुष को हाथ में (अथवा लक्ष्मीपति विष्णु का धनुष) लीजिए और इसे खींचिये, जिससे मेरा संदेह मिट जाए।'' परशुरामजी धनुष देने लगे, तब वह आप ही चला गया। तब परशुरामजी के मन में बड़ा आश्चर्य (या खेद) हुआ।

दो०- जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥२८४॥

भावार्थ- तब उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी का प्रभाव जाना। उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। वे हाथ जोड़कर वचन बोले। प्रेम उनके हृदय में समाता न था।

जय रघुबंस बनजबन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥
बिनय सील करुना गुन सागर। जयति बचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहिं पराने॥

भावार्थ- ''हे रघुकुल रूपी कमलवन के सूर्य, हे राक्षसों के कुलरूपी घने जंगल को जलाने वाली अग्नि! आपकी जय हो। हे देवता, ब्राह्मण और गौ का हित करने वाले! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध, और भ्रम को हरने वाले! आपकी जय हो। हे विनयशील, कृपा आदि गुणों के समुद्र और वचनों की रचना में अत्यन्त चतुर! आपकी जय हो। हे सेवकों को सुख देने वाले, सब अंगों से सुन्दर और शरीर में करोड़ों कामदेवों की छवि धारण करने वाले! आपकी जय हो। मैं एक मुख से आपकी क्या प्रशंसा करूं। हे महादेव जी के मनरूपी मानसरोवर के राजहंस! आपकी जय हो। मैनें अनजाने में आपको बहुत से अनुचित वचन कहे, हे क्षमा के मन्दिर दोनों भाई! मुझे क्षमा करो। हे रघुकुल के पताका स्वरूप श्री रामचन्द्रजी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो।'' ऐसा कहकर परशुरामजी तप के लिए वन को चले गये! (यह देखकर) दुष्ट राजा लोग बिना ही कारण के (मनोकल्पित) डर से (रामचन्द्रजी से तो परशुरामजी भी हार गये, हमने इनका अपमान किया था। अब कहीं वे उसका बदला न ले डाले, इस व्यर्थ के डर से) डर गये। वे कायर चुपके से जहाँ तहाँ भाग गये।

दो०- देवन्ह दीन्हीं दुंदुभीं प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल ।।२८५।।

भावार्थ- देवताओं ने नगाड़े बजाये । प्रभु के ऊपर फूल बरसाने लगे । जनक पुर के स्त्री पुरुष सब हर्षित हो गये । उनका मोहमय (अज्ञान से उत्पन्न)शूल मिट गया ।

अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिं मनोहर मंगल साजे ।
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं । करहिं गान कल कोकिल बयनीं ।।
सुखु बिदेह कर बरनि न जाई । जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई ।।
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी । जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी ।।
जनक कीन्ह कौसिकहिं प्रनामा । प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ।।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं । अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं ।।
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना । रहा बिबाहु चाप आधीना ।।
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू । सुर नर नाग बिदित सब काहू ।।

भावार्थ- खूब जोर से बाजे बजने लगे । सभी ने मनोहर मंगल साज सजे । सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रों वाली तथा कोयल के समान मधुर बोलने वाली स्त्रियां झुंड-झुंड मिलकर सुन्दर गान करने लगीं । जनक जी के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो जन्म का दरिद्री धन का खजाना पा गया हो । सीताजी का भय जाता रहा, वे ऐसी सुखी हुई जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चकोर की कन्या सुखी होती है । जनक जी ने विश्वामित्र जी को प्रणाम किया और कहा- ''आप ही की कृपा से रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा है । दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया । हे स्वामी ! अब जो उचित हो सो कहिये '' । मुनि ने कहा- ''हे चतुर नरेश सुनो, यों तो विवाह धनुष के अधीन था, धनुष के टूटते ही विवाह हो गया । देवता, मनुष्य और नाग सब किसी को यह मालूम है ।

दो०- तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु ।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु ।।२८६।।

भावार्थ- तथापि तुम जाकर अपने कुल का जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुल के बूढ़ों और गुरुओं से पूछकर और वेदो में वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो ।

दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दसरथहि बोलाई ।।
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला । पठए दूत बोलि तेहि काला ।।
बहुरि महाजन सकल बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिर नाए ।।
हाट बाट मंदिर सुरबासा । नगरु सँवारहु चारिहुँ पासा ।।
हरषि चले निज निज गृह आए । पुनि परिचारक बोलि पठाए ।।
रचहु बिचित्र बितान बनाई । सिर धरि बचन चले सचु पाई ।।

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे बितान बिधि कुसल सुजाना ॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । बिरचे कनक कदलि के खंभा ॥

भावार्थ- जाकर अयोध्या को दूत भेजो, जो राजा दशरथ को बुला लावें । ''राजा ने प्रसन्न होकर कहा-'हे कृपालु !बहुत अच्छा' और उसी समय दूतों को बुलाकर भेज दिया । फिर सब महाजनों को बुलाया, और सबने आकर राजा को आदरपूर्वक सिर नवाया । (राजा ने कहा) ''बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगर को चारों ओर से सजाओ ।'' महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने अपने घर आए । फिर राजा ने नौकरों को बुला भेजा और उन्हें आज्ञा दी कि विचित्र मण्डप सजा कर तैयार करो । सुनकर वे सब राजा के वचन सिरपर धरकर और सुख पाकर चले । उन्होंने अनेक कारीगरों को बुला भेजा जो मण्डप बनाने में बड़े कुशल और चतुर थे । उन्होंने ब्रह्मा की बन्दना करके कार्य आरम्भ किया और (पहले)सोने के केले के खंभे बनाये ।

दो०- हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल ।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल ।।२८७।।

भावार्थ-हरी हरी मणियों (पन्नों)के पत्ते और फल बनाये, तथा पद्मराग मणियों (माणिक) के फूल बनाये । मण्डप की अति विचित्र रचना देखकर ब्रह्मा का मन भी भूल गया ।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे । सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे ॥
कनक कलित अहिबेलि बनाई । लखि नहिं परइ सपरन सुहाई ॥
तेहि के रचि पचि बंध बनाए । बिच बिच मुकुता दाम सुहाए ॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा । चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥
किए भृंग बहुरंग बिहंगा । गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा ॥
सुर प्रतिमा खंभन गीढ़ काढ़ीं । मंगल द्रब्य लिएँ सब ठाढ़ीं ॥
चौकें भाँति अनेक पुराईं । सिंधुर मनिमय सहज सुहाईं ॥

भावार्थ- **बाँस सब हरी-हरी मणियों (पन्ने)के सीधे और गाठों से युक्त ऐसे बनाये जो** पहचाने नहीं जाते थे (कि मणियों के हैं या साधारण) । सोने की सुन्दर नाग बेलि(पान की लता)बनायी, जो पत्तों सहित ऐसी भली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी । उसी नाग बेलि को रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन (बाँधने की रस्सी) बनाये । बीच बीच में मोतियों की सुन्दर झालरें हैं । माणिक, पन्ने, हीरे, और फिरोजे, इन रत्नों को चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके (लाल, हरे, सफेद और फिरोजी) कमल बनाये । भौंरे और बहुत रंगों के पक्षी बनाये, जो हवा के सहारे गूँजते और कूजते थे । खंभों पर देवताओं की मूर्तियाँ गढ़ कर निकालीं, जो मंगल द्रव्य लिये खड़ी थीं । राजमुक्ताओं के सहज ही सुहावने अनेक चौक पुराये ।

टिप्पणी-ऊपर की चौपाई केवल सात पंक्तियों की है। यह अपवाद बालकाण्ड में तीसरी बार हुआ है। दोहा २८७ में कहा गया है कि मिथिला के कारीगर इतने चतुर थे कि उन्होंने पन्नों को गढ़कर पत्ते और फल बनाये और मणियों के फूल। उनका कौशल एवं कला इतनी उच्चकोटि की थी कि उस विचित्र रचना को देखकर दर्शक का मन लुब्ध एवं प्रसन्न हो जाना तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। उस विचित्र रचना को देखकर ब्रह्मा का मन भी भूल गया, अर्थात उन्हें महान आश्चर्य यह हुआ कि उनके रचित मानव कारीगर उनकी रची प्रकृति से भी सुन्दर प्राकृतिक पदार्थों की रचना अमूल्य मणियों से कर सकते हैं। उस कारीगरी का ऊपर की चौपाई में और विश्लेषणपूर्वक वर्णन किया गया है।

दो०- सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि लसत पाटमय डोरि ॥२८८॥

भावार्थ- नीलमणि को कोर कर अत्यन्त सुन्दर आम के पत्ते बनाये। सोने की बौर (आम के फूल) और रेशम की डोरी से बंधे हुए पन्ने के बने फलों के गुच्छे सुशोभित हैं।

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए॥
दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि विचित्र बिताना॥
जेहिं मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही॥
दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥
जेहिं तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

भावार्थ-ऐसे सुन्दर और उत्तम बंदनवार बनाये मानों कामदेव ने फंदे सजाये हों। अनेकों मंगल-कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, परदे और चँवर बनाये। जिसमें मणियों के अनेकों सुन्दर दीपक हैं। उस विचित्र मण्डप का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, जिस मण्ड़प में श्री जानकी जी दुल्हन होंगी। किस कवि की ऐसी बुद्धि है जो उसका वर्णन कर सके। जिस मण्डप में रूप और गुणों के समुद्र श्री रामचन्द्रजी दूल्हे होंगे, वह मण्डप तीनों लोको में प्रसिद्ध होना ही चाहिये। जनक जी के महल की जैसी शोभा है वैसी ही शोभा नगर के प्रत्येक घर की दिखायी देती है। उस समय जिसने तिरहुत को देखा उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। जनकपुर में नीच के घर भी उस समय जो सम्पदा सुशोभित थी, उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था।

दो०- बसि नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेषु ।

तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु ।।२८९।।

भावार्थ- जिस नगर में साक्षात लक्ष्मी जी कपट से स्त्री का सुन्दर वेष बनाकर बसती हैं, उस पुर की शोभा का वर्णन करने में सरस्वती और शेष भी सकुचाते हैं।

पहुँचे दूत राम पुर पावन । हरषे नगर बिलोकि सुहावन ।।

भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई । दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई ।।

करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही । मुदित महीप आपु उठि लीन्ही ।।

बारि बिलोचन बाँचत पाती । पुलक गात आई भरि छाती ।।

रामु लखनु उर कर बर चीठी । रहि गए कहत न खाटी मीठी ।।

पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची । हरषी सभा बात सुनि साँची ।।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई । आए भरतु सहित हित भाई ।।

पूछत अति सनेहँ सकुचाई । तात कहाँ तें पाती आई ।।

भावार्थ-जनक जी के दूत रामचन्द्रजी की पवित्र पुरी अयोध्या में पहुँचे। वे सुन्दर नगर देखकर हर्षित हुए। राजद्वार पर जाकर उन्होंने खबर भेजी। राजा दशरथ जी ने सुनकर बुला लिया। दूतों ने प्रणाम करके चिट्ठी दी। प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं उठाकर उसे लिया। चिटठी बाँचते समय उनके नेत्रों में जल (प्रेम और आनन्द के आँसू) छा गया। शरीर पुलकित हो गया और छाती भर आयी। हृदय में राम लक्ष्मण हैं, हाथ में सुन्दर चिट्ठी है, राजा उसे हाथ में लिये ही रह गये, खट्टी- मीठी कुछ भी न कह सके। फिर धीरज धरकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी। सारी सभा बात सुनकर हर्षित होगयी। भरत जी अपने मित्रों और भाई शत्रुघ्न के साथ जहाँ खेलते थे वहीं समाचार पाकर वे आ गये। बहुत प्रेम से सकुचाते हुए पूछते हैं ''पिता जी चिट्ठी कहाँ से आई है"।

दो०- कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहिं देस ।

सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस ।।२९०।।

भावार्थ - हमारे प्राणों से प्यारे दोनों भाई, कहिये, सकुशल तो हैं और किस देश में हैं।'' स्नेह से वचन सुनकर राजा ने फिर से चिट्ठी पढ़ी।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ।।

प्रीति पुनीत भरत कै देखी । सकल सभाँ सुखु लहेउ बिसेषी ।।

तब नृप दूत निकट बैठारे । मधुर मनोहर बचन उचारे ।।

भैया कहहु कुसल दोउ बारे । तुम्ह नीकें निज नयन निहारे ।।

स्यामल गौर धरें धनु भाथा । बय किसोर कौसिक मुनि साथा ॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ । प्रेम बिबस मुनि कह राऊ ॥
जा दिन तें मुनि गए लवाई । तब तें आजु साँचि सुधि पाई ॥
कहहु बिदेह कवन बिधि जाने । सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने ॥

भावार्थ-चिट्ठी सुनकर दोनों भाई पुलकित हो गये । स्नेह इतना अधिक हो गया कि वह शरीर में समाता नहीं । भरत जी का पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा ने विशेष सुख पाया। तब राजा, दूतों को पास बैठाकर, मन को हरने वाले मीठे बचन बोले "भैइया, कहो दोनों बच्चे कुशल से तो हैं ? तुमने आखों से अच्छी तरह देखा है न ? सांवले और गोरे शरीर वाले धनुष और तरकस धारण किये रहते हैं । किशोर अवस्था है । विश्वामित्र मुनि के साथ हैं । तुम इनको पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ ।" राजा प्रेम के विशेष वश होने से बार-बार इस प्रकार कह पूछ रहे हैं । "जिस दिन से मुनि उन्हें लिवा ले गये, तब से आज ही हमने सच्ची खबर पायी है । कहो तो, महाराज जनक ने उन्हें कैसे पहचाना ?" ये प्रिय प्रेम भरे बचन सुनकर दूत मुस्कराये ।

दो०- सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोउ ।
रामु लखनु जिन्ह के तनय बिस्व बिभूषन दोउ ।।२९१।।

भावार्थ- (दूतों ने कहा) "हे राजाओं के मुकुटमणि ! सुनिये आपके समान धन्य और कोई नहीं है, जिसके राम लक्ष्मण जैसे पुत्र हैं, जो दोनो विश्व के विभूषण हैं ।

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे । पुरुषसिंघ तिहु पुर उजिआरे ॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे । ससि मलीन रबि सीतल लागे ॥
तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे । देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हें ॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका । समिटे सुभट एक ते एका ॥
संभु सरासनु काहुँ न टारा । हारे सकल बीर बरिआरा ॥
तीनि लोक महँ जे भटमानी । सभ कै सकति संभु धनु भानी ॥
सकइ उठाइ सरासुर मेरू । सोउ हियँ हारि गयु करि फेरू ॥
जेहिं कौतुक सिव सैलु उठावा । सोउ तेहि सभाँ पराभउ पावा ॥

भावार्थ- आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं । वे पुरुष सिंह तीनों लोकों के प्रकाश स्वरूप हैं, जिनके यश के आगे चन्द्रमा मलिन और प्रताप के आगे सूर्य शीतल लगता है । हे नाथ ! उनके लिये आप कहते हैं कि उन्हें कैसे पहचाना । क्या सूर्य को हाथ में दीपक लेकर देखा जाता है । सीता जी के स्वयंबर में अनेकों राजा और एक से एक बढ़कर योद्धा एकत्र हुए थे । परन्तु शिवजी के धनुष को कोई भी नहीं हटा सका । सारे बलवान वीर हार [illegible] । तीनों लोकों में जो वीरता के अभिमानी थे, शिवजी के धनुष ने सबकी शक्ति [illegible]

दो०- तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल ।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल ।।२९२।।

भावार्थ- हे महाराज ! सुनिये (जहाँ ऐसे ऐसे योद्धा हार मान गये) रघुवंशमणि श्री रामचन्द्रजी ने बिना ही प्रयास शिवजी के धनुष को वैसे ही तोड़ डाला जैसे हाथी कमल की डंडी को तोड़ डोलता है ।

सुनि सरोष भृगुनायकु आए । बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए ।।
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा ।।
राजन रामु अतुलबल जैसें । तेज निधान लखनु पुनि तैसें ।।
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें । जिमि गज हरि किसोर के ताकें ।।
देव देखि तव बालक दोऊ । अब न आँखि तर आवत कोऊ ।।
दूत बचन रचना प्रिय लागी । प्रेम प्रताप बीर रस पागी ।।
सभा समेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निछावरि लागे ।।
कहि अनीति ते मूदहिं काना । धरमु बिचारि सबहिं सुखु माना ।।

भावार्थ-धनुष टूटने की बात सुनकर परशुराम जी क्रोध भरे आये और उन्होंने बहुत प्रकार से आंखे दिखलायीं । अन्त में उन्होंने श्री रामचन्द्रजी का बल देखकर अपना धनुष दे दिया और बहुच प्रकार से बिनती करके वन को गमन किया । हे राजन ! जैसे रामचन्द्रजी अतुलनीय बली हैं, वैसे तेज निधान फिर लक्ष्मण जी भी हैं, जिनके देखने मात्र से राजा लोग ऐसे कांप उठते हैं जैसे हाथी सिंह के बच्चे के ताकने से काँप उठते हैं । हे देव ! आपके दोनों बालकों को देखने के बाद अब आंखों के नीचे कोई आता ही नहीं ।" प्रेम, प्रताप और वीररस में पगी हुई दूतों की वचन रचना सब को बहुत प्रिय लगी । सभा सहित राजा प्रेम में मगन हो गये और दूतों को निछावर देने लगे । (उन्हें निछावर देते देखकर) 'यह नीति विरुद्ध है', ऐसा कहकर दूत अपने हाथों से कान मुँदने लगे । धर्म को विचार कर (उनका धर्मयुक्त आचरण देखकर) सभी ने सुख माना ।

दो०- तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ ।
कथा सुनाई गुरहिं सब सादर दूत बोलाइ ।।२९३।।

भावार्थ- तब राजा ने उठकर वशिष्ठ जी के पास जाकर उन्हें पत्रिका दी और आदरपूर्वक दूतों को बुलाकर सारी कथा गुरु जी को सुना दी ।

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई । पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई ।।
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।

तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ । धरमशील पहिं जाहीं सुभाएँ ॥

तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेबी । तसि पुनीत कौसल्या देबी ॥

सुकृति तुम्ह समान जग माहीं । भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं ॥

तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें । राजन राम सरिस सुत जाकें ॥

बीर बिनीत धरम ब्रत धारी । गुन सागर बर बालक चारी ॥

तुम्ह कहुँ सर्ब काल कल्याना । सजहुँ बरात बजाइ निसाना ॥

भावार्थ-यह समाचार सुनकर और अत्यन्त सुख पाकर गुरु बोले- ''पुण्यात्मा पुरुष के लिये पृथ्वी सुखों से छाई हुई है । जैसे नदियां समुद्र में जाती हैं , यद्यपि समुद्र को नदी की कामना नहीं होती , वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना ही बुलाये स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुष के पास जाती हैं । तुम जैसे गुरू , ब्राह्मण व गाय और देवता की सेवा करने वाले हो, वैसी ही पवित्र कौशिल्या देवी भी हैं । तुम्हारे समान पुण्यात्मा जगत में न कोई हुआ है और न होने वाला है । हे राजन ! तुमसे अधिक पुण्य और किसका होगा, जिसके राम सरीखे पुत्र हैं । और जिसके चारों बालक वीर, विनम्र, धर्म का व्रत धारण करने वाले और गुणों के सुन्दर समुद्र हैं । तुम्हारे लिये सारे कालों में कल्याण है । अतएव डंका बजवाकर बारात सजाओ ।

दो०- चलहु बेगि सुनि बचन भलेहिं नाथ सिरु नाइ ।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ ।।२९४।।

भावार्थ-और जल्दी चलो ।'' गुरुजी के ऐसे वचन सुनकर 'हे नाथ ! बहुत अच्छा' कहकर और सिर नवाकर तथा दूतों को डेरा दिलवाकर, राजा महल में गये ।

राजा सबु रनिवास बोलाई । जनक पत्रिका बाचि सुनाई ॥

सुनि संदेसु सकल हरषानीं । अमर कथा सब भूप बखानीं ॥

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी । मनहुँ सिखिन सुनि बारिद बानी ॥

मुदित असीस देहिं गुर नारीं । अति आनंद मगन महतारीं ॥

लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती । हृदयँ लगाइ जुड़ावहिं छाती ॥

राम लखन कै कीरति करनी । बारहिं बार भूपबर बरनी ॥

मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए । रानिन्ह तब महिदेव बोलाए ॥

दिए दान आनन्द समेता । चले बिप्रबर आसिष देता ॥

भावार्थ-राजा ने सारे रनिवास को बुलाकर जनक जी की पत्रिका बांचकर सुनाई । समाचार सुनकर सब रानियां हर्ष से भर गयीं । राजा ने फिर दूसरी सब बातों का (जो

दूतों के मुख से सुनी थीं)वर्णन किया। प्रेम में प्रफुल्लित हुई रानियां ऐसी सुशोभित हो रहीं हैं जैसे मोरनी बादलों की गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं। बड़ी-बूढ़ी (अथवा गुरुओं की स्त्रियाँ)प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं। माताएं अत्यन्त आनन्द में मग्न हैं। उस अत्यन्त प्रिय पत्रिका को आपस में लेकर सब हृदय से लगाकर छाती शीतल करती हैं। राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ जी ने श्री राम लक्ष्मण की कीर्ति और करनी का बारम्बार वर्णन किया।'यह सब मुनि की कृपा है,' ऐसा कहकर वे बाहर चले आये। तब रानियों ने ब्राह्मणों को बुलाया और आनन्द सहित उन्हें दान दिये। श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले।

दो०- जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के।।२९५।।

भावार्थ- फिर भिक्षुकों को बुलाकर करोड़ों प्रकार की निछावरें उनको दी।'चक्रवर्ती महाराज दशरथ के चारों पुत्र चिरंजीवी हों।'

कहत चले पहिरें पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना।।
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए।।
भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू।।
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गलीं सँवारन लागे।।
जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम पुरी मंगलमय पावनि।।
तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई।।
ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू।।
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला।।

भावार्थ- यों कहते हुए वे अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र पहन-पहन कर चले। आनन्दित होकर नगाड़े वालों ने बड़े जोर से नगाड़ों पर चोट लगायी। सब लोगों ने जब यह समाचार पाया, तब घर-घर बधावे होने लगे। चौदहों लोकों में उत्साह भर गया कि जानकी जी और श्री रघुनाथ जी का विवाह होगा। यह शुभ समाचार पाकर लोग प्रेम मग्न हो गये और रास्ते, घर और गलियाँ सजाने लगे। यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है, क्योंकि वह राम जी की मंगलमयी पवित्र पुरी है, तथापि प्रीति पर प्रीति होने से वह सुन्दर मंगल रचना से सजायी गया। ध्वजा, पताका, परदे और सुन्दर चँवरों से सारा बाजार बहुत ही अनूठा छाया हुआ है। सोने के कलस, तोरण, मणियों की झालरें, हल्दी, दूब, दही, अक्षत और मालाओं से --

दो०- मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम चौकें चारु पुराइ।।२९६।।

भावार्थ- लोगों ने अपने घरों को सजा कर मंगलमय बना लिया। गलियों को चतुरंसम (चन्दन, केशर, कस्तूरी और कपूर से बने हुए एक सुगन्धित द्रव) से सींचा और द्वारों पर सुन्दर चौक पुराये।

जँह तँह जूथ जूथ मिलि भामिनी। सजि नवसप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधुबदनी मृग सावक लोचनि। निज सरूप रतिमान बिमोचनि॥
गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। विश्वबिमोहन रचेउ बिताना॥
मंगल द्रब्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥
कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुं वेद धुनि भूसुर करहीं॥
गावहिं सुन्दर मंगलगीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाह भवनु अति थोरा। मानहुँ उमगि चला चहु ओरा॥

भावार्थ – बिजली की सी कान्तिवाली, चन्द्रमुखी, हरिण के बच्चे के से नेत्रों वाली और अपने सुन्दर रूप से कामदेव की स्त्री रति के अभिमान को छुड़ाने वाली, सुहागिनी स्त्रियां सभी सोलहों श्रृंगार सजकर जहाँ तहाँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर मनोहर वाणी से मंगल गीत गा रही हैं। जिनके सुन्दर स्वर को सुनकर कोयलें भी लजा जाती हैं। राजमहल का वर्णन कैसे किया जाय, जहाँ विश्व को विमोहित करने वाला मण्डप बनाया गया है।अनेकों प्रकार के मनोहर मांगलिक पदार्थ शोभित हो रहे हैं और बहुत से नगाड़े बज रहे हैं। कहीं भाट विरुदावली (कुलकीर्ति) का उच्चारण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मण वेद ध्वनि कर रहे हैं। सुन्दर स्त्रियां श्रीराम जी और श्री सीता जी का नाम ले-लेकर मंगल गीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है और महल अत्यन्त ही छोटा, इससे उसमें न समाकर मानों दह (आनन्द) चारों ओर उमड़ चला।

दो०- सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार॥२९७॥

भावार्थ- दशरथ के महल की शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है, जहाँ समस्त देवताओं के शिरोमणि रामचन्द्रजी ने अवतार लिया है।

भूप भरत पुनि लिए बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥
भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥
रुचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी ॥
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने ॥
तिन्ह सब छ्यल भए असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा ॥
सब सुन्दर सब भूषनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी ॥

भावार्थ-फिर राजा ने भरत जी को बुला लिया और कहा कि जाकर घोड़े,हाथी, और रथ सजाओ, जल्दी रामचन्द्रजी की बारात में चलो। यह सुनते ही दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) आनन्द वश पुलक से भर गये। भरत जी ने सब साहनी (घुड़साल के अध्यक्ष) बुलाये और उन्हें (घोड़ों को सजाने की)आज्ञा दी। वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े। उन्होंने रुचि के साथ (यथायोग्य)जीने कसकर सजाये। रंग-रंग के उत्तम घोड़े शोभित हो गये। सब घोड़े बड़े ही सुन्दर और चञ्चल करनी (चाल) के हैं। वे धरती पर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहे पर रखते हों। अनेकों जाति के घोड़े हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। (ऐसी तेज चाल के हैं)मानों हवा का निरादर कर उड़ना चाहते हैं। उन सब घोड़ों पर भरत जी के समान अवस्था वाले सब छैल-छबीले राजकुमार सवार हुए। वे सभी सुन्दर हैं और सब आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके हाथों में बाण और धनुष हैं, तथा कमर में भारी तरकस बंधे हैं।

दो०- छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नबीन ॥
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रबीन ॥२९८॥

भावार्थ- सभी चुने हुए छैल - छबीले, शूरवीर, चतुर और नवयुवक हैं। प्रत्येक सवार के साथ दो पैदल सिपाही हैं जो तलवार चलाने की कला में बड़े निपुण हैं।

बाँधें बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े ॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना ॥
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए ॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं ॥
सावँकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ॥
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकत मुनि मन मोहे ॥
जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेग अधिकाई ॥
अस्त्र शस्त्र सबु साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई ॥

भावार्थ-शूरता का बाना धारण किये हुए, रणधीर वीर सब निकल कर नगर के बाहर जा खड़े हुए। वे चतुर अपने घोड़ों को तरह तरह की चालों से फेर रहे हैं और भेरी तथा

नगाड़े की आवाज सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं। सारथियों ने ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणों को लगा कर रथों को बहुत विलक्षण बना दिया है। उनमें सुन्दर चँवर लगे हैं और घंटियां सुन्दर शब्द कर रहीं हैं। वे रथ इतने सुन्दर हैं मानो सूर्य के रथ की शोभा को छीन लेते हैं। अगणित श्यामवर्ण के घोड़े थे। उनको सारथियों ने उन रथों में जोत दिया है, जो सभी देखने में सुन्दर और गहनों से सजाये हुए सुशोभित हैं, और जिन्हें देखकर मुनियों के मन भी मोहित हो जाते हैं। वे जल पर भी जमीन की तरह ही चलते हैं। वेग की अधिकता से उनकी टाप पानी में नहीं डूबती। अस्त्र-शस्त्र और साज सजाकर सारथियों ने रथियों को बुला लिया।

दो०- चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहिं जो जेहि कारज जात।।२९९।।

भावार्थ-रथों पर चढ़ चढ़ कर बारात नगर के बाहर जुटने लगी। जो जिस काम के लिये जाता है, सभी को सुन्दर शगुन होते हैं।

कलित करिबरन्हि परीं अँबारीं। कहि न जाहिं जेहि भाँति सँवारीं।।
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी।।
बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना।।
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा।।
मागध सूत बंदि गुननायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक।।
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती।।
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा।।
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई।।

भावार्थ- श्रेष्ठ हाथियों पर सुन्दर अंबारियां पड़ी हैं। वे जिस प्रकार सजायी गयी थी, सो कहा नहीं जा सकता। मतवाले हाथी घंटों से सुशोभित होकर (घंटे बजाते हुए) चले, मानो सावन के सुन्दर बादलों के समूह गरजते हुए जा रहे हैं। सुन्दर पालकियाँ, सुख से बैठने योग्य तामजान (जो कुर्सी की तरह होते हैं)और रथ आदि और भी अनेकों प्रकार की सवारियां हैं। उन पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों के समूह चढ़कर चले, मानों सब वेदों के छन्द ही शरीर धारण किये हुए हैं। मागध, सूत, भाट और गुण गाने वाले सब, जो जिस योग्य थे वैसी सवारी पर चढ़कर चले। बहुत जातियों के खच्चर, ऊँट और बैल असंख्यों प्रकार की वस्तुएं लाद-लाद कर चले। कहार करोंड़ो काँवरे लेकर चले। उनमें अनेकों प्रकार की इतनी वस्तुएं थीं, कि जिनका वर्णन कौन कर सकता है। सब सेवकों के समूह अपना अपना साज समाज बनाकर चले।

दो०- सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर ।
कबहिं देखिबे नयन रामु लखनु दोउ बीर ।।३००।।

भावार्थ- सबके हृदय में अपार हर्ष है और शरीर पुलक से भरे हैं। (सब को एक ही लालसा लगी है कि)हम श्री राम लक्ष्मण दोनों भाइयों को नेत्र भर कर कब देखेंगे।

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा । रथ रव बाजि हिंस चहु ओरा ।।
निदरि घनहिं घुर्म्मरहिं निसाना । निज पराइ कछु सुनिअ न काना ।।
महा भीर भूपति के द्वारें । रज होइ जाइ पषान पबारें ।।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारीं । लिएँ आरती मंगल थारीं ।।
गावहिं गीत मनोहर नाना । अति आनन्दु न जाइ बखाना ।।
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी । जोते रबि हय निंदक बाजी ।।
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने । नहीं सारद पहिं जाहिं बखाने ।।
राज समाजु एक रथ साजा । दूसर तेज पुंज अति भ्राजा ।।

भावार्थ- हाथी गरज रहे हैं। उनके घंटों की भीषण ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथों की घरघराहट और घोड़ों की हिनहिनाहट हो रही है। किसी को अपनी पराई कोई बात कानों से सुनाई नहीं देती। राजा के दरवाजे पर इतनी भारी भीड़ हो रही है कि वहाँ पत्थर फेंका जाय तो वह भी पिसकर धूल हो जाय। अटारियों पर चढ़ी स्त्रियां मंगल थाली में आरती लिये देख रही हैं। और नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही हैं। उनके अत्यन्त आनन्द का बखान नहीं हो सकता। तब सुमन्त्र जी ने दो रथ सजाकर उनमें सूर्य के घोड़ों को भी मात करने वाले घोड़े जोते। दोनों सुन्दर रथ वे दशरथ के पास ले आए जिनकी सुन्दरता का वर्णन सरस्वती से भी नहीं हो सकता। एक रथ पर राजसी सामान सजाया गया, और दूसरा, जो तेज का पुंज और अत्यन्त ही शोभायमान था –

दो०- तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु ।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ।।३०१।।

भावार्थ- उस सुन्दर रथ पर राजा, वसिष्ठ जी को हर्षपूर्वक चढ़ाकर, फिर स्वयं शिव, गुरु, और गणेशजी का स्मरण करके दूसरे रथ पर चढ़े।

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसें । सुर गुर संग पुरंदर जैसे ।।
करि कुल रीति बेद बिधि राऊ । देखि सबहिं सब भाँति बनाऊ ।।
सुमिरि रामु गुर आयसु पाई । चले महीपति संख बजाई ।।

हरषे बिबुध बिलोकि बराता । बरषहिं सुमन सुमंगल दाता ॥
भयउ कोलाहल हय गय गाजे । ब्योम बरात बाजने बाजे ॥
सुर नर नारि सुमंगल गाईं । सरस राग बाजहिं सहनाईं ॥
घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं । सरव करहिं पाइक फहराहीं ॥
करहिं बिदूषक कौतुक नाना । हास कुसल कल गान सुजाना ॥

भावार्थ-वशिष्ठ के साथ जाते हुए राजा दशरथ जी कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे देवगुरु बृहस्पति जी के साथ इन्द्र हों । वेद की विधि से और कुल की रीति के अनुसार सब कार्य करके तथा सब को सब प्रकार से सजे देखकर ,श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करके और गुरु की आज्ञा पाकर, पृथ्वीपति दशरथ जी शंख बजाकर चले । बारात देखकर देवता हर्षित हुए और सुन्दर मंगलदायक फूलों की वर्षा करने लगे । बड़ा शोर मच गया । घोड़े और हाथी गरजने लगे । आकाश में और बारात में दोंनो जगह बाजे बजने लगे । देवांगनाएं और मनुष्यों की स्त्रियाँ सुन्दर मंगल गान करने लगीं और रसीले राग से शहनाइयाँ बजने लगीं । घंटे-घंटियों की ध्वनि का वर्णन नहीं हो सकता । पैदल चलने वाले सेवकगण अथवा पटेबाज कसरत के खेल कर रहे हैं । हँसी करने में निपुण और सुन्दर गाने में चतुर विदूषक (मसखरे)तरह तरह के तमाशे कर रहे हैं ।

दो०- तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान ।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान ।।३०२।।

भावार्थ-सुन्दर राजकुमार मृदंग और नगाड़े के शब्द सुनकर घोड़े को उन्हीं के अनुसार इस प्रकार नचा रहे हैं कि वे ताल के अनुसन्धान से जरा भी डिगते नहीं हैं । चतुर नट चकित होकर यह देख रहे हैं ।

बनइ न बरनत बनी बराता । होहिं सगुन सुंदर सुभदाता ॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी । सघट सबाल आव बर नारी ॥
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा । सुरभी सनमुख सिसुहिं पिआवा ॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई । मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥
छेमकरी कह छेम बिसेषी । स्याम बाम सुतरु पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥

भावार्थ - बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुन्दर शुभदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकंठ पक्षी बांयी ओर चारा ले रहा है, मानो सम्पूर्ण मंगलों की सूचना दे रहा है। दाहिनी ओर कौआ सुन्दर खेत में शोभा पा रहा है। नेवले का दर्शन भी सब किसी ने पाया। तीनों प्रकार की शीतल, मंद, सुगन्धित हवा अनुकूल दिशा में चल रही है। श्रेष्ठ सुहागिनी स्त्रियां भरे हुए घड़े और बालक गोद में लिए आ रही हैं। लोमड़ी फिर-फिर कर बार-बार दिखाई दे जाती है। गाये सामने खड़ी बछड़े को दूध पिलाती है। हिरनी की टोली बांयी ओर से घूमकर दाहिनी ओर आयी, मानो सभी मंगलों का समूह दिखाई दिया। छेमकरी (सफेद सिर वाली चील)विशेष रूप से क्षेम कल्याण कह रही हैं। श्याम (कोयल)बांयी ओर सुन्दर पेड़ पर दिखाई पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिये सामने आये।

दो०- मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार ।।३०३।।

भावार्थ- सभी मंगलमय, कल्याणमयी और मनवांछित फल देने वाले शकुन मानों सच्चे होने के लिए एक ही साथ हो गये।

मंगल सगुन सुगम सब ताकें। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाकें ॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता ॥
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे ॥
एहि बिधि कीन्हि बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना ॥
आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू ॥
बीच बीच बर बास बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए ॥
असन सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए ॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले ॥

भावार्थ- स्वयं सगुण ब्रह्मा जिनके पुत्र हैं, उनके लिये सब मंगल शकुन सुलभ हैं। जहाँ श्री रामचन्द्रजी सरीखे दूल्हा और सीता जी जैसी दुलहिन हैं तथा दशरथ जी और जनक जी जैसे पवित्र समधी हैं, ऐसा ब्याह सुनकर मानों सभी शकुन नाच उठे और कहने लगे-'अब ब्रह्मा जी ने हमको सच्चा कर दिया।' इस तरह बारात ने प्रस्थान किया। घोड़े-हाथी गरज रहे हैं और नगाड़े पर चोट लग रही हैं। सूर्यवंशी के पताका स्वरूप दशरथ जी को आते हुए जानकर जनक जी ने नदियों पर पुल बंधवा दिये। बीच बीच में ठहरने के लिये सुन्दर घर (पड़ाव)बनवा दिये, जिनमें देवलोक के समान सम्पदा छायी है। और जहां बारात के सब

लोग अपने-अपने मन की पसंद के अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, बिस्तर और वस्त्र पाते हैं। मन के अनुकूल नित्य नये सुखों को देखकर, सभी बरातियों को अपने घर भूल गये।

दो०- आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान ।।३०४।।

भावार्थ- बड़े जोर से बजते हुए नगाड़ों की आवाज सुनकर श्रेष्ठ बारात को आती हुई जानकर, आगवानी करने वाले हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर बारात लेने चले।

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा ।।
भरे सुधासम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने ।।
फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं ।।
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना ।।
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए ।।
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा ।।
आगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता ।।
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना ।।

भावार्थ- दूध, शर्बत, ठंढाई, जल आदि से भर कर सोने के कलश तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृत के समान भाँति भाँति के सब पकवानों से भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकार के सुन्दर बर्तन, उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुन्दर वस्तुएं राजा (जनक) ने हर्षित होकर भेंट के लिये भेजीं। गहने, कपड़े, नाना प्रकार की मूल्यवान मणियां (रत्न), पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरह की सवारियां तथा बहुत प्रकार के सुगन्धित एवं सुहावने मंगल द्रव्य और सगुन की चीजें राजा जनक ने भेंजी। दही, चिउड़ा, और अगणित उपहार के पदार्थ कांवरों में भर भर कर कहार चले। अगवानी करने वालों को जब बारात दिखाई दी, तब उनके हृदय में आनन्द छा गया और शरीर रोमाञ्च से भर गया। अगवानों को सजधज के साथ देखकर, बरातियों ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये।

दो०- हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल ।।३०५।।

भावार्थ- (बाराती तथा अगवानों में से)कुछ लोग परस्पर मिलने के लिये हर्ष के मारे बाग छोड़कर (सरपट)दौड़ चले और ऐसे मिले मानो आनन्द के दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हैं।

बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं । मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं ॥
बस्तु सकल राखीं नृप आगें । बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें ॥
प्रेम समेत रायँ सबु लीन्हा । भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा ॥
करि पूजा मान्यता बड़ाई । जनवासे कहुँ चले लवाई ॥
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं । देखि धनदु धन मदु परिहरहीं ॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा ॥
जानी सियँ बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं । भूप पहुनई करन पठाईं ॥

भावार्थ— देव सुन्दरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं, और देवता आनन्दित होकर नगाड़े बजा रहे हैं । (अगवानी में आये हुए)उन लोगों ने सब चींज दशरथ जी के आगे रख दीं और अत्यन्त प्रेम से विनती की । राजा दशरथ जी ने प्रेम सहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकों को दे दी गई । तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासे की ओर लिवा चले । विलक्षण वस्त्रों के पावड़े पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धन का अभिमान छोड़ देते हैं । बड़ा सुन्दर जनवासा दिया गया, जहां सब को सब प्रकार का सुभीता था । सीता जी ने बारात जनकपुर में आयी जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी । हृदय में स्मरण कर सब सिद्धियों को बुलाया और उन्हें राजा दशरथ की मेहमानी करने के लिये भेजा ।

दो०— सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास ।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास ।।३०६।।

भावार्थ— सीता जी की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इन्द्रपुरी के भोगविलास लिये हुए गयीं ।

निज निज बास बिलोकि बराती । सुरसुख सकल सुलभ सब भाँती ॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना । सकल जनक कर करहिं बखाना ॥
सिय महिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी ॥
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई । हृदयँ न अति आनंदु अमाई ॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं । पितु दरसन लालचु मन माहीं ॥
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी । उपजा उर संतोषु बिसेषी ॥

हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥

भावार्थ– बरातियों ने अपने-अपने ठहरने के स्थान देखे तो वहाँ देवताओं के सब सुखों को सब प्रकार से सुलभ पाया। इस ऐश्वर्य का कुछ भी भेद कोई जान न सका। सब जनक जी की बड़ाई कर रहे हैं। श्री रघुनाथ जी यह सब सीता जी की महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचान कर हृदय में हर्षित हुए। पिता दशरथ जी के आने का समाचार सुनकर दोनों भाइयों के हृदय में महान आनन्द समाता न था। संकोच वश वे गुरु विश्वामित्र से कह नहीं सकते थे, परन्तु मन में पिता जी के दर्शनों की लालसा थी। विश्वामित्र जी ने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदय में बहुत सन्तोष उत्पन्न हुआ। प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयों को हृदय से लगा लिया। शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। वे उस जनवासे को चले जहाँ दशरथ जी थे, मानों सरोवर प्यासे की ओर लक्ष्य करके चला हो।

दो०– भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥३०७॥

भावार्थ– जब राजा दशरथ जी ने पुत्रों सहित मुनि को आते देखा तब वे हर्षित होकर उठे और सुख के समुद्र में थाह सी लेते हुए चले।

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥
सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥
पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई। मनभावती असीसें पाई॥
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥

भावार्थ– पृथ्वीपति दशरथजी ने मुनि की चरण धूलि को बार बार सिर पर चढ़ा कर उनको दण्डवत् प्रणाम किया। विश्वामित्र ने राजा को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशिर्वाद देकर कुशल पूछी। फिर दोनों भाइयों को दण्डवत् प्रणाम करते देखकर राजा के हृदय में सुख समाया नहीं। पुत्रों को उठाकर हृदय से लगाकर उन्होंने अपने वियोग जनित दुःसह दुःख को मिटाया, मानो मृतक शरीर को प्राण मिल गये। फिर उन्होंने वशिष्ठ

जी के चरणों में सिर नवाया। श्रेष्ठ मुनि ने प्रेम के आनन्द में उन्हें हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों ने सब ब्राह्मणों की बन्दना की और मनचाहे आशीर्वाद पाये। भरत जी ने छोटे भाई शुत्रुघ्न सहित श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम किया। रामजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। लक्ष्मण जी दोनों भाईयों को देखकर हर्षित हुए, और प्रेम से परिपूर्ण हुए शरीर से उनसे मिले।

दो०— पुरजन परिजन जातिजन जातक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत ।।३०८।।

भावार्थ— तदनन्तर परम कृपालु और विनयी श्री रामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जाति के लोगों, याचकों, मंत्रियों और मित्रों, सभी से यथायोग्य मिले।

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी ।।
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी ।।
सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी ।।
सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना ।।
सतानंद अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन ।।
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना ।।
प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई ।।
ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी को देखकर बरात शीतल हुई (राम के वियोग में सब के हृदय में जो आग जल रही थी, वह शान्त हो गई)। प्रीति की रीति का बखान नहीं हो सकता। राजा के पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किये हुए हों। पुत्रों सहित दशरथ जी को देखकर नगर के स्त्री-पुरुष सभी प्रसन्न हो रहे हैं। (आकाश में) देवता फूलों की वर्षा करके, नगाड़े बजा रहे हैं और अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं। अगवानी में आये हुए शतानन्द जी, अन्य ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, विद्वान और भाटों ने बारात सहित राजा दशरथ का आदर सत्कार किया। फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे। बरात लग्न के दिन से पहले आ गयी है, इससे जनकपुरी में अधिक आनन्द छा रहा है। सब लोग ब्रह्मानन्द प्राप्त कर रहे हैं और विधाता से मनाकर कहते हैं कि दिन-रात बढ़ जायें (बड़े हो जायें)।

दो०— रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज ।।३०९।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी और सीता जी सुन्दरता की सीमा हैं और दोनों राज्य पुण्य की सीमा हैं। जहाँ-तहाँ जनकपुर वासी स्त्री-पुरुषों के समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही ॥
इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे ॥
इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी ॥
जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी ॥
पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधी लोचन लाहू ॥
कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनीं ॥
बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई ॥

भावार्थ– जनक जी के सुकृत (पुण्य)की मूर्ति जानकी जी हैं और दशरथ जी के सुकृत देह धारण किये हुये श्री रामचन्द्र जी हैं। इन दोनों के समान किसी ने शिवजी की आराधना नहीं की, और न इनके समान किसी ने फल ही पाये। इनके समान जगत में न कोई हुआ, न कहीं है, न होने का ही है। हम सब भी सम्पूर्ण पुण्यों की राशि हैं, जो जगत में जन्म लेकर जनकपुर के निवासी हुए, और जिन्होंने जानकी जी की और श्री रामचन्द्र जी की छवि देखी है। हमारे सरीखे विशेष पुण्यात्मा कौन होगा ? और अब हम श्री रघुनाथ जी का विवाह देखेंगे और भली भाँति नेत्रों का लाभ लेंगे। कोयल के समान मधुर बोलने वाली स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि हे सुन्दर नेत्रों वाली, इस विवाह में बड़ा लाभ है। बड़े भाग्य से विधाता ने सब बात बना दी है; ये दोनों भाई हमारे नेत्रों के अतिथि हुआ करेंगे।

दो०– बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय ॥३१०॥

भावार्थ– जनक जी स्नेह वश बार-बार सीता जी को बुलायेंगे, और करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर दोनों भाई सीता जी को लेने (विदा कराने)आया करेंगे।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
तब तब राम लखनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी ॥
सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा ॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए ॥

कहा एक मैं आजु निहारे । जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे ॥
भरतु रामही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥
लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा । नख सिख ते सब अंग अनूपा ॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥

भावार्थ– तब उनकी अनेकों प्रकार से पहुनाई होगी । सखी ! ऐसा ससुराल किसे न प्यारी होगी । तब-तब हम सब नगर निवासी श्री राम-लक्ष्मण को देखकर सुखी होंगे । हे सखी ! जैसा श्री राम-लक्ष्मण का जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजा के साथ और भी हैं । वे भी एक श्याम और दूसरे गोरे वर्ण के हैं, उनके भी सब अंग बहुत सुन्दर हैं । जो लोग उन्हें देख आये हैं, वे सब यही कहते हैं । एक ने कहा मैंने आज ही उन्हें देखा है, इतने सुन्दर मानो ब्रह्मा जी ने उन्हें अपने हाथों संवारा है । भरत तो श्री रामचन्द्र जी की ही शक्ल-सूरत के हैं। स्त्री-पुरुष सहसा उन्हें पहचान नहीं सकते । लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों एक ही रूप हैं । दोनों के नख से शिखा तक सभी अंग अनुपम हैं । इन को बड़े अच्छे लगते हैं, पर मुख से उनका वर्णन नहीं हो सकता । उनकी उपमा के योग्य तीनों लोगों में कोई नहीं है ।

छं०– उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं ।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं ॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहिं बचन सुनावहीं ।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

दो०– कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन ।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥२११॥

भावार्थ– मैं तुलसी दास कहता हूं कि कवि और कोविद (विद्वान)कहते हैं ,'इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है । बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के समुद्र इनके समान ये ही हैं ।' जनकपुर की सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाता को यह वचन (विनती)सुनाती हैं कि चारों भाइयों का विवाह इसी नगर में हो और हम सब सुन्दर मंगल गायें । नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल भरकर पुलकित शरीर से स्त्रियां आपस में कह रही हैं कि हे सखी ! दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं, त्रिपुरारि (शिवजी)सब मनोरथ पूर्ण करेंगे ।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । आनँद उमगि उमगि उर भरहीं ॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए । देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए ॥
कहत राम जसु बिसद बिसाला । निज निज भवन गए महिपाला ॥
गए बीति कछु दिन एहि भाँती । प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥
पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥

भावार्थ-- इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदय को उमँग-उमँग कर उत्साह पूर्वक आनन्द से भर रही हैं। सीता जी के स्वयंवर में जो राजा आये थे, उन्होंने भी चारों भाइयों को देखकर सुख पाया। श्री रामचन्द्र जी का निर्मल और महान यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। जनकपुरवासी और बराती सभी बड़े आनन्दित हैं। मंगलों का मूल लग्न का दिन आ गया। हेमन्त ऋतु और सुहावना अग्रहण का महीना था। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और बार श्रेष्ठ थे। लग्न (मुहूर्त) शोध कर ब्रह्मा जी ने उस पर विचार किया। और उस लग्न पत्रिका को नारद जी के हाथ (जनक जी के यहाँ) भेज दिया। जनक जी के ज्योतिषियों ने भी वही गणना कर रक्खी थी। जब सब लोगों ने यह बात सुनी तब वे कहने लगे--'यहाँ के ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं।'

दो०-- धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥३१२॥

भावार्थ-- निर्मल और सभी सुन्दर मंगलों की मूल गोधूलि की पवित्र बेला आ गयी और अनुकूल शकुन होने लगे। यह जानकर ब्राह्मणों ने जनक जी से कहा।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥
संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥
लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥
भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहिं घाऊ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥

भावार्थ-- तब राजा जनक ने पुरोहित शतानन्द जी से कहा कि अब देर का क्या कारण है। तब शतानन्द जी ने मन्त्रियों को बुलाया। वे सब मंगल का सामान सजाकर ले आये। शंख, नगाड़े, ढोल और बहुत से बाजे बजने लगे तथा मंगल कलश, और शुभ शकुन की वस्तुएँ (दधि, दूध आदि) सजायी गयीं। सुन्दर सुहागिनि स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और

पवित्र ब्राह्मण वेद की ध्वनि कर रहे हैं। सब लोग इस प्रकार आदरपूर्वक बारात को लेने चले और जहाँ बारातियों का जनवासा था, वहाँ गये। अवधपति (दशरथ जी)का समाज (वैभव)देखर उनको देवराज इन्द्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे। (उन्होंने जाकर विनती की-) ''समय हो गया अब पधारिये।'' यह सुनते ही नगाड़ों पर चोट पड़ी। गुरु वशिष्ठ जी से पूछकर और कुल की सब रीतियों को करके, राजा दशरथ मुनिओं और साधुओं के समाज को साथ लेकर चले।

दो०— भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि ।।३१३।।

भावार्थ— अवधनरेश (दशरथ जी) का भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर, ब्रह्माजी आदि देवता हजारों मुखों से उसकी सराहना करने लगे।

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना ।।
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरुथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा ।।
प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू ।।
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे ।।
चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना ।।
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना ।।
तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारीं। भए नखत जनु बिधु उजिआरीं ।।
बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी ।।

भावार्थ— देवगण सुंदर मंगल का समय जानकर, नगाड़े बजाबजा कर फूल बरसाते हैं। शिवजी ब्रह्मा जी आदि देव वृन्द यूथ (टोलियाँ)बना बनाकर विमानों पर जा चढ़े। और प्रेम से पुलकित शरीर हो तथा हृदय में उत्साह भरकर श्री रामचन्द्र जी का विवाह देखने चले। जनपुर को देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गये कि उन सबको अपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे। विचित्र मण्डप को तथा नाना प्रकार की सब अलौकिक रचनाओं को वे चकित होकर देख रहे हैं। नगर के स्त्री-पुरुष रूप के भण्डार, सुघड़, श्रेष्ठ, धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं। उन्हे देखकर सब देवता और देवांगनाएं ऐसे प्रभाहीन हो गये जैसे चन्द्रमा के उजियाले में तारागण फीके पड़ जाते हैं। ब्रह्मा जी को विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी (रचना)तो कहीं देखी ही नहीं।

दो०— सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु ।।३१४।।

भावार्थ– तब शिब जी ने सब देवताओं को समझाया कि "तुम लोग आश्चर्य में मत भूलो। हृदय में धीरज धर कर विचार तो करो कि यह (भगवान की महामहिमायी निज शक्ति) श्री सीता जी का और (अखिल ब्रह्मांडो के परम ईश्वर-साक्षात भगवान्) श्री रामचन्द्र जी का विवाह है।

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥
एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगें बर बसह चलावा॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥
साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥
मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥

भावार्थ – जिनका नाम लेते ही जगत में सारे अमंगलों की जड़ कट जाती है और चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मुट्ठी में आ जाते हैं, ये वही जगत के माता-पिता श्री सीताराम हैं", काम के शत्रु शिवजी ने ऐसा कहा। इस प्रकार शिवजी ने देवताओं को समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ बैल नन्दीश्वर को आगे बढ़ाया। देवताओं ने देखा कि दशरथ जी मन में बड़े ही प्रसन्न और शरीर से पुलकित हुए चले आ रहे हैं। उनके साथ (परम हर्ष युक्त)साधुओं और ब्राह्मणों की मण्डली ऐसी शोभा दे रही है मानों समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हैं। चारों सुन्दर पुत्र साथ में ऐसे सुशोभित है मानों सम्पूर्ण मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य)शरीर धारण किये हुये हों। मरकतमणि और सुवर्ण के रंग की सुन्दर जोड़ियों को देखकर देवताओं को कम प्रीति नहीं हुई (अर्थात बहुत ही प्रीति हुई)। फिर रामचन्द्र जी को देखकर वे हृदय में (अत्यन्त)हर्षित हुए और राजा की सराहना करके उन्होंने फूल बरसाये।

दो०- राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि ॥३१५॥

भावार्थ – नख से शिख तक श्री रामचन्द्रजी के सुन्दर रूप को बार बार देखतें हुए, पार्वती सहित शिवजी का शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं के जल से भर गये।

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा । तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा ॥
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए । मंगल सब सब भाँति सुहाए ॥
सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुंदरताई । कहि न जाइ मनहीं मन भाई ॥
बंधु मनोहर सोहहिं संगा । जात नचावत चपल तुरंगा ॥
राजकुअँर बर बाजि देखावहिं । बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं ॥
जेहि तुरंग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा । बाजि बेषु जनु काम बनावा ॥

भावार्थ-रामजी का मोर की कंठ की सी कान्तिवाला श्याम शरीर है । बिजली का अत्यन्त निरादर करने वाले प्रकाशमय सुन्दर (पीत) रंग के वस्त्र हैं । सब मंगल रूप और सब प्रकार से सुन्दर भाँति भाँति के विवाह के आभूषण शरीर पर सजाये हुए हैं । उनका सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा के समान और (मनोहर) नेत्र नवीन कमल को लजाने वाले हैं । सारी सुन्दरता अलौकिक है (माया की बनी नहीं है, दिव्य सच्चिदानन्द मयी है) । वह कही नहीं जा सकती, मन ही मन बहुत प्रिय लगती है । साथ में मनोहर भाई शोभित हैं, जो चंचल घोड़ों को नचाते हुए चले जा रहे हैं । राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ों को (उनकी चाल को) दिखला रहे हैं और वंश की प्रशंसा करने वाले मागध-भाट विरुदावली सुना रहे हैं । जिस घोड़े पर श्री राम जी विराजमान हैं, उसकी चेज चाल देखकर गरुड़ भी लजा जाते हैं । उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह सब प्रकार से सुन्दर है । मानो कामदेव ने ही घोड़े का भेष धारण कर लिया हो ।

छं० - जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहइ ।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई ।।
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे ।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे ।।

दो०- प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव ।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव ।।३१६।।

भावार्थ-मानों श्री रामचन्द्रजी के लिए कामदेव घोड़े का वेष बनाकर अत्यन्त शोभित हो रहा है । वह अपनी अवस्था, रूप, गुण, और चाल से समस्त लोगों को मोहित कर रहा है। सुन्दर मोती, मणि और माणिक लगी हुई जड़ाऊ जीन जगमगा रही है । उसकी सुन्दर घुँघरू लगी ललित लगाम को देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सभी ठगे जाते हैं । प्रभु की

इच्छा में अपने मन को लीन किये चलता हुआ वह घोड़ा बड़ी शोभा पा रहा है। मानों तारागण तथा बिजली से अलंकृत मेघ सुन्दर मोर को नचा रहा है।

जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहिं सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने॥
सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥
मुदित देवगन रामहिं देखी। नृपसमाज दुहुँ हरषु बिसेषी॥

भावार्थ- जिस श्रेष्ठ घोड़े पर श्री रामचन्द्रजी सवार हैं उसका वर्णन सरस्वती जी भी नहीं कर सकती हैं। शंकर जी रामचन्द्र जी के रूप में ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्हें अपने पन्द्रह नेत्र इस समय बहुत प्यारे लगने लगे। भगवान विष्णु ने जब प्रेम सहित श्रीराम को देखा, तब वे लक्ष्मी सहित मोहित हो गये। श्रीरामचन्द्रजी की शोभा देखकर ब्रह्मा जी बड़े प्रसन्न हुए पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे। देवताओं के सेनापति स्वामी कार्तिकेय के हृदय में बड़ा उत्साह है क्योंकि वे ब्रह्मा जी से ड्योढ़े (अर्थात् बारह नेत्रों) से राम दर्शन का सुन्दर लाभ उठा रहे हैं। सुजान इन्द्र (अपने हजार नेत्रों से) श्री रामचन्द्रजी को देख रहे हैं और गौतम जी के श्राप को अपने लिये परम हितकर मान रहे हैं। सभी देवता देवराज इन्द्र जी से ईर्ष्या कर रहे हैं और कह रहे हैं कि आज इन्द्र के समान भाग्यवान दूसरा नहीं है। श्रीरामचन्द्रजी को देखकर देवगण प्रसन्न हैं और दोंनो के समाज में विशेष हर्ष छा रहा है।

छं०- अति हरषु राजसमाज दुहु दिसि दुंदभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरिषि कहि जय जयति रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि हेतु मंगल साजहिं॥

दो०- सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि।
चली मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि॥३१७॥

भावार्थ- दोंनो ओर से राजसमाज में अत्यन्त हर्ष है और बड़े जोर से नगाड़े बज रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर और 'रघुकुलमणि राम की जय हो, जय हो,' कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस प्रकार बारात को आता हुआ जानकर, बहुत प्रकार के वाद्य-यन्त्र बजने लगे।

रानी सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर परछन की तैयारी करने लगीं। अनेक प्रकार से आरती सजाकर और समस्त मंगल द्रव्यों को यथायोग्य सँवारकर गजगामिनि (हाथी की सी चाल वाली) उत्तम स्त्रियाँ विधिपूर्वक परछन के लिए चलीं।

बिधुबदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदु मोचनि।
पहिरें बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजें सरीरा॥
सकल सुमंगल अंग बनाएँ। करहिं गान कलकंठि लजाएँ॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥
बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥
करहिं गान कल मंगल बानीं। हरष बिबस सब काहुँ न जानीं॥

भावार्थ-सभी स्त्रियाँ चन्द्रमुखी (चन्द्रमा के समान मुखवाली) और सभी मृगलोचनी (हरिण की सी आंखों वाली) हैं, और सभी अपने शरीर की शोभा से रति के गर्व को छुड़ाने वाली हैं। रंग-रंग की सुन्दर साड़ियां पहने हैं और शरीर पर सब आभूषण सजे हुए हैं। समस्त अंगों को सुन्दर मंगल पदार्थों से सजाये हुए वे कोयल को भी लजाती हुई (मधुर स्वर से) गान कर रही हैं। कंगन, करधनी और नूपुर बज रहे हैं। स्त्रियों की चाल देखकर कामदेव के हाथी भी लजा जाते हैं। अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। आकाश और नगर दोनों स्थानों में सुन्दर मंगलाचार हो रहे हैं। शची (इन्दाणी), सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती और जो स्वभाव से ही पवित्र सयानी देवांगनाएं थीं, ये सब कपट से सुन्दर स्त्री का भेष बनाकर रनिवास में जा मिलीं और मनोहर वाणि से मंगलगान करने लगीं। सब कोई हर्ष के विशेष वश थे, अतः किसी ने उन्हें पहचाना नहीं।

छं०- को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चली।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकल हियँ हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई॥

दो०- जो सुखु भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥३१८॥

भावार्थ-कौन किसे जाने पहचाने! आनन्द के वश हुई, सब दूल्ह बने हुए ब्रह्म का परछन करने चलीं। मनोहर गान हो रहा है, मधुर-मधुर नगाड़े बज रहे हैं, बड़ी अच्छी

शोभा है। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर सब स्त्रियां हृदय में हर्षित हुईं। उनके कमल सरीखे नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का जल उमड़ आया है और सुन्दर अंगों में पुलकावली छा गयी। श्रीरामन्द्रजी का वरवेश देखकर सीता जी की माता सुनयना जी के मन में जो सुख हुआ, उसे हजारों सरस्वती और शेष जी सौ कल्पों में भी नहीं कह सकते (अथवा लाखों सरस्वती और शेष लाखों कल्पों में भी नहीं कह सकते)।

नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥
पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥
दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥
समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥
नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनि न कोई॥
ऐहि बिधि रामु मंडपहिं आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥

भावार्थ- मंगल अवसर जानकर नेत्रों के जल को रोके हुए रानी प्रसन्न मन से परछन कर रही हैं। वेदों में कहे हुए तथा कुलाचार के अनुसार सभी व्यवहार रानी ने भलीं भांति किये। पञ्चशब्द (तन्त्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही, इन पाँचों प्रकार के बाजों के शब्द) पञ्च ध्वनि (वेद ध्वनि, बन्दि ध्वनि, जय ध्वनि, शंख ध्वनि और हूलू ध्वनि) और मंगलगान हो रहे हैं। नाना प्रकार के वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने (रानी ने) आरती करके अर्घ्य दिया। तब श्री राम जी ने मण्डप में गमन किया। दशरथ जी अपनी मण्डली सहित विराजमान हुए। उनके वैभव को देखकर लोकपाल भी लजा गये। समय समय पर देवता फूल बरसाते हैं और भूदेव (ब्राह्मण) समयानुकूल शान्तिपाठ कर रहे हैं। आकाश और नगर में शोर मच रहा है। अपनी-परायी कोई कुछ भी नहीं सुनता। इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी मण्डप में आए और अर्घ्य देकर आसन पर बैठाये गये।

छं०- बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतिक देखहीं।
अवलोकि रघु कुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं॥

दो०- नाऊ बारी भाट नट राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ॥३१९॥

भावार्थ-आसन पर बैठाकर, आरती करके, दूलह को देखकर स्त्रियां सुख पा रही हैं। वे ढेर के ढेर मणि, वस्त्र और गहने निछावर करके मंगल गा रहीं हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मण का वेष बनाकर कौतुक देख रहे हैं। वे रघुकुलरूपी कमल के प्रफूल्लित करने वाले सूर्य श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर अपना जीवन सफल जान रहे हैं। नाई, बारी, भाट और नट श्री रामचन्द्रजी की निछावर पाकर आनन्दित हो सिर नवाकर आशिष देते हैं। उनके हृदय में हर्ष समाता नहीं है।

मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं। करि बैदिक लौकिक सब रीती॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥
लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥
जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥
देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहु दिसि माची॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥

भावार्थ-वैदिक और सब लौकिक रीतियां करके जनक जी और दशरथ जी बड़े प्रेम से मिले। दोनों महाराज मिलते हुए बड़े ही शोभित हुए। कवि उनके लिये उपमा खोज-खोज कर लजा गये। जब कहीं भी उपमा नहीं मिली, तब हृदय में हार मानकर उन्होंने मन में यही उपमा निश्चित की कि इनके समान ये ही हैं। समधियों का मिलाप या परस्पर सम्बन्ध देखकर देवता अनुरक्त हो गये और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे। (वे कहने लगे) ''जब से ब्रह्मा जी ने जगत को उत्पन्न किया तब से हमने बहुत विवाह देखे सुने, परन्तु सब प्रकार से समान साज-समाज और बराबरी के (पूर्ण समतायुक्त) समधी तो आज ही देखे।'' देवताओं की सुन्दर सत्यवाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गयी। सुन्दर पावड़े और अर्घ्य देते हुए जनक जी दशरथ जी को मण्डप में ले गये।

छं०- मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

दो०- बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिब्य आसन सबहिं सब सन लही असीस॥३२०॥

भावार्थ- मण्डप को देखकर उसकी विचित्र रचना और सुन्दरता से मुनियों के मन भी हरे गये (मोहित हो गये)। सुजान जनक जी ने अपने हाथों से ला-लाकर सबके लिये सिंघासन रखा। उन्होंने अपने कुल के इष्ट देवता के समान वशिष्ट जी की पूजा की और विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया। विश्वामित्र जी की पूजा करते समय की परम प्रीति की रीति तो कहते ही नहीं बनती। राजा ने वामदेव आदि ऋषियों की प्रसन्न मन से पूजा की। सभी को दिव्य आसन दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥
आसन उचित दिए सब काहू। कहौं काह मुख एक उछाहू॥
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥
कपट बिप्र बर बेष बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥
पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचानें॥

भावार्थ- फिर उन्होंने कोशलाधीश राजा दशरथ की पूजा उन्हें ईश (महादेवजी) के समान जानकर की, कोई दूसरा भाव नहीं था। तदनन्तर (उनके सम्बन्ध से) अपने भाग्य और वैभव के विस्तार की सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बड़ाई की। राजा जनक जी ने सब बरातियों का समधी दशरथ जी के समान ही सब प्रकार से आदरपूर्वक पूजन किया और सब किसी को उचित आसन दिये। मैं एक मुख से उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ। राजा जनक ने दान, मान-सम्मान, विनय और उत्तम वाणी से सारी बरात का सम्मान किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो श्रीरघुनाथ जी का प्रभाव जानते हैं, वे कपट से ब्राह्मणों का सुन्दर वेष बनाये बहुत ही सुख पाते हुए सब लीला देख रहे थे। जनक जी ने उनको देवताओं के समान जानकर उनका पूजन किया और बिना पहिचाने भी उन्हें सुन्दर आसन दिये।

छं०- पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

दो०- रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥३२१॥

भावार्थ- कौन किसको जाने-पहचाने, सबको अपनी ही सुध भूली हुई है। आनन्द कन्द दूलह को देखकर दोनों ओर आनन्दमयी स्थिति हो रही है। सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामचन्द्रजी ने देवताओं को पहचान लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक आसन दिये। प्रभु का शील स्वभाव देखकर देवगण मन में बहुत आनन्दित हुए। श्रीरामचन्द्रजी के मुख रूपी चन्द्रमा की छबि सभी के सुन्दर नेत्र रूपी चकोर आदर पूर्वक पान कर रहे हैं। प्रेम और आनन्द कम नहीं है (अर्थात बहुत है)।

समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु मुनि आए॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥
बिप्र बधू कुलबृद्ध बोलाईं। करि कुल रीति सुमंगल गाईं॥
नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभायँ सुंदरी स्यामा॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारीं। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं॥
बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहिं चलीं लवाई॥

भावार्थ- समय देखकर वशिष्ठ जी ने सतानन्द जी को आदरपूर्वक बुलाया। वे सुनकर आदर के साथ आये। वशिष्ठ जी ने कहा-'अब जाकर राजकुमारी को शीघ्र ले आइये।' मुनि की आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले। बुद्धिमती रानी पुरोहित की वाणी सुनकर सखियों समेत बड़ी प्रसन्न हुई। ब्राह्मणों की स्त्रियों और कुल की बूढ़ी स्त्रियों को बुलाकर, उन्होंने कुलरीति करके सुन्दर मंगल गीत गाये। श्रेष्ठ देवांगनायें जो सुन्दर मनुष्य-स्त्रियों के वेष में हैं, सभी स्वभाव से ही सुन्दरी और श्यामा (सोलह वर्ष की अवस्था वाली हैं)। उनको देखकर रनिवास की स्त्रियां सुख पाती हैं और बिना पहचान के ही वे सबको प्राणों से भी प्यारी हो रही हैं। उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती के समान जानकर रानी बार-बार उनका सम्मान करती हैं। (रनिवास की स्त्रियां और सखियां) सीता जी का श्रृंगार करके, मण्डली बनाकर, प्रसन्न होकर उन्हें मण्डप में लिवा चलीं।

छं०- चलि ल्याइ सीतहिं सखीं सादर सीज सुमंगल भामिनीं।
नवसप्त साजें सुंदरीं सब मत्त कुंजर गामिनीं॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

दो०- सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥३२२॥

भावार्थ-सुन्दर मंगल का साज सजकर (रनिवास की) स्त्रियां और सखियां आदर सहित सीताजी को लिवा चलीं। सभी सुन्दरियां सोलहों श्रृंगार किये हुए मतवाले हाथियों की चाल से चलने वाली हैं। उनके मनोहर गान को सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देतें हैं और कामदेव की कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब और सुन्दर कंकण ताल की गति पर बज रहे हैं। सहज ही सुन्दरी सीता जी स्त्रियों के समूह में इस प्रकार शोभा पा रहीं हैं मानों छविरूपी ललनाओं के समूह के बीच साक्षात परम मनोहर शोभारूपी स्त्री सुशोभित हो।

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता॥
सबहि मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥
सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी॥ प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥
एहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥

भावार्थ-सीता जी की सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता, क्यों कि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूप की राशि और सब प्रकार से पवित्र सीता जी को बरातियों ने आते देखा। सभी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी को देख कर तो सभी पूर्णकाम (कृतकृत्य) हो गये। राजा दशरथ जी पुत्रों सहित हर्षित हुए। उनके हृदय में जितना आनन्द था, वह कहा नहीं जा सकता। देवता प्रणाम कर फूल बरसा रहे हैं। मंगलों की मूल मुनियों के आशीर्वाद की ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ों के शब्द से बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनन्द में मग्न हैं। इस प्रकार सीता जी मण्डप में आयीं। मुनिराज बहुत ही आनन्दित होकर शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसर की सब रीति व्यवहार और कुलाचार दोंनो कुलगुरुओं ने किये।

छं०- आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं॥ १॥

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
ऐहिं भाँति देव पुजाइ सीतहिं सुभग सिंघासनु दियो॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥ २॥

दो०- होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं ।।३२३।।

भावार्थ- कुलाचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरी जी, गणेश जी और ब्राह्मण की पूजा करा रहें हैं (अथवा ब्राह्मणों के द्वारा गौरी और गणेश की पूजा करवा रहे हैं)। देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, आशीर्वाद देते हैं और अत्यन्त सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस किसी भी मांगलिक पदार्थ की मुनि जिस समय भी चाह मात्र करते हैं, सेवकगण उसी समय सोने की परातों और कलशों में भरकर उन पदार्थों को लिये तैयार रहते हैं। स्वयं सूर्य देव प्रेम सहित अपने कुल की सब रीतियां बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओं की पूजा कराके, मुनियों ने सीता जी को सुन्दर सिंहासन दिया। श्री सीता जी और श्रीराम जी का आपस में एक दूसरे को देखना तथा उनका परस्पर प्रेम किसी को लख नहीं पड़ रहा है। जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और बाणी से भी परे है, उसे कवि क्योंकर प्रकट करे। हवन के समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुख से आहुति ग्रहण करते हैं और सारे वेद ब्राह्मण का वेष धरकर विवाह की विधियां बताते हैं।

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई ॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥
कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे ॥
निज कर मुदित रायँ अरु रानी। धरे राम के आगें आनी ॥
पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी ॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥

भावार्थ- जनक जी की जगद्विख्यात पटरानी और सीता जी की माता का बखान तो हो ही कैसे सकता है। सुयश, सुकृत (पुण्य), सुख और सुन्दरता सब को बटोरकर विधाता ने उन्हें संवार कर तैयार किया है। समय जानकर मुनियों ने उन्हें (सुनयना को)बुलवाया। मुनियों का आदेश पाते ही सुभाषिणी (सौभाग्यवती) स्त्रियां उन्हें आदर सहित ले आई। सुनयना जनक जी के बायें ओर ऐसी सुशोभित हो रही थी, जैसे पार्वती जी के विवाह के समय उनके माता-पिता पर्वतराज हिमालय और उनकी पत्नी मयना। पवित्र सुगन्धित जल से भरे सोने के कलश और मणियों की सुन्दर परातें राजा और रानी ने आनन्दित होकर अपने हाथों से लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रखीं। मुनि मंगल वाणी से वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाश से फूलों की झड़ी लग गयी है। दूल्हे को देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गये और उनके पवित्र चरणों को पखारने लगे।

छं०- लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली ।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ।।
जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं ।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजहीं ।।१।।

जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई ।
मकरंदु जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ।।
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं ।
ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं ।।२।।

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं ।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं ।।
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो ।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो ।।३।।

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई ।।
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं ।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरीं ।।४।।

दो०- जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान ।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान ।।३२४।।

भावार्थ- वे श्री राम जी के चरणकमलों को पखारने लगे, प्रेम से उनके शरीर में पुलकावली छा रही है । आकाश और नगर में होने वाले गान, नगाड़े और जय-जयकार की ध्वनि मानों चारों दिशाओं में उमड़ चली । जो चरण कमल कामदेव के शुत्र श्री शिव जी के हृदय रूपी सरोवर में सदा ही विराजते हैं ; जिनका एक बार भी स्मरण करने से मन में निर्मलता आ जाती हैं और कलियुग के सारे पाप भाग जाते हैं ; जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनि की स्त्री अहल्या ने, जो पापमयी थी, परम गति पायी ; जिन चरण कमलों का मकरन्द रस (गंगा जी) शिवजी के मस्तक पर विराजमान है ; जिनको देवता पतिव्रता की सीमा बतातें हैं ; मुनि और योगीजन अपने-अपने मन को भौंरा बना कर जिन चरण कमलों का सेवन करके मनोवान्छित गति प्राप्त करते हैं, उन्हीं चरणों को भाग्य के पात्र (बड़ भागी) जनक जी धो रहे हैं, यह देखकर सब जयजयकार कर रहे हैं । दोनों कुलों के गुरु वर और कन्या की हथेलियों को मिलाकर शाखोचार करने लगे । पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनन्द से भर गये । सुख के मूल दूलह को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनन्द से उमग उठा । राजाओं के अलंकार स्वरूप

महाराज जनक जी ने लोक और वेद की रीति को करके कन्यादान किया। जैसे हिमवान ने सिवजी को पार्वती और सागर ने विष्णु जी को लक्ष्मी जी दी थीं, वैसे ही जनक जी ने श्री रामचन्द्र जी को सीता जी समर्पित कीं, जिससे विश्व में सुन्दर नवीन कीर्ति छा गयी। विदेह (जनक जी) कैसे विनती करें। उस साँवली मूर्ति ने तो उन्हें सचमुच विदेह (देह की सुध-बुध से रहित) ही कर दिया। विधि पूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गई और भाँवरें होने लगीं। जय ध्वनि, वंदी ध्वनि, वेद ध्वनि, मंगलगान और नगाड़ों की ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं, और कल्पवृक्ष के फूलों को बरसा रहे हैं।

टिप्पणी— ऊपर के १६ पंक्ति के छंद में और इसी प्रकार के अगले दो छंदों में तुलसीदास ने पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में प्रचलित विवाह-पद्धति का बहुत ही सुन्दर और हृदय-ग्राही वर्णन किया है। पहले राजा जनक श्री रामचन्द्र जी का पद-प्रक्षालन करते हैं, फिर शाखोच्चार होता है और फिर पाणिग्रहण संस्कार। इसी प्रकार बाकी तीन भाइयों का विवाह हुआ। बेटियों को बिदा करते समय, जनक जी राजा दशरथ से विनय करते हैं कि ''इन लड़कियों को दासी समझकर, इन पर सदा अपनी कृपा बनाए रखियेगा।''

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥
राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥
दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥
प्रमुदित मुनिन्ह भावँरीं फेरीं। नेगसहित सब रीति निबेरीं॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥
अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥

भावार्थ—वर और कन्या सुन्दर भाँवरे दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक उन्हें देखकर नेत्रों का परम लाभ ले रहे हैं। मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ उपमा कहूँ वही थोड़ी होगी। श्री राम जी और श्री सीता जी की सुन्दर परछायी मणियों के खम्भों में जगमगा रही हैं, मानों कामदेव और रति बहुत से रूप धारण करके श्री रामजी के अनुपम विवाह को देख रहे हैं। उन्हें (कामदेव और रति को) दर्शन की लालसा और संकोच दोनों ही कम नहीं है (अर्थात बहुत है)। इसीलिये वे मानों बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं। सब देखने वाले आनन्दमय हो गये और जनक जी की भाँति सभी अपनी सुध भूल गये। मुनियों ने आनन्दपूर्वक भावरें फिरायीं और नेग सहित रीतियों को पूरा किया। श्री रामचन्द्र जी सीता जी के सिर में सिंदूर दे रहे हैं, यह शोभा किसी प्रकार भी कही नहीं जाती। मानों

कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भर कर अमृत के लाभ से साँप चन्द्रमा को भूषित कर रहा है। फिर वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी, तब दूल्ह और दुलहिन एक आसन पर बैठे।

टिप्पणी – ऊपर की चौपाई दस सम पंक्तियों की है। इसमें तुलसीदास ने दो सुन्दर उपमाएँ दी हैं। एक तो सप्तपदी के समय अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करते हुए, श्री राम और सीता जी की परछायी मणियों के खम्भों में जगमगा रही हैं। मानों कामदेव और रति दर्शन की लालसा से बार बार प्रकट होते हैं। दूसरी, जब श्री राम सीता जी की सिंदूर से मांग भरते हैं। यहाँ श्री राम के हाथ को कमल की, सेंदूर को पराग की, श्री राम की श्याम भुजा को साँप की और सीता जी के मुख को चन्द्रमा की उपमा दी गयी हैं।

छं०– बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु फल नए।।
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा।।१।।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै।।
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई।।२।।

जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै।।
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी।।३।।

अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं।।
सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं।।४।।

दो०– मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।।३२५।।

भावार्थ–श्री राम जी और जानकी जी श्रेष्ठ आसन पर बैठे, उन्हें देखकर दशरथ जी मन में बहुत आनन्दित हुए। अपने सुकृत रूपी कल्पवृक्ष में नये फल (आये) देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनों में उत्साह भर गया;सब ने कहा कि श्री

रामचन्द्र जी का विवाह हो गया। जीभ एक है और यह मंगल महान है ; फिर भला, वह वर्णन करके किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है। तब वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर जनक जी ने विवाह का समान सजाकर माण्डवी, श्रुतिकीर्ति और उर्मिला इन तीनों राजकुमारियों को बुला लिया। कुशध्वज की बड़ी कन्या भाण्डवी को, जो गुण, शील, सुख और शोभा की रूप ही थी, राजा जनक ने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरत जी को ब्याह दिया। जानकी जी की छोटी बहिन उर्मिला जी को, सब सुन्दरियों में शिरोमणि जानकर, सब प्रकार से सम्मान करके, लक्ष्मण जी को ब्याह दिया। और जिनका नाम श्रुतिकीर्ति है और जो सुन्दर नेत्रों वाली, सुन्दर मुखवाली, सब गुणों की खान और रूप तथा शील में उजागर हैं, उनको राजा ने शत्रुघ्न को ब्याह दिया। दूल्ह और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ी को देखकर सकुचते हुए, हृदय में हर्षित हो रहे हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुन्दरता की सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर दूल्हों के साथ एक ही मण्डप में ऐसी शोभा पा रही हैं, मानों जीव के हृदय में चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों स्वामियों (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म) सहित विराजमान हों। सब पुत्रों को बहुओं सहित देखकर अवध नरेश दशरथ जी ऐसे आनन्दित हैं मानों वे राजाओं के शिरोमणि क्रियाओं (यज्ञ क्रिया, श्रद्धा क्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया)सहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गये हों।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी ॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी ॥
कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा सी ॥
बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा ॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने ॥
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा ॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गयी, उसी रीति से सब राजकुमार विवाहे गये। दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती, सारा मण्डप सोने और मणियों से भर गया है। बहुत से कम्बल, वस्त्र और भाँति भाँति के विचित्र रेशमी कपड़े, जो थोड़ी कीमत के न थे (अर्थात बहुमूल्य थे) तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ और गहनों से सजी कामधेनु सरीखी गायें (आदि) अनेकों वस्तुयें हैं, जिनकी गिनती कैसे की जाय। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता ; जिन्होंने देखा है वही जानते हैं। उन्हें देखकर लोकपाल भी सिहा गये। अवध राजा दशरथ जी ने सुख मानकर प्रसन्न चित्त से सब कुछ ग्रहण किया। उन्होंने वह दहेज का समान याचकों को , जो जिसे अच्छा लगा दे दिया। जो बच रहा, वह जनवासे में चला आया। तब जनक जी हाथ जोड़ कर सारी बारात का सम्मान करते हुये कोमल वाणी से बोले।

छं०—सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कैं ।
प्रमुदित महा मुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै ।।
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किएँ ।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिएँ ।।१।।

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों ।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों ।।
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए ।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए ।।२।।

ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई ।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई ।।
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए ।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए ।।३।।

बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले ।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले ।
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै ।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै ।।४।।

दो०— पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न ।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन ।।३२६।।

भावार्थ—आदर, दान, विनय और बड़ाई के द्वारा सारी बारात का सम्मान कर, राजा जनक ने महान आनन्द के साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर (लाड़ करके)मुनियों के समूह की पूजा एवं बन्दना की । सिर नवाकर देवताओं को मनाकर, राजा हाथ जोड़ कर सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं (वे प्रेम से ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावों को कोई कुछ देकर कैसे सन्तुष्ट हो सकता है) । क्या एक अञ्जलि देने से कहीं समुद्र सन्तुष्ट हो सकता है । फिर जनक जी भाई सहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथ जी से स्नेह, शील और सुन्दर प्रेम में सानकर मनोहर वचन बोले—" हे राजन ! आपके साथ सम्बन्ध हो जाने से हम सब प्रकार से बड़े हो गये । इस राजपाट सहित हम दोनों को आप बिना दाम के लिए हुए सेवक ही समझियेगा । इन लड़कियों को टहलनी मानकर, नई-नई दया करके पालन कीजियेगा । हमने आपको यहाँ बुलवा लिया । यह हमारी धृष्टता (ढिटाई)थी । इस ढिटाई को कृपया क्षमा कीजियेगा ।" फिर सूर्य-कुल के भूषण दशरथ जी

ने समधी जनक जी को सम्पूर्ण सम्मान का निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि वे सम्मान के भण्डार ही हो गये)। उनकी परस्पर की विनय कही नहीं जाती, दोनों के हृदय प्रेम से परिपूर्ण हैं। देवतागण फूल बरसा रहे हैं। राजा दशरथ जनवासे को चले। नगाड़े की ध्वनि, जयध्वनि और वेद की ध्वनि हो रही हैं, आकाश और नगर दोनों में खूब कौतूहल हो रहा है (आनन्द छा रहा है)। तब मुनीश्वर की आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मंगलगान करती हुई दुलहिनों सहित दूल्हों को लिवाकर कोहबर (अर्थात राजा जनक के कुलदेवताके पूजनार्थ) को चलीं। सीता जी बार-बार राम जी को देखती हैं और सकुचा जाती हैं; पर उनका मन नहीं सकुचाता। प्रेम के प्यासे उनके नेत्र सुन्दर मछलियों की छवि को हर रहे हैं।

स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे॥
पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे॥

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी का साँवला शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवों को लजाने वाली है। महावर से युक्त चरण कमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियों के मन रुपी भौंरे सदा छाये रहते हैं। पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रातःकाल के सूर्य और बिजली की ज्योति को हरे लेती है। कमर में सुन्दर किंकिणी और कटिसूत्र है। विशाल भुजाओं में सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। पीला जनेऊ महान शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठी चित्त को चुरा लेती है। ब्याह के सब साज सजे हुए, वे शोभा पा रहे हैं। चौड़ी छाती पर हृदय पर पहनने के सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। पीला दुपट्टा, काँखा सोती (जनेऊ की तरह)शोभित है, जिसके दोनों छोरों पर मणि और मोती लगे हैं। कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं, कानों में सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सारी सुन्दरता का खजाना है। सुन्दर भौहें और मनोहर नासिका है। ललाट पर तिलक तो सुन्दरता का घर ही है। जिसमें मंगलमय मोती और मणि गुँथे हुए हैं, ऐसा मनोहर मौर माथे पर सोह रहा है।

छं०—गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं ।
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं ।।
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं ।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं ।।१।।

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै ।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै ।।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं ।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं ।।२।।

निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की ।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी ।।
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं ।
बर कुअँरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं ।।३।।

तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा ।
चिरु जिअहुँ जोरीं चारु चार्‌यो मुदित मन सबहीं कहा ।।
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी ।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी।।४।।

दो०— सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास ।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास ।।३२७।।

भावार्थ— सुन्दर मौर में बहुमूल्य मणियाँ गुँथी हुई हैं , सभी अंग चित्त को चुराये लेते हैं । सब नगर की स्त्रियाँ और देव सुन्दरियाँ दूल्हा को देखकर तिनका तोड़ रही हैं (उनकी बलैयाँ ले रही हैं) और मणि वस्त्र तथा आभूषण निछावर करके आरती उतार रही हैं । और मंगल गान कर रही हैं । देवता फूल बरसा रहे हैं और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं । सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियों को कोहबर (कुल देवता के स्थान) में लायीं और अत्यन्त प्रेम से मंगल गीत गा गाकर लौकिक रीति करने लगीं । पार्वती जी श्री रामचन्द्र जी को लहकौर (वर-वधु का परस्पर मान देना)सिखाती हैं । रनिवास हासविलास के आनन्द में मग्न है । (श्री राम जी और सीता जी को देख देखकर) सभी जन्म का परम फल प्राप्त कर रही हैं । अपने हाथ की मणियों में सुन्दर रूप के भण्डार श्री रामचन्द्र जी की परछाहीं देखें रही हैं । (यह देखकर)जानकी जी दर्शन में वियोग होने के भय से बाहुरूपी लता को और दृष्टि को हिलाती डुलाती नहीं हैं । उस समय

के हँसी-खेल और विनोद का आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनन्तर वर-कन्याओं को सब सुन्दर सखियाँ जनवासे को लिवा चलीं। उस समय नगर और आकाश में, जहाँ सुनिये वहीं, आशीर्वाद की ध्वनि सुनाइ दे रही है, और महान आनन्द छाया है। सभी ने प्रसन्न मन से कहा कि सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरञ्जीवी हों। योगीराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओं ने प्रभु श्री रामचन्द्र जी को देखकर दुन्दुभी बजाई और हर्षित होकर फूलों की वर्षा करते हुए तथा जय हो, जय हो कहते हुए वे अपने-अपने लोक को चले। तब सब चारों कुमार बहुओं सहित पिता जी के पास आये। ऐसा मालुम होता था, मानों शोभा, मंगल और आनन्द से भरकर जनवासा उमड़ पड़ा है।

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥
सादर सब के पाय पखारे। जथा जोगु पीठन्ह बैठारे॥
धोये जनक अवध पति चरना। सीलु सनेहु जाहि नहि बरना॥
बहुरि राम पद पंकज धोये। जे हर हृदय कमल महुं गोए॥
तीनिउ भाई राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥
आसन उचित सबहि नृप दीन्हें। बोलि सूप कारी सब लीन्हें॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥

भावार्थ—फिर बहुत प्रकार की रसोइ बनी। जनक जी ने बारातियों को बुला भेजा। राजा दशरथ जी ने पुत्रों सहित गमन किया। अनुपम बस्त्रों के पावड़े पड़ते जाते हैं। आदर के साथ सबके चरण धोये और सबको यथायोग्य पीढ़ों पर बैठाया। तब जनक जी ने अवधपति दशरथ जी के चरण धोए। उनका शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों को धोया, जो श्री शिव जी के हृदय कमल में छिपे रहते हैं। तीनों भाइयों को श्री रामचन्द्र जी के ही समान जानकर जनक जी ने उनके भी चरण अपने हाथ से धोये। राजा जनक ने सभी को उचित आसन दिये, और सब परसने वालों को बुला लिया। आदर के साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियों के पत्तों से सोने की कील लगाकर बनाई गई थीं।

दो०— सूपोदन सुरभि सरपि सुंन्दर स्वादु पुनीत।
छनु महुं सबकें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥३२८॥

भावार्थ—चतुर और विनीत रसोइये सुन्दर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गाय का (सुगन्धित) घी क्षण भर में सबके सामने परस गये।

पंच कवल करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥

परुसन लगे सुआर सुजाना । बिंजन बिबिध नाम को जाना ॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई । एक एक बिधि बरनि न जाई ॥
छरस रुचिर बिंजन बहुजाती । एक एक रस अगनित भाँती ॥
जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी । लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥
समय सुहावनि गारि बिराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥
एहि बिधि सबहीं भोजनु कीन्हा । आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥

भावार्थ– सब लोग पंचकौर करके (अर्थात् प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा, इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुये पहले पांच ग्रास लेकर) भोजन करने लगे । गाली का गाना सुनकर वे अत्यन्त प्रेममग्न हो गये । अनेकों तरह के अमृत के समान स्वादिष्ट पकवान परसे गये, जिनका बखान नहीं हो सकता । चतुर रसोइये नाना प्रकार के व्यंजन परसने लगे, उनका नाम कौन जानता है । चार प्रकार के (चर्व्य, सोष्य, लेह्य, पेया अर्थात् चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीकर खाने योग्य) भोजन की बिधि कही गयी है । उसमें से एक-एक बिधि के इतने पदार्थ बने थे कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता । छहों रसों के बहुत तरह से सुन्दर स्वादिष्ट व्यंजन हैं । एक-एक रस के अनगिनत प्रकार के बने हैं । भोजन करते समय पुरुष और स्त्रियों के नाम ले-लेकर स्त्रियाँ मधुर ध्वनि से गाली दे रही हैं (गाली गा रहीं हैं)। समय की सुहावनी गाली शोभित हो रही है । उसे सुनकर समाज सहित राजा दशरथ जी हँस रहे हैं । इस रीति से सभी ने भोजन किया, और तब सबको आदर सहित आचमन (हाथ-मुँह धोने के लिए जल) दिया गया ।

दो०– देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज ।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज ।।३२९।।

भावार्थ–फिर पान देकर जनकजी ने समाज सहित दशरथ जी का पूजन किया । सब राजाओं के सिरमौर चक्रवती श्री दशरथ जी प्रसन्न होकर जनवासे को चले ।

नित नूतन मंगल पुर माहीं । निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं ॥
बड़े भोर भूपति पति जागे । जाचक गुन गन गावन लागे ॥
देखि कुअँर बर बधुन्ह समेता । किमि कहि जात मोदु मन जेता ॥
प्रातक्रिया करि गे गुरू पाहीं । महाप्रमोदु प्रेम मन माहीं ॥
करि प्रनामु पूजा कर जोरी । बोले गिरा अमिअ जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा । भयउं आज मैं पूरन काजा ॥
अब सब बिप्र बोलाई गोसाईं । देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥
सुनि गुर करि महिपाल बड़ाई । पुनि पठए मुनि बृंद बोलाई ॥

भावार्थ—जनकपुर में नित नये मंगल हो रहे हैं। दिन और रात पल के समान बीत जाते हैं। बड़े सबेरे राजाओं के मुकुटमणि दशरथ जी जागे। याचक उनके गुण समूह का गान करने लगे। चारों कुमारों को सुन्दर वधुओं सहित देखकर उनके मन में जितना आनन्द है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है ? वे प्रातः क्रिया करके गुरु वशिष्ठ के पास गये। उनके मन में महान् आनन्द और प्रेम भरा है। राजा प्रणाम और पूजन करके, फिर हाथ जोड़कर मानों अमृत में डुबोयी हुई वाणी बोले— " हे मुनिराज ! सुनिये, आपकी कृपा से आज मैं पूर्णकाम हो गया। हे स्वामिन्! आप सब ब्राह्मणों को बुलाकर उनको सब तरह (गहनों-कपड़ों से) सजी हुई गायें दीजिये।" यह सुनकर गुरु जी ने राजा की बड़ाई करके फिर मुनिगणों को बुला लिया।

दो०— बामदेव अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तप सालि ।।३३०।।

भावार्थ—तब बामदेव, देवर्षि नारद, बाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियों के समूह के समूह आये।

दंड प्रनाम सबहिं नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे ।।
चारि लच्छ बर धेनु मगाई। काम सुरभि सम सील सुहाई ।।
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं ।।
करत बिनय बहुबिधि नरनाहू। लहेउं आजु जग जीवन लाहू ।।
पाई असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा ।।
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रूचि रबिकुल नंदन ।।
चले पढ़त गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुलनाथा ।।
एहि बिधि राम बिवाह उछाहू। सकइ न बरनि सहस मुख जाहू ।।

भावार्थ—राजा ने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिये। चार लाख उत्तम गाये मंगवाई, जो कामधेनु के समान अच्छे स्वभाव वाली और सुहावनी थीं। उन सबको सब प्रकार से (गहनों-कपड़ों से) सजाकर राजा ने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणों को दिया। राजा बहुत तरह से विनती कर रहे हैं कि जगत् में मैंने आज ही जीने का लाभ पाया। (ब्राह्मणों से)आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। फिर याचकों के समूहों को बुलवा लिया और सबकों उनकी रूचि पूछकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाहा सो)सूर्यकुल को आनन्दित करने वाले दशरथ जी ने दिये। वे सब गुणगान करते और सूर्य कुल के स्वामी की 'जय हो, जय हो, जय हो,' कहते हुए चले। इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी के विवाह के उत्सव का वर्णन सहस्त्र मुंख वाले शेष जी भी नहीं कर सकते।

दो०— बार-बार कौसिक चरन सीस नाई कह राउ ।
यह सब सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ ।।३३१।।

भावार्थ—बार-बार विश्वामित्र जी के चरणों में सिर नवाकर राजा कहते हैं– "हे मुनिराज ! यह सब सुख आपके ही कृपा कटाक्ष का प्रसाद है।"

जनक सनेहु सीलु करतूती । नृप सब भाँति सराह बिभूती ।।
दिन उठि बिदा अवधपति मागा । रखहिं जनकु सहित अनुरागा ।।
नित नूतन आदरु अधिकाई । दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई ।।
नित नव नागर अनंद उछाहू । दसरथ गवनु सुहाई न काऊ ।।
बहुत दिवस बीते एहि भाँति । जनु सनेह रज बंधे बराती ।
कौसिक सतानंद तब जाई । कहा बिदेह नृपति समुझाई ।।
अब दशरथ कहुं आयसु देहू । जद्यपि छांड़ि न सकहु सनेहू ।।
भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाए । कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ।।

भावार्थ—राजा दशरथ जी जनक जी के स्नेह, सील, करनी और ऐश्वर्य की सब प्रकार से सराहना करते हैं । प्रतिदिन (सबेरे)उठकर अयोध्या नरेश विदा मांगते हैं पर जनक जी उन्हें प्रेम से रख लेते हैं । आदर नित्य नया बढ़ता जाता है । प्रतिदिन हजारों प्रकार से मेहमानी होती है । नगर में नित्य नया आनन्द और उत्साह रहता है । दशरथ जी का जाना किसी को नहीं सुहाता । इस प्रकार बहुत दिन बीत गए, मानों बराती प्रेम की रस्सी से बंध गये हैं । तब विश्वामित्र जी और शतानन्द जी ने जाकर राजा जनक को समझा कर कहा । "यद्यपि आप स्नेह (वश उन्हें) नहीं छोड़ सकते तो भी अब दशरथ जी को आज्ञा दीजिये "। 'हे नाथ ! बहुत अच्छा' कहकर जनक जी ने मंत्रियों को बुलवाया । वे आये और 'जय जीव' कहकर उन्होंने मस्तक नवाया ।

दो०— अवधनाथु चाहत चलन भीतरकरहु जनाउ ।
भए प्रेम बस सचिव सुनि बिप्र सभासदु राउ ।।३३२।।

भावार्थ—जनक जी ने कहा–'अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर रनिवास में खबर कर दो ।' यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक भी प्रेम के वश हो गये ।

पुरबासी सुनि चलिहि बराता । बूझत बिकल परस्पर बाता ।।
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने । मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने ।।
जहँ जहँ आवत बसे बराती । तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ।।
बिबिध भाँति मेवा पकवाना । भोजन साजु न जाइ बखाना ।।
भरि भरि बसहँ अपार कहारा । पठईं जनक अनेक सुसारा ।।
तुरग लाख रथ सहस पचीसा । सकल सँवारे नख अरु सीसा ।।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे । जिन्हहि देखि दिसि कुँजर लाजे ॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना । महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना ॥

भावार्थ—जनकपुर वासियों ने सुना कि बारात जायगी, तब वे व्याकुल होकर एक दूसरे से बात पूंछ्ने लगे । जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गये मानो सन्ध्या के समय कमल सकुचा गए हों । आते समय जहां-जहां बाराती ठहरे थे, वहां-वहां बहुत प्रकार का सीधा (रसोई का सामान)भेजा गया । अनेकों प्रकार के मेवे, पकवान और भोजन की सामग्री जो बखानी नहीं जा सकती, अनगिनत बैलों और कहारों पर भर-भर कर (लाद-लाद कर)भेजी गयी । साथ ही जनक जी ने अनेकों सुन्दर शय्याएं भेजी । एक लाख घोड़े और पचीस हजार रथ, सब नख से शिखा तक (ऊपर से नीचे तक)सजाये हुये। दस हजार सजे हुए मतवाले हाथी, जिन्हें देखकर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं ; गाड़ियों में भर-भर कर सोना, वस्त्र और रत्न जवाहिरात और भैंस, गाय तथा और भी नाना प्रकार की चीजें दीं ।

दो०— दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि ।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि ।।३३३।।

भावार्थ— (इस प्रकार) जनक जी ने फिर से अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालों के लोगों की सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ती थी ।

सबु समाजु एहि भाँति बनाई । जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥
चलिहि बरात सुनत सब रानीं । बिकल मीनगन जनु लघु पानीं ॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं । देइ असीस सिखावनु देहीं ॥
होएहु संतत पियहि पिआरी । चिरु अहिबात असीस हमारी ॥
सासु ससुर गुर सेवा करेहू । पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥
अति सनेह बस सखीं सयानी । नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी ॥
सादर सकल कुऑरि समुझाई । रानिन्ह बार बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहिं महतारीं । कहहिं बिरंचि रचीं कत नारीं ॥

भावार्थ—इस प्रकार सब समान सजाकर राजा जनक ने अयोध्यापुरी को भेज दिया । बारात चलेगी, यह सुनते हुए सब रानियाँ ऐसी विकल हो गई मानों थोड़े जल में मछलियां छटपटा रही हों । वे बार-बार सीता जी को गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं—'तुम सदा अपने पति की प्यारी होओ, तुम्हारा सोहाग अचल हो, यही हमारी आशिष है । सास, ससुर और गुरू की सेवा करना । पति का सुख देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना ।' सयानी सखियां अत्यन्त स्नेह के वश कोमल वाणी से स्त्रियों के धर्म सिखाती हैं । आदर के साथ सब पुत्रियों को (स्त्रियों के धर्म)समझाकर रानियों ने बार-बार उन्हें हृदय से लगाया । माताएं फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्मा जी ने स्त्रीजाति को क्यों रचा।

दो०— तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानु कुल केतु ।
चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु ।।३३४।।

भावार्थ— उसी समय सूर्यवंश के पताका स्वरूप श्री रामचन्द्र जी भाइयों सहित प्रसन्न होकर विदा कराने के लिए जनक जी के महल को चले ।

चारिउ भाइ सुभायँ सुहाए । नगर नारि नर देखन धाए ।।
कोउ कह चलन चहत हहिं आजू । कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू ।।
लेहु नयन भरि रूप निहारी । प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ।।
को जानै केहिं सुकृत सयानी । नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी ।।
मरनसीलु जिमि पाव पिऊषा । सुरतरु लहै जनम कर भूखा ।।
पाव नारकी हरिपदु जैसें । इन्ह कर दरसनु हम कहँ तैसें ।।
निरखि राम सोभा उर धरहू । निज मन फनि मूरति मनि करहू ।।
एहि बिधि सबहि नयन फलु देता । गए कुअँर सब राज निकेता ।।

भावार्थ— स्वभाव से ही सुन्दर चारों भाइयों को देखने के लिए नगर के स्त्री पुरूष दौड़े । कोई कहता है— "आज ये जाना चाहते हैं । विदेह ने विदाई का सब सामान तैयार कर लिया है । राजा के चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानों के (मनोहर) रूप को नेत्र भर कर देख लो ! हे सयानी ! कौन जाने किस पुण्य से विधाता ने इन्हें यहां लाकर हमारे नेत्रों का अतिथि किया है । मरने वाला जिस तरह अमृत पा जाय, जन्म का भूखा कल्पवृक्ष पा जाय और नरक में रहने वाला (या नरक के योग्य)जीव जैसे भगवान के परमपद को प्राप्त हो जाय, हमारे लिये इनके दर्शन वैसे ही हैं । श्री रामचन्द्र जी की शोभा को निरखकर हृदय में धर लो । अपने मन को सांप और इनकी मूर्ति को मणि बना लो ।" इस प्रकार सबको नेत्रों का फल देते हुए सब राजकुमार राजमहल में गये ।

दो०— रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठा रनिवासु ।
करहिं निछावरि आरती महा मुदित मन सासु ।।३३५।।

भावार्थ— रूप के समुद्र सब भाइयों को देखकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा । सासुएँ महान् प्रसन्न मन से निछावर और आरती करती हैं ।

देखि राम छबि अति अनुरागीं । प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं ।।
रही न लाज प्रीति उर छाई । सहज सनेहु बरनि किमि जाई ।।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए । छरस असन अति हेतु जेवाँए ।।
बोले रामु सुअवसरु जानी । सील सनेह सकुचमय बानी ।।
राउ अवधपुर चहत सिधाए । बिदा होन हम इहाँ पठाए ।।
मातु मुदित मन आयसु देहू । बालक जानि करब नित नेहू ।।
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू । बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू ।।
हृदयँ लगाईं कुअँरि सब लीन्ही । पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही ।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी की छवि देखकर वे प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गईं और प्रेम के विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं । हृदय में प्रीति छा गई । इससे लज्जा नहीं रह गयी । उनके स्वाभाविक स्नेह का वर्णन किस तरह किया जा सकता है । उन्होंने भाइयों सहति श्री राम जी को उबटन करके स्नान कराया और बड़े प्रेम से षटरस भोजन कराया। सुअवसर जानकर श्रीरामचन्द्र जी शील, स्नेह और संकोच भरी वाणी बोले– ''महाराज अयोध्यापुरी को चलना चाहते हैं, उन्होंने हमें विदा होने के लिए यहाँ भेजा है । हे माता ! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाये रखियेगा ।'' इन वचनों को सुनते ही रनिवास उदास हो गया । सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकतीं । उन्होंने सब कुमारियों को हृदय से लगा लिया और उनके पतियों को सौंपकर बहुत विनती की ।

छं०– करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै ।
बलि जाऊँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै ।।
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी ।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी ।।

सो०– तुम्ह परिपूरन काम जान सिरोमनि भावप्रिय ।
जन गुन गाहक राम दोष दलन करुनायतन ।।३३६।।

भावार्थ– विनती करके उन्होंने सीता जी को श्री रामचन्द्र जी को समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा– ''हे तात! हे सुजान ! मैं बलि जाती हूं, तुमको सब की गति (हाल)मलूम है । परिवार को, पुरवासियों को, मुझको, और राजा को सीता प्राणों के समान प्रिय है, ऐसा जानियेगा । हे तुलसी के स्वामी ! इसके शील और स्नेह को देखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा । तुम पूर्णकाम हो, सुजान शिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यारा है)। हे राम ! तुम भक्तों के गुणों को ग्रहण करने वाले और दया के धाम हो ।''

अस कहि रही चरन गहि रानी । प्रेम पंक जनु गिरा समानी ।।
सुनि सनेहसानी बर बानी । बहुबिधि राम सासुं सनमानी ।।

राम बिदा मागत कर जोरी । कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई । भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥
मंजु मधुर मूरति उर आनी । भई सनेह सिथिल सब रानी ॥
पुनि धीरजु धरि कुअँरि हँकारीं । बार बार भेटहिं महतारीं ॥
पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी । बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी ॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई । बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई ॥

भावार्थ-- ऐसा कहकर रानी चरणों को पकड़ कर (चुप)रह गयीं । मानो उनकी वाणी प्रेमरूपी दलदल में समा गयी हो । स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने सास का बहुत प्रकार से सम्मान किया । तब श्री रामचन्द्र जी ने हाथ जोड़कर विदा मांगते हुए बार-बार प्रणाम किया । आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयों सहित श्री रघुनाथ जी चले । श्री रामचन्द्र जी की मधुर मूर्ति को हृदय में लाकर सब रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गयीं । फिर धीरज धरकर कुमारियों को बुलाकर माताएं बार-बार उन्हें (गले लगाकर) भेंटने लगीं । पुत्रियों को पहुंचाती हैं, फिर लौटकर मिलती हैं । परस्पर में कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बढ़ी (अर्थात बहुत प्रीति बढ़ी)। बार-बार मिलती हुई माताओं को सखियों ने अलग कर दिया । जैसे हाल की ब्यायी हूई गाय को उसके बालक बछड़े (या बछिया)से अलग कर दें ।

दो०-- प्रेमबिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु ।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु ।।३३७।।

भावार्थ-- सब स्त्री पुरूष और सखियों सहित सारा रनिवास प्रेम के विशेष वश हो रहा है । (ऐसा लगता है)मानो जनकपुर में करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है ।

सुक सारिका जानकी ज्याए । कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए ॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही । सुनि धीरजु परिहरइ न केही ॥
भए बिकल खग मृग एहि भाँती । मनुज दसा कैसे कहि जाती ॥
बंधु समेत जनकु तब आए । प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥
सीय बिलोकि धीरता भागी । रहे कहावत परम बिरागी ॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी । मिटी महामरजाद ग्यान की ॥
समुझावत सब सचिव सयाने । कीन्ह बिचारु न अवसर जाने ॥
बारहिं बार सुता उर लाई । सजि सुंदर पालकीं मगाई ॥

भावार्थ– जानकी ने जिन तोता और मैना को पाल-पोस कर बड़ा किया था और सोने के पिंजड़ों में रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं–'वैदेही कहां हैं ?' उनके ऐसे बचनों को सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा (अर्थात् सबका धैर्य जाता रहा) । जब पशु और पक्षी तक इस तरह विकल हो गए, तब मनुष्यों की दशा कैसे कही जा सकती है । तब भाई सहित जनक जी वहां आए । प्रेम से उमड़कर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया । वे परम वैराग्यवान कहलाते थे, पर सीता जी को देखकर उनका भी धीरज भाग गया । राजा ने जानकी जी को हृदय से लगा लिया । (प्रेम के स्वभाव से)ज्ञान की महान मर्यादा मिट गयी (ज्ञान का बांध टूट गया)। सब बुद्धिमान मन्त्री उन्हें समझाते हैं । तब राजा ने विषाद करने का समय न जानकर विचार किया । बार बार पुत्रियों को हृदय से लगाकर सुन्दर सजी हुई पालकियाँ मंगवायीं ।

दो०– प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस ।
कुऔंरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस ।।३३८।।

भावार्थ– सारा परिवार प्रेम में विवश है । राजा ने सुन्दर मुहूर्त जानकर, सिद्धि सहित गणेश जी का स्मरण करके, कन्याओं को पालकी पर चढ़ाया ।

बहुबिधि भूप सुता समुझाई । नारिधरमु कुलरीति सिखाई ।।
दासीं दास दिए बहुतेरे । सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ।।
सीय चलत व्याकुल पुरबासी होहिं सगुन सुभ मंगल रासी ।।
भूसुर सचिव समेत समाजा । संग चले पहुँचावन राजा ।।
समय बिलोकि बाजने बाजे । रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ।।
दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हे । दान मान परिपूरन कीन्हे ।।
चरन सरोज धूरि धरि सीसा । मुदित महीपति पाइ असीसा ।।
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना । मंगलमूल सगुन भए नाना ।।

भावार्थ– राजा ने पुत्रियों को बहुत प्रकार से समझाया और उन्हें स्त्रियों का धर्म और कुल की रीति सिखायी । बहुत से दास दासी दिये, जो सीता जी के प्रिय और विश्वासपात्र सेवक थे । सीता जी के चलते समय जनक पुरवासी व्याकुल हो गये । मंगल की राशि शुभ शकुन हो रहे हैं । ब्राह्मण और मन्त्रियों के समाज सहित राजा जनक जी उन्हें पहुँचाने के लिये साथ चले । समय देखकर बाजे बजने लगे । बरातियों ने रथ, हाथी और घोड़े सजाये। दशरथ जी ने सब ब्राह्मणों को बुला लिया और उन्हें दान और सामान से परिपूर्ण कर दिया।

उनके चरण कमलों की धूलि सिरपर धरकर और आशिष पाकर राजा आनन्दित हुए, और गणेश जी का स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया। मंगलों के मूल अनेकों शकुन हुए।

दो०— सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान ।।३३९।।

भावार्थ— देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं। और उप्सराएँ गान कर रही हैं। अवधपति दशरथ जी नगाड़े बजाकर आनन्द पूर्वक अयोध्यापुरी को चले।

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल मागने टेरे ।।
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे ।।
बार बार बिरिदावलि भाषी। फिरे सकल रामहि उर राखी ।।
बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं ।।
पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए ।।
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े ।।
तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधाँ जनु बोरी ।।
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई ।।

भावार्थ— राजा दशरथ जी ने विनती करके प्रतिष्ठित जनों को लौटाया और आदर के सहित सब मंगनों को बुलवाया। उनको गहने-कपड़े, घोड़े-हाथी दिए और प्रेम से पुष्ट करके सब को सम्पन्न अर्थात बलयुक्त कर दिया। वे सब बार बार विरुदावली (कुल कीर्ति)बखान कर और श्री रामचन्द्र जी को हृदय में रखकर लौटे। कोसलाधीश दशरथ जी बार-बार लौटाने को कहते हैं, परन्तु जनक जी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते। दशरथ जी ने फिर सुहावने वचन कहे–'हे राजन् बहुत दूर आ गए, अब लौटिये।' फिर राजा दशरथ जी रथ से उतर कर खड़े हो गए। उनके नेत्रों में प्रेम का प्रवाह बढ़ आया (प्रेमाश्रुओं की धारा बह चली)। तब जनक जी हाथ जोड़कर मानों स्नेह रूपी अमृत में डुबोकर वचन बोले– ''मैं किस तरह बना कर (किन शब्दों में)विनती करूँ। हे महाराज ! आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है।''

दो०— कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति ।।३४०।।

भावार्थ– अयोध्यानाथ दशरथ जी ने अपने स्वजन समधी का सब प्रकार से सस्मान किया। उनके आपस के मिलन में अत्यन्त विनय थी और इतनी प्रीति थी जो हृदय में समाती न थी।

मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा ॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुन निधि सब भ्राता ॥
जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए ॥
राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा ॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई ॥

भावार्थ– जनक जी ने मुनिमण्डली को सिर नवाया और सभी से आशीर्वाद पाया। फिर आदर के साथ वे रूप, शील और गुणों के निधान सब भाइयों से अपने दामादों से मिले। और सुन्दर कमल के समान हाथों को जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानों प्रेम से ही जन्में हों। ''हे राम जी ! मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ। आप मुनियों और महादेव जी के मनरूपी मानसरोवर के हंस हैं। योगी लोग जिनके लिये क्रोध, मोह ,ममता और मद को त्याग कर योगसाधन करते हैं। जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणों की राशि हैं। जिनको मन सहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते, जिनकी महिमा को वेद 'नेति' कहकर वर्णन करता है, और जो (सच्चिदानन्द)तीनों कालों में एक रस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार)रहते हैं।

दो०– नयन विषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल ॥३४१॥

भावार्थ– वे ही समस्त सुखों के मूल (आप)मेरे नेत्रों के विषय हुए। ईश्वर के अनुकूल होने पर जगत में जीव को सब लाभ ही लाभ है।

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥
होहिं सहस दस सारद सेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा ॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा ॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें ॥

बार बार मागउँ कर जोरें । मनु परिहरैं चरन जनि भोरें ॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे । पूरनकाम रामु परितोषे ॥
करि बर बिनय ससुर सनमाने । पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ॥
बिनती बहुरि भरत सन कीन्ही । मिलि सप्रेमु पुनि आसिष दीन्ही ॥

भावार्थ— आपने मुझे सभी प्रकार से बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पों तक गणना करते रहें, तो भी हे रघुनाथ जी ! मेरे सौभाग्य और आपके गुणों की कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती । मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बल पर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं । मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणों को न छोड़े ।" जनक जी के श्रेष्ठ वचनों को सुनकर, जो मानों प्रेम से पुष्ट किए हुए थे, पूर्णकाम श्री रामचन्द्र जी सन्तुष्ट हुए । उन्होंने सुन्दर विनती करके पिता दशरथ, गुरु विश्वामित्र और कुलगुरु वशिष्ठ के समान जानकर ससुर जनक जी का सम्मान किया । फिर जनक जी ने भरत जी से विनती की और प्रेम के साथ मिलकर फिर उन्हें आशीर्वाद दिया।

दो०— मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस ।
भए परसपर प्रेमबस फिरि फिरि नावहिं सीस ।।३४२।।

भावार्थ— फिर राजा ने लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न जी से मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। वे परस्पर प्रेम के वश होकर बार-बार सिर नवाने लगे ।

बार बार करि बिनय बड़ाई । रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई । चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई ॥
सुनु मुनीस बर दरसन तोरें । अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें ॥
जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं । करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥
सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी । सब सिधि तव दरसन अनुगामी ॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई । फिरे महीसु आसिषा पाई ॥
चली बरात निसान बजाई । मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी । पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥

भावार्थ— जनक जी की बार-बार विनती और बड़ाई करके श्री रघुनाथ जी सब भाइयों के साथ चले । जनक जी ने जाकर विश्वामित्र जी के चरण पकड़ लिये और उनके चरणों की रज को सिर और नेत्रों से लगाया । (उन्होंने कहा) "हे मुनीश्वर ! सुनिये आपके

सुन्दर दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मन में ऐसा विश्वास है। जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं परन्तु (असम्भव समझकर) जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं, हे स्वामी ! वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया ; सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनों की अनुगामिनी अर्थात् पीछे-पीछे चलने वाली हैं।'' इस प्रकार बार-बार विनती की, और सिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे। डंका बजाकर बारात चली। छोटे-बड़े सभी समुदाय प्रसन्न हैं। (रास्ते के)गाँवों के स्त्री-पुरुष श्री रामचन्द्र जी को देखकर नेत्रों का फल पाकर सुखी होते हैं।

दो०— बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत ।।३४३।।

भावार्थ— बीच बीच में सुन्दर मुकाम करती हुई, तथा मार्ग के लोगों को सुख देती हुई, वह बरात पवित्र दिन में अयोध्यापुरी के समीप आ पहुँची।

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे ।।
झाँझि बिरव डिंडिमीं सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई ।।
पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता ।।
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे ।।
गलीं सकल अरगजाँ सिंचाई। जहँ तहँ चौकें चारु पुराई ।।
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना ।।
सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदंब तमाला ।।
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी ।।

भावार्थ— नगाड़ों पर चोटे पड़ने लगीं, सुन्दर ढोल बजने लगे, भेरी और शंख की बड़ी आवाज हो रही है, हाथी-घोड़े गरज रहे हैं। विशेष शब्द करने वाली झाँझें, सुहावनी डफलियों तथा रसीले राग से शहनाइयाँ बज रही हैं। बारात को आती हुई सुनकर नगर निवासी प्रसन्न हो गये। सब के शरीरों पर पुलकावली छा गयी। सब ने अपने-अपने सुन्दर घरों, बाजारों, गलियों, चौराहों और नगर के द्वारों को सजाया। सारी गलियां अरगजे से सिंचायी गयी, जहाँ-तहाँ सुन्दर चौक पुराये गये। तोरणों, ध्वजा-पताकाओं और मंडपों से बाज़ार ऐसा सजा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसिरी, कदम्ब और तमाल के वृक्ष लगाये गये। वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष (फलों के भार से) पृथ्वी को छू रहे हैं। उन वृक्षों के थाले भी मणियों से जटित बड़ी सुन्दर और कुशल कारीगरी से बनाये गये।

दो०— बिबिध भाँति मंगल कलस गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबर पुरी निहारि।।३४४।।

भावार्थ— अनेक प्रकार के मंगल-कलश घर-घर सजाकर बनाये गये हैं। श्री रघुनाथ जी की पुरी (अयोध्या)को देखकर ब्रह्मा आदि देवता सिहाते हैं।

भूप भवनु तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मनु मोहा।।
मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई।।
जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह छाए ।।
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही।।
जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि।।
सकल सुमंगल सजें आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती।।
भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई।।
कौसल्यादि राम महतारीं। प्रेमबिबस तन दसा बिसारीं।।

भावार्थ— उस समय राजमहल अत्यन्त शोभित हो रहा था। उसकी रचना देखकर कामदेव का भी मन मोहित हो जाता था। मंगल शकुन, मनोहरता, ऋद्धि, सिद्धि, सुख, सुहावनी सम्पत्ति और सब प्रकार से उत्साह (आनन्द) मानों सहज-सुन्दर शरीर धर-धर कर दशरथ जी के घर में छा गये हैं। श्री रामचन्द्र जी और सीता जी के दर्शनों के लिये भला, कहिये, किसे लालसा न होगी। सुहागिनी स्त्रियां झुंड-की-झुंड मिलकर चलीं, जो अपनी छबि से कामदेव की स्त्री रति का भी निरादर कर रही हैं। सभी सुन्दर मंगल द्रव्य एवं आरती सजाए हुए गा रही हैं, मानों सरस्वती जी ही बहुत से वेष धारण किये गा रही हैं। राजमहल में (आनन्द के मारे)शोर मच रहा है। उस समय के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता है। कौसल्यादि श्री रामचन्द्र जी की सब माताएँ प्रेम के विशेष वश होने से शरीर की सुध भूल गयीं।

दो०— दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि।।३४५।।

भावार्थ— गणेश जी और त्रिपुरारि शिवजी का पूजन करके उन्होंने ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया। वे ऐसी परम प्रसन्न हुई मानों अत्यन्त दरिद्री चारों पदार्थ पा गया हो।

मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता ।।
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं ।।

बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल मुदित सुमित्राँ साजे ॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला ॥
अच्छत अंकुर लोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा ॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुन जनु नीड़ बनाए ॥
सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी ॥
रचीं आरतीं बहुत बिधाना। मुदुत करहिं कल मंगल गाना ॥

भावार्थ– सुख और महान् आनन्द से विवश होने के कारण सब माताओ के शरीर शिथिल हो गये हैं। उनके चरण चलते नहीं है। श्री रामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये वे अत्यन्त अनुराग में भरकर परछन का सब सामान सजाने लगीं। अनेकों प्रकार के बाजे बजते थे। सुमित्रा जी ने आनन्दपूर्वक मंगल साज सजाये। हल्दी, दूध, दही, पत्ते, फूल, पान और सुपारी आदि मंगल की मूल वस्तुएँ, तथा अक्षत (चावल), अँखुए, गोरोचन, लावा और तुलसी की सुन्दर मंजरियाँ सुशोभित हैं। नाना रंगों से चित्रित किये हुए सुहावने स्वर्ण कलस ऐसे मालूम होते हैं मानों कामदेव के पक्षियों ने घोसले बनाये हों। शकुन की सुगन्धित वस्तुएँ बखानी नहीं जा सकती। सब रानियाँ सम्पूर्ण मंगल साज रही हैं। बहुत प्रकार की आरती बनाकर के, आनन्दित हुई, सुन्दर मंगलगान कर रही हैं।

दो०– कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवति गात।।३४६।।

भावार्थ– सोने के थालों को मांगलिक वस्तुओं से भरकर अपने कमल के समान (कोमल) हाथों में लिए हुए माताएँ आनन्दित होकर परछन करने चलीं। उनके शरीर पुलकावली से छा गये हैं।

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमंडु जनु ठयऊ ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं ॥
मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे ॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥
दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा ॥
सुर सुगंध सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी ॥
समउ जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा ॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा ॥

भावार्थ-- धूप के धूएँ से आकाश ऐसा काला हो गया मानों सावन के बादल घुमड़-घुमड़ कर छा गये हों।देवता कल्पवृक्ष के फूलों की मालाएँ बरसा रहे हैं । वे ऐसा लगती हैं मानों बगुलों की पाँति मन को (अपनी ओर)खींच रही हों । सुन्दर मणियों से बने बंदनवार ऐसे मालूम होते हैं, मानों इन्द्र धनुष सजाये हों । अटारियों पर सुन्दर और चपल स्त्रियां प्रकट होती और छिप जाती हैं (आती-जाती हैं) । वे ऐसी जान पड़ती हैं मानों बिजलियाँ चमक रही हों। नगाड़ों की ध्वनि मानों बादलों की घोर गर्जना है। याचक गण पपीहे, मेढ़क और मोर हैं । देवता पवित्र सुगन्ध रूपी जल बरसा रहे हैं, जिससे खेती के समान नगर के सब स्त्री-पुरुष सुखी हो रहे हैं। (प्रवेश का)समय जानकर गुरु वशिष्ठ जी ने आज्ञा दी । तब रघुकुल मणि महाराज दशरथ जी ने शिवजी, पार्वती जी और गणेश जी का स्मरण करके समाज सहित आनन्दित होकर नगर में प्रवेश किया।

दो०-- होहिं सगुन बरषहिं सुमन सुर दुंदुभीं बजाइ।
बिबुध बधू नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाइ।।३४७।।

भावार्थ-- शकुन हो रहे हैं । देवता दुन्दुभी बजा-बजा कर फूल बरसा रहे हैं । देवताओं की स्त्रियाँ आनन्दित होकर सुन्दर मंगल गीत गा-गाकर नाच रही हैं।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जसु तिमु लोक उजागर।।
जय धुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिसि सुनिअ सुमंगल सानी।।
बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे।।
बने बराती बरनि न जाहीं। महा मुदित मन सुख न समाहीं।।
पुरबासिन्ह तब राय जोहारे। देखत रामहि भए सुखारे।।
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा।।
आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुअँर बर चारी।।
सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी।।

भावार्थ-- मागध, सूत, भाट और चतुर नट तीनों लोकों के उजागर (सब को प्रकाश देने वाले परम प्रकाशस्वरूप)श्री रामचन्द्र जी का यश गा रहे हैं । जय ध्वनि, तथा वेद की निर्मल श्रेष्ठ वाणी मंगल से सनी हुई दिशाओं में सुनाई पड़ रही है । बहुत से बाजे बजने लगे। आकाश में देवता और नगर में लोग सब प्रेम में मग्न हैं। बराती ऐसे बने- ठने हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता । सब परम आनन्दित हैं, सुख उनके मन में समाता नहीं है । तब अयोध्यावासियों ने राजा को जोहार (बन्दना)की। श्री रामचन्द्र जी को देखते ही वे

सुखी हो गये। सब मणियाँ और वस्त्र निछावर कर रहे हैं। नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरा है और शरीर पुलकित है। नगर की स्त्रियाँ आनन्दित होकर आरती कर रहीं हैं और सुन्दर चारों कुमारों को देखकर हर्षित हो रही हैं। पालकियों के सुन्दर परदे हटा हटा कर, वे दुलहिनों को देखकर सुखी होती हैं।

दो०— एहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार।।३४८।।

भावार्थ— इस प्रकार सब को सुख देते हुए राजद्वार पर आये। माताएँ आनन्दित होकर बहुओं सहित कुमारों का परछन कर रही हैं।

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा।।
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती।।
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी।।
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी।।
सखीं सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही।।
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा।।
देखि मनोहर चारिउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढँढोरीं।।
देत न बनहिं निपट लघु लागीं। एकटक रहीं रूप अनुरागीं।।

भावार्थ— वे बार-बार आरती कर रही हैं। उस प्रेम और महान आनन्द को कौन कह सकता है। अनेकों प्रकार के आभूषण, रत्न और वस्त्र तथा अगणित प्रकार की अन्य वस्तुएँ निछावर कर रही हैं। बधुओं सहित चारों पुत्रों को देखकर माताएँ परमानन्द में मग्न हो गयीं। सीता जी और श्री रामजी की छबि को बार-बार देखकर वे जगत में अपने जीवन को सफल मानकर आनन्दित हो रही हैं। सखियाँ सीता जी के मुख को बार-बार देखकर अपने पुण्यों की सराहना करती हुई गान कर रही हैं। देवता क्षण-क्षण में फूल बरसाते, नाचते-गाते तथा अपनी-अपनी सेवा समर्पण करते हैं। चारों मनोहर जोड़ियों को देखकर सरस्वती ने सारी उपमाओं को खोज डाला, पर कोई उपमा देते नहीं बनी, क्योंकि उन्हें सभी बिल्कुल तुच्छ जान पड़ीं। तब हार कर वे भी श्री रामजी के रूप में अनुरक्त होकर एकटक देखती रह गयीं।

दो०— निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत।।३४९।।

भावार्थ– वेद की विधि और कुल की रीति करके, अर्घ्य-पाँवड़े देती हुई, बहुओं समेत सब पुत्रों को, परछन करके, माताएँ महल में लिवा चलीं।

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए।।
तिन्ह पर कुअँरि कुअँर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे।।
धूप दीप नैबेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि।।
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यंजन चारू चामर सिर ढरहीं।।
बस्तु अनेक निछावरि होहीं। भरीं प्रमोद मातु सब सोहीं।।
पावा परम तत्व जनु जोगीं। अमृतु लहेउ जनु संतत रोगीं।।
जनम रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा।।
मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई।।

भावार्थ– स्वाभाविक ही सुन्दर चार सिंहासन थे, जो मानों कामदेव ने ही अपने हाथ से बनाये थे। उन पर माताओं ने राजकुमारियों और राजकुमारों को बैठाया और आदर के साथ उनके पवित्र चरण धोये। फिर वेद की विधि के अनुसार मंगलों के निधान दुल्ह और दुलहिनों की धूप, दीप और नैवेद आदि के द्वारा पूजा की। माताएँ बार-बार आरती कर रही हैं और वर-बधुओं के सिरों पर सुन्दर पंखे तथा चँवर ढुल रहे हैं। अनेकों वस्तुएँ निछावर हो रही हैं। सभी माताएँ आनन्द से भरी हुई ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो योगी नें परम तत्व को प्राप्त कर लिया। सदा के रोगी ने मानो अमृत पा लिया। जन्म का दरिद्री मानों पारस पा गया। अंधे को सुन्दर नेत्रों का लाभ हुआ। गूंगे के मुख में मानों सरस्वती आ बिराजीं और शूरवीर ने मानों युद्ध में विजय पा ली।

दो०– एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु।।३५०।। (क)

लोक रीति जननीं करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं।।३५०।। (ख)

भावार्थ– इन सुखों से भी सौ करोड़ गुना बढ़कर आनन्द माताएँ पा रही हैं। क्योंकि रघुकुल के चन्द्रमा श्री राम जी विवाह करके भाइयों सहित घर आए हैं। माताएँ लोकरीति करती हैं और दुल्हे-दुलहिनें सकुचाते हैं। इस महान आनन्द और विनोद को देखकर श्री रामचन्द्र जी मन-ही-मन मुसकरा रहे हैं।

देव पितर पूजे बिधि नीकी । पूजीं सकल बासना जी की ॥
सबहि बंदि मागहिं बरदाना । भाइन्ह सहित राम कल्याना ॥
अंतरहित सुर आसिष देहीं । मुदित मातु अंचल भरि लेहीं ॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे । जान बसन मनि भूषन दीन्हे ॥
आयसु पाइ राखि उर रामहि । मुदित गए सब निज निज धामहि ॥
पुर नर नारि सकल पहिराए । घर घर बाजन लगे बधाए ॥
जाचक जन जचहिं जोइ जोई । प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई ॥
सेवक सकल बजनिआ नाना । पूरन किए दान सनमाना ॥

भावार्थ– मन की सभी वासनाएँ पूरी हुई जानकर देवता और पितरों का भली-भाँति पूजन किया । सब की बन्दना करके माताएँ यही बरदान माँगती हैं कि भाइयों सहित श्री रामजी का कल्याण हो । देवता छिपे हुए (अन्तरिक्ष से) आशीर्वाद दे रहे हैं और माताएँ आनन्दित होकर आँचल भर ले रही हैं । तदनन्तर राजा ने बरातियों को बुलवा लिया और उन्हें सवारियां, वस्त्र, मणि (रत्न) और आभूषणादि दिये । आज्ञा पाकर श्री रामजी को हृदय में रखकर, वे सब आनन्दित होकर अपने अपने घर गये । नगर के समस्त स्त्री पुरुषों को राजा ने कपड़े और गहने पहनाये । घर-घर बधावे बजने लगे । याचक जो-जो माँगते हैं, विशेष प्रसन्न होकर राजा उन्हें वही-वही देते हैं । सम्पूर्ण सेवकों और बाजें बालों को राजा ने नाना प्रकार के दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया ।

दो०– देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ ।
तब गुर भूसुर सहित गृहँ गवनु कीन्ह नरनाथ ।।३५१।।

भावार्थ– सब जोहार (वन्दन)करके आशीष देते हैं और गुण समूहों की कथा गाते हैं। तब गुरू और ब्राह्मणों सहित राजा दशरथ जी ने महल में गमन किया ।

जो बसिष्ट अनुसासन दीन्ही । लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ॥
भूसुर भीर देखि सब रानी । सादर उठीं भाग्य बड़ जानी ॥
पाय पखारि सकल अन्हवाए । पूजि भली बिधि भूप जेवाँए ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे ॥
बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी । रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी ॥

भीतर भवन दीन्ह बर बासू । मन जोगवत रह नृपु रनिवासू ॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी । कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥

भावार्थ– वशिष्ठ जी ने जो आज्ञा दी, उसे लोक और वेद की विधि के अनुसार राजा ने आदरपूर्वक किया । ब्राह्मणों की भीड़ देखकर, अपना बड़ा भाग्य जानकर, सब रानियाँ आदर के साथ उठीं । चरण धोकर उन्होंने सब को स्नान कराया और राजा ने भली-भाँति पूजन करके, उन्हें भोजन कराया । आदर, दान और प्रेम से पुष्ट हुए वे सन्तुष्ट मन से आशीर्वाद देते हुये चले । राजा ने गाधि-पुत्र विश्वामित्र जी की बहुत प्रकार से पूजा की और कहा– "हे नाथ ! मेरे समान अन्य दूसरा कोई नहीं है ।" राजा ने उनकी बहुत प्रशंसा की और रानियों सहित उनकी चरण धूलि को ग्रहण किया । उन्हें महल के भीतर ठहरने को उत्तम स्थान दिया, जिसमें राजा और सब रनिवास उनका मन जोहता रहे (अर्थात् जिसमें राजा और महल की सारी रानियाँ स्वयं उनकी इच्छानुसार उनके आराम की ओर दृष्टि रख सकें)।

दो०– बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु ।
पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु ।।३५२।।

भावार्थ– बहुओं सहित सब राजकुमार और सब रानियों समेत राजा बार-बार गुरूजी के चरणों की बन्दना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं ।

बिनय कीन्हि उर अति अनुरागें । सुत संपदा राखि सब आगें ॥
नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा । आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा ॥
उर धरि रामहि सीय समेता । हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता ॥
बिप्रबधू सब भूप बोलाई । चैल चारु भूषन पहिराई ॥
बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं । रुचि बिचारि पहिरावनि दीन्हीं ॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं । रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं ॥
प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने । भूपति भली भाँति सनमाने ॥
देव देखि रघुबीर बिबाहू । बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू ॥

भावार्थ– राजा ने अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदय से पुत्रों को और सारी सम्पत्ति को सामने रखकर (उन्हें स्वीकार करने के लिये)विनती की । परन्तु मुनिराज ने (पुरोहित के नाते) केवल अपना नेग माँग लिया और बहुत तरह से आशीर्वाद दिया । फिर सीता जी सहित श्री रामचन्द्र जी को हृदय में रखकर गुरू वशिष्ठ जी हर्षित होकर अपने स्थान को गये । राजा

ने सब ब्राह्मणों की स्त्रियों को बुलाया और उन्हें सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनाये। फिर सब सुआसिनियों को (नगर की सौभाग्यवती बहन, बेटी, भानजी, आदि को)बुलवा लिया और उनकी रुचि समझकर (उसी के अनुसार)उन्हे पहिरावनी दी। नेगी लोग सब अपना-अपना नेग-जोग लेते और राजाओं के शिरोमणि दशरथ जी उनकी इच्छा अनुसार देते हैं। जिन मेहमानों को प्रिय और पूजनीय जाना, उनका राजा ने भलीभाँति सम्मान किया। देवगण श्री रघुनाथ का विवाह देखकर उत्सव की प्रशंसा करके फूल बरसाते हुए—

दो०— चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु प्रेम न हृदयँ समाइ ।।३५३।।

भावार्थ— नगाड़े बजाकर और (परम) सुख प्राप्तकर देवता अपने-अपने लोकों को चले। वे एक दूसरे से श्री रामजी का यश कहते जाते हैं। हृदय में प्रेम समाता नहीं हैं।

सब बिधि सबहि समदि नरनाहू। रहा हृदयँ भरि पूरि उछाहू।।
जहँ निवासु तहँ पगु धारे। सहित बहूटिन्ह कुअँर निहारे।।
लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुखु जेता।।
बधू सप्रेम गोद बैठारीं। बार बार हियँ हरषि दुलारीं।।
देखि समाजु मुदित रनिवासू। सब कें उर अनंद कियो बासू।।
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू।।
जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई।।
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी।।

भावार्थ— सब प्रकार से सब का प्रेमपूर्वक भली-भाँति आदर-सत्कार कर लेने पर, राजा दशरथ जी के हृदय में पूर्ण उत्साह (आनन्द)भर गया। जहाँ रनिवास था, वे वहाँ पधारे और बहुओं समेत उन्होंने कुमारों को देखा। राजा ने आनन्द सहित पुत्रों को गोद में ले लिया। उस समय राजा को जो सुख हुआ उसे कौन कह सकता है। फिर पुत्र व वधुओं को प्रेम सहित गोदी में बैठाकर बार-बार हृदय में हर्षित होकर उन्होंने उनका दुलार लाड़-चाव किया। यह समाज (समारोह) देखकर रनिवास प्रसन्न हो गया। सब के हृदय में आनन्द ने निवास कर लिया। तब राजा ने जिस तरह विवाह हुआ था वह सब कहा। उसे सुन-सुनकर सब किसी को हर्ष होता है। राजा जनक के गुण, शील, महत्व, प्रीति की रीति और सुहावनी सम्पत्ति का वर्णन राजा ने भाँट की तरह बहुत प्रकार से किया। जनक जी की करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं।

दो०— सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुर ग्याति ।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति ।।३५४।।

भावार्थ— पुत्रों सहित स्नान करके राजा ने ब्राह्मणों, गुरू और कुटुम्बियों को बुलाकर अनेक प्रकार के भोजन किये । (यह सब करते-करते)पाँच घड़ी रात बीत गयी ।

मंगलगान करहिं बर भामिनि । भै सुखमूल मनोहर जामिनि ।।
अँचइ पान सब काहूँ पाए । स्रग सुगंध भूषित छबि छाए ।।
रामहि देखि रजायसु पाई । निज निज भवन चले सिर नाई ।।
प्रेमु प्रमोदु बिनोदु बड़ाई । समउ समाजु मनोहरताई ।।
कहि न सकहिं सत सारद सेसू । बेद बिरंचि महेस गनेसू ।।
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी । भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी ।।
नृप सब भाँति सबहि सनमानी । कहि मृदु बचन बोलाई रानी ।।
बधू लरिकनीं पर घर आईं । राखेहु नयन पलक की नाईं ।।

भावार्थ— सुन्दर स्त्रियाँ मंगलगान कर रही हैं। वह रात्रि सुख की मूल और मनोहारिणी हो गयी। सबने आचमन कर पान खाये और फूलों की माला सुगन्धित द्रव्य आदि से विभूषित होकर सब शोभा से छा गये । श्री रामचन्द्र जी को देखकर और आज्ञा पाकर सब सिर नवाकर अपने-अपने घर को चले । वहाँ के प्रेम, आनन्द, विनोद, महत्व, समय, समाज और मनोहरता को सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेवजी और गणेष जी भी नहीं कह सकते । फिर भला मैं उसे किस प्रकार से बखान कर कहूँ ! कहीं केचुआ भी धरती को सिरपर ले सकता है । राजा ने सब का सब प्रकार से सम्मान करके, कोमल वचन कहकर रानियों को बुलाया और कहा— ''बहुएँ अभी बच्ची हैं, पराये घर आयी हैं । इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलक रखते हैं (जैसे पलकें नेत्रों की सब प्रकार से रक्षा करती हैं और सुख पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना)।

दो०— लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ ।
अस कहि गे बिश्रामगृहँ राम चरन चितु लाइ ।।३५५।।

भावार्थ— लड़के थके हुए नींद के वश हो रहे हैं, इन्हें ले जाकर शयन कराओ ।'' ऐसा कहकर राजा श्री रामचन्द्र जी के चरणों में मन लगाकर विश्राम भवन में चले गये ।

भूप बचन सुनि सहज सुहाए । जरित कनक मनि पलँग डसाए ।।
सुभग सुरभि पय फेन समाना । कोमल कलित सुपेतीं नाना ।।

उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं ॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा ॥
सेज रुचिर रचि रामु उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढ़ाए ॥
अग्या पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही ॥
देखि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता ॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥

भावार्थ– राजा के स्वभाव से ही सुन्दर वचन सुनकर (रानियों ने)मणियों से जड़े सुवर्ण के पलंग बिछवाये। (गद्दों पर)गौ के दूध के फेन के समान सुन्दर एवं कोमल अनेक सफेद चादरें विछायीं। सुन्दर तकियों का वर्णन नहीं किया जा सकता। मणियों के मन्दिरों में फूलों की मालाएँ और सुगन्ध द्रव्य सजे हैं। सुन्दर रत्नों के दीपकों और सुन्दर चँदोवे की शोभा कहते नहीं बनती। जिसने उन्हें देखा हो, वही जान सकता है। इस प्रकार सुन्दर शय्या सजाकर (माताओं ने)श्री रामचन्दर जी को उठाया और प्रेम सहित पलंग पर पौढ़ाया। श्री रामजी ने बार-बार भाइयों को आज्ञा दी। तब वे भी अपनी शय्याओं पर सो गये। श्री राम जी के साँवले सुन्दर कोमल अंगों को देखकर सब माताएँ प्रेम सहित वचन कर रही हैं– ''हे तात ! मार्ग में जाते हुए तुमने बड़ी भयावनी ताड़का राक्षसी को किस प्रकार से मारा।

दो०– घोर निसाचर बिकट भट समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

भावार्थ– बड़े भयानक राक्षस, जो विकट योद्धा थे और जो युद्ध में किसी को कुछ नहीं गिनते थे, उन दुष्ट मारीच, और सुबाहु को सहायकों सहित तुमने कैसे मारा।

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी ॥
मख रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरु प्रसाद सब बिद्या पाई ॥
मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महुँ सिव धनु तोरा ॥
बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई ॥
सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपाँ सुधारे ॥
आजु सुफल जग जनमु हमारा। देखि तात बिधुबदन तुम्हारा ॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखें ॥

भावार्थ– हे तात ! मैं बलैया लेती हूँ, मुनि की कृपा से ही ईश्वर ने तुम्हारी बहुत सी बलाओं को टाल दिया । दोनों भाइयों ने यज्ञ की रखवाली करके गुरु जी के प्रसाद से सब विद्याएँ पायीं । चरणों की धूलि लगते ही मुनिपत्नी अहल्या तर गयी । विश्व भर में यह कीर्ति पूर्णरीति से व्याप्त हो गई । कच्छप की पीठ, बज्र और पर्वत से भी कठोर शिवजी के धनुष को राजाओं के समाज में तुमने तोड़ दिया । विश्वविजय के यश और जानकी को पाया, और सब भाइयों को ब्याह कर घर आये । तुम्हारे सभी कर्म अमानुषी हैं (मनुष्य की शक्ति के बाहर हैं), जिन्हें केवल विश्वामित्र जी की कृपा ने सुधारा है (सम्पन्न किया है)। हे तात, तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर आज हमारा जगत में जन्म लेना सफल हुआ । तुमको बिनादेखे जो दिन बीते हैं, उनको ब्रह्मा गिनती में न लावें (हमारी आयु में शामिल न करें)।''

दो०– राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन ।
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन ।।३५७।।

भावार्थ– विनय भरे उत्तम वचन कहकर श्री रामचन्द्र जी ने सब माताओं को संतुष्ट किया । फिर शिव जी, गुरु और ब्राह्मणों के चरणों का स्मरण कर नेत्रों को नींद के वश किया (अर्थात् वे सो गये) ।

नीदउँ बदन सोह सुठि लोना । मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना ।।
घर घर करहिं जागरन नारीं । देहिं परसपर मंगल गारीं ।।
पुरी बिराजति राजति रजनी । रानीं कहहिं बिलोकहु सजनी ।।
सुंदर बधुन्ह सासु लै सोई । फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई ।।
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे । अरुनचूड़ बर बोलन लागे ।।
बंदि मागधन्हि गुनगन गाए । पुरजन द्वार जोहारन आए ।।
बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता । पाइ असीस मुदित सब भ्राता ।।
जननिन्ह सादर बदन निहारे । भूपति संग द्वार पगु धारे ।।

भावार्थ– नींद में भी उनका अत्यन्त सलोना मुखड़ा ऐसा सोह रहा था मानो सन्ध्या के समय का लाल कमल सो रहा है । स्त्रियाँ घर-घर जागरण कर रही हैं । आपस में (एक दूसरी को)मंगलमयी गालियाँ दे रही हैं । रानियाँ कहती हैं–'हे सजनी देखो, रात्रि की कैसी शोभा है, जिससे अयोध्यापुरी विशेष शोभित हो रही है ।' (यो कहती हुई)सासुएँ सुन्दर बहुओं को लेकर सो गयीं, मानों सर्पों ने अपने सिर की मणियों को हृदय में छिपा लिया है । प्रातः काल पवित्र ब्रह्म-मुहूर्त में प्रभु जागे । मुर्गे सुन्दर बोलने लगे । भाट और मागधों ने गुणों का गान किया, तथा नगर के लोग द्वार पर जोहार करने को आये । ब्राह्मणों,

देवताओं, गुरू, पिता और माताओं की वन्दना करके आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माताओं ने आदर के साथ उनके मुखों को देखा। फिर वे राजा के साथ दरवाजे (के बाहर) पधारे।

दो०— कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ।।३५८।।

भावार्थ— स्वभाव से ही पवित्र चारों भाइयों ने सब शौचादि से निवृत्त होकर पवित्र सरयू नदी में स्नान किया और प्रातक्रिया (सन्ध्या-वन्दनादि)करके पिता के पास आये।

भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई।।
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी।।
पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए।।
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि रामु दोउ गुरु अनुरागे।।
कहहिं बसिष्टु धरम इतिहासा। सुनहिं महीसु सहित रनिवासा।।
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ट बिपुल बिधि बरनी।।
बोले बामदेउ सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माची।।
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू।।

भावार्थ— राजा ने देखते ही उन्हें हृदय से लगा लिया। तदनन्तर वे आज्ञा पाकर हर्षित होकर बैठ गये। श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कर, और नेत्रों के लाभ की बस यही सीमा है, ऐसा अनुमानकर, सारी सभा शीतल हो गयी (अर्थात सब के तीनों प्रकार के ताप सदा के लिये मिट गये)। फिर मुनि वशिष्ठ जी और विश्वामित्र जी आये। राजा ने उनको सुन्दर आसनों पर बैठाया, और पुत्रों सहित उनकी पूजा करके उनके चरणों लगे। दोनों गुरू श्री रामचन्द्र जी को देखकर प्रेम में मुग्ध हो गये। वशिष्ठ जी धर्म के इतिहास कह रहे हैं और राजा रनिवास सहित सुन रहे हैं। जो मुनियों के मन को भी अगम्य है, ऐसी विश्वामित्र जी की करनी को वशिष्ठ जी ने आनन्दित होकर बहुत प्रकार से वर्णन किया। बामदेव जी बोले-'ये सब सत्य है। विश्वामित्र जी की सुन्दर कीर्ति तीनों लोकों में छायी हुई हैं।' यह सुनकर सब को आनन्द हुआ। श्री राम-लक्ष्मण के हृदय में अधिक उत्साह (आनन्द) हुआ।

दो०— मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति।।३५९।।

भावार्थ— नित्य ही मंगल, आनन्द और उत्सव होते हैं, इस तरह आनन्द में दिन बीतते जाते हैं। अयोध्या आनन्द से भरकर उमड़ पड़ी। आनन्द की अधिकता अधिक अधिक बढ़ती ही जा रही है।

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥
नित नव सुखु सुर देखि सिहाहीं। अवध जन्म जाचहिं बिधि पाहीं॥
बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बस रहहीं॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥
मागत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवकु समेत सुत नारी॥
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
रामु सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥

भावार्थ— अच्छा दिन (शुभ-मुहूर्त) शोधकर सुन्दर कंकण खोले गये। मंगल, आनन्द और विनोद कुछ कम नहीं हुए (अर्थात् बहुत हुए)। इस प्रकार नित्य नये सुख को देखकर देवता सिहाते हैं और अयोध्या में जन्म पाने के लिये ब्रह्मा जी से याचना करते हैं। विश्वामित्र जी नित्य ही चलना (अपने आश्रम जाना) चाहते हैं, पर रामचन्द्रजी के स्नेह और विनयवश रह जाते हैं। दिनों दिन राजा का सौगुना भाव (प्रेम) देखकर महामुनिराज विश्वामित्र जी उनकी सराहना करते हैं। अन्त में जब विश्वामित्र जी ने विदा माँगी, तब राजा प्रेम मग्न हो गये और पुत्रों सहित आगे खड़े हो गये। (वे बोले) ''हे नाथ! यह सारी सम्पदा आपकी है। मैं तो स्त्री-पुत्रों सहित आपका सेवक हूँ। हे मुनि! लड़कों पर सदा स्नेह करते रहियेगा'' ऐसा कह कर पुत्रों और रानियों सहित राजा दशरथ जी विश्वामित्र जी के चरणों पर गिर पड़े। (प्रेम विह्वल हो जाने के कारण) उनके मुख से बात नहीं निकलती। ब्राह्मण विश्वामित्र जी ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिये और वे चले। प्रीति की रीति कही नहीं जाती। सब भाइयों को साथ लेकर श्री रामजी प्रेम के साथ उन्हें पहुँचाकर और आज्ञा पाकर लौटे।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई दस सम पंक्तियों की है। अपने यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र जब राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले गये (दोहा २०८, पृष्ठ २५०) तब से उनके विवाह तक विश्वामित्र निरन्तर उनके साथ रहे। जब राम सीता को ब्याह कर अयोध्या

लौटे, तब दशरथ और राम ने बहुत मनुहार किया कि वह थोड़े दिन और राजमहल में रहें। परन्तु महर्षि गृहस्थी के जाल में कब तक रहते। वह बिदा लेकर अपने आश्रम चले गए।

दो०— राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु ।।३६०।।

भावार्थ— गाधिकुल के चन्द्रमा विश्वामित्र जी बड़े हर्ष के साथ श्री रामचन्द्र जी के रूप, राजा दशरथ की भक्ति, (चारों भाइयों के)विवाह और सब के उत्साह और आनन्द को मन ही मन सराहते जाते हैं।

बामदेव रघुकुल गुर ग्यानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ।।
सुनि मुनि सुजसु मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ।।
बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृहँ गयऊ ।।
जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा ।।
आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसइ अनंद अवध सब तब तें ।।
प्रभु बिबाहँ जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू ।।
कबिकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी ।।
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ।।

भावार्थ— वामदेव जी और रघुकुल के गुरू ज्ञानी वशिष्ठ जी ने फिर विश्वामित्र जी की कथा बखानकर कही। मुनि का सुन्दर यश सुनकर राजा मन-ही-मन अपने पुण्यों का बखान करने लगे। आज्ञा हुई तब सब लोग (अपने-अपने घरों को) लौटे। राजा दशरथ भी पुत्रों सहित महल में गये। जहाँ-तहाँ सब श्री रामचन्द्र जी के विवाह की गाथाएँ गा रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी का पवित्र सुयश तीनों लोकों में छा गया। जब से श्री रामचन्द्र जी विवाह करके घर आये, तब से सब प्रकार का आनन्द अयोध्या में आकर बसने लगा। प्रभु के विवाह में जैसा आनन्द उत्साह हुआ, उसे सरस्वती और शेष जी भी नहीं कह सकते। श्री सीताराम जी के यश को, कवि कुल के जीवन को पवित्र करने वाला और मंगलों की खान जानकर, मैंने अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये कुछ (थोड़ा सा)बखान कर कहा है।

छं०— निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो ।।
उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं ।।

सो०— सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ।।३६१।।

भावार्थ— अपनी वाणी को पवित्र करने के लिये तुलसी ने राम का यश कहा है । (नहीं तो)श्री रघुनाथ जी का चरित्र अपार समुद्र है, किस कवि ने उसका पार पाया है ? जो लोग यज्ञोपवीत और विवाह के मंगलमय उत्सव का वर्णन आदर के साथ सुनकर गावेंगे वे लोग भी जानकी जी और श्री रामजी की कृपा से सदा सुख पावेंगे । श्री सीता जी और श्री रघुनाथ जी के विवाह प्रसंग को जो लोग प्रेम पूर्वक गाते-सुनते हैं, उनके लिये सदा उत्साह (आनन्द) ही है, क्योंकि श्री रामचन्द्र जी का यश मंगल का धाम है ।

टिप्पणी - बालकाण्ड सोरठे से प्रारम्भ हुआ और सोरठे से ही समाप्त हुआ । इसके पूर्वार्ध में गोस्वामी तुलसीदास ने इष्ट देवी-देवताओं की बन्दना की, फिर राम नाम की महिमा बतायी है । भारद्वाज—याज्ञवल्क्य संवाद में सती-मोह और पार्वती विवाह की कथा कही है । तदोपरान्त शिव-पार्वती संवाद में रामावतार के कई कारण बताए हैं । राम कथा बालकाण्ड के उत्तरार्ध में प्रारम्भ होती है । १९२ दोहे के ऊपर के छंद में तुलसीदास जी राम जन्म की घोषणा करते हैं :-

भय प्रकट कृपाला दीन दयाला कौशिल्या हितकारी

जहाँ सूरदास ने कृष्ण की बाललीला के वर्णन में १००० पद लिखे हैं, वहाँ तुलसीदास ने राम की बाल लीला केवल एक दर्जन दोहे और चौपाइयों में समाप्त कर दी । २०५ दोहे से लेकर अन्त तक राम का विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए बन जाना, फिर जनकपुरी में जाकर सीता स्वयंम्बर में भाग लेना और उनका सीता से विवाह होने की कथा है । तुलसीदास जी ने सीता-राम विवाह को बहुत महत्व दिया है । इसी कारण बालकाण्ड के उत्तरार्ध के आधे भाग में लगभग १०० पृष्ठों में केवल विवाह का वर्णन है । अंतिम सोरढे में तुलसीदास स्वंय कहते हैं कि सीता-राम के विवाह प्रसंग को जो लोग प्रेमपूर्वक गाते - सुनते हैं, उनके लिए सदा आनन्द ही है :

सिय रघुबीर विवाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन्ह कहु सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ।।

दोहा २८६ से लेकर सोरठा ३६१ तक राम विवाह का वर्णन करके तुलसीदास जी का जी नहीं भरा । उन्होंने पूर्वी अवधी भाषा में २१६ अरुण और हरिगीतिका छन्द में सन् १५८६ ई० में पुनः जानकी-मंगल की रचना की ।

द्वितीय सोपान
(अयोध्याकाण्ड)
श्लोक

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके

भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।

सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा

शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ।।१।।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।

मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमंगलप्रदा ।।२।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम् ।

पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।३।।

भावार्थ– जिसकी गोद में हिमाचलसुता पार्वती जी, मस्तक पर गंगा जी, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा, कण्ठ में हलाहल विष और वक्षस्थल पर सर्पराज शेष जी सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता (या भक्तों के पाप नाशक), सर्वव्यापक, कल्याण स्वरूप, चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण श्री शंकर जी सदा मेरी रक्षा करें। रघुकुल को आनन्द देने वाले श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्द की जो शोभा राज्याभिषेक (के निश्चय) से न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुख से मलिन ही हुई, वह (मुखकमल की छवि) मेरे लिए सदा सुन्दर मंगलों की देने वाली हो। नीले कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्री सीता जी जिनके वामभाग में विराजमान हैं और जिनके हाथों में अमोघ बाण और सुन्दर धनुष हैं, उन रघुवंश के स्वामी श्री रामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

टिप्पणी– जैसा कि बालकाण्ड के शुरू में कहा गया है, तुलसीदास जी ने हर काण्ड का प्रारम्भ संस्कृत श्लोकों से किया है जिनमें उन्होंने अपने इष्टदेवों का स्तुतिगान किया है। बालकाण्ड को प्रारम्भ करने के पहले उन्होंने सरस्वती देवी, गणेश, शिव-पार्वती, सीता-राम, हनुमान, विष्णु, आदिकवि वाल्मीकि और अपने गुरू नरहरि की बन्दना की है। परन्तु अयोध्याकाण्ड को प्रारम्भ करने के पहले, ऊपर के तीन श्लोकों में तुलसीदास ने अपनी बन्दना केवल शिव और राम के प्रति सीमित रखी है। दूसरे श्लोक में जो राम की वन्दना की है, उसका पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने ब्रजभाषा में बहुत सुन्दर रूपान्तर किया है –

"जो अभिषेक की बात सुनी,
तौ प्रसन्नता नेकु धरी न दिखाई।
औ बनवास की आयसु पै,
नहीं रेख कहूँ दुख कछु आई।।
जो दुख में न मलीन भई,
सुख में नहीं जो कछु हरषाई।।
सो मुख-श्री रघुनन्दन की,
दइ होई तुम्हें नित मंगलदाई।।"

दो०— श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनऊँ रघुबर विमल जसु जो दायकु फल चारि।।

भावार्थ— श्रीगुरु जी के चरण कमलों की रज से अपने मनरूपी दर्पण को साफ करके, मैं श्री रघुनाथ जी के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ जो चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)को देने वाला है।

टिप्पणी— संस्कृत श्लोकों के बाद, बालकाण्ड पांच सोरठों से प्रारम्भ होता है, जिनमें तुलसीदास जी ने क्रमशः गणेश, विष्णु, शिव और गुरू की वन्दना की है। परन्तु अयोध्याकाण्ड केवल एक दोहे से प्रारम्भ होता है जिसमें तुलसीदास जी पाठक को केवल सूचित करते हैं कि गुरू की चरण-रज को माथे पर लगा कर, वह अब श्री राम का विमल-यश वर्णन करने जा रहे हैं।

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।।
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी।।
रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।।
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती।।
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती।।
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी।।
मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली।।
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होई देखि सुनि राऊ।।

भावार्थ— जब से श्री रामचन्द्र जी विवाह करके घर आये, तबसे अयोध्या में नित्य नये मंगल हो रहे हैं और आनन्द के बधाये बज रहे हैं। चौदहों लोकरूपी बड़े भारी पर्वतों पर पुण्यरूपी मेघ सुख रूपी जल बर्षा रहे हैं। ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी

नदियाँ उमड़-उमड़ कर अयोध्यारूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री पुरुष अच्छी जाति के मणियों के समूह हैं, जो सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य और सुन्दर हैं। नगर का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा जान पड़ता है मानों ब्रह्मा जी की कारीगरी बस, इतनी ही है। सब नगरनिवासी श्रीरामचन्द्र जी के मुखचन्द्र को देखकर सब प्रकार से सुखी हैं। सब माताएं और सखी सहेलियाँ अपनी मनोरथ रूपी बेल को फैली हुई देखकर आनन्दित हैं। श्री रामचन्द्र जी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुनकर राजा दशरथ जी बहुत आनन्दित होते हैं।

टिप्पणी – ऊपर की चौपाई में तुलसीदास इस बात का संकेत करते हैं कि जबसे श्री रामचन्द्र जी सीता को मिथिला से ब्याह कर लाये हैं, अवधपुरी में समस्त ऋद्धि-सिद्धि वास करने लगी हैं। बालकाण्ड के दोहे ३०६ और उसके ऊपर-नीचे की चौपाइयों में भी ऐसा ही संकेत है (पृष्ठ ३३८)। जब सीता जी को पता चला कि अवधपुरी से चलकर बरात उनके द्वार पर आ गयी है, तो उन्होंने अपनी कुछ महिमा प्रगटाई। सब सिद्धियों को आहूत किया और उन्हें आदेश दिया कि जनवासे में जाकर प्रत्येक बराती के कक्ष को समस्त ऐश्वर्य और सम्पदा से भर दें। अतएव हर बराती ने इन्द्रपुरी के भोग-विलास का सुख अनुभव किया। इस भेद को राम और सीता के अतिरिक्त कोई जान नहीं पाया।

कथानक को आगे बढ़ाते हुए, तुलसीदास का अभिप्राय है कि जिन सिद्धियों ने बरातियों के लिए देवताओं के सब सुखों को सुलभ कर दिया, उन्हीं सिद्धियों को सीता जी दहेज के रूप में अवधपुरी ले आईं और वह सिद्धियां सारी नगरी में व्याप गयीं।

योग सिद्धि से आगे जो आठ अलौकिक शक्तियाँ (सिद्धियाँ)प्राप्त हो सकती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। कोष में ऋद्धि-सिद्धि पर्यायवाची शब्द हैं और सम्पन्नता, वृद्धि और समृद्धि के सूचक हैं। सिद्धि को दक्ष की कन्या और गणेश की पत्नी माना है। कहीं कहीं दोनों को गणेश की अनुचरी।

वास्तव में यह दोनों सुख-सम्पदा की देवियाँ हैं और हर मंगल कार्य में इन्हें आहूत किया जाता है। हिन्दू वाङ्मय में आठ लक्ष्मी मानी गई हैं– आदि, सन्तान, जय, धन, धान्य, ऐश्वर्य, यश, सम्पदा।

कुछ शब्द-कोषों में ऋद्धि-सिद्धि का अर्थ लक्ष्मी के साथ-साथ पारवती भी कहा गया है। सिद्धिदात्री दुर्गा का एक रूप है। दुर्गा सप्तशती में दुर्गा के अनेक रूप बताए गये हैं। मनुष्य की जितनी स्पृहा, इच्छा, तृष्णा और आकांक्षा है, उनका कवि ने २० रूपों में वर्गीकरण किया है। बुद्धि-निद्रा के रूप से लेकर सृष्टि-भ्रांति के रूप तक, हर मनुष्य में दुर्गा-देवी विद्यमान हैं। ''या देवी सर्वभूतेषु...........रूपेण संस्थिता।''

दो० – सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥१॥

भावार्थ— सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेव जी को मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते जी श्री रामचन्द्री जी को युवराज पद दे दें।

टिप्पणी – ऊपर की चौपाई में बताया जा चुका है कि ऋद्धि-सिद्धियों ने अयोध्या को सब प्रकार के सुख, सम्पदा और ऐश्वर्य से सम्पूर्ण कर दिया था। जनता की केवल एक अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई थी। जनमानस की प्रबल इच्छा थी कि दशरथ जी अपने जीवन काल में श्री रामचन्द्र जी को विधिवत् अपना उत्तराधिकारी और युवराज घोषित कर दें।

'साकेत' के ऐश्वर्य का वर्णन करने के पश्चात् राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी इसी आशय की अभिलाषा व्यक्त की है :

"बस यही संकल्प पूरन एक हो,
शीघ्र ही श्री राम का अभिषेक हो।" *

एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥
तिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥
मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥
श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

भावार्थ— एक समय रघुकुल के राजा दशरथ जी अपने सारे समाज सहित राजसभा में विराजमान थे। महाराजा सब पुण्यों की मूर्ति हैं, उन्हें श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर यश सुनकर अत्यन्त आनन्द हो रहा है। सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालगण उनके रूख को रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। (पृथ्वी, आकाश, पाताल) तीनों भुवनों में और (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों में दशरथ जी के समान बड़भागी और कोई नहीं है। मंगलों के मूल श्री रामचन्द्र जी जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाय थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही हाथ में दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुंह देखकर मुकुट को सीधा किया। (देखा कि) कानों के पास बाल सफ़ेद हो गये थे, मानों बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि "हे राजन्! श्री रामचन्द्र जी को युवराज पद देकर अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते?"

---

* 'साकेत', प्रथम सर्ग, तृतीयावृत्ति, पृष्ठ ८

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई की अन्तिम दो पंक्तियां बहुत मार्मिक हैं ! मुकुर में कानों के निकट सफ़ेद बाल देखते ही, दशरथ जी को ज्ञात हुआ कि अब वह बुड्ढे हो चले हैं और संसार का मोह-जाल त्याग कर उन्हें वाणप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये। आजकल के उच्चपदाधिकारियों, सचिवों और न्यायाधीशों के समान नहीं जो अवकाश प्राप्त करने पर भी कुर्सी नहीं छोड़ना चाहते। निरन्तर प्रयास में लगे रहते हैं कि किसी सरकारी प्रतिष्ठान या आयोग के अध्यक्ष नियुक्त हो जायें। उनकी तृष्णा का कोई अन्त नहीं;नई पीढ़ी को आगे आने का अवकाश ही देना नहीं चाहते।

दूसरी ध्यान देने योग्य यह बात है कि राजा जो भी कार्य करता था, प्रजा की अनुमति और रूचि के अनुकूल करता था। सबसे बड़े होने के नाते श्री रामचन्द्र जी तो युवराज थे ही, फिर भी प्रजा और सम्बंधियों की शुभ भावना का ध्यान रखना राजा दशरथ ने आवश्यक समझा। अतएव राजा दशरथ ने अपने बड़े और सर्वयोग्य पुत्र को युवराज बनाकर, उसे प्रजा का पालन करने का सुअवसर देकर, अन्त में उसे राज्य का भार सौंपकर, स्वयं बाणप्रस्थ एवम् सन्यास आश्रम में रहकर, मोक्ष साधन में लगने का निश्चय किया।

दो०— यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ ।।२।।

भावार्थ— हृदय में यह विचार लाकर (युवराज पद देने का निश्चय कर) राजा दशरथ जी ने शुभ दिन और सुन्दर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो, आनन्द मय मन से उसे गुरू वशिष्ठ जी को जा सुनाया।

टिप्पणी— रामायण त्रेता युग की घटना है। उस युग में राजा जो भी निर्णय लेता था, उसको कार्यान्वित करने के पहले, कुल-गुरू का अनुमोदन आवश्यक था।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक ।।
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी ।।
सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ।।
बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाईं ।।
जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।।
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें।।
अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ।।
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू ।।

भावार्थ— (राजा ने कहा)— "हे मुनिराज !(कृपया यह निवेदन)सुनिये। श्री रामचन्द्र जी अब सब प्रकार से सब योग्य हो गये हैं। सेवक, मंत्री, सब नगरनिवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं, सभी को श्री रामचन्द्र वैसे ही प्रिय हैं जैसे वे मुझको

हैं। उनके रूप में आपका आशीर्वाद ही मानों शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी ! सारे ब्राह्मण, परिवार सहित, आपके ही समान उन पर स्नेह करते हैं। जो लोग गुरू के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानों समस्त ऐश्वर्य को अपने वश में कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसी ने नहीं किया। आपके पवित्र चरण-रज की पूजा करके मैनें सब कुछ पा लिया। अब मेरे मन में एक अभिलाषा और है। हे नाथ ! वह भी आपके अनुग्रह से पूरी होगी।'' राजा का सहज प्रेम देखकर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा– ''नरेश ! आज्ञा दीजिये (कहिये, क्या अभिलाषा है)।

दो०– राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार ।।३।।

भावार्थ– हे राजन ! आपका नाम और यश ही सम्पूर्ण मनचाही वस्तुओं को देने वाला है। हे राजाओं के मुकुटमणि ! आपके मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करती है (अर्थात् आपके इच्छा करने के पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है)।''

सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी ।।
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ।।
मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू ।।
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं ।।
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ ।।
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए ।।
सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ।।
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ।।

भावार्थ– अपने जी में गुरू जी को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोले- ''हे नाथ ! श्री रामचन्द्र को युवराज कीजिये। कृपा करके कहिये (आज्ञा दीजिये)तो तैयारी की जाय। मेरे जीते जी यह आनन्द उत्सव हो जाय, (जिससे)सब लोग अपने नेत्रों का लाभ प्राप्त करें। प्रभु के (आपके) प्रसाद से शिवजी ने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएं पूर्ण कर दीं), केवल एक यही, लालसा मन में रह गई है। (इस लालसा के पूर्ण हो जाने पर) फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाय, जिससे मुझे पछतावा न हो।'' दशरथ जी के मंगल और आनन्द के मूल सुन्दर वचन सुनकर मुनि मन में बहुत प्रसन्न हुए। (वशिष्ठ जी ने कहा)–''हे राजन सुनिये ! जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोक महेश्वर) श्री राम जी आपके पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं (श्री रामचन्द्र जी पवित्र प्रेम के पीछे-पीछे चलने वाले हैं,इसी से तो प्रेम वश आपके पुत्र हुए हैं)।

दो०— बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु ।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु ।।४।।

भावार्थ— हे राजन ! अब देर न कीजिए; शीघ्र सब सामान सजाइये । शुभ दिन और सुन्दर मंगल तभी है जब श्री रामचन्द्र जी युवराज हो जायँ (अर्थात् उनके अभिषेक के लिए सभी दिन शुभ और मंगलमय हैं)।''

मुदित महीपति मंदिर आए । सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
जौं पाँचहि मत लागै नीका । करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी । अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी ॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी । जिअहु जगतपति बरिस करोरी ॥
जग मंगल भल काजु बिचारा । बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा । बढ़त बौड़ जनु लही सुसाखा ॥

भावार्थ— राजा आनन्दित होकर महल में आये और उन्होंने सेवकों को तथा मन्त्री सुमन्त्र को बुलवाया । उन लोगों ने 'जय जीव' कहकर सिर नवाये । तब राजा ने सुन्दर मंगलमय वचन (श्रीरामजी को युवराज पद देने का प्रस्ताव) सुनाये । (और कहा)—''यदि पंचों को (आप सबको)यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्रीरामचन्द्र का राजतिलक कीजिए ।'' इस प्रिय वाणी को सुनते ही मंत्री ऐसे आनन्दित हुए मानों उनके मनोरथ रूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो । मन्त्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि ''हे नाथ! शीघ्रता कीजिये, देर न लगाइये ।'' मन्त्रियों की सुन्दर वाणी सुनकर राजा को ऐसा आनन्द हुआ मानों बढ़ती हुई बेल सुन्दर डाली का सहारा पा गई हो ।

दो०— कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ ।।५।।

भावार्थ— राजा ने कहा- ''श्री रामचन्द्र के राजाभिषेक के लिए मुनिराज वशिष्ठ जी की जो जो आज्ञा हो, आप लोग वही सब तुरंत करें ।''

टिप्पणी— दोहा १ और ४ में राम को युवराज-पद देने की बात उठाई गई है । पाठक को भ्रम हो सकता है कि दोहा ५ में राम के राज्याभिषेक का संकेत कैसे आ गया । वास्तव में राज़ा दशरथ राम को समस्त राज्य का राज-काज सौंपना चाहते थे ।'राज्याभिषेक' और 'राज अभिषेक' में अन्तर है । विलायत की महाराज्ञी राज्य करती है (rules) परन्तु शासन नहीं करती (governs)। शासन उसकी प्रधान-मन्त्री थैचर का चलता है। संवैधानिक राज्यतंत्र या गणतंत्र में राज़ा या राष्ट्रपति प्रभुत्व सम्पन्नता का प्रतीक मात्र होता है । समस्त शासन

की बागडोर प्रधानमंत्री के हाथ में रहती है। इस प्रकार दशरथ जी राम को प्रधानमंत्री का पद देना चाहते थे।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥
चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥
बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥
रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

भावार्थ– मुनिराज ने हर्षित होकर कोमल वाणी से कहा कि ''सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थों का जल ले आओ।'' फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों मांगलिक वस्तुओं के नाम गिनकर बताये। चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, असंख्यों जातियों के ऊनी और रेशमी कपड़े, नाना प्रकार की मणियाँ तथा और भी बहुत सी मंगल वस्तुएँ, जो जगत में राज्यभिषेक के योग्य होती है, सबको मँगाने की उन्होंने आज्ञा दी। मुनि ने वेदों में कहा हुआ सब विधान बनाकर कहा– ''नगर में बहुत से मण्डप (चँदोवे) सजाओ। फल समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों और रोप दो। सुन्दर मणियों के मनोहर चौक पुरवाओ और बाजार को तुरंत सजाने के लिए कह दो। श्री गणेश जी, गुरू और कुलदेवता की पूजा करो और भूदेव ब्राह्मणों की सब प्रकार सेवा करो।

दो०– ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥६॥

भावार्थ– ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ।'' मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी के वचनों को शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काम में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बंधु सोच दिन राती । अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥

भावार्थ— मुनिश्वर ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी, उसने वह काम इतनी शीघ्रता से कर डाला कि मानों पहले से ही कर रखा था । राजा ब्राह्मण, साधुं और देवताओं को पूज रहे हैं और श्री रामचन्द्र जी के लिये सब मंगल कार्य कर रहे हैं । श्री रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध भर में बड़ी धूम से बधावे बजने लगे । श्री रामचन्द्र जी और श्री सीता जी के शरीर में शुभ शकुन सूचित हुए । उनके सुन्दर मंगल अंग फड़कने लगे । पुलकित होकर वे दोनों प्रेम सहित एक दूसरे से कहते हैं कि यह सब शकुन भरत के आने की सूचना देने वाले हैं । (उनको मामा के घर गये) बहुत दिन हो गये। उनसे मिलने की बहुत उत्कण्ठा हो रही है । शकुनों से प्रिय भरत के मिलने का विश्वास होता है । भरत के समान जगत में हमें कौन प्यारा है ? शकुन का बस यही फल है दूसरा नहीं । श्री रामचन्द्र जी को अपने भाई भरत का दिन-रात ऐसा सोच रहता है, जैसे कछुए के हृदय में अंडों का ।

दो०— एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु ।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु ।।७।।

भावार्थ— इसी समय यह परम मंगल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा, जैसे चन्द्रमा को बढ़ते देखकर समुद्र में लहरों का विलास (आनन्द)सुशोभित होता है ।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए । भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
प्रेम पुलकि तन मंन अनुरागीं । मंगल कलस सजन सब लागीं ॥
चौकें चारु सुमित्राँ पूरी । मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी ॥
आनँद मगन राम महतारी । दिए दान बहु बिप्र हँकारी ॥
पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा । कहेउ बहोरि देन बलिभागा ॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू । देहु दया करि सो बरदानू ॥
गावहिं मंगल कोकिलबयनीं । बिधुबदनीं मृगसावकनयनीं ॥

भावार्थ— सबसे पहले (रनिवास में)जाकर जिन्होंने ये वचन (समाचार)सुनाये, उन्होंने बहुत से आभूषण और वस्त्र पाये । रानियों का शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा, और मन प्रेम में मग्न हो गया । वे सब मंगल कलश सजाने लगीं । सुमित्रा ने मणियों (रत्नों)के बहुत प्रकार के अत्यन्त सुन्दर और मनोहर चौक पूरे । आनन्द में मग्न हुई श्री रामचन्द्र जी की माता कौशल्या जी ने ब्राह्मणों को बुलवाकर बहुत दान दिये । उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागों की पूजा की और फिर बलि भेंट देने को कहा (अर्थात् कार्य सिद्ध होने पर फिर पूजा करने की मनौती मानी) और प्रार्थना की कि जिस प्रकार से श्रीरामचन्द्र जी का कल्याण

हो, दया करके वही वरदान दीजिए। कोयल की सी मीठी वाणी, चन्द्रमा के समान मुखवाली और हिरन के बच्चे के से नेत्रों वाली स्त्रियां मंगलगान करने लगीं।

टिप्पणी– इस चौपाई में केवल सात विषम पंक्तियां हैं।

दो०– राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि ।।८।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी का राजतिलक (राज्याभिषेक) सुनकर सभी स्त्री-पुरुष हृदय में हर्षित हो उठे और विधाता को अपने अनुकूल समझ कर सब सुन्दर मंगल साज सजाने लगे।

तब नरनाहूँ बसिष्ठु बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ अस नीती ॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं ॥

भावार्थ– श्री राजा दशरथ जी ने वशिष्ठ जी को बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देने के लिये श्री रामचन्द्र जी के महल में भेजा। गुरू का आगमन सुनते ही श्री रघुनाथ जी ने दरवाजे पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया। आदर पूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घर में लाये, और षोडशोपचार से पूजा करके, उनका सम्मान किया। फिर सीता जी सहित उनके चरण स्पर्श किये और कमल के समान दोनों हाथों को जोड़कर श्री राम जी बोले "यद्यपि सेवक के घर स्वामी का पधारना मंगलों का मूल और अमंगलों का नाश करने वाला ही होता है, तथापि हे नाथ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिये बुला भेजते, ऐसी ही नीति है। परन्तु प्रभु (आप)ने प्रभुता छोड़कर (स्वयं यहाँ पधारकर)जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे गुसाईं! जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ। स्वामी की सेवा में ही सेवक का लाभ है।"

दो०– सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस ।।९।।

भावार्थ– (श्री रामचन्द्र जी के)प्रेम में सने हुए वचनों को सुनकर मुनि वशिष्ठ जी ने श्री रघुनाथ जी की प्रशंसा करते हुए कहा कि "हे राम! भला आप ऐसा क्यों न कहें, आप सूर्यवंश के भूषण जो हैं।"

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥
राम करहु सब संजम आजू । जौं बिधि कुसल निबाहै काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ । राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपबीत बिआहा । संग संग सब भए उछाहा ॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव का बखानकर, मुनिराज प्रेम से पुलकित होकर बोले– "(हे रामचन्द्र जी) राजा (दशरथ जी) ने राज्याभिषेक का सामान सजाया है, वे आपको युवराज पद देना चाहते हैं । (इसलिए) हे राम जी ! आज आप उपवास, हवन आदि विधि पूर्वक सब संयम कीजिये, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस काम को निवाह दें (सफल कर दें) ।" गुरू जी शिक्षा देकर राजा दशरथ जी के पास चले गये । श्री रामचन्द्र जी के हृदय में यह सुनकर इस बात का खेद हुआ कि हम सब भाई एक ही साथ जन्में, खाना, सोना, खेल-कूद, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए । इस पर निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही (मेरा ही) होता है । (तुलसीदास जी कहते हैं कि) प्रभु श्री रामचन्द्र जी का यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे।

टिप्पणी– रामचन्द्र जी के मन में इस बात का खेद हुआ कि जब चारों भाई साथ जन्में, बड़े हुए, सबके संस्कार भी साथ साथ हुए, यहाँ तक कि चारों का विवाह साथ हुआ, तब फिर तीन भाइयों को छोड़कर केवल बड़े भाई को ही युवराज पद क्यों दिया जा रहा है। यह राम की विनम्रता है । सारे युगों में, सारे संसार में, जहाँ-जहाँ राज्य-तंत्र शासन है, राजा का बड़ा लड़का ही गद्दी का उत्तराधिकारी होता है । हमारे यहाँ तो लोकतन्त्र होने पर भी, प्रधानमंत्री का पद चालीस वर्ष तक वंशानुगत रहा ।

दो०– तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद ।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद ॥१०॥

भावार्थ– उसी समय प्रेम और आनन्द में मग्न लक्ष्मण जी आये । रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया ।

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना । पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं । आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं ॥
हाट बाट घर गलीं अथाईं । कहहिं परसपर लोग लोगाईं ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक सिंघासन सीय समेता । बैठहिं रामु होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा । चोरहि चंदिनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लै परहीं ॥

भावार्थ– बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर के अतिशय आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरत जी का आगमन मना रहे हैं, और कह रहे हैं कि वे भी शीघ्र आवें और (राज्याभिषेक का उत्सव देखकर) नेत्रों का फल प्राप्त करें। बाजार, रास्ते, घर, गली और चबूतरों पर जहाँ-तहाँ पुरुष और स्त्री आपस में यही कहते हैं कि कल वह शुभ लग्न (मुहूर्त) कितने समय है, जब विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे। जब सीता जी सहित श्री रामचन्द्र जी सुवर्ण के सिंहासन पर विराजेंगे तब हमारा मनचीता होगा (मनोकामना पूरी होगी)। इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कल कब होगा, उधर कुचाली देवता विघ्न मना रहे हैं। उन देवताओं को अवध के बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोर को चांदनी रात नहीं भाती। सरस्वती जी को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरों को पकड़ कर उनपर गिरते हैं।

दो०– बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥११॥

भावार्थ– (वे कहते हैं) "हे माता! हमारी बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही कीजिये जिससे श्री रामचन्द्र जी राज्य त्यागकर बन को चले जायें और देवताओं का सब कार्य सिद्ध हो।"

टिप्पणी– ऊपर का दोहा और उसके ऊपर की चौपाई की अंतिम दो पंक्तियों का आशय समझने के लिए, पाठक को बालकाण्ड के दोहा १७३ से १८७ (पृष्ठ २१४-२९) तक का कथानक देखना होगा। राजा प्रतापभानु ने समर में एक राजा को हराया था। वह राजा रणभूमि छोड़कर वन में चला गया और तापस वेष में रहने लगा। प्रतापभानु जब आखेट को निकले तो कालकेतु मायावी राक्षस सुअर का रूप धारण करके उनके घोड़े के सामने आ गया। राजा ने सुअर का पीछा किया, सुअर आगे भागता ही चला गया और अन्त में एक गुफा में जाकर छिप गया। सुअर के पीछे दौड़ते दौड़ते रात हो गयी और प्रतापभानु मार्ग में भटक गया। वह कपटी मुनि के आश्रम में पहुँचा। मुनि ने बातों बातों में राजा को वरदान दिया कि–

'जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ ।
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कलप सत होउ ।।'

इस वरदान के साथ एक शर्त थी–

'कालउ तुअ पदनाइहि सीसा । एक विप्रकुल छाड़ि महीसा ।।'

अतएव ब्राह्मणों को वश में करने के लिए कपटी मुनि ने प्रतापभानु को परामर्श दिया कि वह ब्रह्मभोज कराये । ब्रह्मभोज का वह स्वयं उपरोहित बन गया । अनेक प्रकार के पशुओं का मांस पकाया और उसमें उस दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस भी मिला दिया । जब ब्राह्मण भोजन करने बैठे तो आकाशवाणी हुई :'यह अन्न मत खाओ, इसमें ब्राह्मणों का मांस मिला है ।' आकाशवाणी सुनकर, ब्राह्मण उठ खड़े और उन्होंन प्रतापभानु को श्राप दिया :

'जाई निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार ।'

अतएव दूसरे जन्म में पुलस्त्यकुल में प्रतापभानु ने रावण के रूप में जन्म लिया । उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण हुआ, उसका मंत्री विभीषण हुआ ।रावण ने देवताओं को बहुत कष्ट पहुँचाया । देवता ब्रह्मा की शरण में गए । ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की । तब गंभीर 'गगनगिरा' हुई :-

'जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ।।
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकर बंस उदारा ।।

● ● ● ●

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव समुदाई ।।'

जब रामचन्द्र के युवराज-तिलक की अयोध्या में तैयारी होने लगी, तब देवताओं को आशंका हुई कि विष्णु भगवान ने रावण से जो उन्हें अभयदान दिया था उसकी पूर्ति कैसे होगी ? देवता माता सरस्वती की शरण में गए और उनसे विनती की कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दें कि–

' रामु जाहिं बन राजु तजि, होई सकल सुरकाजु ।।'

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती । भइउँ सरोज बिपिन हिमराती ।।
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ।।
बिसमय हरष रहित रघुराऊ । तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ।।
जीव करम बस सुख दुख भागी । जाइअ अवध देव हित लागी ।।
बार बार गहि चरन सँकोची । चली बिचारि बिबुध मति पोची ।।
ऊँच निवासु नीचि करतूती । देखि न सकहिं पराइ बिभूती ।।
आगिल काजु बिचारि बहोरी । करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी ।।
हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई । जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई ।।

भावार्थ– देवताओं की विनती सुनकर सरस्वती जी खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि हाय मैं कमल वन के लिये हेमंत ऋतु की रात हुई। उन्हें इस प्रकार पछताते देखकर देवता फिर विनय करके कहने लगे- "हे माता! इसमें आपको ज़रा भी दोष न लगेगा। श्री रामचन्द्र जी विषाद और हर्ष से रहित हैं, आप तो श्री रामचन्द्र जी के सब प्रभाव को जानती ही हैं। जीव अपने कर्मवश ही सुख-दुख का भागी होता है। अतएव देवताओं के हित के लिये आप अयोध्या जाइये।" बार-बार चरण पकड़कर देवताओं ने सरस्वती को संकोच में डाल दिया। तब वह यह विचार कर चलीं कि देवताओं की बुद्धि ओछी है। इनका निवास तो ऊंचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते। परन्तु आगे का काम का विचार करके (श्री रामचन्द्र जी के वन जाने से राक्षसों का बध होगा, जिससे सारा जगत् सुखी हो जायेगा) चतुर कवि (श्री राम जी के वनवास के चरित्रों का वर्णन करने के लिए) मेरी चाह (कामना) करेंगे। ऐसा विचार कर सरस्वती हृदय में हर्षित होकर दशरथ जी की पुरी अयोध्या में आईं। मानों दुःसह दुख होने वाली कोई महादशा आयी हो।

दो०– नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।१२।।

भावार्थ– मन्थरा नाम की कैकेयी की एक मन्दमति दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेरकर चली गयीं।

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा।।
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू।।
करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती।।
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती।।
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी।।
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।।
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें।।
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि।।

भावार्थ– मंथरा ने देखा कि नगर सजाया हुआ है। सुन्दर मंगलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगों से पूछा कि कैसा उत्सव है। (उनसे) श्री रामचन्द्र जी के तिलक की बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा। वह दुर्बुद्धि नीच जाति वाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार से यह काम रात-ही-रात में बिगड़ जाय, जैसे कोई कुटिल भिलनी शहद का छत्ता लगा देखकर घात लगाती है कि इसको किस प्रकार से उखाड़ दे। वह उदास होकर भरत जी की माता कैकेयी के पास गयी। रानी कैकेयी ने हंसकर कहा- "उदास क्यों है!" मन्थरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लंबी सांस ले रही है और त्रियाचरित्र करके आंसू ढरका रही है। रानी हंसकर कहने लगी कि 'तेरे बड़े गाल हैं (तू बहुत बढ़बढ़ कर बोलने वाली है)। मेरा मन कहता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है।' तब भी वह महान पापिनी

दासी कुछ भी नहीं बोलती। ऐसी लम्बीं सांस छोड़ रही है मानों काली नागिन (फुफकार छोड़ रही)हो।

दो०— सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥१३॥

भावार्थ— तब रानी ने डर कर कहा- "अरी कहती क्यों नहीं? श्री रामचन्द्र, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न कुशल से तो हैं?" यह सुनकर कुबरी मन्थरा के हृदय में बड़ी ही पीड़ा हुई।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

भावार्थ— (वह कहने लगी)— "हे माई! हमें कोई क्यों सीख देगा, और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी (बढ़-बढ़ कर बोलूंगी)। रामचन्द्र जी को छोड़कर आज किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज पद दे रहे हैं। आज कौसल्या को बिधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुए हैं। यह देखकर उनके हृदय में गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर सब शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मन में क्षोभ हुआ है। तुम्हारा पुत्र परदेश है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे बस में हैं। तुम्हें तो तोशक पलंग पर पड़े-पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है। राजा की कपट भरी चतुराई तुम नहीं देखतीं।" मन्थरा के प्रिय बचन सुनकर किन्तु उसका मन मलिन जानकर रानी झुककर (डाँटकर)बोली— "बस अब चुप रह, घरफोड़ी कहीं की! जो फिर कभी ऐसा कहा, तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा दूंगी।

दो०— काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥१४॥

भावार्थ— कानों, लँगड़ों, और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना जाहिये, उनमें भी स्त्री और खासकर दासी!" इतना कहकर भरत जी की मांता कैकेयी मुसकरा दीं।

लोकोक्ति— बालकाण्ड में कई लोकोक्ति हैं, जिन्हे जगह-जगह पर उजागर किया जा चुका है। ऊपर के दोहे में अयोध्या—काण्ड की पहली लोकोक्ति है:

"काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।"

अर्थात् काने, लंगड़े, और कुबड़े बड़े कुटिल मनुष्य होते हैं । लॉर्ड वैवेल जो द्वितीय महायुद्ध में भारत के सेनापति थे और फिर भारत के वाइसरॉय नियुक्त हुए, काने थे । वह अपनी कुटिल-नीति के लिए विख्यात हैं । जब तक वह वाइसरॉय रहे, भारत की स्वतंत्रता में रोड़े अटकाते रहे । महाराजा रणजीत सिंह भी काने थे । उन्होंने अपनी कूटनीति से भारत के उत्तर-पश्चिम में एक स्वायत्त सिक्ख राज्य की स्थापना की, जिसको अपने वश में करने के लिए अंग्रेजों को कई बार भीषण युद्ध करने पड़े ।

मांगलिक कार्य के लिए जाते हुए, यदि कहीं काने के दर्शन हो जाते हैं, तो हम लोग उसे अपशकुन मानते हैं ।

ऊपर के दोहे को यदि दोहा १२ के साथ-साथ पढ़े, तो एक बात और स्पष्ट होगी । दोहा १२ में कहा गया है–

'नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
....................गई गिरा मति फेरि ।।'

राम को वनवास कराने की योजना की पूर्ति के लिये, कोई साधन होना आवश्यक था। सरस्वती ने कैकेयी की दासी को उपयुक्त साधन समझा । क्यों ? वह कुबड़ी होने के नाते'कुटिल और कुचालि थी ।' इसके अतिरिक्त वह **'तिय विशेषि** पुनि चेरी' भी थी । मनोवैज्ञानिकों ने स्त्रियों को दुर्बल-प्रवृत्ति का माना है । महाकवि शेक्सपीयर ने कहा है :

"Frailty, thy name is woman !" *

उनकी मति को फेरना सुगम होता है । तान्त्रिकों का जादू स्त्रियों पर अधिक चलता है । इसीलिये देवी सरस्वती ने मति फेरने (भ्रष्ट)करने के लिए, मन्थरा को ही योग्य पात्र (साधन–tool) माना ।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही ।।
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ।।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ।।
राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली । देउँ मागु मन भावत आली ।।
कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभायँ पिआरी ।।
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ।।

---

* Hamlet, Act I, Scene 2

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू । होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ।।
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे । तिन्हकें तिलक छोभु कस तोरें ।।

भावार्थ– (और फिर बोलीं)– ''हे प्रिय वचन कहने वाली मन्थरा ! मैंने तुझको यह सीख दी है । मुझे तुझपर स्वपन में भी क्रोध नहीं है । सुन्दर मंगलदायक शुभ दिन वही होगा, जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात् राम का राज्याभिषेक होगा)। बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है, यह सूर्यवंश की सुहावनी रीति ही है । यदि सचमुच कल ही श्री राम का तिलक है , तो हे सखी ! तेरे मन को अच्छी लगे वही वस्तु माँग ले, मैं दूँगी । राम को सहज स्वभाव से सब माताएँ कौसल्या के समान ही प्यारी हैं;मुझ पर तो वे विशेष प्रेम करते हैं । मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है । जो विधाता, कृपा करके जन्म दे, तो (यह भी दें कि)श्री रामचन्द्र पुत्र और सीता बहू हों । श्री राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, उनके तिलक से तुझे क्षोभ कैसा ?

दो०– भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ।।१५।।

भावार्थ– तुझे भरत की सौगंध, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह, तू हर्ष के समय में विषाद कर रही है;मुझे इसका कारण सुना ।''

एकहिं बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ।।
फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ।।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ।।
हमहुँ कहबि अब ठकुर सोहाती । नाहिं त मौन रहब दिनु राती ।।
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ।।
जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।।
तातें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ।।

भावार्थ– (मन्थरा ने कहा)– ''सारी आशाएं तो एक ही बार कहने में पूरी हो गयीं, अब तो दूसरी जीभ लगाकर कुछ कहूँगी । मेरा अभागा कपाल तो फोड़ने योग्य ही है, जो अच्छी बात कहने पर भी आपको दुःख होता है । जो झूठी बातें बनाकर कहते हैं, हे माई ! वे ही तुम्हें प्रिय हैं, और मैं कड़वी लगती हूं । अब मैं भी ठकुर सुहाती (मुँहदेखी)कहा करूँगी, नहीं तो दिन रात चुप रहूँगी । विधाता ने कुरूप बनाकर मुझे परवश कर दिया (दूसरे को क्या दोष) । जो बोया सो काटती हूँ, दिया सो पाती हूँ । कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है । दासी छोड़कर क्या अब मैं रानी होऊँगी ? हमारा स्वभाव तो जलाने ही योग्य है। क्योंकि तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता , इसी लिये कुछ बात चलायी थी, किन्तु हे देवि ! हमारी बड़ी भूल हुई, क्षमा करो ।''

लोकोक्तियाँ– ऊपर की चौपाई में पंक्ति ५ और ६ में क्रमश: दो लोकोक्तियाँ हैं–

१. 'बवा सो लुनिअ, लहिअ जो दीन्हा ।'

यह लोकोक्ति बाइबल की एक पंक्ति का रूपान्तर है :"As you sow, so shall you reap"

जो मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है ।

अपने दुष्कर्मों का फल अगले जन्म में नहीं, इसी जन्म में मिल जाता है।

२. 'कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ।।'

५०० वर्ष के निरंकुश मुस्लिम शासन से हिन्दू हतप्रभ हो गए थे । उनमें इतनी अकर्मणयता बढ़ गई थी कि वह शासन के प्रति बिलकुल उदासीन हो गये थे । कोई भी मुसलमान शासक उन पर राज्य कर सकता था;उनके भाग्य में तो दासता ही लिखी थी । शासन के प्रति उदासीन हो जाना, ऊपर की लोकोक्ति का आशय है ।

जो १७ वीं शताब्दी में हिन्दुओं की दशा थी, वही आज बुद्धिजीवियों की है। स्वतंत्रता के बाद, चारों ओर बढ़ते भ्रष्टाचार को देखकर बुद्धिजीवियों ने उसकी ओर से आँखें मूँद ली हैं। हमारे पूर्वजों में ब्रिटिश शासन को उखाड़ कर फेंकने की जो लगन थी, उसका अब लेशमात्र भी नाम नहीं । सब अपनी आजीविका कमाने में लगे हैं। देश, समाज और जाति की ओर उनका कोई उत्तरदायित्व ही नहीं ।

दो०– गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि ।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ।।१६।।

भावार्थ– धारणा रहित चंचल बुद्धि की स्त्री और देवताओं की माया के वश में होने के कारण, रहस्ययुक्त कपटभरे प्रिय वचनों को सुनकर, रानी कैकेयी ने बैरिन मन्थरा को अपनी सुहृद (अहैतुक हित करने वाली)जानकर उसका विश्वास कर लिया ।

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ।।
तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ।।
तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ।।
सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली । अवध साढ़साती तब बोली ।।
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी । रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ।।
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते ।।
भानु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ।।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ।।

भावार्थ— बार-बार रानी उससे आदर के साथ पूछ रहीं है, मानों भीलनी के गान से हिरनी मोहित हो गयी हो। जैसी भावी होनहार है, वैसी ही बुद्धि भी फिर गयी। दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई। 'तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते हुए डरती हूँ ; क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है।' बहुत तरह से गढ़छोल कर (इधर-उधर की बातों में भुलावा देकर), खूब विश्वास जमाकर, तब वह अयोध्या की साढ़साती (शनि की साढ़े सात वर्ष की दशा-रुपी मन्थरा) बोली : "हे रानी ! तुमने जो कहा कि मुझे सीता-राम प्रिय हैं और राम को तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है। परन्तु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गये। समय के फिर जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। सूर्य कमल के कुल का पालन करने वाला है, पर बिना जल के वही सूर्य उनको (कमलों को)जला कर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है। अतः उपाय की अच्छी बाड़ (घेरा)लगाकर उसे रोक दो।

दो०— तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ।।१७।।

भावार्थ— तुमको अपने सुहाग के (झूठे)बल पर कुछ भी सोच नहीं है;राजा को अपने वश में जानती हो। परन्तु राजा मन के मैले और मुँह के मीठे हैं। और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं)।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रउरें ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥

भावार्थ— राम की माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गम्भीर हैं (उसकी थाह कोई नहीं पाता)। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेजा, इसमें आप बस राम की माता की ही सलाह समझिये। (कौसल्या समझती हैं कि)और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं , एक भरत की माँ पति के बल पर गर्वित रहती हैं। इसी से हे माई ! कौसल्या को तुम बहुत ही साल (खटक)रही हो। किन्तु चतुर आदमियों का कपट जानने में नहीं आता। राजा का तुम पर विशेष प्रेम है, कौसल्या सौत के स्वभाव से उसे देख नहीं सकती। इसीलिये उसने जाल रचकर, राजा को अपने वश में करके, (भरत की अनुपस्थिति में)राम के राज तिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया। इस कुल में कुल

मर्यादा के अनुसार राम को तिलक देना उचित है और यह बात सभी को सुहाती है, और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है। परन्तु मुझे तो आगे की बात विचार कर डर लगता है। दैव उलट कर इसका फल उसी (कौसल्या)को दें।''

दो०— रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ।।१८।।

भावार्थ— इस तरह करोड़ों कुटिलपन की बाते बना कर, मन्थरा ने कैकेयी को उलटी-सीधी बात समझा दी और सौतों की सैकड़ों कहानियां कहीं जिनसे विरोध बढ़े।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ।।
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ।।
भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ।।
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहें नहिं दोषु हमारें ।।
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई ।।
रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ।।
रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी ।।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई ।।

भावार्थ— होनहार वश कैकेयी के मन में विश्वास हो गया। रानी फिर सौगंध दिलाकर पूछने लगी। मन्थरा बोली– ''क्या पूछती हो ? अरे तुमने अब भी नहीं समझा। अपने भले बुरे को अथवा मित्र - शुत्रु को तो पशु भी पहचान लेते हैं। पूरा पखवाड़ा बीत गया सामान सजते और तुमने खबर पाई है आज मुझसे । मैं तुम्हारे राज में खाती पहनती हूँ, इसलिए सच कहने में मुझे कोई दोष नहीं है। यदि मैं बनाकर कुछ झूठ बोलूँ तो विधाता मुझे दण्ड देगा। यदि कल राम को राजतिलक हो गया तो समझ रखना कि तुम्हारे लिए विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया। मैं यह बात लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूं, हे भामिनी ! तुम तो अब दूध की मक्खी हो गयीं। जो पुत्र सहित (कौसल्या की) चाकरी बजाओगी, तो घर में रह सकोगी ; अन्यथा (घर में रहने का)दूसरा उपाय नहीं।

दो०— कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब ।।१९।।

भावार्थ— ''कद्रू ने विनता को दुःख दिया था, तुम्हें कौसल्या देगी। भरत कैदखाने का सेवन करेंगे और लक्ष्मण राम के नायब होंगे।''

अन्तर्कथा— कद्रू दक्ष प्रजापति की कन्या और महर्षि कश्यप की स्त्री थी। ये नागमाता कही जातीहै। इसके गर्भ में से १०० नाग उत्पन्न हुए। गरुड़ की माता विनता थी। इसीलिए गरुड़ 'वैन्तेय' भी कहे जाते हैं।

कद्रू और विनता आपस में बहुत डाह करती थीं। एक दिन विनता ने कद्रू से कहा– 'सूर्य के घोड़ों की पूँछ श्वेत है' कद्रू ने कहा–'नहीं, काली है।' निश्चय हुआ कि जिसकी बात सच हो, वह दूसरी की दासी बन रहे। कद्रू ने अपने पुत्र नागों से कहा तो वे सूर्य के घोड़ों की पूँछ में जा लिपटे और वह काली दिखाई पड़ने लगी। विनता को कद्रू की दासी बनना पड़ा। फिर विनता के पुत्र गरुड़ को देखकर जब सर्प भाग खड़े हुए, तब कहीं विनता को दासत्व से मुक्ति मिल पाई।

अपनी बात की पुष्टि में मन्थरा ने उपरोक्त पौराणिक कथा का सहारा लिया। वह कैकेयी को समझाती है कि जिस प्रकार कद्रू ने वनिता को छल से अपनी दासी बना लिया और अनेक कष्ट दिये, उसी प्रकार कौशल्या भी तुम को दुःख देगी। मन्थरा ने यह भी कहा कि मुझे तो यही समझ में आ रहा है कि भरत बन्दीगृह में रहेंगे और राम के नायब अर्थात् सलाहकार लक्ष्मण ही बनेंगे।

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

भावार्थ– कैकेयी मन्थरा की कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गयी, कुछ बोल नहीं सकती। शरीर में पसीना हो आया और केंले की तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मन्थरा) ने अपनी जीभ दातों तले दबाई। फिर कपट की करोड़ो कहानियाँ कह कह कर उसने रानी को खूब समझाया कि धीरज रखो। कैकेयी का भाग्य पलट गया, उसे कुचाल प्यारी लगी। वह बगुली को हँसिनी मानकर उसकी सराहना करने लगी। कैकेयी ने कहा— "मन्थरा! सुन, तेरी बात सत्य है, मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। प्रतिदिन रात को बुरे स्वप्न देखती हूं, किन्तु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं। सखी! क्या करूँ मेरा तो सीधा स्वभाव है। मैं दायाँ बायाँ कुछ भी नहीं जानती।

टिप्पणी– यह चौपाई केवल सात विषम पंक्तियों की है। कैकेयी की शिक्षा-दीक्षा को कच्ची समझकर, मन्थरा ने सहज में ही उसके मन को दशरथ, कौसल्या और राम के प्रति दूषित कर दिया।

दो०–अपनें चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥२०॥

भावार्थ— अपने चलते (जहाँ तक मेरा वश चला) मैंने आज तक कभी किसी का बुरा नहीं किया। फिर न जाने किस पाप से दैव ने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुख दिया।

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥
दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥
जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नीद न जामिनि॥
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥

भावार्थ— मैं भले ही नैहर जाकर वहीं जीवन बिता दूँगी, पर जीते जी सौंत की चाकरी नहीं करूँगी। दैव जिसको शत्रु के वश में रखकर जिलाता है, उसके लिये तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है।'' रानी ने बहुत प्रकार से दीन वचन कहे। उन्हें सुनकर कुबरी ने त्रिया चरित्र फैलाया। (वह बोली)— ''तुम मन में ग्लानि मान कर ऐसा क्यों कह रही हो, तुम्हारा सुख सुहाग दिन दिन दूना होगा। जिसने तुम्हारी बुराई चाही है, वही परिणाम में यह (बुराई रूप) फल पायेगी। हे स्वामिनी ! मैंने जब से यह कुमत सुना है, तब से मुझे न तो दिन में भूख लगती है और न रात में नींद आती है। मैंने ज्योतिषियों से पूछा, सो उन्होंने रेखा खींचकर (गणित करके अथवा निश्चय पूर्वक) कहा कि भरत राजा होंगे यह बात सत्य है। हे भामिनी ! तुम करो, तो उपाय मैं बताऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में है हीं।''

दो०— परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥२१॥

भावार्थ— (कैकेयी ने कहा) ''मैं तेरे कहने से कुएँ में गिर सकती हूँ, पुत्र और पति को भी छोड़ सकती हूँ। जब तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कुछ कहती है, तो भला, मैं अपने हित के लिये उसे क्यों न करूंगी।''

कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥

भूपति राम सपथ जब करई । तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें । बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें ॥

भावार्थ– कुबरी ने कैकेयी को (सब तरह से) कबूल करवाकर (अर्थात् बलि पशु बनाकर) कपट रूपी छुरी को अपने (कठोर) हृदय रूपी पत्थर पर टेया (उसकी धार को तेज किया)। रानी कैकेयी अपने निकट के (शीघ्र आने वाले) दुःख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी हरी घास चरता है (पर वह यह नहीं जानता कि मौत सिर पर नाच रही है)। मन्थरा की बाते सुनने मे तो कोमल हैं, पर परिणाम में कठोर (भयानक) हैं, मानों वह शहद में घोलकर जहर पिला रही है। दासी कहती है– "हे स्वामिनी ! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं। तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजा से मांग कर अपनी छाती ठंडी करो। पुत्र को राज्य और राम को बनवास दो और सौत का सारा आनन्द तुम ले लो। जब राजा राम की सौगन्ध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन टलने न पावे। आज की रात बीत गयी, तो काम बिगड़ जायेगा। मेरी बात को हृदय से प्रिय (या प्राणों से भी प्यारी) समझना।

अन्तर्कथा– कैकेयी केकय देश के राजा की राजकन्या थी। केकयराज विपाशा और शतद्रू के मध्य में बाल्हीक नामक जनपद के दक्षिण की ओर था। कैकेयी युवती और सुन्दरी थी, अतएव महाराज दशरथ उसके सर्वथा अनुगत हो गए थे।

दण्डकारण्य में वैजयन्त नगर के राजा तिमिध्वज से शम्बरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था। उस युद्ध में इन्द्र की ओर से लड़ने गए हुए महाराज दशरथ के साथ कैकेयी ने महाराज के मूर्छित होने पर, रथ की रक्षा करके,* महाराज के प्राण बचाए थे। उस समय राजा दशरथ ने कैकेयी को दो वर माँगने को कहा था। कैकेयी ने उन्हें थाती के रूप में राजा दशरथ के पास छोड़कर कहा कि आवश्यकता होगी तो माँग लूँगी।

इस घटना का मन्थरा ने कैकेयी को स्मरण दिलाया और अनुमति दी कि आज रात को अच्छा मौका है अपने दोनों थाती वरों को माँगने का - एक वर से भरत का राजतिलक माँग लो; दूसरे से राम का वनवास।

दो०– बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु ।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु ॥२२॥

भावार्थ– पापिनी मंथरा ने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा- "कोपभवन में जाओ। सब कुछ काम बड़ी सावधानी से करना, राजा पर सहसा विश्वास न कर लेना, उनकी बातों में न आ जाना।"

---

* रथ की रक्षा के विषय मे कुछ मनीषीयों का मत है कि युद्ध में रथ के पहिए की किल्ली के बदले कैकेयी ने अपनी ऊंगली डाल दी थी।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा ॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली ॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई ॥
बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥
कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई ॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई ॥

भावार्थ– कुबरी को रानी ने प्राणों के समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धि का बखान किया और बोली –'संसार में मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुई के लिये सहारा हुई है। यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें, तो हे सखी ! मैं तुझे आँखों की पुतली बना लूँ।' इस प्रकार दासी को बहुत तरह से आदर देकर कैकेयी कोपभवन में चली गयी। विपत्ति कलह बीज है, दासी वर्षा-ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि उस बीज के बोने के लिए जमीन हो गई। उसमें कपट रूपी जल पाकर अंकुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अंकुर के दो पत्ते हैं और अन्त में इससे दुःख रूपी फल होगा। कैकेयी कोप का सब साज सजा कर कोपभवन में जा सोयी। राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धि से नष्ट हो गयी। राजमहल और नगर में धूम-धाम मच रही है। इस कुचाल को कोई कुछ नहीं जानता।

दो०– प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार।
एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार ॥२३॥

भावार्थ– बड़े ही आनन्दित होकर नगर के सब स्त्री पुरुष शुभ मंगलाचार के साज सज रहे हैं। कोई भीतर जाता है, कोई बाहर निकलता है, राजद्वार में बड़ी भीड़ हो रही है।

बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानीं ॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई ॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा ॥
जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू ॥
अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के बाल सखा राजतिलक का समाचार सुनकर हृदय में हर्षित होते हैं। वे दस-पाँच मिलकर श्री रामचन्द्र जी के पास जाते हैं। प्रेम पहचानकर प्रभु श्री रामचन्द्र जी उनका आदर करते हैं और कोमल वाणी से कुशल क्षेम पूछते हैं। अपने प्रिय सखा श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर वे आपस में एक दूसरे से श्री रामचन्द्र जी की बड़ाई करते घर लौटते हैं, और कहते हैं–''संसार में श्री रघुनाथ जी के समान शील और स्नेह निबाहनेवाला कौन है। भगवान हमें यही दे कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस जिस योनि में जन्में, वहाँ वहाँ (उस उस योनि में)हम तो सेवक हों और सीतापति श्री रामचन्द्र जी हमारे स्वामी हों और यह नाता अन्त तक निभ जाय।'' नगर में सबकी ऐसी ही अभिलाषा है। परन्तु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीच के मत के अनुसार चलने से चतुराई नहीं रहती।

दो०– साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ ।।२४।।

भावार्थ– सन्ध्या के समय राजा दशरथ आनन्द के साथ कैकेयी के महल में गये। मानों साक्षात् स्नेह ही शरीर धारण कर निष्ठुरता के पास गया हो।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ।।
सुरपति बसइ बाहँबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।
सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ।।
भूमि सयन पटु मोटु पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना।।
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अन अहिवातु सूच जनु भाबी।।
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी।।

भावार्थ– कोप भवन का नाम सुनकर राजा सहम गये। डरके मारे उनका पाँव आगे को नहीं पड़ता। स्वयं देवराज इन्द्र जिनकी भुजाओं के बल पर (राक्षसों से निर्भय होकर)बसता है, और सम्पूर्ण राजा लोग जिसका रुख देखते रहते हैं, वही राजा दशरथ स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। कामदेव का प्रताप और महिमा तो देखिये। जो त्रिशूल, वज्र और तलवार आदि की चोट अपने अंगों पर सहने वाले हैं, वे रतिनाथ कामदेव के पुष्प वाणोंसे मारे गये। राजा डरते डरते अपनी प्यारी कैकेयी के पास गये। उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। कैकेयी जमीन पर पड़ी है। पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है। शरीर के नाना आभूषणों को उतार कर फेंक दिया है। उस दुर्बुद्धि कैकेयी को यह कुवेषता (बुरा

देष)कैसी फब रही है, मानों भावी विधवापन की सूचना दे रही हो। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी से बोले–'हे प्राणप्रिये किसलिए रिसाई हो।'

छं०– केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई।।
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई।।

भावार्थ– "हे रानी किसलिए रूठी हो?" यह कहकर राजा उसे हाथ से स्पर्श करते हैं तो वह उनके हाथ को (झटककर)हटा देती है और ऐसे देखती है मानों क्रोध में भरी हुई नागिन क्रूर दष्टि से देख रही हो। दोनों (वरदानों की) वासनाएँ उस नागिन की दो जीभें हैं, और दोनों वरदान दाँत हैं;वह काटने के लिये मर्मस्थान देख रही है। तुलसीदास जी कहते हैं कि राजा दशरथ होनहार के वश में होकर इसे (इस प्रकार हाथ झटकने और नागिन की भाँति देखने को)कामदेव की क्रीड़ा ही समझ रहे हैं।

टिप्पणी– यद्यपि सम्पूर्ण'मानस' दोहा- चौपाई शैली में लिखा गया, भावावेश में आकर तुलसीदास जी ने यत्र-तत्र छंदों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार अयोध्या काण्ड में दस स्थानों पर छंदों का प्रयोग किया गया है। और हर छंद के बाद एक सोरठा आता है।

अयोध्याकाण्ड में केवल दो रस है-शांत और करुण, बालकाण्ड की पृष्ठभूमि बहुत विस्तृत है। उसमें हास्य, विभत्स, अद्भुत, रौद्र और श्रृंगार रस भी हैं। अतएव उसमें छंदों का प्रयोग २८ स्थानों पर हुआ है। एक स्थान पर दो छंद हैं, और सात स्थान पर चार छंद अर्थात् १६ पंक्तियों के छंद हैं। अयोध्याकाण्ड में हर छंद के बाद सोरठा आता है, परन्तु बालकाण्ड में कभी दोहा, कभी सोरठा। दोनों काण्ड छंद और सोरठा से समाप्त होते हैं।

बालकाण्य में छंदों का प्रयोग शिव-पार्वती और सीता-राम के विवाह के समय हुआ है। १६ पंक्ति के छंद विष्णु और राम की स्तुति में कहे गए हैं या फिर राम के जन्म और विवाह के समय।

ऊपर का छंद अयोध्याकाण्ड का पहला छंद है। इस छंद में तुलसीदास ने बहुत सुन्दर रूपक बाँधा है। कैकेयी मानों एक नागिन है, दो वरदानों की वासना मानों उसकी दो जिह्वा हैं, दो वरदान उसके दाँत हैं और काटने के लिए मर्मस्थान की ताक में है।

सो०– बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर।।२५।।

भावार्थ– राजा बार-बार कह रहे हैं– "हे सुमुखी ! हे सुलोचनी हे कोकिल बयनी! हे गजगामिनी ! मुझे अपने क्रोध का कारण तो सुनाओ ।

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासौं देसू ॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मनु तव आनन चंद चकोरू ॥
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें । परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥
बिहसि मागु मनभावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू । बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू ॥

भावार्थ– हे प्रिये ! किसने तेरा अनिष्ट किया है ? किसके दो सिर हैं ? यमराज किसको लेना (अपने लोक को लेना जाना)चाहते हैं ? कहो किस कंगाल को राजा कर दूँ? या किस राजा को देश से निकाल दूँ। तेरा शत्रु अमर (देवता)भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ। बेचारे कीड़े - मकोड़े-सरीख नर-नारी चीज़ ही क्या हैं ? हे सुन्दरी ! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुख-रूपी चन्द्रमा का चकोर है । हे प्रिये ! मेरी प्रजा, कुटुम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र यहाँ तक कि मेरे प्राण भी, यह सब तेरे वश में हैं । यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी ! मुझे सौ बार राम की सौगन्ध है । तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक)अपनी मनचाही बात मांग ले और अपने मनोहर अंगों को आभूषणों से सजा । मौका-बेमौका तो मन में विचार कर देख । हे प्रिये ! जल्दी इस बुरे वेष को त्याग दे ।"

दो०– यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मति मंद ।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ।।२६।।

भावार्थ– यह सुनकर और मन में रामजी की बड़ी सौगन्ध को विचारकर, मन्दबुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी;मानों कोई भीलनी मृग को देखकर फँदा तैयार कर रही हो ।

पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी । प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा । घर घर नगर अनंद बधावा ॥
रामहि देउँ कालि जुबराजू । सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥

दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
एसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥
जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी ॥

भावार्थ– अपने जी में कैकेयी को सुहृद जानकर राजा दशरथ जी प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वाणी से फिर बोले– ''हे भामिनी ! तेरा मनचीता हो गया। नगर में घर-घर आनन्द के बधावे बज रहे हैं। मैं कल ही राम को युवराज पद दे रहा हूँ। इसलिये हे मृगनयनी ! तू मंगल-साज सज।'' यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा)। मानों पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो। ऐसी भारी पीड़ा को भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोर की स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती, जिसमें उसका भेद न खुल जाय। राजा उसकी कपट-चतुराई को नहीं लख रहे हैं। क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि गुरू मन्थरा की पढ़ाई हुई है। यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं, परन्तु त्रिया चरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपट युक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपर से प्रेम दिखाकर)नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली।

दो०– मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

भावार्थ– ''हे प्रियतम ! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देत-लेते कभी कुछ नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में सन्देह है।''

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥
तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥

भावार्थ– राजा ने हँस कर कहा कि ''अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब)समझा। मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरों को थाती (धरोहर)रखकर फिर कभी माँगा ही

नहीं। और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा। मुझे झूठ मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो! रघुकुल में सदा से यह रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चले जायें, पर वचन नहीं जाता। असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुंचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं। सत्य ही समस्त उत्तम सुकृतों की (पुण्यों की) जड़ है। यह बात वेद-पुराण में प्रसिद्ध है। और मनुजी ने भी यही कहा है। उस पर मेरे द्वारा श्री राम जी की शपथ करने में आ गयी (मुँह से निकल पड़ी)। श्री रघुनाथ जी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं।'' इस प्रकार बात पक्की करा के दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली। मानों उसने कुमत (बुरे विचार)रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) को छोड़ने के लिये उस की कुलही (आँखों पर की टोपी)खोल दी।

लोकोक्ति— ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है, जो समस्त 'मानस' की केन्द्र-बिन्दु है:

' रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई।।'

अपने वचन को सत्यापित करने के लिये, रघुवंश के राजा अपने प्राणों तक कि बाजी लगा देते थे। वास्तव में, राजा दशरथ ने कैकेयी को भरत को युवराज बनाने और राम को निष्कासित करने का वचन देकर, राम के वियोग में अपने प्राण त्याग दिये। और 'पूज्य पिता के सहज सत्य पर, वार सुधाम, धरा, धन को*, राम चौदह वर्ष 'गहन वन' में रहे। इस रघुकुल की रीति की पुष्टि के लिए दो दृष्टान्त पर्याप्त हैं —

शिवि— राजा उशीनर के पुत्र तथा महाराज ययाति के दौहित्त थे। ये अपनी दयालुता के कारण प्रसिद्ध हैं। इनकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिये इंद्र और अग्नि दोनों यथाक्रम बाज़ और कबूतर बनकर इनकी सभा में आए। बाज ने कबूतर पर आक्रमण किया। कबूतर राजा शिवि की गोद मे जाकर छिप गया। यह देखकर बाज ने राजा से कहा— ''महाराज! दोनों पर दया करना राजधर्म है। मैं भूखा हूँ, मेरे भक्ष्य को आपने छिपा लिया है। यह आपका धर्म नहीं है, आप इसे छोड़ दें।'' राजा ने कहा— ''शरणागत की रक्षा करना प्रधान धर्म है। तुम इसके अतिरिक्त जो वस्तु मांगो मैं दूँगा।'' बाज ने कहा- ''इसी कबूतर के बराबर आप अपने शरीर का मांस दें।'' राजा ने तराजू के एक पलड़े पर कबूतर को रखवाया और वे अपने शरीर से मांस काटकर दूसरे पलड़े पर रखने लगे। उन्होंने समस्त शरीर का मांस काटकर रख दिया तो भी उस कबूतर के बराबर मांस नहीं हुआ। यह देखकर राजा स्वयं पलड़े में बैठ गये। इसी समय आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। इन्द्र और अग्नि भी अपना-अपना रूप धारण करके प्रकट हुए। इंद्र और अग्नि ने कहा— ''महाराज! आप धन्य हैं। आपकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिए हम लोग आये थे।''

---

* मैथलीशरण गुप्त की ''पञ्चवटी'' के पूर्वाभास की पहली दो पंक्ति।

२. **हरिश्चन्द्र**— सूर्य वंश के अट्ठाइसवें राजा, रामचन्द्र के ३५ पीढ़ी पहले, महाराज सत्यव्रत के पुत्र थे। इनकी राजधानी अयोध्या थी। ये बड़े दानी थे। नारद ने इन्द्र के दरबार में आकर घोषणा की कि राजा हरिश्चन्द्र सत्य की मूर्ति हैं। उनके निष्कपट अकृत्रिम स्वभाव से सारा जगत संतुष्ट है। इन्द्र ने सन्देह करते हुए कहा 'एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।' इतने में विश्वामित्र आ गये और उत्तेजित होकर बोले 'हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानी बनने का अभिमान करेगा।'

विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के दरबार में जाकर, उससे सारी पृथ्वी दान में माँग ली। दान पाने के बाद 'सहस्र स्वर्ण मुद्रा' दक्षिणा में माँगी। राजा ने मन्त्री को आज्ञा दी कि 'हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ'। विश्वामित्र बोले 'मन्त्री कहां से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है कि तूँ मन्त्री पर हुकुम चलाता है।' हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया 'मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो, मेरा शरीर तो है।'

दक्षिणा चुकाने के लिए विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को एक महीने की अवधि दी। फलतः काशी में जाकर ५००) में हरिश्चन्द्र स्वयं एक डोम के हाथ बिके और अपनी स्त्री और पुत्र को ५००) में एक उपाध्याय के हाथ बेचा। इस प्रकार विश्वामित्र के दक्षिणा-ऋण से उऋण हुए।

ब्राह्मण के बाग में खेलते हुए, रोहिताश्व (पुत्र) को सर्प ने डस लिया। शैव्या (पत्नी) दाह-क्रिया करने के लिये पुत्र के शव को श्मशान में लेकर आई। हरिश्चन्द्र ने दाह-संस्कार नहीं करने दिया क्योंकि श्मशान-पति डोमराज की आज्ञा थी कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे। अपनी विवशता प्रकटाती हुई शैब्या बोली 'मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था। अपना आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ। उसमें से भी जो आधा दूँगी तो यह खुला ही रह जायेगा।'

शैव्या जैसे ही रोहिताश्व का मृतकम्बल फाड़ना चाहती है, आकाश से जय जय ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान नारायण प्रकट होकर हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।' रोहिताश्व जाग उठता है और इन्द्र क्षमा माँगते हुए कहते हैं 'यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहे, आपने अपने सत्य बल से ब्रह्मपद पाया। देखिये आपकी रक्षा के हेतु श्री शिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे। नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।'

तुलसीदास प्रण पालन और सत्यपालन में कोई भेद नहीं समझते। ऊपर की लोकोक्ति की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है-

'नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।'

अर्थात्, असत्य के समान कोई भी पापों का समूह नहीं है क्योंकि एक असत्य को सत्य बनाने के लिये अनेकों असत्यों का आश्रय लेना पड़ता है, फिर भी असत्य असत्य ही रहता है। इस प्रकार पापों का समूह बढ़ता ही जाता है। करोड़ों घुँचियों को एकत्रित करके एक स्थान पर रख देने से वह पहाड़ कभी नहीं बन सकता। इसी प्रकार अनेकों असत्यों के मिला देने से भी सत्य नहीं बन जाता।

दो०— भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु।।२८।।

भावार्थ— राजा का मनोरथ सुन्दर वन है, सुख सुन्दर पक्षियों का समुदाय है। उस पर भीलनी की तरह कैकेयी अपना वचन-रूपी भयंकर बाज़ छोड़ना चाहती है।

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका।।
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।।
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी।।
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू।।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।।
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू।।
माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।।
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला।।
अवध उजारि कीन्हि कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं।।

भावार्थ— (वह बोली)— "हे प्राण प्यारे! सुनिये! मेरे मन को भाने वाला एक वर तो दीजिये भरत को राजतिलक; और हे नाथ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूं, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये। तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुम्ब आदि की ओर से भली-भाँति उदासीन होकर, विरक्त मुनियों की भाँति) राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें।" कैकेयी के कोमल (विनययुक्त) वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विफल हो जाता है। राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते न बना, मानों बाज वन में बटेर पर झपटा हो। राजा का रंग बिल्कुल उड़ गया मानों ताड़ के पेड़ को बिजली ने मारा हो (जैसे ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरने से वह झुलस कर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजा का हुआ)। माथे पर हाथ रखकर, दोनों

नेत्र बन्द करके राजा ऐसे सोच करने लगे मानों साक्षात् सोच ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो। (वे सोचते हैं-हाय) मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़ समेत उखाड़ कर नष्ट कर डाला। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और विपत्ति की अचल (सुदृढ़)नींव डाल दी।

टिप्पणी– यह चौपाई नौ विषम पंक्तियों की है। इसमें तुलसीदास जी ने दो बहुत सुन्दर रूपक बाँधे हैं। ऊपर दोहा २८ में कहा गया है, कैकेयी भिलनी अपने वचन-रूपी बाज को दशरथ के मनोरथ-रूपी पक्षी को दबोचने के लिए छोड़ रही है। रूपक को बढ़ाते हुए, चौपाई में तुलसीदास कहते हैं कि कैकेयी के वचन सुनकर दशरथ सहम गए मानों बाज बन में बटेर पर झपटा हो।

दूसरा रूपक है जब माथे पर हाथ रखकर, दोनों आँखें बन्द करके दशरथ सोचने लगे, तो मानों सोच साक्षात् शरीर धारण करके सोचने लगा हो। इस सोच की मूर्ति का महाकवि मिल्टन ने Il Penseroso में इस प्रकार चित्रण किया है–

"Thy rapt soul sitting in thine eyes :

There held in holy passion still,

Forget thyself to Marble, till

With a sad Leaden downward cast,

Thou fix them on the earth as fast."

दो०– कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।

जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास।।२९।।

भावार्थ– किस अवसर पर क्या हो गया। स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया जैसे योग की सिद्धि रूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है।

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा।।

भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही।।

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें।।

देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं।।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू।।

सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना।।

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा।।

अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई।।

भावार्थ– इस प्रकार राजा मन ही मन खीज रहे हैं। राजा का ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मन में बुरी तरह से क्रोधित हुई। (और बोली)– ''क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं ? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाये हैं (क्या मैं आबकी विवाहिता पत्नी नहीं हूं) ? जो मेरा वचन सुनते ही आपको वाण सा लगा, तो आप सोच समझ कर बात क्यों नहीं करते ? उत्तर दीजिये–हाँ कीजिये, नहीं तो नाहीं कर दीजिये। आप रघुकुल में सत्य प्रतिज्ञा वाले (प्रसिद्ध) हैं। आपने ही देने को कहा था, अब भले ही न दीजिये। सत्य को छोड़ दीजिये और जगत् में अपयश लीजिये। सत्य की बड़ी सराहना करके वर देने को कहा था। समझा था कि यह केवल चबेना मांग लेगी।राजा शिवि, दधीच और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा।'' कैकेयी बहुत ही कडुवे बचन कह रही है, मानों जले पर नमक छिड़क रही हो।

पात्र-परिचय– जब कैकेयी ने अपने दो वरदान माँगे, तो दशरथ पछतावा करने लगे। कैकेयी ने उन्हें स्मरण कराया कि उन्होंने ही पहले उसे आश्वासन दिया था–

'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुं बरु वचन न जाई।'

साथ में कैकेयी ने उन महात्माओं का भी स्मरण कराया जिन्होंने अपने वचन का पालन करने के लिए अपने तन-धन को त्याग दिया। उनके नाम क्रमशः शिवि, दधीचि और बलि हैं।

१. **शिवि**– देखिये ऊपर पृष्ठ ४१८।

२. **दधीचि**– ये महर्षि शुक्राचार्य के पुत्र थे। ये अथर्वा के औरस और कर्दम प्रजापति की कन्या शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वृत्रासुर के अत्याचार से जब देवता पीड़ित हो रहे थे, तब उन्हें मालुम हुआ कि यदि दधीचि मुनि के अस्थि से बज्र बने तो उसी से वृत्रासुर का नाश होगा। यह सोचकर देवता दधीचि के निकट गये, और उन लोगों ने उनसे अपनी अस्थि देने की प्रार्थना की। इसके पहले इंद्र ने दधीचि मुनि का अपकार किया था। एक समय महर्षि दधीचि उग्र तपस्या कर रहे थे, भीत होकर इंद्र ने अलम्बुषा नाम की अप्सरा द्वारा उनकी तपस्या में विघ्न डाला। परन्तु इस समय उदारचेता महर्षि, पूर्व अपकार भूल गए। उन्होंने देवताओं के उपकार के लिए अपना शरीर छोड़ दिया। उनके अस्थि से बज्र बनाया गया और उसी वज्र से वृत्रासुर मारा गया।

३. **बलि**– ये दैत्यराज प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम विंध्यावली था। अपनी कठोर तपस्या से इन्होंने इंद्र को पराजित किया और इस प्रकार तीनों लोकों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन्होंने अश्वमेघ-यज्ञ किया। इंद्र के अनुरोध पर वामनस्वरूप विष्णु उनके समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने इनसे तीन पग पृथवी की याचना की। बलि के गुरू शुक्राचार्य ने वास्तविकता को समझ लिया था। इसलिए बलि से

उन्होंने अस्वीकार करने के लिए कहा;किन्तु बलि ने द्वार पर आए किसी भी व्यक्ति को निराश लौटा देना अस्वीकार कर दिया । बलि ने तीन पग पृथ्वी दान कर देने का संकल्प किया । तब वामनरूप विष्णु ने अपना विस्तार किया । दो पगों में उन्होंने स्वर्ग तथा पृथ्वी को नाप लिया । तीसरे पग के लिए स्थान मांगने पर बलि ने उसे अपने सिर पर रखने के लिए कहा। बलि की इस विषम परिस्थिति को देखकर प्रह्लाद प्रकट हुए । उनके अनुनय-विनय और बलि के पुण्यकार्यों के फलस्वरूप उन्हें सुतल में रहने की आज्ञा प्रदान की गई । बलि ने उनकी आज्ञा का पालन किया ।

दो०— धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ ।।३०।।

भावार्थ— धर्म की धुरी को धारण करने वाले राजा दशरथ ने धीरज धर कर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी सांस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे बच निकलना कठिन हो गया)।

आगें दीखि जरत रिस भारी । मनहुँ रोष तरवारि उघारी ।।
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरीं सान बनाई ।।
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ।।
बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सबिनय तासु सोहाती ।।
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती । भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती ।।
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी । सत्य कहउँ करि संकरु साखी ।।
अवसि दूतु मैं पठइब प्राता । ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ।।
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई । देउँ भरत कहुँ राजु बजाई ।।

भावार्थ— प्रचन्ड क्रोध से जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखाई पड़ी मानों क्रोध रूपी तलवार नंगी (म्यान से बाहर)खड़ी हो । कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी मन्थरा रूपी सान पर धर कर तेज की हुई है । राजा ने देखा कि यह (तलवार)बड़ी ही भयानक और कठोर है ! (और सोचा)— क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी ? राजा छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रता के साथ उसे (कैकेयी को)प्रिय लगने वाली वाणी बोले । ''हे प्रिये ! हे भीरू ! विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे बुरी तरह के वचन कैसे कह रही हो । मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात् एक से) हैं, यह मैं शंकर जी की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ । मैं अवश्य ही सबेरे ही दूत भेजूँगा । दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न)सुनते ही तुरंत आ जायेंगे । अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त)शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा ।

दो०— लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति ।।३१।।

भावार्थ— राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है । मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था (बड़े को राजतिलक देने जा रहा था)।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ।।
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें ।।
रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ।।
एकहि बात मोहि दुखु लागा । बर दूसर असमंजस मागा ।।
अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा ।।
कहु तजि रोषु राम अपराधू । सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ।।
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ।।
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ।।

भावार्थ— राम की शपथ सौ बार खाकर मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि राम की माता (कौसल्या) ने इस विषय में मुझसे कभी कुछ नहीं कहा । अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया । इसी से मेरा मनोरथ खाली गया । अब क्रोध छोड़ दे और मंगल-साज सजा। कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जायेंगे । एक ही बात का मुझे दुःख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चन का माँगा । उसकी आँच से अब भी मेरा हृदय जल रहा है । यह दिल्लगी में, क्रोध में अथवा सचमुच ही (वास्तव में)सच्चा है । क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बता । सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं । तू स्वयं भी राम की सराहना करती और उन पर स्नेह किया करती थी । अब यह सुनकर मुझे सन्देह हो गया है (कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठ तो न थे)। जिनका (राम का)स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल है, वह माता के प्रतिकूल आचरण क्यों कर करेगा ।

दो०— प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु ।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ।।३२।।

भावार्थ— हे प्रिये ! हँसी और क्रोध छोड़ दो, और विवेक (उचित-अनुचित)विचार कर वर माँग, जिससे अब मैं नेत्र भरकर भरत का राज्याभिषेक देख सकू ।

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना ।।
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ।।
समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ।।
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ।।

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका । तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥

भावार्थ– मछली चाहे बिना पानी के जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणि के दीन-दुःखी होकर जीता रहे । परन्तु मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, मन में (जरा भी) छल रखकर नहीं, कि मेरा जीवन राम के बिना नहीं है । हे चतुर प्रिये ! ज़ी में समझ देख, जीवन मेरा श्री राम के दर्शन के अधीन है ।'' राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही है । मानों अग्नि में घी की आहुतियां पड़ रही हैं । (कैकेयी कहती है)– ''आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लगेगी । या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिये, नहीं तो 'नाही' करके अपयश लीजिये । मुझे बहुत प्रपंच (बखेड़े)नहीं सुहाते । राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और राम की माता भी भली हैं, मैंने सबको पहचान लिया है । कौशल्या ने मेरा जैसा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखने योग्य)वैसा ही फल दूँगी ।

दो०– होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं ।।३३।।

भावार्थ– सबेरा होते ही मुनि का वेष धारण कर यदि राम बन को नहीं जाते, तो हे राजन् ! मन में निश्चय समझ लीजिये कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश ।''

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात फुरि साँची । तिय मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥
मागु माथ अबहीं देउँ तोही । राम बिरहँ जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती । नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ॥

भावार्थ– ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई मानों क्रोध की नदीं उमड़ी हो । वह नारीं पापरूपी पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोध रूपी जल से भरी है ।(ऐसी भयानक है कि) देखी नहीं जाती । दोनों वरदान उस नदी के किनारे हैं, कैकेयी की कठिन हठ ही उसकी (तीव्र) धारा है और कुबरी (मन्थरा) के वचनों की प्रेरणा ही भवँर है । (वह क्रोध रूपी नदी)राजा दशरथ रूपी वृक्ष को जड़-मूल से हठाती हुई विपत्ति रूपी समुद्र की ओर (सीधी) चली है । राजा ने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तव)में सच्ची है, स्त्री के

बहाने मेरी मृत्यु ही सिरपर नाच रही है। (तदनन्तर राजा ने कैकेयी के) चरण पकड़ कर उसे बिठाकर बिनती की कि "सूर्यकुल-रूपी वृक्ष के लिये कुल्हाड़ी मत बन। तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँगा। पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किंसी प्रकार से हो, तू राम को रखा ले। नहीं तो जन्म भर तेरी छाती जलेगी।"

दो०— देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ।।३४।।

भावार्थ— राजा ने देखा रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणी से 'हा राम ! हा राम ! हा रघुनाथ !' कहते हुए सिर पीट कर ज़मीन पर गिर पड़े।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।।
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी।।
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई।।
जौं अंतहुँ अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ।।
दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।।
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई।।
छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू।।
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी।।

भावार्थ— राजा ब्याकुल हो गये, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया। मानों हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ फेंका हो। कंठ सूख गया, मुख से बात नहीं निकलती। मानों पानी के बिना पाहिना नामक मछली तड़प रही हो। कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानों घाव में जहर भर रही हो। (कहती है)— "जो अन्त में ऐसा ही करना था, तो आपने माँग, माँग किस बल पर कहा था। हे राजा ! ठहाका मार कर हसना और गाल फुलाना (क्रोधित होना), क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना ! क्या राजपूती में क्षेम-कुशल भी रह सकती है ? (लड़ाई में बहादुरी भी दिखावें और कहीं चोट भी न लगे)। या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिये, या धैर्य धारण कीजिये। यों असहाय स्त्री की भाँति रोइये-पीटिये नहीं। सत्यव्रती के लिये तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनके के बराबर कहे गये हैं।"

दो०— मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ।।३५।।

भावार्थ— कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि "तू चाहे जो कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं हैं। मेरा काल तुझे मानों पिशाच होकर लग गया है। वही तुझसे यह सब कहला रहा है।

चहत न भरत भूपतहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें ।।
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू ।।
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई।।
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई ।।
तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ ।।
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई ।।
जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ।।
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी ।।

भावार्थ– भरत जी भूल कर भी राजपद नहीं चाहते। होनहार वश तेरे ही जी में कुमति आ बसी। यह सब मेरे पापों का परिणाम है, जिससे कुसमय में (बेमौके)विधाता विपरीत हो गया। (तेरी उजाड़ी हुई)यह सुन्दर अयोध्या फिर भली भाँति बसेगी और समस्त गुणों के धाम श्री राम की प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा भी करेंगे और तीनों लोकों में श्री राम की बड़ाई होगी। केवल तेरा कलंक और मेरा पछ्तावा मरने पर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जायेगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ (अर्थात् मेरे सामने से हट जा, मुझे मुंह न दिखा)। मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ न कहना (अर्थात् मुझसे न बोलना)। अरी अभागिनी फिर तू अन्त में पछतायेगी जो तू नहारू (ताँत)के लिये गाय को मार रही है।''

दो०– परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु ।।३६।।

भावार्थ– राजा करोड़ो प्रकार से बहुत तरह से समझा कर और यह कहकर कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वी पर गिर पड़े। पर कपट करने में चतुर कैकेयी कुछ नहीं बोली। मानों (मौन रहकर)मसान जगा रही हो (श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो)।

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ।।
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई ।।
उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर ।।
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई ।।
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा ।।
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहिं जनु लागहिं सायक ।।
मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें ।।
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू ।।

भावार्थ– राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। वे अपने हृदय में मनाते हैं कि सबेरा न हो, और कोई जाकर श्री रामचन्द्र जी से यह बात न कहे। हे रघुकुल के गुरु (मूलपुरुष) सूर्य भगवान् ! आप अपना उदय न करें। अयोध्या को (बेहाल) देखकर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी । राजा की प्रीति और निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक रचकर बनाया है (अर्थात् राजा प्रेम की सीमा हैं और कैकेयी निष्ठुरता की)। विलाप करते करते ही राजा को सबेरा हो गया। राजद्वार पर वीणा, बाँसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं और गवैये गुणों का गान कर रहे हैं। सुनने पर राजा को वे वाण जैसे लगते हैं। राजा को ये सब मंगल साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं जैसे पति के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण। श्री रामचन्द्र जी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी को भी नींद नहीं आयी।

दो०– द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ।।३७।।

भावार्थ– राजद्वार पर मन्त्रियों और सेवकों की भीड़ लगी है। वे सब सूर्य को उदित हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथ जी अभी तक नहीं जागे।

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा।।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई।।
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं।।
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा।।
पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई।।
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई।।
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ।।
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी।।

भावार्थ– राजा नित्य ही रात के पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमन्त्र ! जाओ, जाकर राजा को जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें। तब सुमन्त्र रावले में (राजमहल में)गये। पर महल को भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो दौड़कर काट खायेगा। उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। मानों विपत्ति और विषाद ने वहाँ डेरा डाल रखा हो। पूछने पर कोई जवाब नहीं देता। वे उस महल में गए जहाँ राजा और कैकेयी थे।'जय-जीव' कहकर, सिर नवाकर (बंदना करके) बैठे और राजा की दशा देखकर तो वे सूख ही गये। (देखा कि)– राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है। जमीन पर ऐसे पड़े हैं मानों कमल जड़ छोड़कर (जड़ से उखड़कर मुर्झाया)पड़ा हो। मन्त्री मारे डर के कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई और शुभ से विहीन कैकेयी बोली।

दो०– परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु ।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ।।३८।।

भावार्थ– ''राजा को रात भर नींद नहीं आई, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम-राम' रटकर सबेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं बतलाते।

आनहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूँछेहु आई ।।
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ।।
सोच बिकल मग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ।।
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें । पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ।।
समाधानु करि सो सबही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ।।
रामु सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पीता सम लेखा ।।
निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ।।
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ।।

भावार्थ– तुम जल्दी राम को बुला लाओ । तब आकर समाचार पूछना ।'' राजा का रुख जानकर सुमन्त्र जी चले, समझ गये कि रानी ने कुछ कुचाल की है । सुमंत्र सोच से व्याकुल हैं, रास्ते पर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा नहीं जाता)। (सोचते हैं)– राम जी को बुलाकर राजा क्या कहेंगे ? किसी तरह हृदय मे धीरज धरकर वे द्वार पर गये । सब लोग उनको मनमारे (उदास)देखकर पूछने लगे । सब लोगों का समाधान करके (किसी तरह समझा बुझाकर) सुमंत्र वहाँ गये जहाँ सूर्यकुल के तिलक श्री रामचन्द्र जी थे । श्री रामचन्द्र जी ने सुमंत्र को आते देखा, तो पिता के समान समझकर उनका आदर किया । श्री रामचन्द्र जी के मुख को देखकर और राजा की आज्ञा सुनाकर वे रघुकुल के दीपक श्री रामचन्द्र जी को (अपने साथ)लिवा चले । श्री रामचन्द्र जी मंत्री के साथ बुरी तरह से (अर्थात् जिस दशा में थे उसी प्रकार)जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ तहाँ विषाद कर रहे हैं ।

दो०– जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनुहुँ वृद्ध गजराजु ।।३९।।

भावार्थ– रघुवंशमणि श्री रामचन्द्र जी ने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पड़े हैं, मानों सिंहनी को देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहम कर गिर पड़ा हो ।

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू । मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ।।
सरुष समीप दीखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई ।।
करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ।।

तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुर बचन महतारी ॥
मोहि कहु मात तात दुख कारन । करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना । मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥

भावार्थ– राजा के ओठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है। मानों मणि के बिना साँप दुखी हो रहा हो । पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानों (साक्षात्) मृत्यु ही बैठी (राजा के जीवन की अंतिम)घड़ियाँ गिन रही हो । श्री रामचन्द्र जी का स्वभाव कोमल और करुणामय है । उन्होंने (अपने जीवन में) पहली बार यह दुःख देखा, इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था । तो भी समय का विचार करके, हृदय में धीरज धर कर उन्होंने मीठे बचनों से माता कैकेयी से पूछा ।'हे माता ! मुझे पिताजी के दुःख का कारण कहो, ताकि जिससे उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाय ।' (कैकेयी ने कहा)– ''हे राम ! सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है । इन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था । मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंनें माँगा । उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हो गया, क्यों कि ये तुम्हारा संकोच छोड़ नहीं सकते ।

दो०– सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ।।४०।।

भावार्थ– इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा)। राजा इसी धर्म संकट में पड़ गये हैं । यदि तुम कर सकते हो, तो राजाज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेश को मिटाओ । ''

निधरक बैठि कहइ कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू । सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । रामु सहज आनंद निधानू ॥
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

भावार्थ– कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी । जीभ धनुष है, वचन बहुत से तीर हैं, और मानों राजा ही

कोमल निशाने के समान हैं। (इस सारे साज-समान के साथ) मानों स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। श्री रघुनाथ जी को सब हाल सुनाकर वह ऐसी बैठी है मानों निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हो। सूर्य कुल के सूर्य, स्वाभाविक ही आनन्द निधान श्री रामचन्द्र जी मन में मुसकराकर सब दूषणों से रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले जो वाणी के भूषण ही थे। ''हे माता ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञापालन के द्वारा) माता-पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी ! सारे संसार में दुर्लभ है।

दो०— मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ।।४१।।

भावार्थ– वन में विशेष रूप से मुनियों का मिलाप होगा, जिससे मेरा सभी प्रकार से कल्याण है। उसमें भी, फिर पिता की आज्ञा और हे जननी ! तुम्हारी सम्मति है।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ।।
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ।।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं ।।
अब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी ।।
थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ।।
राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ।।
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ।।

भावार्थ– और प्राणप्रिय भरत राज्य पायेंगे। (इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि) आज विधाता सब प्रकार से मेरे सम्मुख (अनुकूल) हैं। यदि ऐसे काम के लिये भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिये। जो कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंडी की सेवा करते हैं और अमृत त्याग कर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मन में विचार कर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे। हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेष रूप से हो रहा है, वह महाराज को अत्यन्त व्याकुल देखकर। इस थोड़ी सी बात के लिये ही पिता जी को इतना भारी दुःख हो, हे माता ! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता। क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणों के अथाह समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगंध है, माता ! तुम सच-सच कहो।''

दो०— सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ।।४२।।

भावार्थ– रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी के स्वभाव से ही सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है;जैसे, यद्यपि जल समान ही होता है, परन्तु जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥
पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हें॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

भावार्थ– रानी कैकेयी श्री रामचन्द्र जी का रुख पाकर हर्षित हो गयी और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली- ''तुम्हारी शपथ और भरत की सौगंध है, मुझे राजा के दु:ख का दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है। हे तात ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिता का अपराध बन पड़े, यह सम्भव नहीं)। तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे राम ! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम पिता-माता के वचनों (के पालन)में तत्पर हो। मैं तुम्हारी बलहारी जाती हूँ, तुम पिता को समझा कर वही बात कहो जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने इनको तुम जैसे पुत्र दिये हैं उनका निरादर करना उचित नहीं।'' कैकेयी के बुरे मुख से यह शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदि का तीर्थ। श्री रामचन्द्र जी को माता कैकैयी के सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगा जी में जाकर (अच्छे-बुरे सभी प्रकार के)जल शुभ, सुन्दर हो जाते हैं।

दो०– गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह॥४३॥

भावार्थ– इतने में राजा की मूर्छा दूर हुई, उन्होंने राम का स्मरण करके (राम ! राम! कहकर)फिर करवट ली। मन्त्री ने श्री रामचन्द्र जी का आना कहकर समयानुकूल विनती की।

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥
लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥

सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

भावार्थ– जब राजा ने सुना कि श्री रामचन्द्र जी पधारे हैं, तो उन्होंने धीरज धरके त्र खोले। मन्त्री ने सँभालकर राजा को बैठाया। राजा ने श्री रामचन्द्र जी को अपने चरणों में पड़ते (प्रणाम करते) देखा। स्नेह से विकल राजा ने राम जी को हृदय से लगा लिया। मानों साँपने अपनी खोई हुई मणि फिर से पा ली हो। राजा दशरथ जी श्री रामजी को खते ही रह गये। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। शोक के विशेष वश होने के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार श्री रामचन्द्र जी को हृदय से लगाते हैं और न में ब्रह्मा जी को मनाते हैं कि जिससे श्री रघुनाथ जी वन को न जाँये। फिर महादेव जी का स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं– ''हे सदाशिव ! आप मेरी विनती सुनिये। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) और अवढर दानी (सबको बिना विचारे मनचाहा ान देनेवाले) हैं। अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःख को दूर कीजिये।

दो०– तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥४४॥

भावार्थ– आप प्रेरक रूप से सब के हृदय में हैं, आप श्री रामचन्द्र जी को ऐसी बुद्धि ीजिये जिससे वे मेरे वचन को त्याग कर और शीलस्नेह को छोड़कर घर ही में रह जायँ।

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि होंही॥
अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

भावार्थ– जगत में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाय, चाहे (नया पाप होने ो) मैं नरक में गिरूँ अथवा स्वर्ग चला जाय (पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप मिलने वाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले), और भी सब प्रकार के दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें, पर श्री ामचन्द्र जी मेरी आँखों की ओट न हों।'' राजा मन ही मन इस प्रकार विचार कर रहे

हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है ! श्री रघुनाथ जी ने पिता को प्रेम के वश जानकर, और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी (तो पिता जी को दुःख होगा), देश काल और अवसर के अनुकूल विचार कर विनीत वचन कहे- ''हे तात! मैं कुछ कहता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ, इस अनौचित्य को मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजियेगा। इस अत्यन्त तुच्छ बात के लिये आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसी ने पहले कहकर यह बात नहीं जनायी। स्वामी को (आपको) इस दशा में देखकर मैंने माता से पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग शीतल हो गये (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)।

दो०– मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात ।।४५।।

भावार्थ– हे पिता जी ! इस मंगल के समय स्नेह वश होकर सोच करना छोड़ दीजिये और हृदय में प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये।'' यह कहते हुए प्रभु श्री रामचन्द्र जी सर्वांग पुलकित हो गये।

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ।।
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ।।
आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई ।।
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी ।।
अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा ।।
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ।।
सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी ।।
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई ।।

भावार्थ– (उन्होंने फिर कहा) - ''इस पृथ्वी पर उसका जन्म धन्य है जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनन्द हो। जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतल गत (मुट्ठी में) रहते हैं। आपकी आज्ञा पालन करके और जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः आप कृपया आज्ञा दीजिये। माता से विदा माँग आता हूँ, फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) बन को चलूँगा।'' ऐसा कहकर तब श्री रामचन्द्र जी वहाँ से चले गये। राजा ने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगर भर में इतनी जल्दी फैल गयी मानों डंक मारते ही विच्छू का विष सारे शरीर में चढ़ गया हो। इस बात को सुनकर सब स्त्री पुरुष ऐसे व्याकुल हो गये जैसे दावानल (बन में आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है। बड़ा विषाद है। किसी को धीरज नहीं बँधता।

**दो०– मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ ।।४६।।**

भावार्थ– सब के मुख सूख जाते हैं । आँखों से आँसू बहते हैं । शोक हृदय में नहीं समाता । मानों करुणा रस की सेना अवध पर डंका बजाकर उतर आयी हो ।

*मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी । जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी ।।
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ।।
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा । डारि सुधा बिषु चाहत चीखा ।।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ।।
पालव बैठि पेड़ु एहिं काटा । सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा ।।
सदा रामु एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ।।
सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ।।
निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ।।*

भावार्थ– सब मेल मिल गये थे (सब संयोग ठीक हो गए थे), इतने में ही विधाता ने बात विगाड़ दी । जहाँ तहाँ लोग कैकेयी को गाली दे रहे हैं । इस पापिन को क्या सूझ पड़ा, जो इसने छाये घर पर आग रख दी । यह अपने हाथ से अपनी आँखों को निकालकर (आँखों के बिना ही)देखना चाहती है, और अमृत फेंक कर विष चखना चाहती है । यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुबंश रूपी बाँस के वन के लिये अग्नि हो गयी । टहनी पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला, सुख में शोक का ठाठ ठटकर रख दिया। श्री रामचन्द्र जी इसे सदा प्राणों के समान प्रिय थे, फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी । कवि सत्य ही कहते हैं स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य, अथाह और भेदभरा होता है । अपनी परछाहीं भले ही पकड़ी जाय, पर भाई ! स्त्रियों की गति (चाल)नहीं जानी जाती ।

**दो०– काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ।।४७।।**

भावार्थ– आग क्या नहीं जला सकती ? समुद्र में क्या नहीं समा सकता ? अबला कहाने वाली प्रबल स्त्री (जाति)क्या नहीं कर सकती ? और जगत में काल किसको नहीं खाता ।

लोकोक्ति– ऊपर के दोहे में और उसके ऊपर की चौपाई की अन्तिम पंक्ति में दो लोकोक्ति हैं–

(१) '............नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।।
निज प्रतिबिम्बु बरुक महि जाई। जानि न जाई नारि गति भाई।।'

स्त्री का स्वभाव पूर्णरूप से किसी की भी समझ में नहीं आया। वह अथाह और भेद से भरा हुआ है। यदि एक समय उसमें कोमलता है, तो दूसरे समय अत्यन्त कठोरता; कभी बड़ा प्रेम है, तो कभी उससे भी बड़ी घृणा ; किसी समय उसमें अति दया है तो दूसरे समय निष्ठुरता, आदि आदि। इस कारण कोई यह नहीं जान सकता कि किस समय उसके क्या भाव हो सकते हैं क्योंकि उसमें भेद की पराकाष्ठा है। इस कारण कोई भी उसकी थाह नहीं पा सकता, जिससे वह निश्चय पूर्वक उसके स्वभाव को ठीक प्रकार से पहचान सके। जब उसको समझ ही नहीं सकता, तो उसका वर्णन किस प्रकार कर सकता है। सत्य बात तो यह है कि जो असम्भव है उसे तो कदाचित कोई सम्भव कर सँके परन्तु जो सम्भव हो सकता है वह सम्भव ही रहेगा। अर्थात्, अपनी परछाँइयों को पकड़ लेने में कदाचित् मानव सफल हो सके, परन्तु किसी भी स्त्री के मन की दशा किसी समय कैसी होगी यह समझ पाना असम्भव ही रहेगा।

(२) 'काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाई।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाई।।'

ऐसी कौन सी वस्तु संसार में है जिसे अग्नि जलाने में असमर्थ हो ? जगत में ऐसी बड़ी से बड़ी कौन सी चीज है जो समुद्र में पूर्णतः डूब न जाय ? इसी प्रकार काल का भी ध्यान मानव को नहीं रहता है। परन्तु समय आने पर ऐसा कौन मानव है या पदार्थ है जिसे काल खा नहीं जाता, अथवा नष्ट नहीं कर डालता।

मैथिलीशरण गुप्त 'यशोधरा' के आमुख में कहते हैं—

'अबला-जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी'

परन्तु तुलसीदास के मत में स्त्री इतनी दुर्बल और असहाय नहीं है। जिसे हम लोग अबला कहते हैं, क्योंकि वह स्त्री है, वही इतनी प्रबल है कि ऐसा कौन सा कार्य है जो वह नहीं कर सकती। अर्थात्, वह अबला कहलाने वाली स्त्री कोमल से कोमल, कठिन से कठिन और क्रूर से क्रूर कार्य करने में समर्थ है। यह हमारा भ्रम है कि हम स्त्री को केवल अबला (बलहीन) समझने की भारी भूल कर बैठते हैं। जब कि हम सबल कहलाने वाले पुरुषों की अपेक्षा वह कहीं अधिक बलवान है। उसकी शक्ति अग्नि के समान सबको भस्म कर सकती है, समुद्र के समान अपने को सबमें समा सकती है, और काल के समान सबको नष्ट कर सकती है। वास्तव में मनुष्य की जितनी स्पृहा, इच्छा, तृष्णा और आकांक्षाए हैं, वह सब दुर्गा-देवी से प्रेरित और संचालित हैं (देखिये पृष्ठ ३९३)।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ।।
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ।।
जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु । अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु ।।
एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने ।।
सिबि दधीचि हरिचंद कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ।।
एक भरत कर संमत कहहीं । एक उदास भायँ सुनि रहहीं ।।
कान मूदि कर रद गहि जीहा । एक कहहिं यह बात अलीहा ।।
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे । रामु भरत कहुँ प्रानपियारे ।।

भावार्थ— विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है ? एक कहते हैं राजा ने अच्छा नहीं किया । दुर्बुद्धि कैकेयी को विचार कर वर नहीं दिया । जो (जिसके कारण)वे हठ करके (कैकेयी की बात को पूरा करने मे अड़े रहकर)स्वयं सब दुःखों के साथ हो गये । स्त्री के विशेष वश होने के कारण मानों उनका ज्ञान और गुण जाता रहा । एक (दूसरे)जो धर्म की मर्यादा को जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते । वे शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा एक दूसरे से बखान कर कहते हैं । कोई एक इसमें भरत जी की सम्मति बताते हैं । कोई एक सुनकर उदासीन भाव से रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं)। कोई हाथों से कान मूंदकर और जीभ को दाँतों तले दबा कर कहते हैं कि यह बात झूठ है ; ऐसी बात कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जायेंगे । भरत जी को तो श्री रामचन्द्र जी प्राणों के समान प्यारे हैं ।

पात्र-परिचय— यह सुनकर कि पिता के वचन को सत्यापित करने के लिये श्री रामचन्द्र जी चौदह वर्ष के बनवास को जा रहे हैं, जनता में विभिन्न प्रतिक्रिया हुई । कोई कहते हैं कि राजा ने बिना सोचे-विचारे कैकेयी को वर दे दिया । कोई इसमें भरत की सम्मति बताते हैं। कोई कहते हैं कि भरत स्वप्न में भी राम के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे । कोई रघुकुल के पूर्वजों की कथा बखान रहे हैं, जिन्होंने प्रणपालन के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। यह महान पुरुष शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र हैं । जब अपने दो वचनों को देकर, दशरथ पछ्ताने लगे, तो इन्हीं महानुभावों का वास्ता कैकेयी ने दिया (पृष्ठ ४२२) । अन्तर केवल इतना है कि हरिश्चन्द्र के स्थान पर कैकेयी ने दशरथ को बलि के बलिदान का स्मरण कराया। इन तीन महानुभावों की अन्तर्कथाओं का वर्णन पहले ही किया जा चुका है—

१. ***शिवि***—देखिये पृष्ठ ४१८

२. ***दधीचि***—देखिये पृष्ठ ४२२

३. ***हरिश्चन्द्र***—देखिये पृष्ठ ४१९

दो०— चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ बिषतूल ।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल ।।४८।।

भावार्थ— चन्द्रमा चाहे (शीतल किरणों की जगह) आग की चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विष के समान हो जाय, परन्तु भरत जी स्वप्न में भी श्री रामचन्द्र जी के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे ।

एक बिधातहि दूषनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ।।
खरभरु नगर सोचु सब काहू । दुसह दाहु उर मिटा उछाहू ।।
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी । जे प्रिय परम कैकई केरी ।।
लगीं देन सिख सीलु सराही । बचन बानसम लागहिं ताही ।।
भरतु न मोहि प्रिय राम समाना । सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ।।
करहु राम पर सहज सनेहू । केहिं अपराध आजु बनु देहू ।।
कबहुँ न कियहु सवति आरेसू । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ।।
कौसल्याँ अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ।।

भावार्थ— कोई एक विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया । नगर भर में खलबली मच गई, सब किसी को सोच हो गया । ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी को परम प्रिय थीं, वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगीं । पर उसको उनके वचन वाण के समान लगते हैं । (वे कहती हैं)— "तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्री रामचन्द्र जी के समान मुझ को भरत भी प्यारे नहीं हैं, इस बात को सारा जगत जानता है । श्री रामचन्द्र जी पर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करती रही हो । आज किस अपराध से उन्हें बन देती हो । तुमने कभी सौतियाडाह नहीं की । सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है । अब कौशल्या ने तुम्हारा कौन सा विगाड़ कर दिया जिसके कारण तुमने सारे नगर पर बज्र गिरा दिया ।

दो०— सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम ।।४९।।

भावार्थ— क्या सीता जी अपने पति (श्री रामचन्द्र जी)का साथ छोड़ देंगी ? क्या लक्ष्मण जी श्री रामचन्द्र जी के बिना घर रह सकेंगे ? क्या भरत जी श्री रामचन्द्र जी के बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे ? और क्या राजा रामचन्द्र जी के बिना जीवित रह सकेंगे ?(अर्थात् न सीता जी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मण जी रहेंगे, न भरत जी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे, सब उजाड़ हो जायेगा)।

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥
नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥
गुर गृह बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुं लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥

भावार्थ– हृदय में ऐसा विचार कर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो। भरत को अवश्य युवराज पद दो, पर श्री रामचन्द्र जी का बन में क्या काम है ? श्री रामचन्द्र जी राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्म की धुरी को धारण करने वाले और विषय-रस से रूखे हैं, अर्थात् उनमें विषयासक्ति है ही नहीं। (इसलिए तुम यह शंका न करो कि श्री राम वन न गये तो भरत के राज्य में विघ्न करेंगे, इतने पर भी मन न माने तो)तुम राजा से दूसरा ऐसा (यह)वर ले लो कि श्री राम घर छोड़ कर गुरु के घर रहें। जो तुम हमारे कहने पर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यदि तुमने कुछ हँसी की हो तो उसे प्रकट में कहकर जना दो (कि मैंने दिल्लगी की है)।

छं०– जेंहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुछ पालही।
हठि फेर रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी॥

सो०– सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥५०॥

भावार्थ – जिस तरह (नगर भर का) शोक और तुम्हारा कलंक मिटे, वही उपाय करके कुल की रक्षा करो। वन जाते हुए श्री राम जी को हठ करके लौटा लो, दूसरी कोई बात न चलाओ।" जैसे सूर्य के बिना दिन ; प्राण के बिना शरीर और चन्द्रमा के बिना रात (निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाते हैं), वैसे ही तुलसीदास के प्रभु श्री रामचन्द्र जी के बिना अयोध्या हो जायेगी, हे भामिनी ! तू अपने हृदय में इस बात को समझ लो (विचार कर देख तो सही)।" इस प्रकार सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मीठी और परिणाम में हितकारी थी। पर कुटिला कूबरी की सिखायी - पढ़ाई हुई कैकयी ने इसपर ज़रा भी कान नहीं दिया (सुना)।

टिप्पणी– ऊपर अयोध्याकाण्ड का दूसरा छंद और सोरठा है । इसके ऊपर कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ कैकेयी को समझा रही हैं कि "श्री रामचन्द्र जी राज्य के भूखे नहीं है । वे धर्मधुरन्धर हैं और उनमें विषयासक्ति है ही नहीं । इसलिए तुम्हारी शंका निरमूल है कि वह यदि बन न गये तो भरत के राज्य में विघ्न करेंगे । फिर भी अपनी सान्त्वना के लिए दूसरा वर यह माँगों कि राम घर छोड़ कर गुरू के आश्रम में रहें । राम को वन में भेजने से सबका अनिष्ट होगा । न सीता जी अयोध्या में रहेंगी, न लक्ष्मण और न भरत ही राज्य स्वीकार करेंगे । राजा तो जीवित ही न रहेंगे । और सब उजाड़ हो जायेगा ।"

स्त्रियों की सीख का सारांश ऊपर के छंद में है । वह कैकेयी को समझाती हैं कि "जिस प्रकार नगर का शोक और तुम्हारा कलंक मिटे, वही उपाय करके कुल की रक्षा करो । वन जाते हुए श्री रामजी को हठ करके लौटा लो ! दूसरी कोई बात न चलाओ ।"

इसी बात को तुलसीदास जी एक बहुत सुन्दर अनुप्रास में दुहराते हैं –

'जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी ।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझि धौं जियँ भामिनी ।।'

अर्थात्, जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर, चन्द्रमा के बिना रात निर्जीव है, वैसे ही राम के बिना अयोध्या निर्जीव हो जायेगी । इस बात को हे कैकेयी, विचार कर मन में समझ लो ।

इस प्रकार की मीठी और जनहिताय सीख का कैकेयी पर कुछ भी असर न हुआ । उसको तो पहले से ही मन्थरा ने सिखा-पढ़ा दिया था । वह और कोई बात सुनने को तैयार ही न थी ।

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी । मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ।।
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी । चलीं कहत मतिमंद अभागी ।।
राजु करत यह दैअँ बिगोई । कीन्हेसि अस जस करइ न कोई ।।
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारी । देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं ।।
जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा । कवनि राम बिनु जीवन आसा ।।
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जलचर गन सूखत पानी ।।
अति बिषाद बस लोग लोगाई । गए मातु पहिं रामु गोसाई ।।
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा सोचु जनि राखै राऊ ।।

भावार्थ– कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोध के मारे सूखी (बेमुरव्वत) हो रही है । ऐसे देखती है मानों भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो । सब सखियों ने रोग को असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया । सब उसको मंदबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल

दीं। राज्य करते हुए इस कैकेयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी नहीं करेगा। नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं। लोग विषम ज्वर (भयानक दुःख की आग) से जल रहे हैं। लंबी सांसें लेते हुए वे कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी के बिना जीने की कौन आशा है। महान् वियोग की आशंका से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गयी है मानों पानी सूखने के समय जलचर जीवों का समुदाय व्याकुल हो। सभी पुरुष और स्त्रियाँ विषाद के वश हो रहे हैं। स्वामी श्री रामचन्द्र जी माता कौशल्या के पास गये। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। श्रीरामचन्द्र जी को राजतिलक की बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयों को छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है (देखिए पृष्ठ ४००)। अब माता कैकेयी की आज्ञा और पिता जी की मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया।

दो०— नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान ।।५१।।

भावार्थ— रघुवीर (श्री रामचन्द्र जी) का मन नये पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधने को काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर, अपने को बन्धन से छुटा जानकर, उनके हृदय में आनन्द बढ़ गया है।

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥
बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥
प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई ॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी ॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी ॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई ॥

भावार्थ— रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र जी ने दोनों हाथ जोड़कर आनन्द के साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े न्यौछावर किये। माता बार-बार श्री रामचन्द्रजी का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का जल भर आया है, और सब अंग पुलकित हो गये हैं। अपनी गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगा लिया। सुन्दर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे। उनका प्रेम और महान आनन्द कुछ कहा नहीं जाता। मानों कंगाल नें कुबेर की पदवी पा ली हो। बड़े

आदर के साथ सुन्दर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं – "हे तात ! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनन्द मंगलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुख की सुन्दर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधि है।

दो०– जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति ।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति ।।५२।।

भावार्थ– तथा जिस (लग्न) को सभी, स्त्री-पुरुष अत्यन्त व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यासे चातक और चातकी शरद ऋतु के स्वाति नक्षत्र की वर्षा चाहते हैं।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ।।
पितु समीप तब जाएहु भैआ । भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ ।।
मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतरु के फूला ।।
सुख मकरंद भरे श्रियमूला । निरखि राम मनु भवँरु न भूला ।।
धरम धुरीन धरम गति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ।।
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ।।
आयसु देहि मुदित मन माता । जेहिं मुद मंगल कानन जाता ।।
जनि सनेह बस डरपसि भोरें । आनँदु अंब अनुग्रह तोरें ।।

भावार्थ– हे तात ! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया ! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है।" माता के अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर जो मानों स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुख रूपी मकरन्द (पुष्परस)से भरे थे और श्री (राज्यलक्ष्मी) के मूल थे–ऐसे वचन रूपी फूलों को देखकर श्री रामचन्द्र जी का मन रूपी भौंरा उन पर नहीं भूला (स्थिर हो गया)। धर्म धुरीण श्री रामचन्द्र जी ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यन्त कोमल वाणी से कहा– "हे माता ! पिता जी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है। हे माता ! आप प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मेरी वनवास यात्रा में आनन्द मंगल हो। मेरे स्नेह वश भूलकर भी डरिये नहीं, हे माता ! आपके अनुग्रह से आनन्द ही होगा।

दो०– बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान ।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान ।।५३।।

भावार्थ– चौदह वर्ष वन में रहकर, पिता जी के वचन को पूरा कर, फिर लौटकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा, आप मन को म्लान (दुःखी) न कीजिए।''

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥
धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥

भावार्थ– रघुकुल में श्रेष्ठ श्री राम जी के ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में वाण के समान लगे और कसकने लगे। इस शीतल वाणी को सुनकर कौशल्या वैसे ही सहमकर सूख गयीं जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवास (मदार)* सूख जाता है। हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गयी हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँझा (पहली वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गई हो। धीरज धर कर, पुत्र का मुख देखकर माता गद्गद् वचन कहने लगीं ''हे तात, तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो, तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे। राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन शोधवाया था। फिर अब किस अपराध से बन जाने को कहा ? हे तात! मुझे इसका कारण सुनाओ। सूर्यवंश (रूपी वन) को जलाने के लिये अग्नि कौन हो गया ?''

दो०– निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥५४॥

भावार्थ– तब श्री रामचन्द्र जी का रुख देखकर मन्त्री के पुत्र ने सब कारण समझा कर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी जैसी (चुप) रह गयीं। उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥

---

* एक विषैला पेड़ जो पानी पड़ने से झुलस जाता है, और लू और कड़ी धूप में हरियाता है।

धरम सनेह उभयँ मति घेरी । भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू । धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू ॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी । रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयसु सब धरम क टीका ॥

भावार्थ– न रख ही सकती हैं, न यही कह सकती है कि वन चले जाओ । दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है । (मन में सोचती हैं कि देखो) विधाता की चाल सदा सबके लिये टेढ़ी होती है । लिखने लगे चन्द्रमा और लिख गया राहू । धर्म और स्नेह दोनों ने कौशल्या की बुद्धि को घेर लिया । उनकी दशा साँप-छुछुंदर की सी हो गयी । वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध करके (बीच में रोकर) पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है । और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है । इस प्रकार के धर्म-संकट में पड़कर रानी विशेषरूप से सोच के वश हो गयीं । फिर बुद्धिमती कौशल्या जी स्त्री-धर्म (पातिव्रत-धर्म)को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर, सरल स्वभाव वाली श्रीरामचन्द्र जी की माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं– ‘‘हे तात ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया । पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है ।

दो०– राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु ।।५५।।

भावार्थ– राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दु:ख नहीं है। (दु:ख तो इस बात का है कि)तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा ।

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू ॥
बड़भागी बनु अवध अभागी । जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू ॥
पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥

भावार्थ– हे तात ! यदि केवल पिता जी की आज्ञा हो, तो माता को पिता से बड़ी जानकर वन को मत जाओ। किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिये सैकड़ों अयोध्या के समान है। वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होगीं। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरण कमलों के सेवक होंगे। राजा के लिये अन्त में तो वनवास करना उचित ही है; केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है। हे रघुबंश के तिलक ! वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध अभागी है, जिसे तुमने त्याग दिया। पुत्र ! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में संदेह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं)। हे पुत्र, तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार)तुम कहते हो कि माता !'मैं बन को जाऊँ,' और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ।

दो०– यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ।।५६।।

भावार्थ– यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। बेटा ! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना।

देव पितर सब तुम्हहि गोसाई। राखहुँ पलक नयन की नाई।।
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना।।
अस बिचारि सोई करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई।।
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ।।
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता।।
बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी।।
दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा।।
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई।।

भावार्थ– हे गोसाई ! सब देव और पितर तुम्हारी वैसे ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष)जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो। ऐसे विचारकर वही उपाय करना जिसमें सबके जीते जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ। तुम सेवकों, परिवार वालों और नगर भर को अनाथ करके सुख पूर्वक बन को जाओ। आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया।'' इस प्रकार बहुत विलाप करके और अपने को परम अभागिन जानकर, माता श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में लिपट गईं। हृदय में भयानक दु:सह संताप छा गया। उस समय के बहुविध विलाप का

वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री रामचन्द्र जी ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया। और फिर कोमल वचन कह कर उन्हें समझाया।

दो०- समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ।।५७।।

भावार्थ – उसी समय यह समाचार सुनकर सीता जी अकुला उठीं और सास के पास जाकर उनके दोनों चरण कमलों की वन्दना कर सिर नीचा कर बैठ गयीं।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी।।
बैठि नमितमुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनिता।।
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतबु कछु जाइ न जाना।।
चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी।।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं।।
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी।।
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी।।

भावार्थ –सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीता जी को अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीता जी नीचा मुख किये बैठी सोच रही हैं। जीवननाथ वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्य से उनका साथ होगा। शरीर और प्राण दोनों साथ जायेगें या केवल प्राण ही इनके साथ होंगे। विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती। सीता जी अपने सुन्दर चरणों के नखों से धरती कुरेद रहीं हैं। ऐसा करते समय नुपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम वश होकर नुपुर यह विनती कर रहे हैं कि हमें सीता जी के चरण कभी न त्यागें। सीता जी सुन्दर नेत्रों से जल बहा रहीं हैं। उनकी यह दशा देखकर श्रीरामजी की माता (कौशल्या जी)बोलीं- "हे तात! सुनो, सीता जी अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं।

दो०- पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु।।५८।।

भावार्थ – इनके पिता जनक जी राजाओं के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भण्डार हैं।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई । रूप रासि गुन सील सुहाई ।।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ।।
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली । सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ।।
फूलत फलत भयउ बिधि बामा । जानि न जाइ काह परिनामा ।।
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा । सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ।।
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ।।
सोइ सिय चलन चहति बन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ।।
चंद किरन रस रसिक चकोरी । रबि रुख नयन सकइ किमि जोरी ।।

भावार्थ – फिर मैंने रूप की राशि, सुन्दर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पाई है। मैंने इन (जानकी) को आँखों की पुतली बना कर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रक्खे हैं । इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़-चाव के साथ स्नेहरूपी जल से सींचकर पाला है । अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गये । कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा । सीता ने पलंग, कोमल पीढ़े, गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रक्खा । मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (सावधानी से)इनकी रखवाली करती रही हूँ। कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती । वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है । हे रघुनाथ ! क्या आज्ञा होती है ? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत)चाहने वाली चकोरी सूर्य की ओर आँख किस तरह मिला सकती है ।

दो०- करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि ।
बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि ।।५९।।

भावार्थ – हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव जन्तु वन में विचरते हैं । हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है ।

बन हित कोल किरात किसोरी । रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी ।।
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ।।
कै तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ।।
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ।।
सुरसर सुभग बनज बन चारी । डाबर जोगु कि हंसकुमारी ।।
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ।।
जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ।।
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी । सील सनेह सुधाँ जनु सानी ।।

भावार्थ — वन के लिये तो ब्रह्मा जी ने विषय सुख को न जानने वाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता। अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने के योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिये सब भोग तज दिये हैं। हे पुत्र ! जो तस्वीर के बंदर को देखकर भी डर जाती हैं, वे सीता वन में किस तरह रह सकेगीं। देवसरोवर के कमलवन में विचरण करने वाली हंसनी क्या गड़ैयों में (तलैयों में) रहने के योग्य है ? ऐसा विचारकर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ।" माता कहती हैं - "यदि सीता घर में रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाय।" रघुबीर (श्री रामचन्द्र जी)ने माता की प्रिय वाणी सुनी, जो मानों शील और स्नेह रूपी अमृत में सनी हुई थी।

दो०- कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ।।६०।।

भावार्थ — विवेक मय प्रिय वचन कहकर माता को सन्तुष्ट किया। फिर बन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकी जी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं ।।
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू ।।
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू ।।
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ।।
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ।।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ।।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी ।।
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ।।

भावार्थ — माता के सामने सीता जी से कुछ कहने में सकुचाते हैं। पर मन में यह समझ कर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले- "हे राजकुमारी ! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना। जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर में रहो। हे भामिनी ! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी, घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है। आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा)करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मेरी याद करेंगी, और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जायेगी (वे आत्मविस्मृत हो जायेंगी), हे सुन्दरी! तब-तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएँ, कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि ! मुझे सैकड़ो सौगंध हैं, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिये ही घर पर रखता हूँ।

दो०- गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेष ।।६१।।

भावार्थ – (मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से) गुरु और वेद के द्वारा सनातन धर्म (के आचरण) का फल तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जायगा । हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष ने संकट ही सहे ।

अन्तर्कथाएँ – राम ने सीता को बहुत प्रकार से समझाया कि उनका राम के साथ बनवास में जाना उचित नहीं है और उनके हित में यह ही है कि वह अयोध्या में रह कर सास-ससुर की सेवा करें । परन्तु जब सीता नहीं मानी और वन में जाने का आग्रह किया, तो रामचन्द्र ने दो दृष्टान्त दिये – किस प्रकार गालव और नहुष ने हट-वश कष्ट झेले । इन दोनों की अन्तर्कथाएँ इस प्रकार हैं :-

(१) **गालव** – महर्षि विश्वामित्र का प्रिय शिष्य था । इस पर प्रसन्न होकर महर्षि ने इसे घर जाने की आज्ञा दी । गालव ने गुरूदक्षिणा देनी चाही । परन्तु विश्वामित्र ने कहा, मैं तुम्हारी भक्ति से ही प्रसन्न हूँ , अब तुम्हें गुरूदक्षिणा देने की आवश्यकता नहीं हैं । परन्तु शिष्य ने गुरूदक्षिणा देने के लिए बहुत आग्रह किया, तब गुरू ने आठ सौ घोड़े मांगे । विष्णु की आराधना से उनका वाहन पक्षिराज गरुड़ भी वहाँ उपस्थित हुआ । गरुड़ के साथ उनका पहले से ही परिचय था । गरुड़ के कहने से उनकी पीठ पर चढ़कर गालव ययाति के पास पहुँचा और उसने राजा ययाति से आठ सौ घोड़े माँगे , राजा ने कहा - "इस समय अनेक यज्ञ करने से मेरा कोश खाली हो गया है , और मेरे यहाँ वैसे घोड़े भी नहीं हैं ।" परन्तु राजा ने दूसरे उपाय से गालव का मनोरथ पूर्ण करने के लिए वचन दिया और राजा ययाति ने अपनी कन्या माधवी गालव को सौपकर कहा - "इस कन्या को किसी योग्य व्यक्ति को देकर आप आठ सौ घोड़े ले सकते हैं । इस कन्या से यदि आप चाहें तो राज्य ले सकते हैं । क्योंकि इस सुन्दरी कन्या को बहुत लोग चाहेंगे ।" माधवी को लेकर गालव पुत्रार्थी राजा हर्यश्व के निकट उपस्थित हुए । हर्यश्व ने दो सौ घोड़े दिए और माधवी से एक पुत्र उत्पन्न करके उसे लौटा देने के लिए कहा । गालव ने चतुर्थांश गुरूदक्षिणा गुरू को दे दी । हर्यश्व को माधवी के गर्भ से वसमना नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । गालव वहां गए । राजा ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पुत्र को रखकर माधवी को लौटा दिया । गालव माधवी को लेकर काशिराज दिवोदास के पास गए । दिवोदास ने भी दो सौ घोड़े दिए और एक पुत्र होने तक माधवी को रखना स्वीकृत किया । यथासमय माधवी के गर्भ से प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । दिवोदास ने प्रतर्दन को रखकर माधवी को लौटा दिया । इस प्रकार गुरुदक्षिणा का आधा भाग गुरु को दे दिया । पुन: गालव माधवी को लेकर राजा उशीनर के निकट

उपस्थित हुए। उशीनर ने भी दो सौ घोड़े दिए, और एक पुत्र उत्पन्न होने तक माधवी को रखना अंगीकार किया। माधवी के गर्भ से उशीनर को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम शिवी पड़ा। राजा उशीनर ने पुत्र को रखकर माधवी को लौटा दिया। अब भी गुरुदक्षिणा का एक हिस्सा बाकी है। गालव बाकी गुरुदक्षिणा पूरी करने के लिए सोच रहा था, उसी समय गरुड़ वहां उपस्थित हुए और उन्हों ने कहा कि अब वैसे दो सौ घोड़े कहीं नहीं मिल सकते। अतएव गरुड़ के परामर्श से गालव ने दो सौ घोड़ों के बदले माधवी ही को गुरु के चरणों में अर्पण किया। विश्वामित्र ने कहा कि दक्षिणा पूर्ण हुई। माधवी के गर्भ से विश्वामित्र को भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम था अष्टक। अष्टक के उत्पन्न होने के बाद विश्वामित्र के समीप जाकर उन्होंने माधवी को माँगा। पूर्व संज्ञा के अनुसार विश्वामित्र ने गालव को माधवी दे दी। गालव माधवी को लेकर ययाति के पास पहुँचे और माधवी को उन्होंने ययाति को सौंप दी। ययाति चाहते थे कि स्वयंवर विधि से माधवी का विवाह कर दें, परन्तु उसने विवाह करना अस्वीकार किया। उसने वन में रहकर जीवन बिताना उचित समझा।

(२) **नहुष** – पृष्ठ ४२२ पर बताया गया है कि महर्षि दधीचि की अस्थि से निर्मित वज्र द्वारा इंद्र ने वृत्रासुर का नाश किया था। यह असुर ब्रह्मदैत्य था। इसको मारने पर इन्द्र अपना पद त्याग कर कुछ समय के लिए तपस्या करने चले गए थे। नहुष चंद्रवंशी आयु नामक राजा के पुत्र थे। इनकी तपस्या और यज्ञ आदि के अनुष्ठान से प्रसन्न होकर देवताओं ने, इन्द्र की अनुपस्थिति में, उस पद के लिये इन्हें मनोनीत किया। पति की प्रतिक्षा में, शचि अपना समय देवताओं के गुरु वृहस्पिति के घर काट रही थी। एक दिन सुरसरि से नहाकर शचि निकली थी। आर्द्र-पट से अधढके उनके अंग को देखकर नहुष शची पर मुग्ध हो गए और उससे विवाह करने की हठ की। शची ने शर्त रखी कि वर की पालकी सप्तर्षि अपने कंधों पर ढोकर लायें। बार-बार कन्धे फेरने को जब ऋषि रुक जाते थे, तो नहुष आतुर हो, रोष में पैर पटकने लगता था। बार बार कहता था "सर्प-सर्प" - जल्दी चलो, जल्दी चलो। अकस्मात नहुष का क्षिप्त पैर अगस्त्य ऋषि को जा लगा। उन्होंने रोष में आकर श्राप दिया–

"भार बहें, बातें सुनें, लातें भी सहें, क्या हम,
तू ही कह क्रूर, मौन अब भी रहें क्या हम ?
हम पैर था वा साँप यह, डस गया संग ही,
पामर, पतित हो तू होकर भुजंग ही।" *

* मैथिली शरण गुप्त, "जय भारत" — नहुष, पृष्ठ १३

महर्षि अगत्स्य के श्राप से नहुष इन्द्र पद से भ्रष्ट हो गए और भूतल में दस हजार वर्ष तक सांप होकर रहे। नहुष के बहुत विनय करने पर अगस्त्य प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि तुम्हारे वंश में युधिष्ठिर नामक एक राजा होंगे, उन्हीं के अनुग्रह से तुम्हारी गति होगी। वनवास के समय भीम को नहुष-रूपी सर्प ने पकड़ लिया। भीम के आने में विलंब देखकर उन्हें ढूंढने के लिए युधिष्ठिर बाहर गए और उन्होंने भीम को उस अवस्था में देखा। युधिष्ठिर ने सर्प का परिचय पूछा और क्या देने से वह भीमसेन को छोड़ देगा यह भी पूछा। सर्प ने अपना परिचय दिया और शापमुक्त होने के कारण दिव्य शरीर कर वह स्वर्ग को प्रस्थान कर गया।

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

भावार्थ – हे सुमुखि! हे सयानी! सुनों, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुन्दरी! हमारी सीख सुनो। हे वामा! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दु:ख पाओगी। बन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं। रास्ते में कुश, कंटक और बहुत से कंकड़ हैं। चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं। पर्वतों की गुफाएं, खोह (दर्रे), नदियां, नद, नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे (भयानक) शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है।

दो० - भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥६२॥

भावार्थ – जमीन पर सोना, पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना और कन्द, मूल, फल का भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे! सबकुछ अपने अपने समय के अनुकूल ही मिल सकेगा।

नर अहार रजनीचर चरहीं । कपट बेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहग बन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ ॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी । चंदबदनि दुखु कानन भारी ॥

भावार्थ – मनुष्यों को खाने वाले निशाचर (राक्षस)फिरते रहते हैं । वे करोड़ों प्रकार के कपटरूप धारण कर लेते हैं । पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है । वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती । वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी, और स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के झुंड रहते हैं । वन की (भयंकरता) याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो । हे हंसगामिनि ! तुम तो वन के योग्य नहीं हो । तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देगें (बुरा कहेगें) । मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है । नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोयल क्या जंगल में शोभा पा सकती है ? हे चन्द्रमुखी ! हृदय में ऐसा विचार कर तुम घरपर ही रहो । वन में बड़ा कष्ट है ।

दो० - सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ।।६३।।

भावार्थ – स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है ।"

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें । चकइहि सरद चंद निसि जैसें ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी । धरि धीरजु उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥

भावार्थ- प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीता जी के सुन्दर नेत्र जल से भर गये। श्रीरामजी की यह शीतल सीख उनको कैसी जलाने वाली हुई, जैसे चकवी को शरद्ऋतु की चाँदनी रात होती है। जानकी जी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल को (आँसुओं को)जबरदस्ती रोकर वे पृथ्वी की कन्या सीता जी हृदय में धीरज धर कर सास के पैर लग कर, हाथ जोड़कर कहने लगीं- "हे देवि ! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिये। मुझे प्राण पति ने वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो। परन्तु मैनें मन में समझ कर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दु:ख नहीं है।

टिप्पणी - यह चौपाई केवल सात विषम पंक्तियों की है। राम बार-बार सीता को वन जाने से रोक रहे हैं। उन्हें चेतावनी दे रहे हैं कि वन में नर-भक्षी और स्त्री-अपहरण करने वाले राक्षस, भीषण सर्प और भयानक पक्षी रहते हैं। पहाड़ का पानी भारी होता है और उससे अजीर्ण हो सकता है। फिर राम सीख देते हैं कि जो गुरु और स्वामी की बात नहीं मानता, उसे अन्त में पछताना पड़ता है।

राम के वचन सुनकर सीता विह्वल हो गयीं और अपनी सास, कौशल्या के चरणों में जा गिरी, इस आशा से कि कदाचित वह बन जाने की अनुमति दे दें। साथ ही में नीचें के दोहे में राम से मनुहार करती हैं कि उनके (राम के)बिना स्वर्ग भी उनके लिए नरक के समान है।

दो०- प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।।६४।।

भावार्थ – हे प्राणनाथ ! हे दया के धाम ! हे सुन्दर ! हे सुखों को देने वाले ! हे सुजान! हे रघुकुल रूपी कुमुद को खिलाने वाले चन्द्रमा ! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नरक के समान है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई।।
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।।
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें।।

भावार्थ – माता, पिता, प्यारी बहिन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, सुहृदों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन, सहायक और सुंदर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र - हे नाथ ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सभी सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिये यह सब शोक का समाज है। भोग रोग के समान है, गहने भाररूप हैं और संसार यम यातना (नरक की पीड़ा) के समान हैं। हे प्राणनाथ ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखप्रद नहीं है। जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ ! आपके साथ रहकर आपका शरद (पूर्णिमा) के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे।

दो०- खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल।।६५।।

भावार्थ-हे नाथ ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी।

बनदेवीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।।
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।।
कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।।
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।।
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे।।
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।।
अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि।।
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी।।

भावार्थ- उदारहृदय के बनदेवी और बन देवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-संभार (देख-भाल) करेंगे, और कुशा और पत्तों की सुन्दर साथरी (बिछाना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहार तोशक के समान होंगे। कन्द, मूल और फल अमृत के समान आहार होंगे और बन के पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख देख कर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है। हे नाथ ! आपने बन के बहुत से दुःख और बहुत से भय, विषाद और संताप कहे। परन्तु हे कृपानिधान ! वे सब मिलकर भी प्रभुवियोग के दुःख के लवलेश के समान भी नहीं हो

सकते। ऐसा जी में जानकर, हे सुजान-शिरोमणि ! आप मुझे साथ लीजिये, यहां न छोड़िये। हे स्वामी ! मैं अधिक क्या विनती करूँ। आप करुणामय हैं और सब के हृदय की जानने वाले हैं।

दो०- राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान ।।६६।।

भावार्थ — हे दीनबन्धु ! हे सुन्दर ! हे सुख देने वाले ! हे शील और प्रेम के भण्डार! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्या में रक्खेंगे, तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेगें।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ।।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ।।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ।।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें ।।
सम महि तृन करुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी ।।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही ।।
को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा ।।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू ।।

भावार्थ— क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करुँगी और मार्ग चलने से होने वाली सारी थकावट को दूर करुँगी। आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूगी (पंखा करूगी)। पसीने की बूदों सहित श्याम शरीर को देखकर प्राण-पति के दर्शन करते हुए दु:ख के लिये मुझे समय ही कहाँ रहेगा। समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर चरण दबायेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी। प्रभु के साथ मुझे (आँख उठाकर) देखने वाला कौन है (अर्थात कोई नहीं देख सकता) । जैसे सिंह की स्त्री को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं ? आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय भोग ?

दो०- ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान ।।६७।।

भावार्थ- ऐसे कठोर वचन सुन कर भी जो मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु ! ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दु:ख सहेंगे।''

अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन बियोगु न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना । हठि राखें नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू । बेगि करहु बन गवन समाजू ॥
कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई । लगे मातु पद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी । देखिहउँ नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ॥

भावार्थ- ऐसा कहकर सीता जी व्याकुल हो गयीं । वे वचन के वियोग को भी न सम्हाल सकीं (अर्थात शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयीं) । उनकी यह दशा देखकर श्री रघुनाथ जी ने अपने जी में जान लिया कि हठ पूर्वक इन्हें यहां रखने से प्राणों को न रक्खेंगी । तब कृपालु, सूर्यकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि "सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो । आज विषाद करने का अवसर नहीं है । तुरन्त बन गमन की तैयारी करो ।" श्री रामचन्द्र जी ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा को समझाया । फिर माता के पैरों लगकर आशिर्वाद प्राप्त किया । (माता ने कहा) ''बेटा ! जल्दी लौटकर प्रजा के दुःख को मिटाना ! और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाय ! हे विधाता ! क्या मेरी दशा फिर पलटेगी ? क्या, अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख पाऊँगी ? हे पुत्र ! वह सुन्दर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते जी तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा फिर देखेगी ।

दो०- बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात ।।६८।।

भावार्थ- हे तात, वत्स कहकर, लाल कहकर, रघुबर कहकर, मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदय से लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगों को देखूँगी !"

लखि सनेह कातरि महतारी । बचन न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासु पग लागी । सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौं बखानी ॥

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥

भावार्थ – यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गयी है और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुंह से वचन नहीं निकलता, श्री रामचन्द्र जी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता । तब जानकी जी सास के पाँव लगीं और बोलीं- "हे माता ! सुनिये, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ । आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे बनवास दे दिया । मेरा मनोरथ सफल न किया । आप क्षोभ का त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़ियेगा । कर्म की गति कठिन है । मुझे भी कुछ दोष नहीं है ।" सीता जी के वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयीं । उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ । उन्होंने बार-बार सीता जी को हृदय से लगाया और धीरज धर कर शिक्षा दी, और आशीर्वाद दिया कि "जब तक गंगा जी और यमुना जी में जल की धारा रहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे ।"

दो०- सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार ।।६९।।

भावार्थ – सीता जी की सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं, और वे (सीता जी)बड़े ही प्रेम से बार-बार चरण कमलों में शिर नवाकर चलीं ।

समाचार जब लछिमन पाए । ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाड़े । मीनु दीन जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा । सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥
मो कहुँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें । देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥
बोले बचनु राम नय नागर । सील सनेह सरल सुख सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू । समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू ॥

भावार्थ – जब लक्ष्मण जी ने ये समाचार पाया, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े । शरीर काँप रहा है, रोमांच हो रहा है, नेत्र प्रेमाश्रुओं से भरे हैं । प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्री राम जी के चरण पकड़ लिये । वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े खड़े देख रहे हैं । (ऐसे दीन हो रहे हैं) मानों जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही है। हृदय में यह सोच है कि विधाता क्या होने वाला है ? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा

हो गया ? मुझको श्री रघुनाथ जी क्या कहेंगे ? घर पर रक्खेंगे या साथ ले चलेंगे ? श्री रामचन्द्र जी को देखकर लक्ष्मण ने हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़ दिया। सब नीति से निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्री रामचन्द्र जी वचन बोले- "हे तात ! परिणाम में होने वाले आनन्द को हृदय में समझकर तुम प्रेम वश अधीर मत होओ।

दो०- मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ।।७०।।

भावार्थ – जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ा कर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ-पाया है, नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है।

अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई।।
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं।।
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा।।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू।।
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू।।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।।
रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी।।
सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें।।

भावार्थ- हे भाई ! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनों और माता पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दु:ख है। इस अवस्था में तुमको साथ-लेकर बन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जायेगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दु:ख का दु:सह भार आ पड़ेगा। अत: तुम यहीं रहो और सबका सन्तोष करते रहो। नहीं तो हे तात ! बड़ा दु:ख होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है। हे तात ! ऐसी नीति विचार कर तुम घर पर रह जाओ।'' यह सुनते ही लक्ष्मण जी बहुत ही व्याकुल हो गये। इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गये, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है।

लोकोक्ति- ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।।

जब लक्ष्मण ने भी राम के साथ बन में जाने का आग्रह किया, तो राम ने उनको समझाया कि भरत-शत्रुघ्न ननिहाल गए हैं और पिता जी ने पुत्र-वियोग में चेतना खो दी है। ऐसी अवस्था में यदि लक्ष्मण भी राम के साथ वन चले गये तो अयोध्या कि प्रजा नि:सहाय और असुरक्षित रह जायगी। इसी सन्दर्भ में गोस्वामी तुलसीदास ने राम के मुख से एक, शाश्वत सत्य का प्रतिपादन किया– "जिसके राज्य में प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य नरक जाता है।"

मुगल शासन काल में हिन्दुओं को नागरिक अधिकार नहीं थे। उनपर जजिया लगाया जाता था। मन्दिर गिरा कर मसजिदें बनाई जाती थीं। मुसलमान सामन्त हिन्दुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। अपने हिन्दु भाइयों की ऐसी दयनीय दशा देखकर तुलसीदास जी ने उपर्युक्त लोकोक्ति कही।

आजकल के परिपेक्ष्य में भी यह लोकोक्ति समीचीन है। प्रधान मन्त्री से लेकर सामान्य सभासद पद और धन-लोलुप्ता में लीन हैं। देश के हित की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता और प्रजा का शोषण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आजकल के नृशंस शासक इहलोक में भले किसी से न डरें, परन्तु परलोक में तुलसीदास जी ने उनके लिए नरक के द्वार का संकेत कर दिया है।

दो०- उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ।।७१।।

भावार्थ – प्रेमवश लक्ष्मण जी से कुछ उत्तर देते नहीं बना। उन्होंने व्याकुल होकर श्री रामचन्द्र जी के चरण पकड़ लिये और कहा- "हे नाथ ! मैं दास हूँ, और आप स्वामी, अत: आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है ?

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं।।
नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी।।
मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला।।
गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पति आहू।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई।।

भावार्थ- हे स्वामी ! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता की वजह से वह मेरे लिये अगम (पहुँच के) बाहर लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही

श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं। मैं तो प्रभु (आपके) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ। कहीं हँस भी मन्दराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकता है। हे नाथ ! मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, माता, पिता किसी को भी नहीं जानता। जगत में जहाँ तक स्नेह का सम्बंध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है- हे स्वामी ! हे दीनबन्धु ! हे सब के हृदय की जानने वाले ! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं। धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्‌गति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपा सिन्धु ! क्या वह भी त्यागने के योग्य है।''

दो०- करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत ।।७२।।

भावार्थ – दया के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने भले भाई के कोमल और नम्रता युक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया।

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥
हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा ॥
पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगि देखि दव जनु चहु ओरा ॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू ॥
मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ॥

भावार्थ – (और कहा) " हे भाई ! माता से बिदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो।'' रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम जी की वाणी सुनकर लक्ष्मण जी आनन्दित हो गये। बड़ी हानि दूर हो गयी। वे हर्षित हृदय से माता सुमित्रा जी के पास आये, मानों अंधा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया। किन्तु उनका मन रघुकुल को आनन्द देने वाले श्री राम जी और जानकी जी के साथ था। माता ने उदास मन देखकर उनसे (कारण) पूछा। लक्ष्मण जी ने सब कथा विस्तार से कह सुनायी। सुमित्रा कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गयीं जैसे हिरनी चारों ओर बन में आग लगी देखकर सहम जाती है। लक्ष्मण ने देखा कि आज (सब) अनर्थ हुआ। ये स्नेह वश काम बिगाड़ देंगी। इस लिये वे बिदा मांगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं (और मन ही मन सोचते हैं) कि हे विधाता ! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं।

दो०- समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ ।
नृप सनेहु लखि धुनेहु लखि सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ।।७३।।

भावार्थ – सुमित्रा जी ने श्री राम जी और श्री सीता जी के रूप, सुन्दर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देख कर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया ।

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ।।
तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ।।
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ।।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सखा सबही के ।।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें । सब मानिअहिं राम के नातें ।।
अस जियँ जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ।।

भावार्थ – परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्रा जी कोमल वाणी से बोलीं– ''हे तात ! जानकी जी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्री रामचन्द्र जी तुम्हारे पिता हैं । जहाँ श्री रामचन्द्र जी का निवास हो वहीं अयोध्या है । जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है । यदि निश्चय ही सीता-राम बन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है । गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सब की सेवा प्राण के समान करनी चाहिए । फिर रामचन्द्र जी तो प्राणों से भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं । जगत में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब राम के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं । हृदय में ऐसा जानकर हे तात ! उनके साथ वन को जाओ और जगत में जीने का लाभ उठाओ ।

दो०- भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ।।७४।।

भावार्थ – मैं बलिहारी जाती हूँ, (हे पुत्र) मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छल को छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है ।

पुत्रवती जुबती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुतु होई ।।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुत तें हित जानी ।।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहु । राम सीय पद सहज सनेहू ॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

भावार्थ – संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्री रघुनाथ जी का भक्त हो । नहीं तो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह बाँझ ही अच्छी । पशु की भाँति उसका ब्याहना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है । तुम्हारे ही भाग्य से श्री राम जी बन को जा रहे हैं । हे तात ! दूसरा कोई कारण नहीं है । सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्री सीताराम जी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो । राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह, इनके वश स्वप्न में भी मत होना । सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री सीता-राम जी की सेवा करना। तुम को बन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्री राम जी और सीता जी रुप पिता-माता हैं । हे पुत्र ! तुम वही करना जिससे श्री रामचन्द्र जी वन में क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है ।

छं०- उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति वन बिसरावहीं ।।
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्हु पुनि आसिष दई ।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नई ।।

सो०- मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ ।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस ।।७५।।

भावार्थ – हे तात ! मेरा यही उपदेश है (अर्थात तुम वही करना) जिससे बन में तुम्हारे कारण श्री राम जी और सीता जी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जायें ।'' तुलसीदास जी कहते हैं कि सुमित्रा जी ने इस प्रकार हमारे प्रभु लक्ष्मण जी को शिक्षा देकर बन जाने की आज्ञा दी और फिर यह भी आशीर्वाद दिया कि श्री सीता जी और श्री रघुबीर जी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो । माता के चरणों में सिर नवाकर, हृदय में डरते हुए (कि अब भी कोई विघ्न न आ जाय) लक्ष्मण जी तुरंत इस प्रकार चल दिये जैसे सौभाग्यवश कोई हिरण फंदे को तुड़ाकर भाग निकला हो ।

टिप्पणी – ऊपर अयोध्याकाण्ड का तीसरा छंद है। इसमें और इसके पहले के छंद में (देखिये पृष्ठ ४३९) तुलसीदास ने एक नई विधा अपनाई है। छंद में एक पात्र के मुख से एक तथ्य का निरुपण करते हैं। और फिर उसके नीचे के सोरठे में श्रोता की प्रतिक्रिया बताते हैं। इस प्रकार ऊपर के छंद में सुमित्रा लक्ष्मण को उपदेश दे रही हैं कि "तुम वही करना, जिससे बन में तुम्हारे कारण श्री राम और सीता जी सुख पावें और माता-पिता, परिवार और नगर के सुखों की याद भूल जाएँ।" फिर सोरठे में कहते हैं कि लक्ष्मण माता के चरणों में सिर नवाकर, तुरन्त इस तरह चल दिये जैसे सौभाग्यवश कोई हिरण फंदे को तुड़ाकर भाग निकले।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। तुलसीदास जी ने इस छंद में कर्तृवाच्य और कर्म वाच्य दोनों का प्रयोग किया है। पहली दो पंक्तियों में सुमित्रा सीधा लक्ष्मण को उपदेश देती हैं कि "तुम वही करना जिससे बन में तुम्हारे कारण श्री राम और सीता जी सुख पावें।" फिर इसी बात को दूसरी प्रकार से कर्मवाच्य में दोहराया गया है। तुलसीदास कहते हैं कि– उनके प्रभु, (लक्ष्मण) को सुमित्रा ने शिक्षा और आदेश देकर फिर आशीर्वाद दिया कि "तुम्हारा राम और सीता के चरणों में नित-नित निर्मल, निष्काम और प्रगाढ़ प्रेम हो।"

गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥
कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥
कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥
सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥

भावार्थ – लक्ष्मण जी वहाँ गये जहाँ श्री जानकीनाथ जी थे, और प्रिय का साथ पाकर मन मे बड़े ही प्रसन्न हुए। श्री राम जी और सीता जी के सुन्दर चरणों की वन्दना करके वे उनके साथ चले और राजभवन में आए। नगर के स्त्री पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बना कर बात बिगाड़ी। उनके शरीर दुबले, मन दुखी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिये जाने पर शहद की मक्खियां व्याकुल हों। सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता। "श्री रामचन्द्र जी पधारे हैं," ये प्रिय वचन कहकर मन्त्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीता सहित दोनों पुत्रों को (वन के लिये तैयार) देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए।

दो०- सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ ।।७६।।

भावार्थ—सीता सहित दोनों सुन्दरपुत्रों को देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेहवश बारबार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब मागा ॥
पितु असीस आयसु मोहि दीजै । हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू । जसु जग जाइ होइ अपबादू ॥
सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ । बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं । राम चराचर नायक अहहीं ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥

भावार्थ— राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक सन्ताप है। तब रघुकुल के वीर श्री रामचन्द्र जी ने अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर, उठकर, बिंदा माँगी। "हे पिता जी ! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिये। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं ? हे तात् ! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्य कर्म में त्रुटि) करने से जगत में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी।" यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठाकर श्री रघुनाथ जी की बाँह पकड़ कर उन्हें बैठा लिया और कहा "हे तात, सुनो, तुम्हारे लिये मुनि कहते हैं कि राम चराचर के स्वामी हैं। शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचार कर फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं।

दो०- औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ।।७७।।

भावार्थ- (किन्तु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है)। अपराध तो कोई और ही करे और उसके फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत में कौन है ?

लोकोक्ति- ऊपरके दोहे में एक बहुत प्रचलित और सुन्दर लोकोक्ति है :

"औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु ।"

अर्थात्, करे कोई और भरे कोई। दशरथ जी ऊपर की चौपाई में समझाते हैं कि मानव के शुभ और अशुभ कार्यों के अनुसार ईश्वर उन पर विचार करके उनका फल मानव को देता है। और यह भी सत्य माना गया है कि जो अपने को कर्ता समझ कर कर्म करता है वही उन कर्मों का भोक्ता भी हो जाता है। ऐसी ही वेद की नीति है और सब कोई इस बात को स्वीकार भी करते हैं। इस कारण मानव अपने कार्यानुसार, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, उनका फल अच्छा या बुरा अवश्य भोगता ही है। किन्तु यही महान आश्चर्य है कि इस अवसर पर उपर्योक्त परम सत्य के विपरीत ही हो रहा है। अपराध कोई दूसरा ही कर चुका है परन्तु उसका फल किसी दूसरे को ही भुगतना पड़ रहा है। कैकेयी से अन्ध-प्रेम एवं विश्वास करने का जो मैंने अपराध किया उसका फल तुम, सीता और लक्ष्मण बन जाकर भुगत रहे हो। तुम तीनों का कोई अपराध नहीं है, परन्तु फिर भी पिता के अपराध का फल तुम्हें प्राप्त हो रहा है। इसीलिये अन्त में यही कहना पड़ता है कि भगवाग की लीला बड़ी विचित्र है। उसे पूर्ण रुप से समझने की शक्ति इस संसार में किसकी हो सकती है। तात्पर्य यह है कि धर्म शास्त्रों में लिखा हुआ भी उसकी लीला के अनुकूल नहीं रह पाता।

रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥
तब नृप सीय उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥
सीय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा॥
औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥
सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥

भावार्थ- राजा ने इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी को रखने के लिये छल छोड़कर बहुत से उपाय किये। पर जब उन्होंने धर्म धुरन्धर, धीर और बुद्धिमान राम जी का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े तब राजा ने सीता जी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। बन के दु:सह दु:ख कहकर सुनाये। फिर सास, ससुर तथा पिता के पास रहने के सुखों को समझाया। परन्तु सीता जी का मन श्री रामचन्द्र जी के चरणों में अनुरक्त था। इसलिए उन्हें घर अच्छा नहीं लगा, और न बन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी बन में विपत्तियों की अधिकता बताकर सीता जी को समझाया। मन्त्री सुमन्त्र जी की पत्नी और गुरु वशिष्ठ जी की स्त्री अरून्धती जी, तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो राजा ने वनवास दिया नहीं है। इसलिये जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम भी वही करो।

दो०- सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि ।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ।।७८।।

भावार्थ - यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर सीता जी को अच्छी नहीं लगी। (वे इस प्रकार व्याकुल हो गयीं) मानों शरद ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो।

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेयी ॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोक नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा ॥
भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥
लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
रामु तुरत मुनि बेष बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई ॥

भावार्थ- सीता जी संकोच वश उत्तर नहीं देतीं। इन बातों को सुनकर कैकेयी तमक कर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि)और बर्तन (कमण्डल आदि) लाकर श्री रामचन्द्र जी के आगे रख दिये और कोमल वाणी से कहा "हे रघुबीर ! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो। भीरू (प्रेमवश दुर्बल हृदय के)राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे ! पुण्य, सुन्दर यश और परलोक चाहे नष्ट हो जाय। पर तुम्हें बन जाने को वे कभी न कहेंगे। ऐसा विचार कर जो तुम्हें अच्छा लगे वहीं करो।" माता की सीख सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने (बड़ा)सुख पाया। परन्तु राजा को ये वचन बाण के समान लगे। (वे सोचने लगे)अब भी अभागे प्राण (क्यों)नहीं निकलते। राजा मूर्छित हो गये और लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। श्री रामचन्द्र जी तुरंत मुनि का वेष बना कर और माता-पिता को सिर नवा कर चल दिये।

दो०- सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत ।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहिं अचेत ।।७९।।

भावार्थ- बन का सब साज-समान (बन के लिये आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) श्री रामचन्द्र जी स्त्री (श्री सीता जी) और भाई (लक्ष्मण जी)सहित ब्राह्मणों और गुरु के चरणों की बन्दना करके, सबको अचेत करके चले।

निकसि बशिष्ठ द्वार भए ठाढ़े । देखे लोग बिरह दव दाढ़े ॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए । बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए ॥
गुर सन कहि बरषासन दीन्हें । आदर दान बिनय बस कीन्हे ॥
जाचक दान मान संतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥
दासीं दास बोलाइ बहोरी । गुरहि सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै भार सँभार गोसाईं । करबि जनक जननी की नाईं ॥
बारहिं बार जोरि जुग पानी । कहत रामु सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहै भुआल सुखारी ॥

भावार्थ – राजमहल से निकल कर श्री रामचन्द्र जी वशिष्ठ जी के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं । उन्होंने प्रिय वचन कह कर सबको समझाया । फिर श्री रामचन्द्र जी ने ब्राह्मणों की मण्डली को बुलाया । गुरु जी से कहकर उन सबको वर्षासन (वर्ष भरका भोजन) दिया और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया । फिर याचकों को दान और मान देकर संतुष्ट किया । फिर दास-दासियों को बुलाकर, उन्हें गुरु जी को सौंप कर, हाथ जोड़कर बोले- "हे गुसाईं ! इन सब को माता-पिता के समान सार-संभार (देख-रेख)करते रहियेगा ।'' श्री रामचन्द्र जी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि "मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें ।

दो०- मातु सकल मोरे बिरहँ जेहि न होहिं दुख दीन ।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन ।।८०।।

भावार्थ – हे परम चतुर पुरवासी जनों ! आप लोग सब वही उपाय करियेगा जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरह के दुःख से दुखी न हों । ''

एहि बिधि राम सबहि समुझावा । गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥
राम चलत अति भयउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू । हरष बिषाद बिबस सुरलोकू ॥
गइ मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बन प्रान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥
एहि तें कवन ब्यथा बलवाना । जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू । लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥

भावार्थ – इस प्रकार श्री राम जी ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजी के चरणकमलों में सिर नवाया । फिर गणेश जी, पार्वती जी और कैलाश पति महादेव को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्री रघुनाथ जी चले । श्री रामजी के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया । नगर का आर्तनाद (हाहाकार)सुना नहीं जाता । लंका में बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यन्त शोक छा गया और देवलोक में सब हर्ष और विषाद दोनों के वश में हो गये (हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा, और विषाद अयोध्या वासियों के शोक के कारण था) । मूर्छा दूर हुई । तब राजा जागे और सुमन्त्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे "श्री राम बन को चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहें हैं । न जाने वे किस सुख के लिये शरीर में टिक रहे हैं । इससे अधिक बलवान और कौन सी व्यथा होगी, जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेगे ।" फिर धीरज धर कर राजा ने कहा- "हे सखा, तुम रथ लेकर श्री राम के साथ जाओ ।

टिप्पणी - पृष्ठ ५५ और ८८ में बताया गया है कि आज कल के उपन्यास से भिन्न तुलसीदास जी ने अपने कथानक-वर्णन में एक नई विधा का प्रयोग किया है । वह आगे होने वाली घटनाओं का पहले से ही बार-बार संकेत करते जाते हैं । अयोध्या से बाहर बन जाने के लिए जहाँ राम निकले लंका में अपशगुन होने लगे और देवतागण प्रसन्न होने लगे । क्यों ?—राम रावण को मारने निकले हैं —भले ही चौदह वर्ष बाद ।

दो०- सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि ।।८१।।

भावार्थ - अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारों को और सुकुमारी जानकी को रथ में चढ़ाकर, बन दिखाकर, चार दिन के बाद लौट आना ।

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसंध दृढब्रत रघुराई ।।
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी ।।
जब सिय कानन देखि डेराई । कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ।।
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू । पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू ।।
पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ।।
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा । फिरइ त होइ प्रान अवलंबा ।।
नाहिं त मोर मरनु परिनामा । कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा ।।
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ । रामु लखनु सिय आनि देखाऊ ।।

भावार्थ - यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें—क्योंकि श्री रघुनाथ जी प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम का पालन करने वाले हैं — तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि

'हे प्रभो, जनक कुमारी सीता जी को तो लौटा दीजिये'। जब सीता बन को देखकर डरें तो मौका पाकर मेरी यब सीख उनसे कहना कि 'तुम्हारे सास ससुर ने यह सन्देश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, बन में बहुत क्लेश है। कभी पिता के घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना।' इस प्रकार तुम बहुत से उपाय करना। यदि सीता लौट आई, तो मेरे प्राणों को सहारा हो जायगा। नहीं तो अन्त में मेरा मरण ही होगा। विधाता के विपरीत होने पर कुछ बस नहीं चलता। हा ! राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ।" ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

दो०- पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ।।८२।।

भावार्थ - सुमंत्र जी राजा की आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुतवा कर, वहाँ गये जहाँ नगर के बाहर सीता सहित दोनों भाई थे।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए।।
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई।।
चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा।।
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं।।
लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी।।
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी।।
घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं।।

भावार्थ - फिर (वहाँ पहुँच कर) सुमन्त्र ने राजा के वचन श्री रामचन्द्र जी को सुनाये और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया। सीता सहित दोनों भाई रथ पर चढ़ कर हृदय में अयोध्या को सिर नवाकर चले। श्री राम चन्द्र जी को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ (होते हुए) देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये। कृपा के समुद्र श्री राम जी उन्हें बहुत तरह से समझाते हैं, तो वे (अयोध्या की ओर) लौट जाते हैं, परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं। अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है। मानों अन्धकार मयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जन्तुओं के समान एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं। घर श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानों यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुंम्हला रही हैं। नदी और तालाव ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता।

दो०- हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर ।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ।।८३।।

भावार्थ - करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिये पाले हुए हिरन, नगर के (गाय, बैल, बकरी, आदि)पशु , पपीहे, मोर, कोयल , चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर ।

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े । जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े ।।
नगरु सफल बनु गहबर भारी । खग मृग बिपुल सकल नर नारी ।।
बिधि कैकेई किरातिनि कीन्ही । जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही ।।
सहि न सके रघुबर बिरहागी । चले लोग सब ब्याकुल भागी ।।
सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं । राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं ।।
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू । बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू ।।
चले साथ अस मंत्रु दृढ़ाई । सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई ।।
राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही । बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही ।।

भावार्थ - श्री राम जी के वियोग में सभी व्याकुल जहाँ-तहाँ (ऐसे चुपचाप स्थिर होकर) खड़े हैं, मानो तस्वीरों में खेंच कर बनाये हुए हैं । नगर मानों फलों से परिपूर्ण बड़ा भारी सघन बन था । नगरनिवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत से पशु-पक्षी थे (अर्थात, अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम मोक्ष चारों फलों को देने वाली नगरी थी और सब स्त्री पुरुष उन फलों को प्राप्त करते थे)। विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दु:सह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी । श्री रामचन्द्र जी के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके । सब लोग व्याकुल होकर भाग चले । सबने मन में विचार कर लिया कि श्री रामजी, लक्ष्मण जी और सीता जी के बिना सुख नहीं है । जहाँ श्री राम जी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा । श्री रामचन्द्र जी के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं । ऐसा विचार करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब श्री रामचन्द्र जी के साथ चल पड़े । जिनको श्री रामजी के चरण कमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषय-भोग वश में कर सकते हैं ।

दो०- बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ।।८४।।

भावार्थ - बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर, सब लोग साथ हो लिये । पहले दिन श्री रघुनाथ जी ने तमसा (टोंस)नदी के तीर पर निवास किया ।

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी ॥
करुनामय रघुनाथ गोसाँई । बेगि पाइअहिं पीर पराई ॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए । बहुबिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेस घनेरे । लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे ॥
सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई । असमंजस बस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई । कछुक देवमायाँ मति मोई ॥
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती । राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोज मारि रथु हाँकहु ताता । आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥

भावार्थ – प्रजा को प्रेमवश देखकर श्री रघुनाथ जी के दयालु हृदय में बड़ा दुःख हुआ । प्रभु श्री रघुनाथ जी करुणामय हैं । पराई पीड़ा को वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात, दूसरों का दुःख देखकर वे तुरन्त स्वयं दुखी हो जाते हैं)। प्रेम युक्त कोमल और सुन्दर वचन कहकर श्री राम जी ने बहुत प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्म-सम्बन्धी उपदेश दिये । परन्तु प्रेमवश लोग लौटाये लौटते नहीं हैं । शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता । श्री रघुनाथ जी असमंजस के अधीन हो गये (दुविधा में पड़ गये) । शोक और परिश्रम के मारे लोग सो गये और कुछ देवताओं की माया से भी उनकी बुद्धि मोहित हो गई । जब दो पहर रात बीत गयी, तब श्री रामचन्द्र जी ने प्रेम पूर्वक मन्त्री सुमन्त्र से कहा- "हे तात ! रथ की खोज मार कर (अर्थात, पहियों के चिन्हों से दिशा का पता न चले, इस प्रकार)रथ को हाँकिये । और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी ।"

दो०- राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ ।।८५।।

भावार्थ - शंकर जी के चरणों में सिर नवाकर श्री राम जी, लक्ष्मण जी और सीता जी रथपर सवार हुए । मंत्री ने तुरन्त ही रथ को, इधर उधर खोज छिपाकर चला दिया ।

जागे सकल लोग भएँ भोरू । गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । राम राम कहि चहु दिसि धावहिं ॥
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू । भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥
एकहि एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥
निंदहिं आपु सराहहिं मीना । धिग जीवनु रघुबीर बिहीना ॥
जौं पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा । तौ कस मरनु न मागें दीन्हा ॥

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा । आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना । अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥

भावार्थ - सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि श्री रघुनाथ जी चले गये । कहीं रथ की खोज नहीं पाते । सब "हा राम ! हा राम !'' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं । मानों समुद्र में जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियों का समुदाय बहुत ही व्याकुल हो उठा हो । वे एक दूसरे को उपदेश देते हैं कि श्री रामचन्द्र जी ने हम लोगों को क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है । वे लोग अपनी निन्दा करते और मछलियों की सराहना करते हैं । (कहते हैं) ''श्री रामचन्द्र जी के बिना हमारे जीने को धिक्कार है । विधाता ने यदि प्यारे का वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी ।" इस प्रकार बहुत से प्रलाप करते हुए वे सन्ताप से भरे हुए अयोध्या जी आये । उन लोगों के विषम वियोग की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता । (चौदह साल की)अवधि की आशा से ही, वे प्राणों को रख रहे हैं ।

दो० - राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि ।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

भावार्थ - (सब) स्त्री पुरुष श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के लिये नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुखी हो गये जैसे चकवा, चकवी, और कमल, सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं।

सीता सचिव सहित दोउ भाई । सृंगबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी । कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी ॥
लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा । सबहि सहित सुखु पायउ रामा ॥
गंग सकल मुद मंगल मूला । सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा । रामु बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । बिबुध नदी महिमा अधिकाई ॥
मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ । सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू । तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू ॥

भावार्थ - सीता जी और मन्त्री सहित दोनों भाई श्रृंगवेरपुर जा पहुँचे । वहाँ गंगा जी को देखकर श्री राम जी रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दण्डवत किया । लक्ष्मण जी, सुमन्त्र और सीता जी ने भी प्रणाम किया । सब के साथ श्री रामचन्द्र जी ने सुख पाया । गंगा जी समस्त आनन्द-मंगलों की मूल हैं । वे सब सुखों की करने वाली और सब पीड़ाओं को हरने वाली हैं । अनेक कथा प्रसंग कहते हुए श्री राम जी गंगा जी की तरंगों को

देख रहे हैं। उन्होंने मन्त्री को, छोटे भाई लक्ष्मण जी को और प्रिया सीताजी को देवनदी गंगा जी की बड़ी महिमा सुनाई। इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से (बार-बार जन्मने और मरने का)महान श्रम मिट जाता है, उनको "श्रम" होना यह केवल लौकिक व्यवहार है (नर लीला है)।

दो०- सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु ।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ।।८७।।

भावार्थ – सूर्यकुल की पताका (झंडे)के समान (यश प्रकट करने वाले)जो राम शुद्ध संत, और आनन्द के भंडार हैं, और जो संसार के समुद्र से पार उतारने के लिये स्वयं पुल हैं, वे इस समय मनुष्यों के समान व्यवहार कर रहे हैं ।

टिप्पणी – सच्चिदानन्द एक मिश्रित शब्द है जो सत् + चित् + आनन्द से मिलकर बना है। इस शब्द की व्याख्या के लिये देखिए पृष्ठ ३४।

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई ।।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ।।
करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें ।।
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई ।।
नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें ।।
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा ।।
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ ।।
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ।।

भावार्थ – जब निषाद राज गुह ने यह खबर पायी, तब आनन्दित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई बन्धुओं को बुला लिया और भेंट देने के लिये फल, मूल (कन्द) लेकर और उन्हें भाणों में (बहगियों में)भरकर मिलने के लिये चला। उसके हृदय में हर्ष का पार नहीं था। दण्डवत करके भेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेम से प्रभु को देखने लगा। श्री रघुनाथ जी ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे अपने पास बैठा कर कुशल पूछी। निषादराज ने उत्तर दिया– "हे नाथ ! आपके चरण कमल के दर्शन से ही कुशल है। (आपके चरणारविन्दों के दर्शन कर)आज मैं भाग्यवान पुरुषों की गिनती में आ गया। हे देव ! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है। मैं तो परिवार सहित आपका नीच सेवक हूँ। अब कृपा करके पुर (श्रृंगवेरपुर) में पधारिये और इस दास की प्रतिष्ठा बढ़ाइये, जिससे सब लोग मेरे भाग्य की बड़ाई करें।'' श्री रामचन्द्र जी ने कहा–"हे सुजान सखा ! तुमनें जो कुछ कहा सत्य है। परन्तु पिता ने मुझको और ही आज्ञा दी है।

दो०– बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु ।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु ।।८८।।

भावार्थ– (उनके आज्ञा अनुसार) मुझे चौदह वर्ष तक मुनियों का व्रत और वेष धारण कर और मुनियों के योग्य व्यवहार करते हुये वन में बसना है। गाँव के भीतर निवास करना उचित नहीं है।'' यह सुनकर गुह को बड़ा दुःख हुआ।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहि बिधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥
लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए ॥
गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी ॥

भावार्थ– श्री राम, लक्ष्मण और सीता जी के रूप को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ चर्चा करते हैं। (कोई कहती है)–''हे सखी ! कहो तो वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे सुन्दर (सुकुमार)बालकों को वन में भेज दिया है।'' कोई एक कहते हैं –''राजा ने अच्छा ही किया। इसी बहाने हमें भी नेत्रों का लाभ दिया।'' तब निशाद राज ने हृदय में अनुमान किया, तो अशोक के पेड़ को (उनके ठहरने के लिये) मनोहर समझा। उसने श्री रघुनाथ जी को ले जाकर वह स्थान दिखाया। श्रीरामचन्द्र जी ने (देखकर)कहा कि ये सब प्रकार से सुन्दर है। पुरवासी जोहार (वन्दना)करके अपने-अपने घर लौटे और श्रीरामचन्द्र जी सन्ध्या करने पधारें। गुह ने (इसी बीच) कुश और कोमल पत्तों की सुन्दर साथरी सजाकर विछा दी, और पवित्र, मीठे और कोमल देखदेख कर दोनों में भर भर कर फल, मूल और पानी रख दिया (अथवा, अपने हाथ से फल-मूल दौनों में भर भर कर रख दिये)।

दो०– सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ ।।८९।।

भावार्थ– सीता जी, सुमन्त्र जी और भाई लक्ष्मण सहित, कन्दमूल फल खाकर, रघुकुल मणि श्रीरामचन्द्र जी लेट गए। भाई-लक्ष्मण जी उनके पैर दबाने लगे।

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन ॥

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ॥

आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू ॥

तनु पुलकित जलु लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥

भूपति भवन सुभायँ सुहावा । सुरपति सदनु न पटतर पावा ॥

मनिमय रचित चारु चौबारे । जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥

भावार्थ– फिर प्रभु श्रीरामचन्द्र जी को सोता जानकर, लक्ष्मण जी उठे और कोमल वाणी से मन्त्री सुमन्त्र जी को सोने के लिए कहकर वहाँ से कुछ दूर पर धनुष-वाण से सजकर, वीरासन से बैठकर जागने (पहरा देने)लगे। गुह ने विश्वास-पात्र पहरेदारों को बुलाकर, अत्यन्त प्रेम से जगह जगह नियुक्त कर दिया। और आप कमर में तरकस बाँधकर, तथा धनुष पर बाण चढ़ाकर, लक्ष्मण जी के पास जा बैठा। प्रभु को जमीन पर सोते देखकर, प्रेमवश निषादराज के हृदय में विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का)जल बहने लगा। वह प्रेम-सहित लक्ष्मण जी से वचन कहने लगा ''महाराज दशरथ का महल तो स्वभाव से ही सुन्दर है, इन्द्र भवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता। उसमें सुन्दर मणियों के रचे चौबारे – छत के ऊपर के गुम्बद (प्रासाद) हैं। जिन्हें मानों रति के पति कामदेव ने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है।

दो०– सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।

पलँग मंजु मनिदीप जहँ सब बिधि सकल सुपास ॥९०॥

भावार्थ– जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुन्दर भोग पदार्थों से पूर्ण और फूलों की सुगन्ध से सुवासित है, जहाँ सुन्दर पलंग और मणियों के दीपक हैं, तथा सब प्रकार का पूरा आराम है।

बिबिध बसन उपधान तुराईं । छीर फेन मृदु बिसद सुहाईं ॥

तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं । निज छबि रति मनोज मदु हरहीं ॥

ते सिय रामु साथरीं सोए । श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥

मातु पिता परिजन पुरबासी । सखा सुसील दास अरु दासी ॥

जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं । महि सोवत तेइ राम गोसाईं ॥

पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥

रामचंदु पति सो बैदेही । सोवत महि बिधि बाम न केही ॥

सिय रघुबीर कि कानन जोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥

भावार्थ– जहाँ (ओढ़ने - बिछाने के) अनेकों वस्त्र, तकिये और गद्दे हैं, जो दूध के फेने के समान कोमल, निर्मल (उज्जवल)और सुन्दर हैं, वहाँ (उन चौबारों में)श्री सीता जी और श्रीरामचन्द्र जी रात को सोया करते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे। वही श्री सीता और श्रीरामचन्द्र जी आज घास-फूस की साथरी पर थके हुए बिना वस्त्र के ही सोये हैं। ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुम्बि, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-स्वभाव के दास और दासियाँ सब जिनकी प्राणों के समान सार-सँभार करते थे, वही प्रभु श्रीरामचन्द्र जी आज पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनक जी हैं, जिनका स्वभाव जगत में प्रसिद्ध है, जिनके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथ जी हैं और पति श्री रामचन्द्र जी हैं, वहीं जानकी जी आज जमीन पर सो रही हैं। विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता! सीता जी और श्रीरामचन्द्र जी क्या वन के योग्य हैं। लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य)ही प्रधान है।

दो०– कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनन्दन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ।।९१।।

भावार्थ– कैकेयराज की लड़की, नीच-बुद्धि, कैकेयी ने बड़ी ही कुटिलता की, जिसनें रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी को और जानकी जी को सुख के समय दुःख दिया।

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी ।।
भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी ।।
बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी ।।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता ।।
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ।।
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू ।।
धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ।।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं ।।

भावार्थ– वह सूर्यकुल-रूपी वृक्ष के लिये कुल्हाड़ी हो गयी। उस कुबुद्धि ने सम्पूर्ण विश्व को दुःखी कर दिया।'' श्रीरामचन्द्र जी को जमीन पर सोते हुए देखकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ। तब लक्ष्मण जी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले– "हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख देने वाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। संयोग (मिलना), वियोग (विछुड़ना)भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन, वे सभी भ्रम के फंदें हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल– जहां तक जगत के जंजाल हैं – घरनी, घर, धन, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है, जो देखने, सुनने और मन के अन्दर विचारने से आते हैं,इन सब का मूल मोह (अज्ञान)ही है। परमार्थ ये नहीं है।

दो०— सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ।।९२।।

भावार्थ— जैसे स्वप्न में भिखारी राजा हो जाये, या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाय, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है, वैसे ही इस दृश्य प्रपंच को हृदय से देखना चाहिये ।

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू । काहुहि बादि न देइअ दोसू ।।
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा । देखिअ सपन अनेक प्रकारा ।।
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच बियोगी ।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा । जब सब बिषय बिलास बिरागा ।।
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।
सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।
सकल बिकार रहित गत भेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ।।

भावार्थ— ऐसा विचार कर क्रोध नहीं करना चाहिये और न किसी को व्यर्थ दोष ही देना चाहिये । सब लोग मोहरूपी रात्रि में सोने वाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं । इस जगत रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च से (मायिक जगत से) छुटे हुए हैं । जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाय । विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है । तब (अज्ञान का नाश होने पर)श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रेम होता है । हे सखा! मन, बचन और कर्म से श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम होना, यही सर्व श्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है । श्रीरामचन्द्र जी ही परमार्थस्वरूप (परम वस्तु)परमब्रह्म है । वे अविगत (जान में न आने वाले), अलख (स्थूल दृष्टि से देखने में न आने वाले), अनादि (आदिरहित), अनुपम (उपमारहित)सब विकारों से रहित और भेद शून्य हैं, वेद जिनका 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते है ।

टिप्पणी—'नेति-नेति' शब्द की व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ ३३ ।

दो०— भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल ।।९३।।

भावार्थ— वही कृपालु श्रीरामचन्द्र जी भक्त, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुनने से जगत के जंजाल मिट जाते हैं ।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल सुखदारा ॥
सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बट छीर मगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए । देखि सुमंत्र नयन जल छाए ॥
हृदयँ दाहु अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रथु जाहु राम कें साथा ॥
बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी ॥

भावार्थ– हे सखा ! ऐसे समय, मोह को त्याग कर, श्री सीताराम जी के चरणो से प्रेम करो ।" इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के गुण कहते-कहते सबेरा हो गया । तब जगत का मंगल करने वाले और उसे सुख देने वाले श्रीरामचन्द्र जी जागे । शौच के सब (नित्य) कार्य करके पवित्र और सुजान श्री रामचन्द्र जी ने स्नान किया । फिर बड़ का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मण सहित उस दूध से सिर पर जटाएँ बनायीं । यह देखकर सुमन्त्र जी के नेत्रों में जल छा गया । उनका हृदय अत्यन्त जलने लगा, मुह मलिन (उदास)हो गया । वे हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन बचन बोले –"हे नाथ, कोसलनाथ दशरथ जी ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्रीरामचन्द्र जी के साथ जाओ । बन दिखाकर, गंगास्नान कराकर, दोनों भाइयों को तुरन्त लौटा लाना । सब संशय और संकोच को दूरकर के लक्ष्मण, राम, सीता को फिरा लाना ।

दो०– नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ ।।९४।।

भावार्थ– महराज ने ऐसा कहा था । अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ, मैं आपकी बलिहारी हूँ ।" इस प्रकार विनती करके वे श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में गिर पड़े और बालक की तरह रो पड़े ।

तात कृपा करि कीजिअ सोई । जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा ॥
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥

संभावित कहुँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारून दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिए उतरु फिरि पातकु लहऊँ ॥

भावार्थ– (और कहा) ''हे तात ! कृपा करके वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो ।'' श्रीरामचन्द्र जी ने मंत्री को उठाकर, धैर्य बंधाते हुए समझाया कि ''हे तात ! आपने तो धर्म के सभी सिद्धान्तों को छान डाला है । शिवि, दधीच और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों (अनेकों)कष्ट सहे थे । बुद्धिमान राजा रन्तिदेव और बलि बहुत से संकट सहकर भी धर्म को पकड़े रहे (उन्होंने धर्म का परित्याग नहीं किया)। वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है । मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है । (इस सत्य रूपी धर्म का)त्याग करने से तीनों लोकों में अपयश छा जायेगा। प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण संताप देने वाली है। हे तात ! मैं आप से अधिक क्या कहूँ । लौटकर उत्तर देने में भी पाप का भागी होता हूँ।

अन्तर्कथा– जब सुमन्त ने रामचन्द्र जी के समक्ष श्रृंगबेरपुर से अयोध्या वापस लौटने का प्रस्ताव रखा, तो श्रीरामचन्द्र जी ने विनय पूर्वक उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और सुमन्त्र को समझाया कि 'आपने तो धर्म के सभी सिद्धांन्तों को स्वयं छान डाला है ।' और फिर श्रीरामचन्द्र जी ने शिवि, दधीच, हरिश्चन्द्र, रंतिदेव और बलि के दृष्टान्त दिये, जिन्होंने धर्म की (अपने प्रण की) रक्षा के लिए सैकड़ों कष्ट झेले –

'शिवि, दधीच हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरमु धरेउ सहि संकट नाना ।।'

इन्हीं त्यागमूर्तियों का वास्ता कैकेई ने भी दिया था, जब दशरथ जी उसको दो वचन देकर पछताने लगे :

'सिबि दधीचि बलि जो कुछ भाषा । तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ।'
(पृष्ठ ४२१)

जब प्रण-पालन के लिए, राम अयोध्या छोड़कर वन जाने लगे, तब पुनः इन्ही त्यागमूर्तियों का नगर वासियों ने स्मर्ण किया ।

'.....................................नृपहिं दोसु नहि देहिं सयाने ।।
सिबि दधीचि हरिचन्द कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ।।'
(पृष्ट ४३७)

अन्तर इतना है कि बलि के स्थान पर पुरवासियों ने हरिश्चन्द्र का दृष्टान्त दिया । राम ने इन चार विभूतियों की श्रृंखला में पांचवा नाम रन्तिदेव का जोड़ दिया । रन्तिदेव की अन्तर्कथा इस प्रकार है–

१– रन्तिदेव– ये चन्द्रवंशी संकीर्ति के पुत्र थे । ये बड़े धार्मिक तथा कर्मपरायण राजा थे । इनके यज्ञीय पशुओं की रुधिर धारा से एक नदी बह निकली थी, जिसका नाम चर्मवती था, जो आज 'चम्बल' के नाम से प्रसिद्ध है । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि इन्होंने सैकड़ों बड़े-बड़े यज्ञ किये थें, जिनमें इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दीन-दुखिओं और ब्राह्मणों को बाँट दी । अंत में एक दिन उनके पास कुछ भी न रह गया । यहां तक कि ४८ दिन तक उनको या उनके परिवार को अन्न का एक दाना भी नहीं नसीब हुआ । ४९वें दिन प्रातः एक आदमी एक थाली में खीर और एक लोटे में पानी राजा को दे गया । राजा ने परिवार के लोगों को बाँटकर जैसे ही उस खीर को खाना चाहा, वैसे ही उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मा जी एक ब्राह्मण का रूप रखकर आये और राजा से भोजन माँगा । राजा ने उस खीर में से अपना हिस्सा उस ब्राह्मण को दे दिया । बची हुयी खीर परिवार वालों को बांटकर जब राजा ने खाना चाहा, तब विष्णु भगवान बहुत से कुत्तों को साथ लिये शूद्र का रूप रखकर आये और खाने को मांगा । राजा ने अतिथि जानकर उस खीर का आधा हिस्सा शूद्र को दे दिया । शूद्र अपने कुत्तों के साथ वह अन्न खाकर चला गया । राजा फिर जब केवल जल पीकर प्यास बुझाने को तैयार हुए, तब महादेव जी एक चाण्डाल का रूप रखकर आये और बोले–'राजा मैं बहुत प्यासा हूँ । मुझे पीने को थोड़ा सा पानी दीजिए ।' दयालु राजा ने कहा–'मैं अपने कष्ट की परवाह नहीं करता । मैं भले ही भूख प्यास से मर जाऊँ, पर दूसरों का कष्ट दूर हो, और इससे भगवान मुझ पर प्रसन्न हो ।' इतना कहकर राजा ने बचा हुआ पानी भी उस चाण्डाल को दे दिया । राजा के धैर्य और दान को देखकर तीनों देवता अपने असली रूप में प्रकट हुए । उन्होंने राजा से वरदान मांगने के लिए कहा। राजा ने भगवान की कृपा और भक्ति के सिवा और कुछ नहीं मांगा ।

२- शिवि - देखिए पृष्ठ ५० ।

३- हरिश्चन्द्र - देखिए पृष्ठ ५१ ।

४- दधीचि - देखिए पृष्ठ ५८ ।

५- बलि - देखिए पृष्ठ ५९ ।

दो०– पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि ।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि ।।९५।।

भावार्थ– आप जाकर पिता जी के चरण को पकड़ करोड़ों नमस्कार के साथ ही हाथ जोड़कर विनती करियेगा कि हे तात, आप मेरी किसी बात की भी चिन्ता न करें ।

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें । बिनती करउँ तात कर जोरें ।।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें । दुख न पाव पितु सोच हमारें ।।

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू । भयउ सपरिजन बिकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी । प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी ॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई ॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू । सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू ॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया । सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना । मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥

भावार्थ– आप भी पिता के समान मेरे बड़े हितैषी हैं । हे तात ! मैं हाथ जोड़कर आपसे विनती करता हूँ कि आप का भी सब प्रकार से वही कर्तव्य है जिससे पिताजी हम लोगों के सोच में दुःख न पावें ।'' श्रीरामचन्द्र जी और सुमन्त्र का यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों सहित व्याकुल हो गया । फिर लक्ष्मण जी ने कुछ कड़वी बात कही । प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया । श्रीरामचन्द्र जी ने सकुंचाकर, अपनी सौगन्ध दिलाकर, सुमन्त्र जी से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह सन्देश न कहियेगा । सुमन्त्र ने फिर राजा का सन्देश कहा कि ''सीता वन के कष्ट न सह पायेगी । अतएव जिस तरह सीता अयोध्या को लौट आवें, तुम को और श्रीराम चन्द्र जी को वही उपाय करना चाहिये । नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारे का होकर वैसे ही नहीं जीऊंगा जैसे जल के बिना मछली नहीं जीती है ।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में निम्न पंक्तियाँ हैं–

'पुनि कछु लखन कही कटु बानी । प्रभु बरजें बड़ अनुचित जानी ।।
सकुचि राम निज सपथ देवाई । लखन संदेस कहिअ जनि जाई ।।'

अर्थात्, लक्ष्मण ने कुछ कड़वी बात कही जो राम को अनुचित लगी और उन्होंने अपनी सौगन्ध दिलाते हुए कहा 'कृपया लक्ष्मण के वचन अपनें ही तक सीमित रखियेगा । उन्हें दशरथ जी को मत सुनाइयेगा, क्योंकि सुनकर पिता श्री को क्लेश होगा ।'

दशरथ और लक्ष्मण की गरिमा बनाए रखने हेतु तुलसीदास ने 'कटुबानी' का केवल संकेत किया है । वह कटुबानी क्या थी स्पष्ट नहीं कहा है । इसके लिये हमें वाल्मीकीय 'रामायण' के अयोध्याकाण्ड के २१ वें सर्ग का सहारा लेना होगा ।

तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम् ।
उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ।।१।।

न रोचते ममाप्येतदार्ये यद्राघवो वनम् ।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत्स्त्रिया वाक्यवशं गतः ।।२।।

विपरीतश्च वृद्धश्च विषयेश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ।।३।।

प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या दुष्टो यदि नः पिता ।
अमित्रभूतो निःसंगम् वध्यतां वध्यतामपि ।।१२।।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ।।१३।।

जब रामवनगमन की बात सुनकर कौसल्या बिलखने लगी, तो उन को सम्हालते हुए लक्ष्मण ने कहा :'हे आर्ये ! मुझे भी बात पसन्द नहीं है कि राज्यश्री त्यागकर रघुनाथ जी वन को जायें । **स्त्री के कहने में आनेवाले, विपरीत प्रकृति, वृद्ध, विषयों के अधीन एवं कामुक महाराज स्त्री की प्रेरणा से क्या नहीं कह सकते ?** . . .यदि कैकेयी के प्रोत्साहन से महाराज भरत पर प्रसन्न हैं और हम से शत्रुता साध रहे हैं, **तो बिना हिचक इन्हें बाँध लेना** और भरत का भी वध कर देना **चाहिए** । कार्याकार्य के **विवेक से हीन, अभिमानी और कुमार्गगामी गुरुजन को भी दण्ड देना ही चाहिये** ।'

त्रेता और द्वापर की संधी में भगवान राम का अवतार हुआ था । उस समय एक पाद से भी अधिक अधर्म का प्रवेश हो चुका था । तभी तो लक्ष्मण पिता के प्रति ऐसे दुर्वाक्य बोल सके और कैकेयी के कथन पर महाराज दशरथ भी चुप रह गये ।

दो०— मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान ।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान ।।९६।।

भावार्थ— सीता के मायके (पिता के घर)और सुसुराल में सब सुख हैं । यह विपत्ति दूर नहीं होती, तब तक वे जब जहाँ जी चाहे वहीं सुख से रहेंगी ।''

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती । आरति प्रीति न सो कहि जाती ।।
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना । सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना ।।
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू । फिरहु त सब कर मिटै खभारू ।।
सुनि पति बचन कहति बैदेही । सुनहु प्रानपति परम सनेही ।।
प्रभु करुनामय परम बिबेकी । तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ।।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई । कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई ।।
पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ।।
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी । उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी ।।

भावार्थ– राजा ने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेम से)विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता । कृपानिधान श्रीरामचन्द्र जी ने पिता का सन्देश सुनकर सीता जी को करोड़ों (अनेकों)प्रकार से सीख दीं । (उन्होंने कहा)--''जो तुम घर को लौट जाओ, तो सास-ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सब की चिन्ता मिट जाय ।'' पति के बचन सुनकर जानकी जी कहती हैं–''हे प्राणपति ! हे परमसनेही ! सुनिये । हे प्रभो ! आप करुनामय और परमज्ञानी हैं । (कृपा करके विचार तो कीजिये) शरीर को छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी जा सकती है । सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा सकती है । और चांदनी चन्द्रमा को त्याग कर कहाँ जा सकती है ?'' इस प्रकार पति को प्रेममयी विनती सुनाकर, सीता जी मन्त्री से सुहावनी वाणी कहनें लगीं– ''आप मेरे पिता जी और ससुर जी के समान मेरा हित करने वालें है । आपको बदलें में मैं उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित हैं ।

दो०– आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात ।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात ।।९७।।

भावार्थ– किन्तु हे तात ! मैं आर्त्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप बुरा न मानियेगा । आर्यपुत्र स्वामी के चरण कमलों के बिना जगत में जहाँ तक नाते हैं, सभी मेरे लिए व्यर्थ हैं ।

पितु बैभव बिलास मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ।।
सुखनिधान असपितु गृह मोरें । पिय बिहीन मन भाव न भोरें ।।
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ।।
आगें होइ जेहि सुरपति लेई । अरध सिंहासन आसनु देई ।।
ससुरु एताहस अवध निवासू । प्रिय परिवारु मातु सम सासू ।।
बिनु रघुपति पद पदुम परागा । मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ।।
अगम पंथ बनभूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ।।
कोल किरात कुरंग बिहंगा । मोहि सब सुखद प्रानपति संगा ।।

भावार्थ– मैंने पिता जी के ऐश्वर्य की छटा देखी है, जिनके चरण रखने की चौकी से सर्वशिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं (अर्थात्, बड़े-बड़े राजा जिनके चरणों में प्रणाम करते हैं) । ऐसे पिता का घर भी जो सब प्रकार के गुणों का भण्डार है, पति के बिना मेरे को भूल कर भी नहीं भाता । मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट होता है, इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करते हैं और अपने आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं । ऐसे ऐश्वर्य और प्रभावशाली ससुर, उनकी राजधानी अयोध्या का निवास, प्रिय कुटुम्बी और माता के समान सासुयें कोई भी श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों की रज के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लगते । दुर्गम रास्ते, जंगल की धरती, पहाड़, हाथी, सिंह, अथाह तालाब, नदियां, कोयल, मोर, हिरन और पक्षी प्राणपाति (रघुनाथ जी)के साथ रहते , ये सभी मुझे सुख देने वाले होंगे ।

टिप्पणी— सुमन्त्र से अपने माता-पिता और सास-ससुर के ऐश्वर्य और वैभव का वर्णन करने के पश्चात, सीता जी कहती है कि वह सब पति के (रघुनाथ जी के) चरण कमलों की रज के बिना उन्हें स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लग सकते। जनक की विभूति के सन्दर्भ मे वह कहती हैं कि बड़े-बड़े राजा उनके चरणों में प्रणाम करते हैं — 'नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा', अर्थात् चरण रखने की चौकी (पाँव पोश) पर अनेक राजाओं के मणियों से जटित मुकुट मिलते हैं। यह पद दण्डी के 'दशकुमार चरित' के पहले तत्पुरुष और बहुब्रीहि समास का अक्षरशः अनुवाद है— अनेकनरेन्द्रमुकुटमरीचिजालजटलीकृतपादपीठः — अनेकानाम् नरेन्द्राणाम् मुकुटानाम् मरीचिनाम् जालैः जटलीकृतम् आदपीठम् यस्य सः — अर्थात्, वह राजा जिसका पादपीठ अनेक राजाओं के मुकुटों की किरणों के जाल से जटलीकृत है।

दो०— सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ ।।९८।।

भावार्थ— अतः सासु और ससुर के पाँव पड़कर, मेरी ओर से विनती कीजिएगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें। मैं वन में स्वभाव से ही सुखी हूँ।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा ।।
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें ।।
सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी ।।
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना ।।
राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होत नहिं सीतल छाती ।।
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे ।।
मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई ।।
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवांई ।।

भावार्थ— वीरों में अग्रगण्य तथा धनुष और (बाणों से भरे) तरकस धारण किए मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्ते की थकावट है, न भ्रम है, और न मेरे मन में कोई दुख ही है। आप मेरे लिये भूलकर भी सोच न करें।'' सुमन्त्र सीता की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये जैसे साँप मणि खो जाने पर। नेत्रों से कुछ सूझता नहीं, कानों से सुनाई नहीं देता। वे बहुत व्याकुल हो गये, कुछ कह नहीं सकते। श्री रामचन्द्र जी ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलने के लिये मंत्री ने अनेकों यत्न किए (युक्तियाँ पेश की) पर रघुनन्दन श्री रामचन्द्र जी (उन सब युक्तियों का) यथोचित उत्तर देते गये। श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा मेटी नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है, उस पर कुछ भी बस नहीं चलता। श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण और

सीता जी के चरणों में सिर नवाकर, सुमन्त्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी)गवाँकर लौटे ।

दो०— रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं ।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं ।।९९।।

भावार्थ— सुमन्त्र ने रथ को हाँका । घोड़े श्री रामचन्द्र जी की ओर देखकर हिनहिनाते हैं । यह देखकर निषाद लोग विषाद के बस में होकर, सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर)पछताते हैं ।

जासु बियोग बिकल पसु ऐसें । प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें ।।
बरबस राम सुमंत्रु पठाए । सुरसरि तीर आप तब आए ।।
मागी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ।।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ।।
एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू । नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ।।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ।।

भावार्थ— जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे ? श्री रामचन्द्र जी ने जबर्दस्ती सुमन्त्र को लौटाया । तब आप गंगाजी के तीर पर आये । श्री रामचन्द्र जी ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं । वह कहने लगा—''मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया । तुम्हारे चरण कमलों की धूल के लिये सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है , जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुन्दरी स्त्री हो गयी (मेरी नाव तो काठ की है)। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जायेगी । जब मेरी नाव उड़ जायेगी, तो मेरा रास्ता रुक जायेगा (अर्थात् मेरे कमाने खानें का जरिया ही मारा जायगा-मेरी रोटी मारी जायगी) । मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ । दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु ! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो, तो मुझे पहले अपने चरण कमल पखारने (धो लेने)के लिये कह दो ।

टिप्पणी— इस चौपाई में ग्रामीणों और आदिवासियों की निष्कपटता और सरलता समझने के लिये, तीन पंक्तियां पर्याप्त हैं—

'मांगी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ।।
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ।।
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ।।'

अर्थात्, जब राम ने गंगा-पार जाने के लिए नाव मांगी, तो केवट ने लाने से इन्कार कर दिया। कहने लगा : "आपके चरणों की धूल के महत्व से मैं भली प्रकार परिचित हूँ। एक बार आपने एक पाषाण शिला को अपने पैरों से छू दिया था। वह तुरन्त ऋषि की पत्नी बन गई और आपकी स्तुति करके परलोक सिधार गई। लकड़ी तो पत्थर से मुलायम होती है। यदि आपकी चरण-रज मेरी नाव पर पड़ गई तो मेरी नाव भी तुरन्त स्त्री हो जायेगी और मुझे छोड़ कर चली जायेगी। यह मेरी आजीविका का एकमात्र साधन है। अगर यह चली गई तो मैं भूखा मर जाऊँगा। यदि आप सचमुच पार जाना चाहते हैं, तो मुझे पद-प्रक्षालन कर लेने दीजिये, ताकि आपकी चरण-रज का मेरी नाव से स्पर्श न हो।"

गौतम-पत्नी अहल्या के उद्धार की अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ ५४ और २५२।

छं०— पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

दो० — सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥१००॥

भावार्थ— हे नाथ ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा। मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम ! मुझे आपकी दुहाई और दशरथ जी की सौगंध है,मैं सब सच-सच कहता हूँ। लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ ! हे कृपालु ! मैं पार नहीं उतारुँगा।" केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्री रामचन्द्र जी जानकी जी और लक्ष्मण जी की ओर देखकर हँसे।

टिप्पणी— ऊपर अयोध्याकाण्ड का चौथा छंद और सोरठा है। इस छंद के ऊपर की चौपाई में जो भाव 'मागी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना' में व्यक्त किया गया है, उसी पर पुनः पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए, तुलसीदास उसी भाव को दुबारा निषादराज गुह के मुख से कहलाते हैं। निशादरज कहता है कि "हे राम ! मुझे तुम्हारी और तुम्हारे पिता की सौगंध, मैं तुम्हें नाव पर नहीं चढ़नें दूँगा, जब तक कि मैं तुम्हारे चरण-कमलों का भली प्रकार प्रक्षालन न कर लूँ। इस धृष्टता के लिये भले ही लक्ष्मण मुझे अपने बाण से मार डालें।" राम केवट के इस भोलेपन को सुनकर, सीता और लक्ष्मण की ओर देखकर, मुस्कराये। वह भली प्रकार जानते हैं कि अहल्या श्राप ग्रस्त थी— (देखिए पृष्ठ ६६)। उसका उद्धार उनकी चरण-रज-स्पर्श से ही हो सकता था। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि जिस वस्तु पर भी राम के चरण पड़ जायेंगे, वह स्त्री हो जायेगी। लेकिन केवट

की कुछ ऐसी ही धारणा थी। राम उसके भावों को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते। इसीलिए तुरन्त पद-प्रक्षालन के लिए राजी हो गये और उसे अपनी अनन्त भक्ति का वरदान दिया (देखिए आगे दोहा–१०२)

छंद की पहली पंक्ति है'पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं।'

केवट केवल श्री रामचन्द्र जी के चरण धोना चाहता है, और गंगा पार ले जाने की कोई मजदूरी (उतराई) नहीं चाहता। इसका कारण अगली दो चौपाइयों में स्पष्ट किया गया है।

यों तो समस्त'मानस' तुलसीदास की लिखी हुई है। परन्तु पाँचवे छन्द को छोड़कर, अयोध्याकाण्ड के हर छंद में तुलसीदास ने अपना नाम अंकित किया है। इससे छंद का भावार्थ देने में टीकाकार को कुछ कठिनाई हो सकती है। उदाहरणार्थ, छंद की अन्तिम पंक्ति में केवट राम को'तुलसीदास के नाथ'कहकर सम्बोधित करता है। यह काव्य में कालदोष है। निषाद-राज गुह त्रेता युग में हुआ और तुलसीदास कलियुग में — इन दोनों में दो युग का अन्तर है। निषाद-राज राम को'तुलसी-नाथ' कहके कैसे सम्बोधित कर सकता है, जब तुलसीदास त्रेता युग में विद्यमान ही न थे ?

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तब नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

भावार्थ– कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्र जी केवट से मुसकराकर बोले "भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाय। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे।" एक बार जिसका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं, और जिन्होंने (वामनावतार से) जगत् को तीन पग से भी छोटा कर दिया था (दो ही पग में त्रिलोक को नाप लिया था) वही कृपालु श्री रामचन्द्र जी (गंगा जी से पार उतरने के लिये)केवट का निहोरा कर रहे हैं। प्रभु के इन बचनों को सुनकर गंगा जी की बुद्धि मोह से खिंच गयी थी (कि ये साक्षात् भगवान होकर भी पार उतरने के लिये केवट का निहोरा कैसे कर रहे हैं)। परन्तु (समीप आने पर अपनी उत्पत्ति के स्थान) पदनखों को देखते ही

(उन्हें पहचान कर)देवनदी गंगा जी हर्षित हो गयीं (वे समझ गयीं कि भगवान नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया, और इन चरणों का स्पर्श करके मैं धन्य हो जाऊंगी, यह विचार करके हर्षित हो गयीं)। केवट श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर कठौते में भरकर जल ले आया। अत्यन्त आनन्द और प्रेम में उमंगकर वह भगवान के चरण कमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसा कर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में दो बहुत सुन्दर विचार हैं

१- एकबार जिसका नाम स्मरण करते ही, मनुष्य अपार भवसागर से पार उतर जाता है, और जिस विष्णु भगवान ने वामन अवतार धारण करके दो पग में ही त्रिलोक को नाप लिया, उस विष्णु भगवान के अंश अवतार राम गंगा के पार उतार देने के लिये केवट से मनुहार कर रहे हैं। वामन अवतार की कथा के लिये देखिये पृष्ठ ५९।

२- इस मनुहार को सुनकर गंगा जी की बुद्धि चकरा गई। पर भगवान के पदनखों का सानिध्य पाते ही गंगा का मोह-भ्रम दूर हो गया। गंगा का सम्पर्क पद-नख से उस समय हुआ जब निषादराज कठौते में पद-प्रक्षालन के लिये गंगा-जल भरकर लाया। गंगा की स्तुति के एक स्तोत्र में कहा गया है—

'विष्णुपादार्धसम्पूते गंगे त्रिपथगामिनी।
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ॥'

अर्थात्, गंगे ! तुम श्री विष्णु का चरणोदक होने के कारण परम पवित्र हो तथा तीनों लोकों में गमन करने से त्रिपथगामिनी कहलाती हो। तुम्हारा जल धर्ममय है, इसलिए तुम धर्मदेवी के नाम से विख्यात हो। जाह्नवी मेरे पाप हर लो। उसी गंगा को इतनें वर्षों के बाद भगवान के चरणनख का स्पर्श पाने का अवसर मिल रहा है। गंगा अनुभव कर रही है कि केवट से पैर धुलाकर, विष्णु ने मुझे और भी अधिक महत्व का पद दे डाला। गंगा अवतरण की अन्तर्कथा पृष्ठ २५४ पर सविस्तार कही जा चुकी है।

'पदनख' के सन्दर्भ में उस कथा का पूर्वार्ध इस प्रकार है :—

अन्तर्कथा— वामनावतार की कथा पृष्ठ ५९ पर कही जा चुकी है। जब भगवान ने वामन से विराट रूप बनाया था, उसी समय ब्रह्मा ने उनके चरणों के नख धोकर, गंधोदक को अपने कमण्डल में भर लिया था। ब्रह्मा ने भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर,उनके पितरों (राजा सगर के साठ हजार पुत्रों जिनको कपिल मुनि के स्राप ने भस्म कर दिया)को तारने के लिये, अपने कमण्डल से जल छोड़ा। उसी जल ने मृत्युलोक में गंगा का रूप धारण किया। आकाश से गिरती हुई गंगाजी के वेग को शिवजी ने अपनी जटाओं में रोका, फिर

वहाँ से चलकर, पर्वतों को तोड़ती-फोड़ती, गंगा सागर के पास आकर कपिल मुनि के आश्रम में भागीरथ के पूर्वजों का उद्धार करती हुई, गंगा समुद्र में जा मिली।

दो०– पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ।।१०१।।

भावार्थ– चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर, पहले (उस महान् पूण्य के द्वारा)अपने पितरों को भवसागर से पार करा, फिर आनन्दपूर्वक निषाद प्रभु श्री रामचन्द्र जी को गंगा जी के पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता ।।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ।।
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ।।
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ।।
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ।।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ।।
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ।।
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा ।।

भावार्थ– निषादराज और लक्ष्मण जी सहित श्री सीता जी और श्री रामचन्द्र जी नाव से उतकर गंगा जी की रेत (बालू)में खड़े हो गये। तब केवट ने उतर कर दण्डवत की। (उसको दण्डवत करते देखकर)प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं। पति के हृदय को जानने वाली सीता जी ने आनन्द भरे मन से अपनी रत्नजणित अंगूठी (उंगली से)उतारी। कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने केवट से कहा,'नाव की उतराई लो'। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिये। उसने कहा–''हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया? मेरे दोष, दु:ख और दरिद्रता की आग आज बुझ गयी। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी। हे नाथ! हे दीनदयाल! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद मैं सिरचढ़ा कर लूंगा।''

दो०– बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ ।।१०२।।

भावार्थ– प्रभु श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम श्री रामचन्द्र जी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे बिदा किया।

टिप्पणी– दोहा १०२ और उसके ऊपर की चौपाई में एक बहुत सुन्दर भाव प्रदर्शित किया गया है। जब निषाद-राज ने श्री राम, लक्ष्मण, सीता जी को गंगा पार उतार दिया, तब श्री राम को संकोच हुआ कि उन्होंने केवट को कोई उतराई (मजदूरी) नहीं दी। सीता जी अपने पति के मनोभाव को जान गई और अपनी मणि-जटित अँगूठी उतार कर दी। पर गुह ने लेने से इन्कार कर दिया। कहने लगा–''मैंने जिन्दगी भर मजदूरी की है। पर आपको पार उतार कर मुझे जीवन की सबसे बड़ी मजदूरी मिल गई।'' बात टालने के लिए उसने कहा कि जब १४ वर्ष बाद लौटकर आयेंगे तब जो कुछ भी आप देंगे मैं सहर्ष स्वीकार कर लूँगा। इसका वास्तविक आशय कुछ और ही था–''आपका और मेरा दोनों का व्यवसाय एक ही है। मैं लोगों को गंगा पार उतारता हूँ, और आप भवसागर से पार उतारते हैं। समव्यवसाई एक दूसरे से मजदूरी (शुल्क) नहीं लेते हैं। जैसे नाई-नाई से नहीं लेता, धोबी-धोबी से नहीं लेता। आज मैंने नाव से आपको गंगापार उतारा है। जब मैं आयुकर्म पूरा करके आपके पास आऊँगा, तब आप मुझे भवसागर से पार उतार देना।'' इस तर्क के आगे श्री रामचन्द्र जी कुछ न कह सकें। निषाद राज को केवल अपनी विमल भक्ति का वरदान दिया। इस भक्ति द्वारा ही गुह इस संसार की भविष्य की यातनाओं से सर्वदा के लिये मुक्त हो गया।

आजकल के गीतकार अनूप जलोटा ने इसी भाव को बहुत सुन्दर पद में व्यक्त किया है–

'कभी-कभी भगवान को भी, भक्तों से काम पड़े।
जाना था गंगा पार, प्रभु केवट की नाव चढ़े।।
अवध छोड़ प्रभु बन को धाए, सिया राम लखन गंगा तट आए।
केवट मन ही मन हर्षाए, घर बैठे प्रभु दर्शन पाए।।
हाथ जोड़ कर प्रभु के आगे, केवट मगन खड़े।
प्रभु बोले तुम नाव चलाओ, पार हमें केवट पहुँचाओ।।
केवट कहता सुनो हमारी, चरण धूल की माया भारी।
मैं गरीब नैया मेरी, नारी न होय पड़े।।
केवट दौड़ के जल भर लाया, चरण धोय चरणामृत पाया।
वेद ग्रन्थ जिनके यश गाए, केवट उनको नाव चढ़ाए।।
बरसे फूल गगन से ऐसे, भक्त के भाग बढ़े।
चली नाव गंगा की धारा, सिया राम लखन को पार उतारा।।
प्रभु देने लगे नाव उतराई, केवट कहे नहीं रघुराई।
पार किया मैंने तुमको अब तू मोहि पार करे।।'

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा । पूजि पारथिव नायउ माथा ॥
सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥
पति देवर सँग कुसल बहोरी । आइ करौं जेहिं पूजा तोरी ॥
सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी । भइ तब बिमल बारि बर बानी ॥
सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही । तब प्रभाउ जग बिदित न केही ॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ॥
तुम्ह जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई । कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई ॥
तदपि देबि मैं देबि असीसा । सफल होन हित निज बागीसा ॥

भावार्थ-- फिर रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्र जी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की (अर्थात्, स्वयं मिट्टी से शिव लिंग बनाकर उसका पूजन किया) और शिवजी को सिर नवाया। सीता जी ने हाथ जोड़कर गंगा जी से कहा ''हे माता ! मेरा मनोरथ पूरा कीजियेगा। जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलतापूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूं।'' सीता जी की प्रेम रस से सनी हुई विनती सुनकर तब गंगा जी के निर्मल जल में श्रेष्ठ वाणी हुई– ''हे रघुवीर की प्रियतमा जानकी ! सुनो तुम्हारा प्रभाव जगत में किसे नहीं मालूम है ? तुम्हारे देखते ही (कृपा दृष्टि से) लोग लोकपाल हो जाते हैं। सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं। तुमने जो मुझको बड़ी बिनती सुनायी, यह तो मुझपर कृपा करके मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवि ! मैं अपनी वाणी सफल होने के लिये तुम्हें आशिर्वाद दूँगी।

दो०– प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ ।।१०३।।

भावार्थ– ''तुम अपने प्राणनाथ और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनोकामनाँए पूरी होंगी और तुम्हारा सुन्दर यश जगत भर में छा जायेगा।''

गंग बचन सुनि मंगल मूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥
दीन बचन गुह कह कर जोरी । बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥
जेहिं बन जाइ रहब रघुराई । परनकुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई । सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई ॥
सहज सनेह राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू ॥
पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे । करि परितोषु बिदा तब कीन्हे ॥

भावार्थ– मंगल के मूल गंगा जी के वचन सुनकर और देवनदी को अनुकूल देखकर सीता जी आनन्दित हुईं। तब प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने निषादराज गुह से कहा कि 'भैया ! अब तुम घर चले जाओ।' यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हो गयी। गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला "हे रघुकुल शिरोमणि, मेरी विनती सुनिये, मैं नाथ के (आपके) साथ रहकर, रास्ता दिखाकर, चार (कुछ)दिन चरणों की सेवा करके, हे रघुराज ! जिस बन में आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुन्दर पर्णकुटी (पत्तों की कुटिया) बना दूँगा। तब आप मुझे जैसी आज्ञा देंगे मुझे रघुनाथ जी आप की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा।" उसके स्वाभाविक प्रेम को देखकर श्री रामचन्द्र जी ने उसको साथ ले लिया। इससे गुह के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ। फिर गुह (निषादराज)ने अपनी जाति के लोगों को बुला लिया और उनका संतोष करके तब उनको विदा किया।

दो०– तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ।।१०४।।

भावार्थ– तब प्रभु श्री रघुनाथ जी गणेश जी और शिवजी का स्मरण करके तथा गंगा जी को मस्तक नवाकर, सखा निषादराज और भाई लक्ष्मण और सीता जी सहित बन को चले।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू ।।
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ।।
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी ।।
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू ।।
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ।।
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा ।।
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा ।।
चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा ।।

भावार्थ– उस दिन पेड़ के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मण जी और सखा गुह ने विश्राम की सब सुव्यवस्था कर दी। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने सबेरे प्रातःकाल की सब क्रियाएँ करके तीर्थों के राजा प्रयाग के जाकर दर्शन किये। उस राजा का सत्य मन्त्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है, और श्री माधव जी सरीखे हितकारी मित्र हैं। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)से भण्डार भरा है, और वह पुण्यमय प्रान्त ही उस राजा का सुन्दर देश है। प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुन्दर गढ़ (किला)है, जिसको स्वप्न में भी (पाप रूपी)शत्रु नहीं पा सके हैं। सम्पूर्ण तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को कुचल डालने वाले और बड़े रणधीर हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम ही उसका अत्यन्त सुशोभित

सिंहासन है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के मन को भी मोहित कर लेता है। यमुना जी और गंगा जी की तरंगे उसके (श्याम और श्वेत) चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है।

दो०— सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।
बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम।।१०५।।

भावार्थ— पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और मनोरथ पाते हैं। वेद और पुराणों के समूह भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगानों का बखान करतेहैं।

टिप्पणी— दोहा १०५ और उसके ऊपर की चौपाई में तुलसीदास जी ने एक बहुत सुन्दर रूपक बांधा है। प्रयागराज को एक'राजा' की संज्ञा देकर, उस राजा के ढाट-बाट का इस प्रकार वर्णन किया है—

१- सत्य उसका मन्त्री है,

२- श्रद्धा उसकी पत्नी है,

३- श्री माधव (विष्णु)उसके मित्र हैं।

४- चार पदार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष उसके भण्डार हैं,

५- पुण्यमय क्षेत्र (दुआब)उसका राज्य है,

६- प्रयाग-क्षेत्र उसका दुर्गम, मजबूत और सुन्दर गढ़ (किला)है,

७- पाप-रूपी शत्रु उस किले के ऊपर पार नहीं पा सकते,

८- अन्य समस्त तीर्थ-स्थान उसके सैनिक हैं जो'पाप' की सेना को कुचलने में समर्थ हैं,

९- तीनों नदियों का संगम उसका सिंहासन है,

१०- अक्षय-वट उसका छत्र है,

११- गंगा और यमुना की तरंगे उसके श्वेत और श्याम चँवर हैं,

१२- साधु उसके सेवक हैं, और

१३- वेद और पुराण उसके भाट हैं।

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा॥
कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥

करि प्रनामु देखत बन बागा । कहत महातम अति अनुरागा ॥
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी । सुमिरत सकल सुमंगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा । पूजि जथाबिधि तीरथ देवा ॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए । करत दंडवत मुनि उर लाए ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई । ब्रह्मानंद रासि जनु पाई ॥

भावार्थ– पापों के समूह रूपी हाथी के मारने के लिये सिंह रूपी प्रयागराज का प्रभाव (महत्व, महात्म्य) कौन कह सकता है। ऐसे सुहावने तीर्थराज का दर्शन कर सुख के समुद्र रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी ने सुख पाया। उन्होंने अपने श्री मुख से सीता जी, लक्ष्मण जी और सखा गुह को तीर्थराज की महिमा कहकर सुनाई। तदनन्तर प्रणाम करके, बन और बगीचों को देखते हुए और बड़े प्रेम से महात्म्य कहते हुए, इस प्रकार श्री राम ने आकर त्रिवेणी का दर्शन किया, जो स्मरण करने से ही सब सुन्दर मंगलों को देने वाली है। फिर आनन्द पूर्वक त्रिवेणी में स्नान करके, शिवजी की सेवा (पूजा) की और विधिपूर्वक तीर्थ देवताओं का पूजन किया। (स्नान, पूजन आदि सब करके) तब प्रभु श्री राम जी भरद्वाज जी के पास आए। उन्हें, दण्डवत करते हुए ही, मुनि ने हृदय से लगा लिया। मुनि के मन का आनन्द कुछ कहा नहीं जाता, मानों उन्हें ब्रह्मानन्द की राशि मिल गई हो।

दो०– दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि ।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०६॥

भावार्थ– मुनीश्वर भरद्वाज जी ने आशीर्वाद दिया। उनके हृदय में ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि आज विधाता ने (श्री सीता जी और लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कराकर)मानों हमारे पुण्यों के फल को लाकर आँखों के सामने कर दिया।

कुसल प्रश्न करि आसन दीन्हे । पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥
कंद मूल फल अंकुर नीके । दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के ॥
सीय लखन जन सहित सुहाए । अति रुचि राम मूल फल खाए ॥
भए बिगतश्रम रामु सुखारे । भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू । राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी । तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥
अब करि कृपा देहु बर एहू । निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥

भावार्थ– कुशल पूछ कर मुनिराज ने उनको आसन दिये और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें सन्तुष्ट किया और फिर मानों अमृत के ही बनें हो, ऐसे अच्छे-अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिए। सीता जी, लक्ष्मण जी और सेवक गुह सहित श्री रामचन्द्र जी ने उन सुन्दर मूल-फलों को बड़ी रुचि के साथ खाया। थकावट दूर होने से श्री रामचन्द्र जी सुखी हो गये। तब भरद्वाज जी ने उनसे कोमल वचन कहे –''हे राम ! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थ सेवन और त्याग सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ साधनों का समुदाय भी सफल हो गया। लाभ की सीमा और सुख की सीमा (प्रभु के दर्शन को छोड़कर)दूसरी कुछ भी नहीं हैं। आपके दर्शन से मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गईं। आप कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरण कमलों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

दो०– करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार।।१०७।।

भावार्थ– जब तक कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तब तक करोड़ों उपाय करने से भी, स्वप्न में भी वह सुख नहीं पाता।''

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने।।
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा।।
सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू।।
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं।।
यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी।।
भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए।।
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू।।
देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई।।

भावार्थ– मुनि के बचन सुनकर, उनकी भाव भक्ति के कारण आनन्द से तृप्त हुए भगवान श्री रामचन्द्र जी (लीला की दृष्टि से)सकुचा गये। तब (अपने ऐश्वर्य को छिपाते हुए)श्री रामचन्द्र जी ने भरद्वाज मुनि का सुन्दर सुयश करोड़ों प्रकार से कह कर सब को सुनाया। (उन्होंने कहा) 'हे मुनीश्वर ! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुण-समूहों का घर है।' इस प्रकार रघुबीर श्री रामजी और मुनि भरद्वाज दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं। और निवर्चनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं। यह (श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण, सीता जी के आने की) खबर पाकर, प्रयाग निवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्री दशरथ जी के सुन्दर पुत्रों को देखने के लिए भरद्वाज जी के आश्रम पर आये। श्री रामचन्द्र जी ने सब किसी को प्रणाम किया। नेत्रों का लाभ पाकर सब आनन्दित हो गये और परमसुख पांकर आशीर्वाद देने लगे। श्री रामचन्द्र जी के सौन्दर्य की सराहना करते हुए वे लौटे।

दो०— राम कीन्ह विश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ ।।१०८।।

भावार्थ— श्री रामजी ने रात को वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयाग राज का स्नान करके और प्रसन्नता के साथ मुनि को सिर नवाकर श्री सीता जी, लक्ष्मण और सेवक गुह के साथ वे चले ।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं । नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं ।।
मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं । सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं ।।
साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए । सुनि मन मुदित पचासक आए ।।
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहिं मगु दीख हमारा ।।
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे । जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे ।।
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई । प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई ।।
ग्राम निकट जब निकसहिं जाई । देखहिं दरसु नारि नर धाई ।।
होहिं सनाथ जनम फलु पाई । फिरहिं दुखित मनु संग पठाई ।।

भावार्थ— (चलते समय)बड़े प्रेम से श्री रामचन्द्र जी ने मुनि से कहा—'हे नाथ ! बताइये हम किस मार्ग से जायें ।' मुनि मन में हँसकर श्री राम चन्द्र जी से कहते हैं कि'आपके लिए सभी मार्ग सुगम है ।' फिर उनके साथ के लिए मुनि ने शिष्यों को बुलाया । (साथ जाने की बात)सुनते ही चित्त में हर्षित हो कोई पचास शिष्य आ गये । सभी का श्री रामचन्द्र जी पर अपार प्रेम है । सभी कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है । तब मुनि ने (चुनकर)चार ब्रह्मचरियों को साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब सुकृत (पुण्य) किये थे । श्री रघुनाथ जी प्रणाम कर और ऋषि की आज्ञा पाकर हृदय में बड़े ही आनन्दित होकर चले । जब वे किसी गाँव के पास होकर निकलते हैं, तब स्त्री पुरुष दौड़कर उनके रूप को देखने लगते हैं । जन्म का फल पाकर वे (सदा के अनाथ) सनाथ हो जाते हैं । और मन को नाथ के साथ भेजकर (शरीर के साथ न रहने के कारण)दुःखी होकर लौट आते हैं ।

दो०— बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम ।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम ।।१०९।।

भावार्थ— तदन्तर श्री रामचन्द्र जी ने विनती करके चारों ब्रह्मचारियों को विदा किया। वे मन चाही वस्तु (अनन्य भक्ति)पाकर लौटे । यमुना जी के पार उतरकर सबने यमुना जी के जल में स्नान किया, जो श्री रामचन्द्र जी के शरीर के समान ही श्याम रंग का है ।

सुनत तीरबासी नर नारी । धाए निज निज काज बिसारी ॥
लखन राम सिय सुंदरताई । देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ॥
अति लालसा बसहिं मन माहीं । नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ॥
जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने । तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥
सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई । बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं । रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं ॥
तेहि अवसर एक तापसु आवा । तेजपुंज लघुबयस सुहावा ॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी । मन क्रम बचन राम अनुरागी ॥

भावार्थ– यमुना जी के किनारे पर रहने वाले स्त्री-पुरुष (यह सुनकर कि निषाद के साथ दो परम सुन्दर, सुकुमार नवयुवक और एक परम सुन्दर स्त्री आ रही है)सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मण जी, श्री रामजी और सीता जी का सौन्दर्य देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे । उनके मन में (परिचय जानने की)बहुत लालसा भरी है, पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं । उन लोगों में जो वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्ति से श्री रामचन्द्र जी को पहचान लिया । उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनाई कि पिता की आज्ञा पकर ये बन को चले हैं । यह सुनकर सब लोग दुखित हो पछ्ता रहे हैं कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया । उसी अवसर पर वहाँ एक तपश्वी आया, जो तेज का पुञ्ज, छोटी अवस्था का और सुन्दर था । उसकी गति कवि नहीं जानते (अथवा, वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता) । वह वैरागी के वेष में था और मन, वचन तथा कर्म से श्री रामचन्द्र जी का प्रेमी था ।

पात्र परिचय – ऊपर की चौपाई में एक पंक्ति है,

'तेहि अवसर एक तापसु आवा । तेजपुंज लघुवयस सुहावा ।।'

यह तपस्वी कौन था, जिसे प्रेमपूर्वक पुलकित होकर राम ने हृदय से लगा लिया और जिसके मिलन को देखकर आगे चौपाई में खड़े हुए सब लोग कह उठे–

'मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ । मिलत धरें तन, कह सब कोऊ ।।'

अर्थात, देखो ! प्रेम और परमार्थ दोनो शरीर धारण करके कैसे परस्पर गले मिल रहे हैं –परम तत्व तो'राम' हैं और प्रेम है 'सनत्कुमार' ।

सनत्कुमार ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों में से एक थे । शेष तीन के नाम इस प्रकार हैं–सनक, सनन्द और सनातन । चारों पुत्र सृष्टि-सर्जन में उदासीन रहे । सनत्कुमार निरन्तर अगस्त्य ऋषि के यहाँ जाकर रामकथा सुना करते थे । अपने इष्टदेव को पहचानकर, उनके नयन सजल हो गये और तन पुलकित हो गया (देखिए नीचे दोहा ११०)

दो०– सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ।।११०।।

भावार्थ– अपने इष्टदेव को पहचान कर उसके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया । वह दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसकी (प्रेमविह्वल)दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ । मिलत धरें तन कह सबु कोऊ ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही । मिलेउ मुदित लखि राम सनेही ॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा । मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ॥
राम लखन सिय रूपु निहारी । होहिं सनेह बिकल नर नारी ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी ने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको हृदय से लगा लिया । (उसे इतना आनन्द हुआ)मानों कोई महा दरिद्र मनुष्य पारस पा गया हो । सब कोई (देखने वाले) कहने लगे कि मानों प्रेम और परमार्थ (परम तत्व) दोनों शरीर धारणकर मिल रहे हैं । फिर वह लक्ष्मण जी के चरणों लगा । उन्होंने प्रेम से उमंग कर उसको उठा लिया। फिर उसने सीता जी की चरणधूलि को अपने सिर पर धारण किया । माता सीताजी ने भी उसको अपना छोटा बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया । फिर निषादराज ने उसको दण्डवत की । श्री रामचन्द्र जी का प्रेमी जानकर वह उस (निषाद)से आनन्दित होकर मिला । वह तपस्वी अपने नेत्र रूपी दौनों से श्री रामचन्द्र जी की सौन्दर्य-सुधा का पान करने लगा और ऐसा आनन्दित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी सुंदर भोजन पाकर आनन्दित होता है । (इधर गाँव की स्त्रियाँ कह रही हैं) 'हे सखी ! कहो तो वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे सुन्दर सुकुमार बालकों को वन में भेज दिया है ।' श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी और सीता जी के रूप को देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेह से व्याकुल हो जाते हैं ।

टिप्पणी – ऊपर की चौपाई में पुनरोक्ति है –

'ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठए बन बालक ऐसे ।।'

अक्षरशः यही पंक्ति पृष्ठ ४७४ पर दोहा ८८ के नीचे की पहली चौपाई के दूसरे पद में है । और वक्ता भी वही "ग्राम नर नारी " हैं ।

दो०— तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह ।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइँ कीन्ह ।।१११।।

भावार्थ— तब रघुनाथ श्री रामचन्द्र जी ने सखा गुह को अनेकों तरह से (घर लौट जाने के लिये)समझाया । श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा को सिर चढ़ा कर उसने अपने घर को गमन किया ।

पुनि सियँ राम लखन कर जोरी । जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ।।
चले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा कइ करत बड़ाई ।।
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ।।
राज लखन सब अंग तुम्हारें । देखि सोचु अति हृदय हमारें ।।
मारग चलहु पयादेहि पाएँ । ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ ।।
अगमु पंथु गिरि कानन भारी । तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ।।
करि केहरि बन जाइ न जोई । हम सँग चलहिं जो आयसु होई ।।
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ।।

भावार्थ— फिर सीता जी, श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी ने हाथ जोड़कर यमुना जी को पुनः प्रणाम किया और सूर्य कन्या यमुना जी की बड़ाई करते हुए सीता जी सहित दोनों भाई प्रसन्नता पूर्वक आगे चले । रास्ते में जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं । वे दोनों भाइयों को देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिन्ह देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है । (ऐसे राज चिन्हों के होते हुये भी)तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझ में आता है कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा ही है । भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ों का दुर्गम रास्ता है, जिसपर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है । हाथी और सिंहों से भरा यह भयानक वन देखा तक नहीं जाता । यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें । आप जहाँ तक जायेंगे वहाँ तक पहुँचा कर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आयेंगे।

दो०— एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन ।।११२।।

भावार्थ— इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर कर पूछते हैं । किन्तु कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्र जी कोमल विनय युक्त वचन कह कर उन्हे लौटा देते हैं ।

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं । तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं ।।
केहि सुकृतीं केहि घरीं बसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए ।।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुरपुरबासी ॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहि ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं ॥
जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा ॥

भावार्थ– जो गाँव और पुरवे रास्ते में बसे हैं, नागों और देवताओं के नगर उनको देखकर प्रशंसापूर्वक ईर्ष्या करते और ललचाते हुए कहते हैं, 'कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घड़ी में इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुन्दर हो रहे हैं।' जहाँ जहाँ श्री रामचन्द्र जी के चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्र की पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते में समीप बसने वाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं। स्वर्ग में रहने वाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं जो नेत्र भर कर सीता जी और लक्ष्मण जी सहित घनश्याम श्री रामचन्द्र जी के दर्शन करते हैं। जिन तालाबों और नदियों में श्री रामचन्द्र जी स्नान कर लेते हैं, देव सरोवर और देव नदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं। जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जी बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्री रामचन्द्र जी के चरणकमलों की रज का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है।

दो०– छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं ॥११३॥

भावार्थ– रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। बन और पशु-पक्षियों को देखते हुए श्री रामचन्द्र जी रास्ते में चले जा रहे हैं।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी ॥
राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा ॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं ॥
रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे ॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी ॥

भावार्थ– सीता जी और लक्ष्मण सहित श्री रघुनाथ जी जब किसी गाँव के पास जा निकलते हैं तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम काज

को भूल कर तुरंत उन्हें देखने के लिये चल देते हैं। श्री राम, लक्ष्मण और सीता जी का रूप देखकर नेत्रों का परम फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों वीरों को देखकर सब प्रेमानन्द में मग्न हो गये। उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गए। उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जाता। मानों दरिद्रों ने चिन्तामणि की ढ़ेरी पा ली हो। वे एक-एक को पुकार कर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रों का लाभ ले लो। कोई श्री रामचन्द्र जी को देखकर ऐसे अनुराग में भर गए हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्रमार्ग से उनकी छबि को हृदय में लाकर, शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं (अर्थात उनके शरीर, मन और वाणी का व्यवहार बंद हो जाता है)।

दो०— एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात ।।११४।।

भावार्थ— कोई बट की सुन्दर छाया को देखकर वहाँ नरम घास और पत्ते बिछा कर कहते हैं कि क्षणभर यहीं बैठकर थकावट मिटा लीजिये। फिर चाहे अभी चले जाइयेगा।

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ।।
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुसील बिसेषी ।।
जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं ।।
मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रुप अनूप नयन मनु लोभा ।।
एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख चंद चकोरा ।।
तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा ।।
दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के ।।
मुनिपट कटिन्ह कसें तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ।।

भावार्थ— कोई घड़ा भर कर पानी ले आते हैं और कोमल वाणी में कहते हैं —'हे नाथ! आचमन तो कर लीजिये।' उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम पुनीत श्री रामचन्द्र जी ने मन में सीता जी को थकी हुई जानकर, घड़ी भर बट की छाया में विश्राम क्रिया। स्त्री -पुरुष आनन्दित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रुप ने उनके नेत्रों और मनों को लुभा लिया है। सब लोग टकटकी लगाये श्री रामचन्द्र जी के मुखचन्द्र को चकोर की तरह (तन्मय होकर)देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी का नवीन तमाल वृक्ष के रंग का (श्याम)शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं। विजली के से रंग के लक्ष्मण बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नख से शिख तक सुन्दर हैं, और मन को बहुत भाते हैं। दोनों मुनियों के वस्त्र (बल्कल आदि) पहने हैं। और कमर में तरकस कसे हुए है। कमल के समान हाथों में धनुषवाण शोभित हो रहे हैं।

दो०— जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल ।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल ।।११५।।

भावार्थ— उनके सिरों पर सुन्दर जटाओं के मुकुट हैं । वक्ष-स्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं । और शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखों पर पसीने की बूदों का समूह शोभित हो रहा है ।

बरनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत थोरि मति मोरी ।।
राम लखन सिय सुंदरताई । सब चितवहिं चित मन मति लाई ।।
थके नारि नर प्रेम पिआसे । मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ।।
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं । पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं ।।
बार बार सब लागहि पाएँ । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ ।।
राजकुमारि बिनय हम करहीं । तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं ।।
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानब जानि गवाँरी ।।
राजकुअँर दोउ सहज सलोने । इन्ह तें लही दुति मरकत सोने ।।

भावार्थ— उस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि शोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है । श्री राम, लक्ष्मण और सीता जी की सुन्दरता को सब लोग मन, चित्त और बुद्धि तीनों को लगाकर देख रहे हैं । प्रेम के प्यासे (वे गावों के) स्त्री-पुरुष (इनके सौन्दर्य-माधुरी की छटा देखकर)ऐसे चकित रह गये जैसे दीपक को देखकर हिरनी और हिरन (निस्तब्ध रह जाते हैं) । गाँवों की स्त्रियाँ सीता जी के पास जाती हैं। परन्तु अत्यन्त स्नेह के कारण पूछने से सकुचाती हैं । बार-बार सब उनके पाँव लगती और सहज ही सीधे सादे कोमल वचन कहती हैं —"हे राजकुमारी ! हम विनती करती हैं (कुछ निवेदन करना चाहती हैं)परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं । हे स्वामिनी! हमारी ठिठाई क्षमा कीजियेगा और हमको गंवारी जानकर बुरा न मानियेगा। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से ही सलोने (परम सुन्दर)हैं । मरकतमणि (पन्ने)और स्वर्ण ने कान्ति इन्हीं से पायी है (अर्थात् मरकत मणि में और स्वर्ण मे जो हरित और स्वर्ण वर्ण की आभा है वह इनकी हरिताभ नील और स्वर्णकान्ति के एक कण के बराबर भी नहीं है)।

दो०— स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन ।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरूह नैन ।।११६।।

भावार्थ— श्याम और गौर वर्ण है, सुन्दर किशोर अवस्था है । दोनों ही परम सुन्दरता और शोभा के धाम हैं । शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान इनके मुख और शरद् ऋतु के कमल के समान इनके नेत्र हैं ।

कोटि मनोज लजावनिहारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥
तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी । बोली मधुर बचन पिकबयनी ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी । पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि ॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं । रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं ॥

भावार्थ— हे सुमुखी ! कहो तो अपनी सुन्दरता से करोड़ों कामदोवों को लजाने वाले ये तुम्हारे कौन हैं ?'' उनकी ऐसी प्रेममयी सुन्दर वाणी सुनकर सीता जी सुकुचा गयीं और मन ही मन मुसुकायीं । उत्तम (गौर)वर्णवाली सीता जी उनको देखकर (संकोचवश)पृथ्वी की ओर देखती हैं । वे दोनों ओर के संकोच से सकुचा रही हैं । हिरन के बच्चे के सदृश नेत्र वाली और कोकिल की सी वाणी वाली सीता जी सकुचाकर प्रेम सहित मधुर वचन बोलीं ''ये जो सहज स्वभाव, सुन्दर और गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, ये मेरे छोटे देवर हैं ।'' फिर सीता जी ने लज्जावश अपने चन्द्रमुख को आँचल से ढककर और प्रियतम श्री राम जी की ओर निहार कर भौहें डेढ़ी करके, खंजन पक्षी के से सुन्दर नेत्रों को तिरछा करके इशारे से कहा कि 'ये (श्री रामचन्द्र जी)मेरे पति हैं ' । यह जानकर गाँव की सब युवती स्त्रियाँ आनन्दित हुई , मानों कंगालों ने धन की राशि लूट ली हो ।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई में तुलसीदास जी ने भारतीय नारी की सहज शालीनता प्रदर्शित की है । आज भी कुलीन हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती और न पति को उसके नाम से सम्बोधित करती हैं । संस्कृत वाङ्मय में तो पति के लिए केवल 'आर्यपुत्र' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

जब ग्रामीण स्त्रियों ने सहज स्वभाव से सीता से प्रश्न किया कि ''यह दो सुन्दर पुरुष तुम्हारे कौन हैं ?'' तो सीता जी मारे लज्जा के पृथ्वी की ओर देखने लगी । वह बड़ी द्विविधा में पड़ गई । उनको दोनों ओर से संकोच हैं—यदि उत्तर नहीं देती तो ग्राम की स्त्रियो को दु:ख होगा, और यदि उत्तर देती हैं तो उन्हें लज्जा आती है कि कुल मर्यादा का उल्लंघन होगा । इस दुविधा का अंत में सीता जी ने निदान निकाल ही लिया ।

उन्होंने नि:संकोच बता दिया कि सरल स्वभावी सुन्दर और गोरे शरीर वाले उनके छोटे देवर लक्ष्मण हैं । और फिर लज्जावश आँचल से अपना मुख ढांक लिया । फिर श्री रामचन्द्र जी की ओर निहार कर, भौहें टेढ़ी कर और आँखें तिरछी कर इशारे से संकेत

किया कि 'ये मेरे पति हैं '। केवल संकेत किया, जिह्वा पर राम का नाम नहीं लाईं । इस प्रकार लज्जा और शालीनता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी ।

दो०— अति सप्रेम सिय पायँ परि बहुबिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस।।११७।।

भावार्थ— वे अत्यन्त प्रेम से सीता जी के पैरों पड़कर, बहुत प्रकार से आशीष देती हैं (शुभकामना करती हैं) कि ''जब तक शेषनाग के सिर पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सुहागिन बनी रहो ।

पारबती सम पतिप्रिय होहू । देबि न हम पर छाड़ब छोहू ।।
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ।।
दरसनु देब जानि निज दासी । लखीं सीयं सब प्रेम पिआसी ।।
मधुर बचन कहि कहि परितोषीं । जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं ।।
तबहिं लखन रघुबर रुख जानी । पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ।।
सुनत नारि नर भए दुखारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ।।
मिटा मोदु मन भए मलीने । बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ।।
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ।।

भावार्थ— और पार्वती जी के समान अपनी पति की प्यारी हो । हे देवी ! हम पर कृपा न छोड़ना (बनाये रखना)। हम बार बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें । और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें ।'' सीता जी ने उन सब को प्रेमकी प्यासी देखा, और मधुर वचन कहकर उनका भलीभाँति सन्तोष किया । मानों चाँदनी ने कुमुदनियों को खिलाकर पुष्ट कर दिया हो । उसी समय श्री रामचन्द्र जी का रुख जानकर लक्ष्मण जी ने कोमल वाणी से लोगों से रास्ता पूछा । यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुःखी हो गये। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में (वियोग की सम्भावना से प्रेम का) जल भर गया। उनका आनन्द मिट गया और मन ऐसे उदास हो गये मानों विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो । कर्म की गति समझ कर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया ।

दो०— लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ ।।११८।।

भावार्थ— तब लक्ष्मण जी और जानकी जी सहित श्री रघुनाथ जी ने गमन किया और सब लोगों को प्रिय वचन कहकर लौटाया, किन्तु उनके मनों को साथ ही लगा लिया ।

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥
निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥
जौं पै इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥
ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥
तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवलधाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥

भावार्थ– लौटते हुए वह स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन ही मन दैव को दोष देते हैं। परस्पर (बड़े ही)विषाद के साथ कहते हैं कि विधाता के सभी काम उलटे हैं। यह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतंत्र), निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमा को रोगी (घटने-बढ़ने वाला) और कलंकी बनाया, कल्पवृक्ष का केवल पेड़ और समुद्र को खारा बनाया। जिस विधाता ने इन राजकुमारों को वन में भेजा है, उस ने अनेकों वाहन (सवारियाँ)व्यर्थ ही रचे। जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीन पर पड़े रहते हैं, तब विधाता सुन्दर सेज (पलंग और बिछौने)किसलिये बनाता है ? विधाता ने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों (के नीचे) का निवास दिया, तब उज्जवल महलों को बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया।

दो०– जौं ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥११९॥

भावार्थ– जो ये सुन्दर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियों के वस्त्र (वल्कल) पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता)ने भाँति भाँति के गहने और कपड़े वृथा ही बनाये।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥
जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥
इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

भावार्थ– जो ये कन्द मूल फल खाते हैं तो जगत में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं–"ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं (इनका सौन्दर्य और माधुर्य स्वाभाविक है)। ये अपने आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा के बनाये नहीं हैं। हमारे कानों,नेत्रों और मन के द्वारा अनुभव में आने वाली विधाता की करनी को जहाँ तक वेदों ने वर्णन करके कहा है, वहाँ तक चौदहों लोकों में ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्री कहाँ हैं? (कहीं भी नहीं हैं इसी से सिद्ध है कि ये विधाता के चौदहों लोकों से अलग हैं और अपनी महिमा से ही आप निर्मित हुए हैं)। इन्हें देखकर विधाता का मन अनुरक्त (मुग्ध)हो गया, तब वह भी इन्ही की उपमा के योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकल में ही नहीं आये (पूरे नहीं उतरे)। इसी ईर्ष्या के मारे उसने इनको जंगल में लाकर छिपा दिया है।"कोई एक कहते हैं, "हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपने को परम धन्य अवश्य मानते हैं (जो इनके दर्शन कर रहे हैं)और हमारी समझ में वे भी बड़े पुण्यवान हैं जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं, और जो देखेंगे।"

दो०– एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर ।।१२०।।

भावार्थ– इस प्रकार प्रियवचन कहकर सब नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का)जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले दुर्गम (कठिन)मार्ग में कैसे चलेंगे।

नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं ।।
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी ।।
परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ।।
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ।।
जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं ।।
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ।।
सुनि सुरूपु बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई ।।
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई ।।

भावार्थ– स्त्रियां स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानों सन्ध्या के समय चकवी (भावी वियोग की पीड़ा से) छटपटा उठती है। इनके चरण कमलों को कोमल तथा मार्ग को कठिन जानकर वे व्यथित हृदय से उत्तम वाणी कहती हैं। "इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों)को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं। जगदीश्वर ने यदि इन्हे वनवास दिया, तो सारे रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया। यदि ब्रह्मा से माँगे मिले तो हे सखि ! हम तो उनसे माँगकर इन्हें अपनी आँखों में ही रक्खें।" जो स्त्री-पुरुष इस अवसर पर नहीं आये और श्री सीताराम जी को नहीं देख सके , वे उनके

सौन्दर्य का वर्णन सुनकर, व्याकुल होकर, पूछते हैं कि ''भाई ! अब तक वे कहाँ गये होंगे?'' और जो समर्थ हैं, वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्म का फल पाकर, विशेष आनन्दित होकर लौटते हैं ।

दो०— अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं ।
होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं ।।१२१।।

भावार्थ— (गर्भवती, प्रसूता आदि) अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े (दर्शन न पाने से)हाथ मलते और पछताते हैं । इस प्रकार जहाँ- जहाँ श्री रामचन्द्र जी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम के वश में हो जाते हैं ।

गाँव गाँव अस होइ अनंदू । देखि भानुकुल कैरव चंदू ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं । ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं ॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू । दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू ॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई । बातें सरल सनेह सुहाई ॥
ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए ।धन्य सो नगरु जहां तें आए ॥
धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाउँ ॥
सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही । ए जेहि के सब भाँति सनेही ॥
राम लखन पथि कथा सुहाई । रही सकल मग कानन छाई ॥

भावार्थ— सूर्यकुल रूपी कुमुदिनी के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा स्वरूप श्री रामचन्द्र जी के दर्शन पाकर गाँव-गाँव में ऐसा ही आनन्द हो रहा है । जो लोग (वनवास दिये जाने का) कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी (दशरथ-कैकेयी) को दोष लगाते हैं । कोई एक कहते हैं कि 'राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रों का लाभ दिया ।' स्त्री-पुरुष सभी आपस में सीधी स्नेह भरी सुन्दर बाते कह रहे हैं । (कहते हैं) ''वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया । वह नगर धन्य है जहाँ से ये आये हैं । वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है, और वह स्थान धन्य है जहाँ-जहाँ ये जाते हैं । ब्रह्मा ने उसी को रचकर सुख पाया है जिसके ये (श्री रामचन्द्र जी)सब प्रकार से स्नेही हैं ।'' पथिक बनकर चलते हुए श्री राम-लक्ष्मण के वन जाने की यह सुन्दर कथा सारे रास्ते और जंगल में छा गई है।

दो०— एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत ।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ।।१२२।।

भावार्थ— रघुकुल रूपी कमल के खिलाने वाले सूर्य श्री रामचन्द्र जी इस प्रकार मार्ग के लोगों को सुख देते हुए, सीता जी और लक्ष्मण जी सहित, वन को देखते हुए चले जा रहे हैं ।

आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥
प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥
राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥

भावार्थ– आगे श्री राम जी हैं, पीछे लक्ष्मण जी सुशोभित हैं। तपस्वियों के बेष बनाये दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं। दोनों के बीच में सीता जी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया। फिर जैसी छबि मेरे मन में बस रही है, उसको कहता हूँ—मानों बसन्त ऋतुओं और कामदेव के बीच में रति (कामदेव की स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदय में खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानों बुध (चन्द्रमा के पुत्र)और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी (चन्द्रमा की स्त्री) सोह रही है। प्रभु श्री रामचन्द्र जी के (जमीन पर अंकित होने वाले दोनों)चरण चिन्हों के बीच-बीच में पैर रखती हुई सीता जी (कहीं श्री रामचन्द्र जी के चरण चिन्हों पर पैर न टिक जाय इस बात से)डरती हुई मार्ग में चल रही हैं, और लक्ष्मण जी (मर्यादा की रक्षा के लिए)सीता जी और श्री रामचन्द्र जी दोनों के चरण चिन्हों को बचाते हुए, उन्हें दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं। श्री रामजी, लक्ष्मण जी और सीता जी की सुन्दर प्रीति वाणी का विषय नहीं है (अर्थात् अनिर्वचनीय हैं)। अतः वह कैसे कही जा सकती है ? पक्षी और पशु भी उस छवि को देखकर (प्रेमानन्द में)मग्न हो जाते हैं। पथिक के रूप में श्री रामचन्द्र जी ने उनके भी चित चुरा लिये हैं।

दो०— जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥१२३॥

भावार्थ– प्यारे पथिक सीता जी सहित दोनों भाइयों को जिन-जिन लोगों ने देखा, उन्होंने भव का अगम मार्ग (जन्म- मृत्यु रूपी संसार में भटकने का मार्ग) बिना ही परिश्रम आनन्द के साथ तै कर लिया (अर्थात्, वे आवागमन के चक्र से सहज ही छूटकर मुक्त हो गये)।

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥
तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥

तहँ बसि कंद मूल फल खाई । प्रात नहाइ चले रघुराई ॥
देखत बन सर सैल सुहाए । बाल्मीकि आश्रम प्रभु आए ॥
राम दीख मुनि बासु सुहावन । सुंदर गिरि काननु जलु पावन ॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले । गुंजत मंजु मधुप रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं । बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ॥

भावार्थ– आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसे, तो वह भी श्री रामचन्द्र जी के परमधाम के उस मार्ग को पा जायेगा जिस मार्ग को कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं। तब श्री रामचन्द्र जी, सीता जी को थकी हुई जानकर, और समीप ही एक बट का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर, उस दिन वहीं ठहर गये। कन्द, मूल, फल खाकर (रात भर वहाँ रहकर) प्रातःकाल स्नान करके श्री रघुनाथ जी आगे चले। सुन्दर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए श्री राम चन्द्र जी बाल्मीकि जी के आश्रम में आये। श्री रामचन्द्र जी ने देखा कि मुनि का निवास-स्थान बहुत सुन्दर है, जहां सुन्दर पर्वत, वन और पवित्र जल है। सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द-रस में मस्त हुए भौंरे, सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। बहुत से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैर से रहित होकर प्रसन्न मन से विचर रहे हैं।

दो०– सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन ।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन ॥१२४॥

भावार्थ– पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर, कमलनयन श्री रामचन्द्र जी हर्षित हुए। रघुश्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी का आगमन सुनकर मुनि बाल्मीकि जी उन्हें लेने के लिये आगे आये।

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा । आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने । करि सनमानु आश्रमहिं आने ॥
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए । कंद मूल फल मधुर मगाए ॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए । तब मुनि आश्रम दिए सुहाए ॥
बाल्मीकि मन आनँदु भारी । मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥
तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा । बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा ॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी । जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी ने मुनि को दण्डवत् किया। विप्रश्रेष्ठ मुनि ने आशीर्वाद दिया। श्री रामचन्द्र जी की छबि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गये। सम्मानपूर्वक मुनि

उन्हें आश्रम में ले आये। श्रेष्ठ मुनि बाल्मीकि जी ने प्राणप्रिय अतिथियों को पाकर उनके लिये मधुर कन्द, मूल और फल मँगवाये। श्री सीता जी, लक्ष्मण जी और रामचन्द्र जी ने फलों को खाया। तब मुनि ने उनको (विश्राम करने के लिये) सुन्दर स्थान बतला दिये। (मुनि श्री रामचन्द्र जी के पास बैठे हैं और उनकी) मंगल मूर्ति को नेत्रों से देखकर बाल्मीकि जी के मन में बड़ा भारी आनन्द हो रहा है। तब रघुनाथ जी कमल सदृश्य हाथ जोड़ कर, कानों को सुख देने वाले मधुर वचन बोले –'हे मुनिनाथ ! आप त्रिकालदर्शी हैं। सम्पूर्ण विश्व आपके लिये हथेली पर रक्खें हुए बेरे के समान है।' प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने ऐसा कहकर फिर जिस जिस प्रकार रानी कैकेयी ने बनवास दिया, वह सब कथा विस्तार से सुनायी।

दो०– तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ॥१२५॥

भावार्थ– (और कहा) ''हे प्रभो ! पिता जी की आज्ञा का पालन माता का हित और भरत जैसे स्नेही और धर्मात्मा भाई का राजा होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव है।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥
मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥
अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥
कस न कहहु अस रघुकुल केतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥

भावार्थ– हे मुनिराज ! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गये (हमें सारे पुण्यों का फल मिल गया)। अब जहां आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग को प्राप्त न हो – क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्कर्मों से ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ हैं, और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है – ऐसा हृदय में समझकर वह स्थान बतलाइये जहाँ मैं, लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ। और वहाँ सुन्दर पत्तों और घास की कुटी बनाकर, हे दयालु ! कुछ समय निवास करूँ।'' श्री राम जी की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि बाल्मीकि बोले ''धन्य ! धन्य ! हे रघुकुल के ध्वजा स्वरूप! आप ऐसा क्यों न कहेंगे ? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं।

छं०– श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी ।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ।।

दो०– राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ।।१२६।।

भावार्थ– हे राम ! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर है और जानकी जी (आपकी स्वरूप भूता) माया हैं, जो कृपा के भण्डार आपका रूख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तक वाले सर्पो के स्वामी और पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करने वाले हैं, वही चराचर के स्वामी शेष जी लक्ष्मण हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं। हें राम ! आप का स्वरूप वाणी से अगोचर, बुद्धि से परे, अज्ञात, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर उसका 'नेति नेति' कहकर वर्णन करते हैं।

टिप्पणी– ऊपर अयोध्याकाण्ड का पाँचवा छन्द और सोरठा है। इसमें तुलसीदास ने अपना नाम अंकित नहीं किया है। अतएव भावार्थ करने में कोई कठिनाई नहीं है।

राम को विष्णु का अवतार कहा गया है, सीता जी को उनकी शक्ति और लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार माना गया है। राम को अगोचर, अज्ञात और अकथनीय बताया है। और अन्त में मनीषी उनके विषय में 'नेति, नेति' कहते हैं। 'नेति, नेति' की व्याख्या के लिए देखिए पृष्ठ ३३।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई । जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा । जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥

भावार्थ– हे राम ! जगत दृश्य है, आप उसके देखने वाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और संकर को भी नचाने वाले हैं। जब वे भी आप के मर्म को नहीं जानते, तब और कौन जानने

वाला है ? वही आपको जानता है जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन ! हे भक्तों के हृदय के शीतल करने वाले चन्दन ! आप की ही कृपा से भक्त आपको जान पातें हैं। आपकी देह चिदानन्दमय है और जन्ममरणादि सब विकारों से रहित है। इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतो के कार्य के लिये नर शरीर धारण किया है, और प्राकृति (प्रकृति के तत्वों से निर्मित देह वाले, साधारण) राजाओं की तरह से कहते और करते हैं। हे राम ! आपके चरित्रों को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानी जन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है। क्योंकि जैसा स्वांग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिये (इस समय आप मनुष्य रूप में हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है)।

दो०— पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ ।।१२७।।

भावार्थ— आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ, परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहां आप न हों वह स्थान बता दीजिये, तब मैं आपके रहने के लिये स्थान दिखाऊँ। ''

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ।।
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी ।।
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।।
भरहि निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ।।
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ।।

भावार्थ— मुनि बाल्मीकि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी सकुचाकर मन में मुसकराये। बाल्मीकि जी हँस कर फिर अमृत रस में डुबोयी हुई वाणी बोले – ''हे रामजी! सुनिये, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप सीता जी और लक्ष्मण जी समेत निवास करें। जिनके कान समुद्र की भाँति आप की सुन्दर कथा रूपी अनेकों सुन्दर नदियों से निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुन्दर घर हैं। और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रक्खा है, जो आपके दर्शन रूपी मेघों के लिये सदा लालायित रहते हैं तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों को तुच्छ समझते हैं और आपके सौन्दर्य की झलकी की एक बूँद पाकर ही मगन हो उठते हैं। (अर्थात्, आपके दिव्य सच्चिदानन्द मय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा-सी भी झाँकी के सामने

स्थूल, तरल और सूक्ष्म तीनों जगत के सौन्दर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथ ! उन लोगों के हृदयरूपी सुखदायी भवनों में आप, भाई लक्ष्मण जी और सीता जी सहित निवास कीजिये ।

दो०– जसु तुम्हार मानस बिमल हँसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ।।१२८।।

भावार्थ– आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवर में जिनकी जीभ हंसिनी बनी हुई, आपके गुणसमूह रूपी मोतियों को चुनती रहती है, आप उनके हृदय में बसिये ।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा । सादर जासु लहइ नित नासा ।।
तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ।।
कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ।।
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी । सकल भायँ सेवहिं सनमानी ।।

भावार्थ– जिनकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगन्धित, सुन्दर प्रसाद (तुलसी, पुष्प आदि)को नित्य आदर के साथ ग्रहण करतीं (सूँघती)हैं; और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और जो आपको अर्पित करके वस्त्राभूषण प्रसाद-रूप धारण करते हैं ; जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं, जिनके हाथ, नित्य श्री रामचन्द्र जी (आप)के चरणों की पूजा करते हैं ; और जिनके हृदय में श्री रामचन्द्र जी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं तथा जिनके चरण श्री रामचन्द्र जी (आप) के तीर्थों में चलकर आते हैं, हे रामजी ! आप उनके मन में निवास कीजीये । जो नित्य आपके रामनाम मन्त्र को जपते हैं और परिवार सहित आप की पूजा करते हैं ; जो अनेकों प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं, तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं, तथा जो गुरू को हृदय में आपसे भी अधिक बड़ा जानकर सर्वभाव सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं ;

दो०– सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ।।१२९।।

भावार्थ– और वे सब कर्म करके, सब का एक मात्र यही फल माँगते हैं कि श्री रामचन्द्र जी के चरणों में हमारी प्रीति हो, उन लोगों के मनरूपी मन्दिरों में सीता जी और रघुकुल को आनन्दित करने वाले आप दोनों बसिये ।

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

भावार्थ– जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह है, न लोभ है, न राग है, न द्वेष है, और न कपट, दम्भ और माया ही है–हे रघुराज ! आप उनके हृदय में निवास कीजिये। जो सब के प्रिय और सब का हित करने वाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई)और गाली (निन्दा) समान है, जो विचार कर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं, तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं और आपको छोड़ कर जिनके दूसरी कोई गति नहीं है, हे रामजी ! आप उनके मन में बसिये। जो परायी स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है ; जो दूसरों की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुखी होते हैं, और हे रामजी ! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आप के रहने योग्य शुभ भवन हैं।

दो०– स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥१३०॥

भावार्थ– हे तात ! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन रूपी मन्दिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिये।

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥

भावार्थ– जो अवगुणों को छोड़कर सब के गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौ के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका घर है। जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है, और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिये। जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यार, परिवार और सुख देने वाला घर सब को छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किये रहता है, हे रघुनाथ जी ! आप उसके हृदय में रहिये। स्वर्ग-नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ तहाँ सब जगह केवल धनुष-वाण धारण किये आपको ही देखता है, और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी ! आप उसके हृदय में डेरा कीजिये।

दो०– जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ।।१३१।।

भावार्थ– जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिये, और जिसका आप से स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरन्तर निवास कीजिये, वह आपका अपना घर है।"

टिप्पणी– त्रिवेणी में स्नान करने के बाद जब प्रयाग-राज से श्री राम चन्द्र जी प्रस्थान करने के लिये तैयार हो गये, तो भरद्वाज ऋषि के पास मार्ग-दर्शन के लिए गये। भरद्वाज ने अपने चार विश्वसनीय शिष्य उनके साथ कर दिये। और साथ में यह भी कहा कि 'आप के लिए सभी मार्ग सुगम हैं।' (देखिए पृष्ठ ४९६)

इसी प्रकार जब यमुना पार करके, श्री राम दक्षिण पहुँचे, तो वाल्मीकि ऋषि से पूछा कि बनवास करने के लिए उनकी अनुमति में कौन सा स्थान उपयुक्त होगा। उन्होंने चित्रकूट को उपयुक्त बताया, जहाँ अनसूया अपने सतीत्व के बल पर मन्दाकिनी नदी को ले आई थी। परन्तु चित्रकूट की ओर संकेत करने के पूर्व, वाल्मीकि जी ने कहा कि भगवान की तो सार्वभौम सत्ता है, वह हर स्थान में विद्यमान है। उर्दू कवि के शब्दों में;

वाइज़ ! शराब पीने दे मस्जिद में बैठ कर।
या वह जगह बता दे, जहाँ खुदा न हो ।।

जब भगवान सर्व विद्यमान है, और राम उसके अवतार हैं, तो उनके ठहरने के लिये सभी स्थान हैं।

अप्रस्तुत विधान द्वारा, बाल्मीकि दोहा १२७ से १३१ तक और बीच की चौपाइयों में भगवान से विनय करते हैं कि वह अपने भक्तों के हृदय में वास करें,

१- जिनके कान समुद्र के समान हैं। वह समुद्र अनेक रामकथा* रूपी नदियों से भरता रहता है, परन्तु कभी पूरा नहीं होता,

२- जिनके नेत्र चातक के समान हैं और जो आपके दर्शन-रूपी मेघ के लिये सदा लालायित रहते हैं,

३- जो बड़ी-बड़ी झीलों, नदियों और समुद्रों का तिरस्कार करके आपके सौन्दर्य-रूपी मेघ की एक बूंद से सुखी हो जाते हैं,

४- जिनकी जिह्वा हंसिनी बनकर आपके यश-रूपी निर्मल मानसरोवर में से आपके गुणसमूह-रूपी मोतियों को चुगती रहती है,

५- जिनकी नासिका आपके पवित्र और सुगन्धित प्रसाद (तुलसी, पुष्प आदि)को नित्य सूंघती रहती है,

६- जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और जो आपका ही प्रसाद समझकर वस्त्र और भूषण धारण करते हैं,

७- जिनके हाथ नित्य आपकी पूजा करते हैं,

८- जिनके मस्तक देवता, गुरू और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता से झुक जाते हैं,

९- जिनको आपके अतिरिक्त किसी और का भरोसा नहीं है,

१०- जिनके चरण पुण्य तीर्थों में चलकर आते हैं,

११- जो नित्य राम-नाम मन्त्र जपते हैं,

१२- जो परिवार सहित आपकी पूजा करते हैं,

१३- जो अनेकों प्रकार से हवन और तर्पण करते हैं,

१४- जो ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं,

१५- जो गुरू को आप से भी अधिक बड़ा जानकर सर्वभाव से सम्मान और सेवा करते हैं,

१६- जो सब कर्म करके उनका एकमात्र यही फल माँगते हैं कि उनकी आपके श्री चरणों में प्रीति हो,

---

* देखिए 'हरिअनन्त, हरिकथा अनन्ता'—बालकाण्ड, पृष्ठ १८२-८५।

१७- जिनके काम, क्रोध, मद, अभिमान, मोह, लोभ, राग, द्वेष, कपट, दम्भ और माया नहीं है ,

१८- जो सबके प्रिय और सबका हित करने वाले हैं,

१९- जिनके लिए सुख-दुःख, प्रशंसा और निन्दा समान हैं,

२०- जो विचार कर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं,

२१- जो जागते-सोते आपकी शरण हैं,

२२- जिनको आपको छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं है,

२३- जो पर-स्त्री को अपनी माता के समान समझते हैं और पराये धन को विष के समान,

२४- जो दूसरों की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरों की विपत्ति देखकर दुःखी होते हैं,

२५- जिन्हें आप प्राणों के समान प्रिय हैं,

२६- जिनके आपही स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरू हैं,

२७- जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं,

२८- जो ब्राह्मण और गौ के लिए संकट सहते हैं,

२९- जिनकी नीति-निपुणता के लिए जगत में मर्यादा है,

३०- जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझते हैं,

३१- जिनको सब प्रकार से आपका ही भरोसा है,

३२- जिनको राम-भक्त प्यारे लगते हैं,

३३- जो जाति-पाति, धन, धर्म , बड़ाई, प्यार, घर और परिवार सबको छोड़कर, केवल आपको ही हृदय में धारण किये रहते हैं,

३४- जिनकी दृष्टि में स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान हैं,

३५- जो हर जगह धनुष-बाण धारण किए हुए आप को ही देखते हैं,

३६- जो मन-वचन-कर्म से आपके दास हैं,

३७- जिनको कभी कुछ भी नहीं चाहिए, और

३८- जिनका आप से स्वाभाविक प्रेम है।

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥

भावार्थ– इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ बाल्मीकि जी ने श्री रामचन्द्र जी को घर दिखाये। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्री रामचन्द्र जी के मन को अच्छे लगे। फिर मुनि ने कहा–"हे सूर्यकुल के स्वामी! सुनिये, अब मैं इस समय के लिये सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवास स्थान बतलाता हूँ)। आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये, वहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा हैं। सुहावना पर्वत है और सुन्दर बन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है। वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने प्रशंसा की है, और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया जी अपने तपोबल से लायीं थीं। वह गंगा जी की धारा है। उसका मन्दाकिनी नाम है। वह सब पाप रूपी बालकों को खा डालने के लिये डाकिनी (डाइन रूपी) है। अत्रि आदि बहुत-से श्रेष्ठ मुनि निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हैं, शरीर को कसते हैं। हे रामजी! चलिये सब के परिश्रम को सफल कीजिये और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी गौरव दीजिये।"

पात्र-परिचय– ऊपर की चौपाई में एक पंक्ति है :

'नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तपबल आनी॥'

अत्रि ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। ये सप्तर्षियों में से एक हैं। कर्दम प्रजापति की कन्या अनुसूया इनकी स्त्री थी। ऋषि प्रतिदिन ब्रह्ममुहुर्त में उठकर चित्रकूट से प्रयागराज गंगास्नान करने जाते थे। इस यात्रा में इनको बड़ा कष्ट होता था और लोटने में बड़ी विलम्ब हो जाती थी। पति के कष्ट-निवारण हेतु अनुसूया ने घोर तप किया। उससे प्रसन्न होकर गंगा ने अपनी एक धारा चित्रकूट भेज दी। इसी धारा का नाम 'मन्दाकिनी' पड़ा।

अनुसूया की गंगा को चित्रकूट लाने की प्रशस्ति तीनों लोकों में फैल गई। ब्रह्मा, विष्णु और महेश अनसूया के सतीत्व की परीक्षा लेने के लिए साधु के वेष में आए और उससे कहा

कि निर्वस्त्र होकर उन्हें भोजन कराए। अनुसूया ने अपने तपोबल से तीनों देवताओं को बालक बना दिया और वस्त्र उतार कर उन्हें भोजन कराने लगी। अपने पतियों को छोटे बालक के रूप में देखकर सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती बहुत उद्विग्न हुई और अनुसूया से प्रार्थना करने लगीं कि उनके पतियों को लौटा दें। अपने असली स्वरूप में आकर तीनों देवता प्रसन्न हुए और अनुसूया से वर माँगने को कहा। अनुसूया ने वर माँगा कि यही तीन देवता उनके पुत्र हों। फलतः, अनुसूया के गर्भ से ब्रह्मा सोमरूप से (चन्द्रमा), विष्णु दत्तात्रेय रूप से और रुद्र (शिव) दुर्वासा रूप से उत्पन्न हुए।

दो०— चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ।।१३२।।

भावार्थ— महामुनि बाल्मीकि जी ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान कर कही। तब सीता जी सहित दोनों भाइयों ने आकर श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी में स्नान किया।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ।।
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ।।
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ।।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ।।
अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा ।।
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना ।।
कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए ।।
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला ।।

भावार्थ— रघुबर श्री रामचन्द्र जी ने कहा 'लक्ष्मण! बड़ा अच्छा घाट है, अब यही कहीं ठहरनें की व्यवस्था करो।' तब लक्ष्मण जी ने पयस्विनी मन्दाकिनी के उत्तर के ऊँचे किनारे को देखा (और कहा कि) इसके चारों ओर धनुष के जैसा नाला फिरा हुआ है। नदी उस धनुष की प्रत्यंचा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं, कलियुग के समस्त पाप उसके अनेकों (हिंसक पशु-रूप) निशाने हैं। चित्रकूट ही मानों अचल शिकारी है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं और जो सामने से मारता है। ऐसा कहकर लक्ष्मण जी ने स्थान दिखलाया। स्थान को देखकर रघुबर श्री रामचन्द्र जी ने सुख पाया। जब देवताओं ने जाना कि श्री रामचन्द्र जी का मन यहाँ रम गया, तब वे देवताओं के मकान बनाने वाले प्रधान शिल्पी विश्वकर्मा को साथ लेकर चले। सब देवता कोल-भील के वेष में आये और उन्होंने दिव्य पत्तों और घासों के सुन्दर घर बना दिये। दो ऐसी सुन्दर कुटियां बनायीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुन्दर छोटी सी थी और दूसरी बड़ी थी।

दो०— लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत ।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत ।।१३३।।

भावार्थ— लक्ष्मण जी और जानकी जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी सुन्दर घास-पत्तों घर में शोभायमान हैं । मानों कामदेव मुनि का वेष धारण करके पत्नी रति और वसन्त ऋतु के साथ सुशोभित हों ।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला । चित्रकूट आए तेहि काला ॥
राम प्रनामु कीन्ह सब काहू । मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥
बरषि सुमन कह देव समाजू । नाथ सनाथ भए हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए । हरषित निज निज सदन सिधाए ॥
चित्रकूट रघुनंदनु छाए । समाचार सुनि सुनि मुनि आए ॥
आवत देखि मुदित मुनिबृंदा । कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा ॥
मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं । सुफल होन हित आसिष देहीं ॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं । साधन सकल सफल करि लेखहिं ॥

भावार्थ— देवता, नाग, किन्नर और दिग्पाल चित्रकूट में आये और श्री राम चन्द्र जी सब को प्रणाम किया । देवता नेत्रों का लाभ पाकर आनन्दित हुए । फूलों की वर्षा करके व-समाज ने कहा 'हे नाथ ! आज (आपका दर्शन पाकर)हम सनाथ हो गये।' फिर विनती रके उन्होंने अपने दुःसह दुःख सुनाये और दुःखों के नाश का आश्वासन पाकर हर्षित कर अपने अपने स्थानों को चले गये । श्री रघुनाथ जी चित्रकूट में आ बसे हैं, यह समाचार न-सुन कर बहुत से मुनि आए । रघुकुल के चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी ने मुदित हुई मुनि ण्डली को आते देखकर दण्डवत प्रणाम किया । मुनिगण श्री रामचन्द्र जी को हृदय से लगा ते हैं और सफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं । वे सीता जी, लक्ष्मण जी और श्री रामचन्द्र ी की छवि देखते हैं और अपने सारे साधनों को सफल हुआ समझते हैं ।

दो०— जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद ।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद ।।१३४।।

भावार्थ— प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने यथायोग्य सम्मान करके मुनिमण्डली को विदा ज्या। (श्री रामचन्द्र जी के आ जाने से)वे सब अपने आश्रमों में अब स्वतन्त्रता के साथ ग, जप, यज्ञ और तप करने लगे ।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नव निधि घर आई ॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ॥

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता ॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई । आइ सबन्हि देखे रघुराई ॥
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ॥
राम सनेह मगन सब जाने । कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरि । बचन बिनीत कहहिं कर जोरी ॥

भावार्थ– यह (श्री रामजी के आगमन का) समाचार जब कोलभीलों ने पाया, तो वे ऐसे हर्षित हुए मानों नवोनिधियाँ उनके घर पर ही आ गयी हों। वे दौनो में कन्द, मूल, फल भर-भर कर चले, मानों दरिद्र सोना लूटने चले हों। उनमें से जो दोनों भाइयों को (पहले)देख चुके थे उनसे दूसरे लोग रास्ते में जाते हुए पूछ्ते हैं। इस प्रकार रघुवीर श्री रामचन्द्र जी की सुन्दरता कहते-सुनते सबने आकर श्री रघुनाथ जी के दर्शन किये। भेंट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं। और अत्यन्त अनुराग के साथ प्रभु को देखते हैं। वे मुग्ध हुए जहाँ के तहां मानों चित्र लिखे से खड़े हैं। उनके शरीर पुलकित हैं, और नेत्रों में प्रेमाश्रुओं के जल की बाढ़ आ रही है। श्री राम चन्द्र जी ने उन सब को प्रेम में मग्न जाना, और प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया। वे बार-बार प्रभु श्री रामचन्द्र जी को जोहार करते हुए हाथ जोड़कर विनीत वचन कहते हैं।

दो०– अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय ।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय ।।१३५।।

भावार्थ– "हे नाथ ! प्रभु (आप) के चरणों का दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गये। हे कोसल राज ! हमारे ही भाग्य से आपका यहाँ शुभागमन हुआ है।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥
धन्य बिहग मृग काननचारी । सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥
हम सब धन्य सहित परिवारा । दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी । इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥
हम सब भाँति करब सेवकाई । करि केहरि अहि बाघ बराई ॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥
तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब । सर निरझर जलठाउँ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचब आयसु देता ॥

भावार्थ– हे नाथ ! जहाँ जहाँ आपने चरण रखे हैं, वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं। वे वन में विचरने वाले पक्षी और पशु धन्य हैं। जो आपको देखकर सफल जन्म

हो गये। हम सब भी अपने परिवार सहित धन्य हैं, जिन्होंने नेत्र भरकर आपका दर्शन किया। आपने बड़ी अच्छी जगह विचार कर निवास किया है, यहां सभी ऋतुओं में आप सुखी रहिये। हम लोग सब प्रकार से हाथी, सिंह, सर्प और बाघों से बचाकर आपकी सेवा करेंगे। हे प्रभो! यहां के बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह सब पग पग पर हमारे देखे हुए हैं। हम वहाँ वहाँ उन-उन स्थानों में आपको शिकार खिलावेंगे और तालाब, झरने आदि जलाशयों को दिखावेंगे। हम कुटुम्बि समेत आपके सेवक हैं। हे नाथ ! इसलिये हमें आज्ञा देने में संकोच न कीजियेगा।''

दो०— बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ।।१३६।।

भावार्थ— जो वेदों के वचन और मुनियों के मन को भी अगम हैं, वे करुणा के धाम प्रभु श्री रामचन्द्र जी भीलों के वचन इस तरह सुन रहे हैं जैसे पिता बालकों के वचन सुनता है।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ।।
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे ।।
बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए ।।
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई ।।
जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु ।।
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना ।।
सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए ।।
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी को केवल प्रेम प्यारा है। जो जानने वाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले। तब श्री रामचन्द्र जी प्रेम से परिपुष्ट हुए। (प्रेमपूर्ण) कोमल वचन कहकर उन सब बन में विचरण करने वाले लोगों को संतुष्ट किया, फिर उनको विदा किया। वे सिर नवाकर चले और प्रभु के गुण कहते सुनते घर आये। इस प्रकार देवता और मुनियों को सुख देने वाले दोनों भाई सीताजी समेत वन में निवास करने लगे। जब से श्री रामचन्द्र जी वन में आकर रहे तबसे वन मंगलदायक हो गया। अनेकों प्रकार के वृक्ष फूलते और फलते हैं। और उनपर लिपटी हुई सुन्दर बेलों के मण्डप तने है। वे कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक ही सुन्दर हैं, मानो वे देवताओं के वन (नन्दनवन) को छोड़कर आये हों। भौरों की पंक्तियाँ बहुत ही सुन्दर गुन्जार करती हैं और सुख देने वाली शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चलती रहती है।

लोकोक्ति— ऊपर की चौपाई की पहली पंक्ति में एक लोकोक्ति है—

'रामहि केवल प्रेम पिआरा । जानि लेउ जो जाननि हारा ।।'

अर्थात्, इस बात को सब लोग भली प्रकार जान लें कि राम को केवल 'प्रेम' प्यारा है।

पृष्ठ ३३ में बताया गया है कि परब्रह्म की उपासना पहले उसके निर्गुण रूप में हुई, फिर सगुण रूप में। सूरदास की सगुण भक्ति सखा-भाव की थी और तुलसीदास की दासभाव की। दोनों भाव प्रेम-प्रधान हैं।

इसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबल का अमरीका में जो नया संस्करण छापा है, उसका नाम ही 'ईश्वर प्रेम है' (God is love) रखा गया है। न केवल भगवान से प्रेम करो, अपितु उसकी बनाई हुई सृष्टि के सभी जीव-जन्तुओं से। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'—सारे संसार को अपना ही कुटुम्ब मानो। इसी भाव को जैनियों के सामायिक पाठ के पहले श्लोक में बहुत सुन्दरता से व्यक्त किया गया है:

'सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ-भावं विपरीत वृत्तौ,
सदाममात्मा विदधातु देव ।'

ऊपर के श्लोक का हिन्दी में रुपान्तर 'मेरी भावना' के नाम से किया गया है—

'मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे ।।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे ।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे ।।
गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहां तक उनकी सेवा करके, यह मन सुख पावे ।।'

दो०— **नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर ।**
भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर ।।१३७।।

भावार्थ— नीलकण्ठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि कानों को सुख देने वाली और चित्त को चुराने वाली तरह-तरह की बोलियाँ बोलते हैं।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा । बिगतबैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी । होहिं मुदित मृगबृंद बिसेषी ॥
बिबुध बिपिन जहँ लगि जग माहीं । देखि रामबनु सकल सिहाहीं ॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या । मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥
सब सर सिंधु नदीं नद नाना । मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू । मंदर मेर सकल सुरबासू ॥
सैल हिमाचल आदिक जेते । चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई । श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥

भावार्थ— हाथी, सिंह, बंदर, सुअर और हिरन ये सब वैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं । शिकार के लिये फिरतें हुए श्री रामचन्द्र जी की छवि देखकर पशुओं के समूह विशेष आनन्दित होते हैं । जगत में जहाँ तक (जितने) देवताओं के वन हैं, सब श्री रामचन्द्र जी के वन को देखकर सिहाते हैं । गंगा, सरस्वती, सूर्यकुमारी, यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि धन्य (पुन्यमयी) नदियाँ , सारे तालाब, समुद्र, नदी और अनेकों नद मन्दाकिनी की बड़ाई करते हैं । उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मन्दराचल और सुमेरु आदि सब, जो देवताओं के रहने के स्थान हैं और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूट का यश गाते हैं । विन्ध्याचल बड़ा आनन्दित है, उसके मन में सुख समाता ही नहीं है, क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पा ली है ।

दो०— चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति ।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ।।१३८।।

भावार्थ— चित्रकूट के पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण-अंकुरादि की सभी जातियाँ पुण्य की राशि हैं और धन्य हैं, देवता दिन रात ऐसा कहते हैं ।

टिप्पणी— दोहा १३७-३८ और उनके ऊपर की चैपाईयों में जो चित्रकूट पर्वत और मन्दाकिनी नदी की शोभा और सुषमा का वर्णन किया गया है, उससे कहीं अधिक सुन्दर वर्णन तुलसीदास ने अपनी गीतावली में किया है:

'फटिक-सिला मृदु विसाल, संकुल सुरतरू तमाल,
ललित लता-जाल हरति छबि वितानकी ।
मंदाकिनी-तटनि-तीर, मंजुल-मृग-विहग-भीर,
धीर मुनि गिरा गम्भीर सामगान की ।।
मधुकर पिक बरहि मुखर, सुन्दर गिरी निरझर झर,
जल-कन, छन छाँह, छन प्रभा न भान की ।

सब ऋतु ऋतुपति-प्रभाउ, संतत बहै विविध बाऊ,
जनु बिहार-वाटिका नृप पंच-बान की ।।'

नयनवंत रघुबरहि बिलोकी । पाइ जनम फल होहिं बिसोकी ।।
परसि चरन रज अचर सुखारी । भए परम पद के अधिकारी ।।
सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन । मंगलमय अति पावन पावन ।।
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू । सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ।।
पय पयोधि तजि अवध बिहाई । जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ।।
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन । जौं सत सहस होहिं सहसानन ।।
सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं । डाबर कमठ की मंदर लेहीं ।।
सेवहिं लखनु करम मन बानी । जाइ न सीलु सनेहु बखानी ।।

भावार्थ– आखों वाले जीव रघुबर श्री रामचन्द्र जी को देखकर जन्म का फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं, और अचर (पर्वत, वृक्ष, भूमि, नदी आदि)भगवान की चरण रज का स्पर्श पाकर सुखी होते हैं । यों सभी परमपद (मोक्ष) के अधिकारी हो गये । वह वन और पर्वत स्वाभाविक ही सुन्दर, मंगलमय और अत्यन्त पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाय, जहाँ सुख के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने निवास किया है । क्षीरसागर को त्यागकर और अयोध्या को छोड़कर जहाँ सीता जी, लक्ष्मणजी और रामचन्द्र जी आकर रहे, उस वन की जैसी परम शोभा है, उसको हजार मुखवाले जो लाख शेष जी हों तो वे भी नहीं कह सकते । उसे भला मैं किस प्रकार से वर्णन करके कह सकता हूँ । कहीं पोखरे का (क्षुद्र)कछुआ भी मन्दराचल उठा सकता है । लक्ष्मण जी मन, वचन और कर्म से श्री रामचन्द्र जी की सेवा करते हैं । उनके शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

दो०– छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु ।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु ।।१३९।।

भावार्थ– क्षण-क्षण पर श्री सीताराम जी के चरणों को देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मण जी स्वप्न में भी भाइयों, माता-पिता और घर की याद नहीं करते ।

राम संग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ।।
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी ।।
नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । हरषित रहसि दिवस जिमि कोकी ।।

सिय मनु राम चरन अनुरागा । अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर । असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥
नाथ साथ साँथरी सुहाई । मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू । तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के साथ सीता जी अयोध्यापुरी, कुटुम्ब के लोग और घर की याद भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं । क्षण-क्षण पर पति श्री रामचन्द्र जी के चन्द्रमुख को देखकर वे वैसे से ही परम प्रसन्न रहती हैं जैसे चकोर कुमारी (चकोरी) चन्द्रमा को देखकर । स्वामी का प्रेम अपने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीता जी ऐसी हर्षित रहती है जैसे दिन में चकवी । सीता जी का मन श्री रामचन्द्र जी के चरणों में अनुरक्त है, उससे उनको वन हजारों अवध के समान प्रिय लगता है । प्रियतम (श्री रामचन्द्र जी) के साथ पर्णकुटी प्यारी लगती है । मृग और पक्षी प्यारे कुटुम्बियों के समान लगते हैं । मुनियों की स्त्रियां सास के समान, श्रेष्ठ मुनि ससुर के समान और कन्द-मूल-फलों का आहार उनको अमृत के समान लगता है । स्वामी के साथ सुन्दर साथरी (कुश और पत्तों की सेज)सैकड़ों कामदेव की सेजों के समान सुख देने वाली है। जिनके कृपापूर्वक देखने मात्र से जीव लोकपाल हो जाते हैं, उनको कहीं भोग-विलास मोहित कर सकते हैं ।

दो० – सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु ।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु ।।१४०।।

भावार्थ– जिन श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करने से ही भक्त जन तमाम भोग-विलास को तिनके के समान त्याग देते हैं, उन श्री रामचन्द्र जी की पत्नी और जगत की माता सीता जी के लिये यह भोग-विलास का त्याग कुछ भी आश्चर्य नहीं हैं ।

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं । सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी ॥
जब जब रामु अवध सुधि करहीं । तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत सनेहु सीलु सेवकाई ॥
कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी । धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं । जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं ॥
प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु । धीर कृपालु भगत उर चंदनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता । सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता ॥

भावार्थ— सीता जी और लक्ष्मण जी को जिस प्रकार सुख मिले, श्री रघुनाथ जी वही करते और कहते हैं। श्री रामचन्द्र जी प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ कहते हैं और लक्ष्मण जी तथा सीता जी अति सुख मानकर सुनते हैं। जब जब श्री रामचन्द्र जी अयोध्या की याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में जल भर आता है। माता-पिता, कुटुम्बियों और भाइयों तथा भरत के प्रेम, शील और सेवा भाव को याद करके, कृपा के समुद्र प्रभु श्री रामचन्द्र जी दुखी हो जाते हैं, किन्तु फिर कुसमय समझकर धीरज धारण कर लेते हैं। श्री रामचन्द्र जी को दुखी देखकर सीता जी और लक्ष्मण जी भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे किसी मनुष्य की परछाई उस मनुष्य के समान ही चेष्टा करती है। तब धीरज कृपालु और भक्तों के हृदयों को शीतल करने के लिये चन्दनरूप, रघुकुल को आनन्दित करने वाले, श्री रामचन्द्र जी प्यारी पत्नी और भाई-लक्ष्मण की दशा देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगते हैं, जिन्हें सुनकर लक्ष्मण जी और सीता जी सुख प्राप्त करते हैं।

दो०— रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ।।१४१।।

भावार्थ— लक्ष्मण जी और सीता सहित श्री रामचन्द्र जी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हैं, जैसे अमरावती में इन्द्र अपनी स्त्री शची और पुत्र जयंत सहित बसते हैं।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें ।।
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं ।।
एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी ।।
कहेउँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ।।
फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई ।।
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू ।।
राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी ।।
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं ।।

भावार्थ— प्रभु श्री रामचन्द्र जी सीता जी और लक्ष्मण जी की कैसी संभाल रखते हैं, जैसे पलकें नेत्रों के गोलकों की। इधर लक्ष्मण जी श्री सीता जी की और रघुवीर श्री रामचन्द्र जी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीर की करता है। पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियों के हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वन में निवास कर रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं—मैंने श्री रामचन्द्र जी का सुन्दर वनगमन कहा। अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्या में आये वह (कथा)सुनो। प्रभु श्री रामचन्द्र जी को पहुंचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथ को मन्त्री (सुमन्त्र)सहित देखा। मन्त्री (सुमन्त्र)को व्याकुल देखकर

निषाद को जैसा दु:ख हुआ वह कहा नहीं जाता। (निषाद को अकेले आया देखकर) सुमन्त्र 'हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण' ! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़े। रथ के घोड़े दक्षिण दिशा की ओर (जिधर श्री रामचन्द्र जी गये थे)देख-देख कर हिनहिनाते हैं। मानों बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हैं।

टिप्पणी– इस चौपाई में दृश्य पटल बदलता है।

रामचन्द्र जी को चित्रकूट छोड़कर, तुलसीदास जी पाठक को पुन: अयोध्या ले जाते हैं।

बीच में सुमन्त्र के सन्ताप का वर्णन है। यह संताप इस चौपाई से लेकर छंद और सोरठा १५१ के ऊपर की चौपाई तक फैला हुआ है।

दो०– नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि ।।१४२।।

भावार्थ– वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखों से जल बहा रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी के घोड़ों को इस दशा में देखकर सब निषाद व्याकुल हो गये।

धरि धीरजु तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू ॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता ॥
बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी ॥
चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोग बिकल दुख तीछें ॥
जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥

भावार्थ– तब धीरज धर निषाद राज कहने लगा "हे सुमन्त्र जी ! अब विषाद को छोड़िये। आप पण्डित और परमार्थ के जानने वाले हैं। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण कीजिये।" कोमल वाणी से भाँति भाँति की कथाएँ कहकर निषाद ने जबरदस्ती लाकर सुमन्त्र को रथ पर बैठाया। परन्तु शोक के मारे वे इतने शिथिल हो गये कि रथ हाँक नहीं सकते। उनके हृदय में श्री रामचन्द्र जी के विरह की बड़ी तीव्र वेदना है। घोड़ें तड़फड़ाते हैं और ठीक रास्ते पर नहीं चलते। मानो जंगली पशु लाकर रथ में जोत दिये गये हों। वे श्री रामचन्द्र जी के वियोगी घोड़ें कभी ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, कभी घूमकर पीछे की ओर देखने लगते हैं। वे भीषण दु:ख से व्याकुल हैं। जो कोई राम, लक्ष्मण या जानकी का

नाम ले लेता है, घोड़े हिनहिना कर उसकी ओर प्यार से देखने लगते हैं। घोड़ों की विरह दशा कैसे कही जा सकती है ? वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे मणि के विना सांप व्याकुल होता है।

दो०– भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग ।।१४३।।

भावार्थ– मन्त्री और घोड़ों की यह दशा देखकर निषाद राज विषाद के वश हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथी के साथ कर दिये।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई।।
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा।।
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना।।
रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू।।
भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना।।
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका।।
मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई।।
बिरिद बाँधि बर बीरू कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई।।

भावार्थ– निषादराज गुह सारथी सुमन्त्र जी को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवध को चले। (सुमन्त्र और घोड़ों को देख-देख कर)वे भी क्षण-क्षण पर विषाद में डूब जाते हैं। व्याकुल और दुःख से दीन हुए सुमन्त्र जी सोचते हैं कि श्री रघुबीर के बिना जीवन धिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं, अभी श्री रामचन्द्र जी के बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश (क्यों)नहीं ले लिया। ये प्राण अपयश और पाप के भांडे हो गये। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)। हाय ! नीच मन (बड़ा अच्छा)मौका चुक गया। अब भी तो हृदय के दो टुकड़े नहीं हो जाते। सुमन्त्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीट कर पछताते हैं। मानों कोई कंजूस धन का खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चले मानों कोई बड़ा योद्धा वीर का बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहला कर, युद्ध से भाग चला हो।

दो०– बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति ।।१४४।।

भावार्थ– जैसे कोई विवेकशील, वेद का ज्ञाता, साधु सम्मत आचरणों वाला और उत्तम जाति का (कुलीन) ब्राह्मण धोखे से मदिरा पी ले और पीछे पछतावे, उसी प्रकार सुमन्त्र सोच कर रहे (पछता रहे)हैं।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी । पतिदेवता करम मन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू । सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू ॥
लोचन सजल डीठि भइ थोरी । सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी । जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी ॥
बिबरन भयउ न जाइ निहारी । मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी । जमपुर पंथ सोच जिमि पापी ॥
बचनु न आव हृदयँ पछिताई । अवध काह मैं देखब जाई ॥
राम रहित रथ देखिहि जोई । सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई ॥

भावार्थ— जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधु स्वभाववाली और मन, वचन , कर्म से पति को ही देवता मानने वाली पतिव्रता स्त्री को भाग्य वश पति को छोड़कर (पति से अलग) रहना पड़े । उस समय उसके हृदय में जैसे भयानक संताप होता है, वैसे ही मन्त्री के हृदय में हो रहा है । नेत्रों में जल भरा है, दृष्टि मन्द हो गयी है । कानो से सुनायी नहीं पड़ता है, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है । होठ सूख रहे हैं, मुँह में लार बह रही है । किन्तु (ये सब मृत्यु के लक्षण हो जाने पर भी)प्राण नहीं निकलते, क्योंकि हृदय में अवधि रूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात्, चौदह वर्ष बीत जाने पर श्री रामचन्द्र जी फिर मिलेंगे, यही आशा रूकावट डाल रही है)। सुमन्त्र जी के मुख का रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो उन्होने माता-पिता को मार डाला हो । उनके मन में रामवियोग रूपी हानि की महान् ग्लानि (पीड़ा)छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरक को जाता हुआ रास्ते में सोच कर रहा है । मुँह से वचन नहीं निकलते । हृदय में पछताते हैं कि अयोध्या जाकर मैं क्या देखूगा । श्री रामचन्द्र जी से रहित जो भी रथ को देखेगा, वही मुझे देखने में संकोच करेगा (अर्थात्, मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा)।

दो०— धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि ।
उतरु देब मैं सबहि तब हृदयं बज्रु बैठारि ।।१४५।।

भावार्थ— नगर के सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदय पर बज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा ।

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता । कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता ॥
पूछिहि जबहिं लखन महतारी । कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी ॥
राम जननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥
पूँछत उतरु देब मैं तेही । गे बनु राम लखनु बैदेही ॥

जोइ पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा । जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा ॥
पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना । जिवनु जासु रघुनाथ अधीना ॥
देहउँ उतरु कौनु मुहु लाई । आयउँ कुसल कुअँर पहुँचाई ॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू । तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ॥

भावार्थ– जब दीन दुःखी सब माताएँ पूंछेंगी, तब हे विधाता मैं उन्हें क्या कहूंगा ? जब लक्ष्मण जी की माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन सा सुखदायी संदेश कहूँगा । श्री राम जी की माता जब इस प्रकार दौड़ी आयेंगी, जैसे नयी व्याई हुई गौ बछड़े को याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि श्री राम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गये । जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा । हाय ! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है । जब दुःख से दीन महाराज, जिनका जीवन श्री रघुनाथ जी के (दर्शन के) ही अधीन है, वह मुझसे पूछेंगे, तब मैं कौन सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारों को कुशलतापूर्वक पहुँचा आया हूँ । लक्ष्मण, सीता और श्री राम का समाचार सुनते ही महाराज तिनके की तरह शरीर को त्याग देंगे ।

दो०– हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु ।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु ।।१४६।।

भावार्थ– प्रियतम (श्री रामजी) रूपी जल के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूं कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है (जो पापी जीवों को नरक भोगने के लिये मिलता है)।

एहि बिधि करत पंथ पछितावा । तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा । फिरे पायँ परि बिकल बिषादा ॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुर बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा । साँझ समय तब अवसरु पावा ॥
अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें । पैठ भवन रथु राखि दुआरें ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए । भूप द्वार रथु देखन आए ॥
रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे । गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें । निघटत नीर मीनगन जैसें ॥

भावार्थ– सुमन्त्र इस तरह मार्ग में पछतावा कर रहे थे, इतने में ही रथ तुरंत तमसा नदी के तट पर आ पहुँचा । मन्त्री ने विनय करके चारों निषादों को विदा किया । वे विषाद से व्याकुल होते हुए सुमन्त्र के पैरों पड़ कर लौटे । नगर में प्रवेश करते मन्त्री ऐसे सकुचाते

हैं, मानों गुरू, ब्राह्मण या गौ को मार कर आये हों। सारा दिन एक पेड़ के नीचे बैठ कर बिताया। जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला। अंधेरा होने पर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया और रथ को दरवाजे पर खड़ा करके (चुपके से)महल में घुसे। जिन-जिन लोगों ने यह समाचार सुन पाया, वे सभी रथ देखने को राजद्वार पर आये। रथ को पहचानकर और घोड़ों को व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (मरे से जा रहे हैं)जैसे घाम में ओले। नगर के स्त्री पुरुष कैसे व्याकुल हैं, जैसे जल के घटने पर मछलियाँ (व्याकुल होती हैं)।

दो०— सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेत निवासु।।१४७।।

भावार्थ— मन्त्री का अकेले ही आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानों प्रेतों का निवास स्थान (श्मशान)हो।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी।।
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा।।
दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गईं लवाई।।
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा।।
आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना।।
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती।।
लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती।।
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही।।

भावार्थ— अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं। पर सुमन्त्र को कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी वाणी विकल हो गयी (रुक गयी)है। न कानों से सुनायीं पड़ता है और न आँखों से सूझता है। वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं–'कहो, राजा कहां हैं ?' दासियाँ मन्त्री को व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्या जी के महल में लिवा गयीं। सुमन्त्र ने जाकर वहाँ राजा को देखा, मानों बिना अमृत का चन्द्रमा हो। राजा आसन, शय्या और आभूषणों से रहित बिल्कुल मलिन (उदास)पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे लंबी साँसे लेकर इस प्रकार सोच करते हैं मानों राजा ययाति स्वर्ग से गिर कर सोच कर रहे हों। राजा क्षण-क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। ऐसी विकल दशा है मानों (गीधराज जटायू का भाई)सम्पाति पंखों के जले जाने पर गिर पड़ा हो। राजा (बार-बार) 'राम-राम' 'हा सनेही (प्यारे)राम!' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी,' ऐसा कहने लगते हैं।

अन्तर्कथाएँ– ऊपर की चौपाई में तुलसीदास जी कहते हैं कि राम के वियोग में दशरथ ऐसे विकल हो रहे हैं जैसे स्वर्ग से पतित होने पर ययाति या सूर्य की गर्मी से पंख जल जाने पर सम्पति विकल हुए थे। इन दोनों की अन्तर्कथाएँ इस प्रकार हैं :

१. ययाति– चंद्रवंशी राजा नहुष (देखिये, पृष्ठ ४५०)के पुत्र थे। इनकी दो स्त्रियां थीं, देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्य गुरु शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्यपति वृषपर्वा की। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। शर्मिष्ठा के गर्भ से दुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। शुक्राचार्य के शाप से ययाति जराग्रस्त हुए थे। ययाति ने अपनी जरा पुत्रों को देने की इच्छा से सब पुत्रों से सहमति पूछी। शर्मिष्ठागर्भजात पुरु के अतिरिक्त और किसी ने भी जरा लेना स्वीकृत नहीं किया। आज्ञा उल्लंघन करने वाले पुत्रों को ययाति ने शाप दिया और पुरु को अपनी जरा अवस्था देकर वे बोले कि मैं तुम्हारे यौवन से कुछ दिनों तक विषयभोग करता हूँ, पीछे लौटा दूँगा और अपनी जरा ले लूँगा। सहस्त्र वर्ष बीतने पर ययाति ने अपने पुत्र पुरु को बुलाकर कहा-'मैंने हजार वर्ष तक विषय-सुख भोगे, परन्तु मेरी तृप्ति नहीं हुयी। मालुम होता है, अग्नि से घृताहुति के समान विषय-सुख से कभी किसी की तृप्ति नहीं हो सकती , अतएव अब विषय-सुख भोगना व्यर्थ है'-यह कहकर ययाति ने अपने पुत्र को यौवन लौटा दिया और वे स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके कठिन तपस्या करने लगे। उसी तपस्या के फल से ययाति स्वर्ग में गये और वहाँ पर इन्होंने कुछ दिनों तक सुख से वास किया। पुनः ये देवराज इन्द्र के शाप से स्वर्ग-भ्रष्ट हुए। स्वर्गभ्रष्ट होकर अंतरिक्ष पथ से आने के समय उनकी अष्टशिवि आदि अपने दौहित्रों से भेंट हुई। उन लोगों ने अपने-अपने पुण्यफल से ययाति को स्वर्ग में भेज दिया और उन्ही के पुण्यबल से ययाति ने मुक्तिलाभ किया।

२. सम्पाति – अरूण के पुत्र और जटायु के बड़े भाई थे। ये दोनों भाई सूर्य को जीतने की इच्छा से उनपर दौड़े थे। सूर्य के तेज से जटायु के पंख जलने लगे। उस समय सम्पाति ने जटायु को अपने पंखों से छिपा लिया। छोटे भाई की रक्षा करने के कारण सम्पाति स्वयं जलकर विंध्यपर्वत पर गिर गये। मूर्च्छा के नष्ट होने पर वे निशाकर मुनि के उपदेश से उसी पर्वत पर रहने लगे। सीता को ढूंढ़ने के समय वानरों से इनकी भेंट हुई थी। देखिए, किष्किन्धा काण्ड।

दो०– देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु।।१४८।।

भावार्थ– मन्त्री ने देखकर'जयजीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। सुनते ही राजा ब्याकुल होकर उठे और बोले-'सुमन्त्र। कहो राम कहाँ हैं?'

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी । पूँछत राउ नयन भरि बारी ॥
राम कुसल कहु सखा सनेही । कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए । सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥
सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू । कहु सिय राम लखन संदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥
राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना । को पापी बड़ मोहि समाना ॥

भावार्थ– राजा ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। मानों डूबते आदमी को कुछ सहारा मिल गया हो। मन्त्री को स्नेह के साथ पास बैठाकर, नेत्रों में जल भर कर राजा पूछने लगे –'हे मेरे प्रेमी सखा ! श्री राम की कुशल कहो। बताओ, श्री राम, लक्ष्मण और सीता कहाँ है। उन्हें लौटा लाये हो कि वे वन को चले गये।' यह सुनते ही मन्त्री के नेत्रों में जल भर आया। शोक से व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे–'सीता, राम और लक्ष्मण का संदेसा तो कहो।'और श्री रामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव को याद कर करके राजा हृदय में सोच करते हैं। (और कहते हैं)''मैंने राजा होने की बात सुनाकर बनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम)के मन में हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्र के बिछुड़ने पर भी मेरे प्राण नहीं गए, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा।

दो०– सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

भावार्थ– हे सखा ! श्री राम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि अब प्राण चलना ही चाहते है।''

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ । प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ । रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥
सचिव धीर धरि कह मृदु बानी । महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा । साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥
जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं । बरबस राति दिवस की नाईं ॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी । छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥

भावार्थ– राजा बार-बार मन्त्री से पूछते हैं–'मेरे प्रियतम पुत्रों का संदेसा सुनाओ। हे सखा ! तुम तुरन्त वही उपाय करो जिससे श्री राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे आँखों दिखा दो। मन्त्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले–''महाराज आप पंडित और ज्ञानी हैं। हे देव ! आप शूरवीर हैं और धैर्यवान् पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। आपने सदा साधुओं के समाज का सेवन किया है। जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब, हे स्वामी ! काल और कर्म के अधीन; रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं। मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते और दुःख में रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मन में दोनों को समान समझते हैं। हे सबके हितकारी (रक्षक) ! आप विवेक-विचार कर धीरज धरिये और शोक का परित्याग कीजिये।

दो०– प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर ।।१५०।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी का पहला निवास (मुकाम) तमसा के तट पर हुआ, दूसरा गंगा तीर पर। सीता जी सहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे।

केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई ।।
होत प्रात बट छीरु मंगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा ।।
राम सखाँ तब नाव मगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ।।
लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ।।
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा ।।
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू ।।
करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी ।।
बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें ।।

भावार्थ– केवट (निषाद राज) ने बहुत सेवा की। और रात सिंगरौर (श्रृंगवेरपुर) में ही बितायी। दूसरे दिन सवेरा होते ही बड़ का दूध मंगाया और उससे श्री राम-लक्ष्मण ने अपने सिरों पर जटाओं के मुकुट बनाये। तब श्री रामचन्द्र जी के सखा निषादराज ने नाव मँगवायी। पहले प्रिया सीता जी को उस पर चढ़ा कर फिर श्री रघुनाथ जी चढ़े। फिर लक्ष्मण जी ने धनुष बाण सजाकर रक्खे और प्रभु श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर स्वयं चढ़े। मुझे व्याकुल देखकर रघुबीर श्री रामचन्द्र जी धीरज धरकर मधुर वचन बोले–'हे तात ! पिता जी से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से बार-बार उनके चरण-कमल पकड़ना। फिर पाँव पकड़ कर विनती करना कि हे पिताजी ! आप मेरी चिन्ता न कीजिये, आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्य से वन में और मार्ग में हमारा कुशल मंगल होगा।

छं०— तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ।।
जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी ।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी ।।

सो०— गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि ।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति ।।१५१।।

भावार्थ— हे पिता जी ! आपके अनुग्रह से मैं बन जाते हुए सब प्रकार का सुख पाऊँगा। आज्ञा का भली भाँति पालन करके चरणों का दर्शन करने कुशलतापूर्वक फिर लौट आऊँगा।' सब माताओं के पैरों पड़-पड़ उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके, तुलसी दास कहते हैं-'तुम वही प्रयत्न करना जिसमें कोसलपति पिता जी प्रसन्न रहें । बार-बार चरण कमलों को पकड़कर गुरु वशिष्ठ जी से मेरा संदेशा कहना कि वे वही उपदेश दें जिससे अवधपति पिता जी मेरा सोच न करें ।

टिप्पणी— ऊपर अयोध्याकाण्ड का छटा छंद और सोरठा है । इसके ऊपर की चौपाई में सुमन्त्र दशरथ जी को राम का चलते समय अन्तिम संदेश सुनाते हैं । राम ने कहलवा भेजा है कि 'मेरा पिता जी से प्रणाम कहना । बार-बार पैर पकड़कर मेरी ओर से विनती करना कि वह मेरी किसी प्रकार से भी चिन्ता न करें । आप की कृपा, अनुग्रह और पुण्य से, बन में हमारा हर प्रकार से कुशल-मंगल है' । इसी सन्देश को पुनः छंद और सोरठे में दुहराया गया है, 'हे तात ! आपके अनुग्रह से मैं बन में जाकर सब सुख पाऊँगा । आपकी आज्ञा का पालन करके, आपके चरणों का दर्शन करने चौदह वर्ष बाद फिर कुशलतापूर्वक लौटूँगा ।' राम का आधा सन्देश सुमन्त्र के मुख से कहाकर, शेष सन्देश तुलसीदास जी स्वयं सुनाते हैं। राम ने कहलवाया है कि 'माताओं के पैरों पड़कर उनका समाधान करना और उनसे विनती करना कि वह वही प्रयत्न करें जिससे हमारे पिताजी प्रसन्न रहें । गुरु वशिष्ठ के भी पैरों पड़कर यही सन्देश कहियेगा कि वह पिताजी को ऐसा उपदेश दें, जिससे वह हमारे विषय में सोच न करें ।'

पुरजन परिजन सकल निहोरी । तात सुनाएहु बिनती मोरी ।।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी । जातें रह नरनाहु सुखारी ।।
कहब सँदेसु भरत के आएँ । नीति न तजिअ राजपदु पाएँ ।।
पालेहु प्रजहि करम मन बानी । सेएहु मातु सकल सम जानी ।।
ओर निवाहेहु भायप भाई । करि पितु मातु सुजन सेवकाई ।।
तात भाँति तेहि राखब राऊ । सोच मोर जेहिं करै न काऊ ।।

लखन कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देलाई । कहबि न तात लखन लरकाई ॥

भावार्थ– हे तात ! सब पुरवासियों और कुटुम्बियों से निहोरा (अनुरोध)करके मेरी विनती सुनाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें । भरत के आने पर उनको मेरा संदेसा कहना कि राजा का पद पा जाने पर नीति न छोड़ देना । कर्म, वचन और मन से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करना । और हे भाई, अपने को अन्त तक निबाहना । हे तात ! राजा को (पिता जी को)उसी प्रकार से रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी)मेरा सोच न करें ।' लक्ष्मण जी ने कुछ कठोर वचन कहे, किन्तु श्री राम जी ने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोध किया, और बार-बार अपनी सौगन्ध दिलायी और कहा 'हे तात ! लक्ष्मण का लड़कपन वहाँ न कहना ।'

टिप्पणी– दोहा १५० से १५२ तक सुमन्त्र दशरथ जी को राम का रथ पर बैठकर अयोध्या के बाहर जाने से लेकर गंगा पार करने तक का वृत्तान्त सुनाते हैं । ऊपर की अंतिम चौपाई में कहा गया है ।

'लखन कहे कछु वचन कठोरा '

लक्ष्मण के कठोर वचन के विषय में देखिये पृष्ठ ४८१-८२ ।

दो०– कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह ।
थकित वचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह ।।१५२।।

भावार्थ– प्रणाम कर सीता जी भी कुछ कहने लगी थीं परन्तु स्नेह वश वे शिथिल हो गयीं । उनकी वाणी रुक गयी, नेत्रों में जल भर आया और शरीर रोमञ्च से व्याप्त हो गया।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघुकुल तिलकर चले एहि भाँती । देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥
मैं आपन किमि कहौं कलेसू । जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू ॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ । हानि गलानि सोच बस भयऊ ॥
सूत बचन सुनतहिं नरनाहू । परेहु धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत विषम मोह मन मापा । माजा मनहुँ मीन कहुँ व्यापा ॥
करि बिलाप सब रोवहिं रानी । महा बिपति किमि जाइ बखानी ॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा । धीरजहू कर धीरजु भागा ॥

भावार्थ– उसीं समय रघुबर श्री रामचन्द्र जी का रूख पाकर केवट ने पार जाने के लिये नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंश तिलक श्री रामचन्द्र जी चल दिये और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा। मैं अपने क्लेश को कैसे कहूँ, जो श्री रामजी का यह संदेसा लेकर जीता ही लौट आया।''ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गई (वे चुप हो गये)और वे हानि की ग्लानि और सोच के वश हो गये। सारथी (सुमन्त्र)के बचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके हृदय में भयानक दाह हो गया। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोह से व्याकुल हो गया। मानों मछली को माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षा का जल लग गया हो)। सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान विपत्ति का कैसे वर्णन किया जाय ? उस समय के विलाप को सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया।

दो०– भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरू।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरू ।।१५३।।

भावार्थ– राजा के रावले में (रनिवास में)रोने का शोर सुनकर अयोध्या भर मे बड़ा भारी कोहराम मच गया। ऐसा जान पड़ता था मानों पक्षियों के विशाल वन में रात के समय कठोर बज्र गिरा हो।

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ।।
इंद्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी ।।
कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना ।।
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी ।।
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू ।।
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ।।
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ।।
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ।।

भावार्थ– राजा के प्राण कण्ठ में आये। मानों मणि के बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गयीं, मानों बिना जल के तालाब में कमलों का बन मुरझा गया हो। कौशल्या जी ने राजा को बहुत दुःखी देखकर अपने हृदय में जान लिया कि अब सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो चला। तब श्री रामचन्द्र जी की माता कौशल्या हृदय में धीरज धरकर समय के अनुकूल बचन बोलीं–'' हे नाथ ! आप मन में विचार कीजिये कि श्री रामचन्द्र जी का वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज़ है और आप उसके कर्णधार (खेने वाले)हैं। सब प्रियजन, कुटुम्बी और प्रजा ही यात्रियों का समाज है, जो इस जहाज़

पर चढ़ा हुआ है । आप धीरज धरियेगा तो सब पार पहुँच जायेंगे । नहीं तो सारा परिवार डूब जायेगा । हे प्रिय स्वामी ! यदि मेरी विनती हृदय में धारण कीजियेगा, तो श्री राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे ।''

दो०— प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि ।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि ।।१५४।।

भावार्थ— प्रिय पत्नी कौशल्या के कमल वचन सुनते हुए, राजा ने आँखे खोलकर देखा। मानों तड़पती हुई दीन मछली पर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो ।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू । कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू ।।
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ।।
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ।।
तापस अंध साप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई ।।
भयउ बिकल बरनत इतिहासा । राम रहित धिग जीवन आसा ।।
सो तनु राखि करब मैं काहा । जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा ।।
हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते ।।
हा जानकी लखन हा रघुबर । हा पितु हित चित चातक जलधर ।।

भावार्थ— धीरज धर कर राजा उठ बैठे और बोले ''सुमंत्र ! कहो, कृपालु श्री राम कहाँ हैं ? लक्ष्मण कहाँ हैं ? स्नेही राम कहाँ हैं ? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ है ?'' राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकार से विलाप कर रहे हैं । वह रात युग के समान बड़ी हो गयी, बीतती ही नहीं । राजा को अंधे तपस्वी (श्रवण कुमार के पिता) के शाप की याद आ गई। उन्होंने सब कथा कौशल्या को सुनायी । उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गये (और कहने लगे कि) ''श्री राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है । मैं उस शरीर को रखकर क्या करूँगा जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा । हा रघुकुल के आनन्द देने वाले मेरे प्राण प्यारे राम ! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये । जानकी, लक्ष्मण ! हा रघुबर ! हा पिता के चित्तरूपी चातक के हित करने वाले मेघ ।''

अन्तर्कथा— नीचे के दोहा १५५ में कहा गया है कि बार-बार राम का नाम रटते हुए, राम के वियोग में दशरथ जी ने अपने प्राण त्याग दिए । और ऊपर की चौपाई में दशरथ कौशल्या को बताते हैं कि वह श्रापग्रस्त हैं और राम के वियोग में उनका मरना निश्चित है। संदर्भित पंक्ति इस प्रकार है—

'तापस अंध साप सुधि आई । कौसल्यहि सब कथा सुनाई ।।'

अंधे तापस के श्राप की अन्तर्कथा इस प्रकार है–

अयोध्या में सरयूतीर पर रहने वाले वैश्य जाति के एक अंधे मुनि थे। ये शूद्र कन्या ा व्याहकर, उसी के साथ वन में एक कुटी बनाकर रहते थे। एक समय अयोध्या के युवराज शरथ (महाराजा अज के पुत्र)वन में शिकार खेलने गए थे। उसी समय अन्ध मुनि का कमात्र पुत्र श्रवण कुमार जल भर रहा था। दशरथ ने हस्ति के भ्रम से शब्द भेदी बाण के रा उसे मार डाला। पुत्र के वाण-विद्ध होने पर अन्ध मुनि ने अग्नि में जलकर अपने प्राण ाड़ दिए। मृत्यु के पूर्व मुनि ने अपने पुत्र को मारने वाले को शाप दिया कि 'मेरे समान तुम ा भी पुत्रशोक ही से प्राण त्याग करना पड़ेगा।' अन्धमुनि का यह शाप सफल हुआ।

कथा का एक दूसरा रूपान्तर भी है। श्रवण कुमार के माता-पिता अंधे थे। भैंगी के पलड़ों में बिठाकर वह उन्हें तीर्थ-यात्रा करा रहा था। मार्ग में उन्हें प्यास लगी। भैंगी उतार कर, श्रवण नदी से पानी लेने गया। घड़े में पानी भरने की आवाज़ को हाथी का नाद समझकर, दशरथ ने शब्द भेदी बाण छोड़ा।

दो०— राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ।।१५५।।

भावार्थ– राम-राम कह कर, फिर राम कह कर, फिर राम राम कह कर और फिर म कह कर, राजा, रघुबर के विरह में शरीर त्यागकर, सुरलोक को सिधार गये।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा ।।
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा ।।
सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ।।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा ।।
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी ।।
अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू ।।
गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं ।।
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी ।।

भावार्थ– जीने और मरने का फल तो दशरथ जी ने ही पाया, जिनका निर्मल यश कों ब्रह्मांडों में छा गया। जीते जी तो श्री रामचन्द्र जी के मुखचन्द्र को देखा और श्री ा के विरह को निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया। सब रानियाँ शोक के मारे कुल होकर रो रही हैं। वे राजा के रूप, शील, बल और तेज का बखान कर करके अनेकों ार से विलाप कर रही हैं, और बार-बार धरती पर गिर-गिर पड़ती हैं। दास-दासी गण कुल होकर विलाप कर रहे हैं। कहते हैं कि आज धर्म की सीमा, गुण और रूप के भण्डार

सूर्यकूल के सूर्य अस्त हो गये। सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं, जिसने संसार भर को बिना नेत्र का (अंधा) कर दिया। इस प्रकार विलाप करते रात बीत गयी। प्रातः काल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आये।

दो०— तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास ।।१५६।।

भावार्थ— तब वशिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सब का शोक निवारण किया।

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा।।
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू।।
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई।।
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए।।
अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुं तब तें।।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना।।
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना।।
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई।।

भावार्थ— वशिष्ठ जी ने नाव में तेल भरवाकर राजा के शरीर को उसमें रखवा दिया। फिर दूतों को बुलवाकर उनसे ऐसा कहा—"तुम लोग जल्दी दौड़कर भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु का समाचार कहीं किसी से न कहना। जाकर भरत से इतना ही कहना कि दोनों भाइयों को गुरू जी ने बुलवा भेजा है।" मुनि की आज्ञा सुनकर, धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेग से उत्तम घोड़ों को भी लजाते हुए चले। जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारम्भ हुआ, तभी से भरत जी को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे, और जागने पर उन स्वप्नों के कारण करोड़ों (अनेकों) तरह की बुरी-बुरी कल्पना किया करते थे। अनिष्ट शान्ति के लिये वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन करा कर दान देते थे। अनेकों विधियों से रूद्राभिषेक करते थे। महादेव जी को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयों की कुशल-क्षेम मांगते थे।

टिप्पणी— आज कल जब किसी विशिष्ट व्यक्ति का देहावसान हो जाता है, तो उसकी अन्त्येष्टि तुरन्त नहीं की जाती है। सुगन्धित रासायनिक द्रव्य के लेप द्वारा शव को कई दिनों सुरक्षित रखा जाता है। दूर-दूर देशों के नायक आते हैं और दिवंगत को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। फिर कोई शुभ दिन निकाल कर, शव का अन्तिम संस्कार किया जाता है।

ऐसा ज्ञात होता है कि मृतक के शव को रासायनिक द्रव्य द्वारा सुरक्षित रखने का आयुर्विज्ञान त्रेता युग में भी था। इसीलिए ऊपर की चौपाई की प्रथम पंक्ति के प्रथम चरण में कहा गया है,

'तेल नाँव भरि नृप तनु राखा।'

जब राम के वियोग में दशरथ जी ने प्राण त्याग दिये, तब उनका पार्थिव शरीर मुखाग्नि के बिना पँचभूत में विलीन नहीं हो सकता था। और मुखाग्नि केवल ज्येष्ठ पुत्र ही दे सकता था। परन्तु ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र जी को वनवास हो गया था और वह दूर दक्षिण चित्रकूट में विराजमान थे। भरत को दाह क्रिया करने के लिये ननिहाल से बुलाने के सिवाये कुलगुरु वशिष्ठ के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं था। वशिष्ठ जी ने भरत को लाने के लिए तुरन्त कैकेय-देश दूत भेजे और उनको चेतावनी कर दी कि दशरथ जी की मृत्यु का समाचार किसी को न दें। भरत से केवल इतना ही कहें कि गुरु ने तुरन्त दोनों भाइयों को बुलाया है। जब तक दूत कैकेय देश पहुँचे और भरत को अयोध्या वापस लाएँ, तब तक दशरथ जी के शव को रासायनिक द्रव्यों द्वारा सुरक्षित रक्खा गया।

दो०— एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ।।१५७।।

भावार्थ— भरत जी इस प्रकार मन में चिन्ता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरु जी की आज्ञा कानों से सुनते ही वे गणेश जी को मनाकर चल पड़े।

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके।।
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई।।
एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई।।
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।।
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला।।
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा।।
खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए।।
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी।।

भावार्थ— हवा के समान वेग वाले घोड़ों को हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में बड़ा सोच था। मन में ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ। एक एक निमेष वर्ष के समान बीत रहा था। इस प्रकार भरत जी नगर के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठ कर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे हैं। गदहे और सियार प्रतिकूल बोल रहे हैं। यह सुन-सुन कर

भरत के मन में बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब श्रीहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है। श्री राम जी के वियोग रूपी बुरे रोग से सताये हुए पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी (ऐसे दुःखी हो रहे हैं कि) देखे नहीं जाते। मानों सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हैं।

दो०– पुरजंन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहि जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं ।।१५८।।

भावार्थ– नगर के लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं। गौ से (चुपके से) जोहार करके (वन्दना करके) चले जाते हैं। भरत जी भी किसी से कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मन में भय और विषाद छा रहा है।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ।।
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि ।।
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई ।।
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा ।।
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ।।
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें ।।
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई ।।
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ।।

भावार्थ– बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानों नगर में दसों दिशाओं में दावाग्नि लगी है। पुत्र को आते सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के लिए चांदनी-रूपी कैकेयी बड़ी हर्षित हुई। वह आरती सजाकर आनन्द में भरकर उठ दौड़ी आयी और दरवाजे पर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्न को महल में ले आयी। भरत ने सारे परिवार को दुःखी देखा। मानों कमलों के वन को पाला मार गया हो। एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दीखती है मानों भीलनी जंगल में आग लगाकर आनन्द में भर रही हों। पुत्र को सोचवश और मनमारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी 'हमारे नैहर में कुशल तो हैं।' भरत जी ने सब कुशल कह सुनाई। फिर अपने कुल की कुशल-क्षेम पूछी (भरत जी ने कहा)–"कहो, पिता जी कहाँ है? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं? सीता जी और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं?"

दो०– सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन ।।१५९।।

भावार्थ– पुत्र के स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रों में कपट का जल भरकर, पापिनी कैकेयी भरत के कानों में और मन में सूल के समान चुभाने वाले वचन बोली।

तात बात मैं सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥
सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥
सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

भावार्थ– "हे तात! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मन्थरा सहायक हुई। पर विधाता ने बीच में जरा सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोक को पधार गये।" भरत यह सुनते ही विषाद के मारे विवश (बेहाल) हो गये। मानों सिंह की गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे "तात! तात! हा तात!" पुकारते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर ज़मीन पर गिर पड़े। (और विलाप करने लगे कि) "हे तात! मैं आपको स्वर्ग के लिए चलते समय देख भी न सका। हाय! आप मुझे श्री रामचन्द्र जी को सौंप भी नहीं गये!" फिर धीरज धरकर वे सम्हल कर उठे और बोले–'माता! पिता के मरने का कारण तो बताओ।' पुत्र का वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी मानों मर्मस्थान को पाछकर (चाकू से चीर कर)उसमें ज़हर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयी ने अपनी सब करनी शुरु से आखिर तक बड़े प्रसन्न मन से सुना दी।

दो०– भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥१६०॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी का वन जाना सुनकर भरत जी को पिता का मरण भूल गया और हृदय में इस सारे अनर्थ का कारण अपने को ही जानकर वे मौन होकर स्तम्भित रह गये (अर्थात् उनकी बोली बंद हो गयी और वे सन्न रह गये)।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥
तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥
जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥

जौं पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारे मोही ।।
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा । मीन जिअन निति बारि उलीचा ।।

भावार्थ– पुत्र को व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी । मानो जले पर नमक लगा रही हो । (वह बोली)–"हे तात ! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं । उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया । जीवन काल में ही उन्होंने जन्म लेने के सम्पूर्ण फल पा लिये और अन्त में वे इन्द्रलोक को चले गये । ऐसा विचार कर सोच छोड़ दो और समाज सहित नगर का राज्य करो ।" राजकुमार भरत जी यह सुनकर बहुत ही सहम गए । मानों पके घाव पर अंगार छू गया हो । उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लम्बी साँस लेते हुए कहा–"पापिनी! तूने सभी तरह से कुल का नाश कर दिया । हाय यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा)थी, तो तूने जनमते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला ? तूने पेड़ को काट कर पत्तों को सींचा है और मछली के जीने के लिए पानी को उलीचा है ।

दो०– हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ ।
जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ ।।१६१।।

भावार्थ– मुझे सूर्यवंश (सा वंश) दशरथ जी (सरीखे) पिता और राम-लक्ष्मण से भाई मिले, पर हे जननी ! मुझे जन्म देने वाली माता तू हुई । विधाता से कुछ वश नहीं चलता।

जब तैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ । खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ।।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा । गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा ।।
भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही ।।
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ।।
सरल सुसील धरम रत राऊ । सो किमि जानैं तीय सुभाऊ ।।
अस को जीव जंतु जग माहीं । जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं ।।
भे अति अहित रामु तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही ।।
जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ।।

भावार्थ– अरी कुमति ! जब तूने हृदय मे यह बुरा विचार निश्चय ठाना, उसी समय तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े (क्यों)न हो गये ? वरदान माँगते समय तेरे मन में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई ? तेरी जीभ जल नहीं गई ? तेरे मुँह में कीड़े नहीं पड़ गये । राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया ? जान पड़ता है, विधाता ने मरने के समय उनकी बुद्धि हर ली थी । स्त्रियों के हृदय की गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके । वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणों

की खान हैं। फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला स्त्री स्वभाव को ं
जानते। अरे! जगत के जीव जन्तुओं में ऐसा कौन है जिसे श्री रघुनाथ जी प्राणों के सम
प्यारे नहीं हैं। वे श्री रामचन्द्र जी भी तुझे अहित हो गये (बैरी लगे)! तू कौन है? ः
सच-सच कह। तू जो है, सो है, अब मुँह में स्याही पोतकर (मुँह काला करके)उठकर ग
आँखों की ओट में जा बैठ।

दो०— राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि।।१६२।।

भावार्थ— विधाता ने मुझे श्री रामचन्द्र जी से विरोध करने वाले (तेरे)हृदय से उत
किया (अथवा विधाता ने मुझे हृदय से राम का विरोधी जाहिर कर दिया)। मेरे बरा
पापी दूसरा कौन है? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ।''

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई।।
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई।।
लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई।।
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भर महि करत पुकारा।।
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू।।
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा।।
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।।
भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई।।

भावार्थ— माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न जी के सब अंग क्रोध से जल रहे हैं,
कुछ वश नहीं चलता। उसी समय भांति-भांति के कपड़ों और गहनों से सजकर कुब
(मन्थरा)वहाँ आयी। उसे (सजी)देखकर लक्ष्मण जी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी क्रोध में
गए। मानों जलती हुई आग को घी की आहुति मिल गई हो। उन्होंने जोर से तककर कू
पर एक लात जमा दी। वह चिल्लाती हुई मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी। उसका कू
टूट गया, कपाल फूट गया। दाँत टूट गये और मुँह से खून बहने लगा। (वह कराहती
बोली)—'हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा? जो भला करते बुरा फल पाया।' उसकी यह ब
सुनकर और उसे नख से शिखा तक दुष्ट जानकर, शत्रुघ्न जी झोंटा पकड़-पकड़ कर
घसीटने लगे। तब दयानिधि भरत जी ने उसको छुड़ा दिया। और दोनों भाई (तुरंत)कौसल
जी के पास गये।

दो०— मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार।।१६३।।

भावार्थ— कौसल्या जी मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरे का रंग बदला हुआ है ; व्याकुल हो रही हैं, दुःख के बोझ से शरीर सूख गया है। ऐसी दीख रही हैं मानों सोने की सुन्दर कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई॥
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥
कैकइ कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा॥
कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥

भावार्थ— भरत को देखते ही माता कौशल्या जी उठ दौड़ीं। पर चक्कर आ जाने से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह देखते ही भरत जी बड़े व्याकुल हो गये और शरीर की सुध भुलाकर चरणों में गिर पड़े। (फिर बोले) "माता! पिता जी कहाँ हैं ? दिखा दे। सीता जी तथा मेरे दोनों भाई श्री राम-लक्ष्मण कहाँ है ?(उन्हें दिखा दे)। कैकेयी जगत् में क्यों जनमी ? और यदि जनमी ही, तो फिर बाँझ क्यों न हुई ? जिसने कुल के कलंक अपयश के भाँड़े और प्रियजनों के द्रोही मुझ जैसे पुत्र को उत्पन्न किया। तीनों लोकों में मेरे समान अभागा कौन है ? जिसके कारण, हे माता ! तेरी यह दशा हुई। पिता जी स्वर्ग में हैं और रघुवर श्री रामचन्द्र जी वन में हैं। केतु के समान मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ। मुझे धिक्कार है। मैं बाँस के वन में आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुख और दोषों का भागी बना।"

दो०— मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥१६४॥

भावार्थ— भरत जी के कोमल वचन सुनकर माता कौसल्या जी फिर सँभल कर उठीं। उन्होंन भरत को उठाकर छाती से लगा लिया और नेत्रों से आँसू बहाने लगीं।

सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई॥
देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥
माताँ भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥

जनि मानहु हियँ हानि गलानी । काल करम गति अघटित जानी ॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥

भावार्थ– सरल स्वभाव वाली माता ने बड़े प्रेम से भरत जी को छाती से लगा लिया मानों श्री राम जी ही लौटकर आ गये हों । फिर लक्ष्मण जी के छोटे भाई शत्रुघ्न को हृदय से लगाया । शोक और स्नेह हृदय में समाता नही हैं । कौशल्या जी का स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं –'श्री राम की माता का ऐसा स्वभाव क्यों न हो ।' माता ने भरत जी को गोद में बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलने लगीं – ''हे वत्स ! मैं बलैया लेती हूँ ! तुम अब भी धीरज धरो । बुरा समय जानकर शोक त्याग दो, काल और कर्म की गति अमिट जानकर हृदय में हानि और ग्लानि मत मानों । हे तात ! किसी को दोष मत दो । विधाता मुझको सब प्रकार उलटा हो गया है, जो इतने दुःख पर भी मुझे जिला रहा है । अब भी कौन जानता है उसे क्या भा रहा है ?

दो०– पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरष न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर ।।१६५।।

भावार्थ– हे तात ! पिता की आज्ञा से श्री रघुबीर ने भूषण-वस्त्र त्याग दिये और बल्कल वस्त्र पहन लिये । उनके हृदय में न कुछ विषाद था न हर्ष ।

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ॥
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा । रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥
रामु लखनु सिय बनहि सिधाए । गइउँ न संग न प्रान पठाए ।
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें । तउ न तजा तनु जीव अभागें ॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी । राम सरिस सुत मैं महतारी ॥
जिऐ मरै भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥

भावार्थ– उनका मुख प्रसन्न था, न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष)। सबका सब तरह सन्तोष कराकर वे वन को चले गये । यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गयीं । श्री राम के चरणों की अनुरागिणी वे किसी तरह न रहीं । सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले । श्री रघुनाथ जी ने उन्हें रोकने के बहुत यत्न किये, पर वे न रहे । तब श्री रघुनाथ सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गये । श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये । मैं न तो साथ ही गयी और न अपने प्राण ही उनके साथ भेजे । यह

सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ। तो भी अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा। अपने स्नेह की ओर देखकर मुझे लाज भी नहीं आती, राम सरीखे पुत्र की मैं माता ! जीना और मरना तो राजा ने खूब जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों बज्रों के समान कठोर है।''

दो०– कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु।।१६६।।

भावार्थ– कौशल्या जी के वचनों को सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजमहल मानों शोक का निवास बन गया।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई।।
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए।।
भरतहुँ मातु सकल समुझाई। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई।।
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी।।
जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महिसुर पुर जारें।।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें।।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं।।
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता।।

भावार्थ– भरत शत्रुघ्न दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौशल्या जी ने उनको हृदय से लगा लिया। अनेकों प्रकार से भरत जी को समझाया, और बहुत सी विवेक भरी बातें उन्हें कहकर सुनाई। भरत जी ने भी सब माताओं को पुराण और वेदों की सुन्दर कथाएँ कहकर समझाया। दोनों हाथ जोड़कर भरत जी छल रहित, पवित्र और सीधी सुन्दर वाणी बोले –''जो पाप माता-पिता और पुत्र को मारने से होते हैं, और जो गोशाला और ब्राह्मणों के नगर जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं, और जो मित्र और राजा को ज़हर देने से होते हैं। कर्म, वचन और मन से होने वाले जितने पातक एवं उपपातक (छोटे-पड़े पाप)हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता! यदि इस काम में मेरा मत हो, तो हे माता ! वे सब पाप मुझे लगें।

दो०– जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर।।१६७।।

भावार्थ– जो लोग श्री हरि और श्री शंकर जी के चरणों को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं, हे माता ! यदि इसमें मेरा मत हो, तो विधाता मुझे उनकी गति दे।

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं।।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी।।

लोभी लंपट लोलुपचारा । जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा । जौं जननी यहु संमत मोरा ॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे । परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई । जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई ॥
तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं । बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ । जननी जौं यहु जानौं भेऊ ॥

भावार्थ– जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं । चुगुलखोर हैं , दूसरे वे पापों को कह देते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं, तथा जो वेदों की निन्द करने वाले और विश्व भर के विरोधी हैं । जो लोभी, लम्पट और लालचियों का आचरण करने वाले हैं, जो पराये धन और परायी स्त्री की ताक में रहते हैं । हे जननी ! यदि इस काम में मेरी सम्मत्ति हो तो मैं उनकी भयानक गति को पाऊँ । जिनका सत्संग में प्रेम नहीं है, जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हैं, जो मनुष्य शरीर पाकर श्री हरि का भजन नहीं करते, जिनको हरि-हर (भगवान विष्णु और शंकर जी)का सुयश नहीं सुहाता । जो वेदमार्ग को छोड़कर वाम (वेद प्रतिकूल)मार्ग पर चलते हैं, जो ठग हैं और भेष बनाकर जगत को छलते हैं, हे माता ! यदि मैं इस भेद को जानता भी होऊँ तो शंकर जी मुझे उन लोगों की गति दें ।''

दो०– मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ ।।१६८।।

भावार्थ– माता कौशल्या जी भरत जी के स्वाभाविक ही सच्चे और सरल वचनों को सुनकर कहने लगीं–''हे तात ! तुम तो मन, वचन और शरीर से सदा ही श्री रामचन्द्र के प्यारे हो ।

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे ॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी । होइ बारिचर बारि बिरागी ॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए । थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ॥
करत बिलाप बहुत यहि भाँती । बैठेहिं बीति गई सब राती ॥
बामदेउ बसिष्ठ तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥

भावार्थ— श्री राम तुम्हारे प्राणों के भी प्राण हैं और तुम भी श्री रघुनाथ जी के प्राणों से प्यारे हो (अर्थात् प्राणों से भी अधिक प्यारे हो)। चन्द्रमा चाहे विष चुआने लगे और पाला आग बरसाने लगे, जलचर जीव जल से विरक्त हो जाय और ज्ञान हो जाने पर भी मोह न मिटे, पर तुम श्री रामचन्द्र जी के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत् में जो कोई ऐसा कहते हैं वे स्वप्न में भी सुख और शुभगति नहीं पायेंगे।'' ऐसा कहकर माता कैशल्या ने भरत जी को हृदय से लगा लिया। उनके स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का)जल छा गया। इस प्रकार विलाप करते हुए सारी रात बैठे ही बैठे बीत गयी। तब वामदेव और वशिष्ठ जी आये। उन्होंने मन्त्रियों तथा महाजनों को बुलाया। फिर मुनि वशिष्ठ जी ने परमार्थ के सुन्दर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकार से भरत जी को उपदेश दिया।

दो०— तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु ।।१६९।।

भावार्थ— (वशिष्ठ जी ने कहा)—'हे तात! हृदय में धीरज धरो और आज जिस कार्य के करने का अवसर है, उसे करो।' गुरु जी के वचन सुनकर भरत जी उठे और उन्होंने सब तैयारी करने के लिये कहा।

नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा ।।
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी ।।
चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए ।।
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई ।।
एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही ।।
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना ।।
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ।।
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना ।।

भावार्थ— वेदों में बतायी हुई विधि से राजा की देह को स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाया गया। भरत जी ने सब माताओं के चरण पकड़ रक्खे (अर्थात् प्रार्थना करके उनको सती होने से रोक लिया)। रानियाँ भी श्री राम के दर्शन की अभिलाषा से रह गई। चन्दन और अगर के तथा और भी अनेक प्रकार के (कपूर, गुग्गुल, केसर आदि)सुगन्ध द्रव्यों के बहुत से बोझ आये। सरयू जी के तट पर सुन्दर चिता रचकर बनायी गयी, (जो ऐसी मालूम होती थी)मानों स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी हो। इस प्रकार सब दाह क्रिया की गई। और सबने स्नान करके तिलांजलि दी। फिर वेद, स्मृति और पुराण सब का मत

निश्चय करके उसके अनुसार भरत जी ने पिता का दशगात्र विधान (दस दिनों के कृत्य) किए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने जहाँ जैसी आज्ञा दी, वहाँ भरत जी ने वैसा ही हजारों प्रकार से किया। शुद्ध हो जाने पर (विधिपूर्वक) सब दान दिये। गौयें तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकार की सवारियाँ।

दो०— सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम ।।१७०।।

भावार्थ— सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरत जी ने दिये। भूदेव ब्राह्मण दान पाकर परिपूर्ण-काम हो गये (अर्थात् उनकी सारी मनोकामनायें अच्छी तरह से पूरी हो गयीं)।

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ।।
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ।।
बैठे राजसभाँ सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई ।।
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे ।।
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी ।।
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा ।।
कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ ।।
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी ।।

भावार्थ— पिता जी के लिए भरत जी ने जैसी करनी की, वह लाखों मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। तब शुभ दिन शोधकर श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ जी आये और उन्होंने मन्त्रियों तथा सब महाजनों को बुलाया। सब लोग राजसभा में जाकर बैठ गये। तब मुनि ने भरत जी तथा शत्रुघ्न दोनो भाइयों को बुलावा भेजा। भरत जी को वशिष्ठ जी ने अपने पास बैठा लिया और नीति और धर्म से भरे हुए वचन कहे। पहले तो कैकेयी ने जैसी कुटिल करनी की थी, श्रेष्ठ मुनि ने वह सारी कथा कही। फिर राजा के धर्म, व्रत और सत्य की सराहना की, जिन्होंने शरीर त्यागकर प्रेम को निबाहा। श्री रामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते करते तो मुनिराज के नेत्रो में जल भर आया और वे शरीर से पुलकित हो गये। फिर लक्ष्मण जी और सीता जी के प्रेम की बड़ाई करते हुए, ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गये।

दो०— सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ।।१७१।।

भावार्थ– मुनिनाथ ने बिलखकर (दुःखी होकर)कहा–''हे भरत ! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान है । हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश, ये सब विधाता के हांथ हैं ।

लोकोक्ति– दोहा १७१ में एक लोकोक्ति है :

'हानि लाभ जीवनु मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ ।'

अर्थात्, हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश सब भगवान के हाथ में हैं । तुलसीदास को भावी और नियति पर दृढ़ विश्वास था । इस विश्वास को बार-बार वह अपने पात्रोंके मुख से बालकाण्ड में दोहराते हैं ।

१. होइहि सोई जो राम रचि राखा ।

—दोहा ५२ के ऊपर की चौपाई, टीका पृष्ठ ९२-९३

२. हरि इच्छा भावी बलवाना ।

—दोहा ५६ के ऊपर की चौपाई, टीका पृष्ठ ९६

३.....................जो विधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर-नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ।।

—दोहा ६८, टीका पृष्ठ १०८

४. हरि इच्छा बलवान

—दोहा १२७ , टीका पृष्ठ १७१

५. राम कीन्ह चाहहिं सोइ होइ

—दोहा १२७ के नीचे की चौपाई, टीका पृष्ठ १७२

६. तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलई सहाइ ।
आपन आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाई ।।

—दोहा १५९ (ख), टीका पृष्ठ २०२

इस'भवितव्यता' पर अन्य भाषाओं के कवि भी विश्वास करते रहे हैं । उदाहरणार्थ–

१- मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है ।

—जयशंकर प्रसाद

२- मुद्दई लाख बुरा चाहे, तो क्या होता है ।
वही होता है, जो मंजूर-ए-खुदा होता है ।।

—मिर्जा ग़ालिब

३-There is a divinity that shapes our ends, Rough-hew them how we will.

—शेक्सपियर

अस बिचारि केहि देइअ दोसू । ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ।।
तात बिचारु करहु मन माहीं । सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं ।।
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना । तजि निज धरमु बिषय लयलीना ।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।।
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ।।
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।।
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ।।
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ।।

भावार्थ– ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाय ? और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय, हे तात ! मन में विचार करो । राजा दशरथ सोच करने के योग्य नहीं हैं । सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिये जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय भोग में ही लीन रहता है । उस राजा का सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्रिय नहीं है । उस वैश्य का सोच करना चाहिये जो धनवान होकर भी कंजूस है, और जो अतिथि सत्कार तथा शिव जी की भक्ति करने में कुशल नहीं है । उस शूद्र का सोच करना चाहिए जो ब्राह्मणों का अपमान करने वाला, बहुत बोलने वाला, मान-बड़ाई चाहने वाला और ज्ञान का घमंड रखने वाला है । पुनः उस स्त्री का सोच करना चाहिये जो पति को छलने वाली, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है । उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिये जो अपने ब्रह्मचर्य-व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता।

दो०– सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ।।१७२।।

भावार्थ– उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए जो मोहवश कर्ममार्ग का त्याग कर देता है । उस सन्यासी का सोच करना चाहिये जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ है और ज्ञान-वैराग्य से हीन है ।

बैखानस सोइ सोचै जोगू । तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरि जन होई ॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥
बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा । बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा ॥

भावार्थ– वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं । सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करने वाला है तथा माता-पिता, गुरु एवं भाई बन्धुओं के साथ विरोध रखने वाला है । सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने ही शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है । और वह तो सभी प्रकार सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता । कोसलराज दशरथ जी सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है । हे भरत ! तुम्हारे पिता जैसा राजा तो न हुआ, न है और न अब होने वाला है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिकपाल सभी दशरथ जी के गुणों की कथाएँ कहा करते हैं ।

टिप्पणी– यह चौपाई केवल सात विषम पंक्तियों की है । दोहा १७१ के बाद की चौपाई में वशिष्ठ जी भरत को समझाते हैं कि दिवंगत दशरथ जी के विषय में शोक करना अनुचित है और फिर उस चौपाई में और इस चौपाई में वशिष्ठ जी एक दर्जन लोगों की सूची देते हैं जिनके लिये सोच करना चाहिए । वह लोग हैं–

१- ब्राह्मण जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय-भोग में लीन रहता है;

२- राजा जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्रिय नहीं है;

३- वैश्य जो धनवान होकर भी कंजूस है । जो अतिथि-सत्कार नहीं करता और शिवजी की उपासना नहीं करता;

४- शूद्र जो ब्राह्मणों का अपमान करता है । जिसको ज्ञान का घमण्ड है, जो मान-बड़ाई चाहता है और वाचाल है;

५- स्त्री जो पति को छलने वाली, कलह-प्रिय और स्वेच्छा-चारिणी है;

६- ब्रह्मचारी जो अपने ब्रह्मचर्य-ब्रत को तोड़ देता है। और गुरु की आज्ञा का उलंघन करता है;

७- गृहस्थ जो कर्ममार्ग का त्याग कर देता है ;

८- सन्यासी जो दुनिया के प्रपंच में फंसा हुआ है और ज्ञान-वैराग्य से हीन है;

९- वाणप्रस्थ जिसको तपस्या छोड़ भोग अच्छे लगते हैं;

१०- चुगलखोर व्यक्ति जो माता-पिता, गुरु एवम् भाई-बन्धुओं से विरोध करता है और अकारण क्रोध ;

११- वह व्यक्ति जो दूसरो का अनिष्ट करता है, निर्दयी है और अपने ही शरीर का पोषण करता है;और

१२- वह व्यक्ति जो छल छोड़ कर हरि का भक्त नहीं होता।

दो०— कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बड़ाई तासु ।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु ।।१७३।।

भावार्थ— हे तात कहो, उसकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा जिनके श्री राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न सरीखे पवित्र पुत्र हैं।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ।।
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ।।
रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ।।
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ।।
नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना ।।
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ।।
परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी ।।
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ।।

भावार्थ— राजा सब प्रकार से बड़भागी थे ; उनके लिये विवाद करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर सोच त्याग दो और राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर तदनुसार करो। राजा ने राजपद तुमको दिया है। पिता का वह वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये जिस वचन के लिए ही उन्होंने श्री रामचन्द्र जी को त्याग दिया और राम विरह की अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे दी। राजा को वचन प्रिय थे, प्राण प्रिय नहीं थे। इसी लिये, हे तात ! पिता के वचनों को प्रमाण (सत्य) करो। राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर पालन करो। इसमें सब तरह

तुम्हारी भलाई है। परशुराम जी ने पिता की आज्ञा रक्खी और माता को मार डाला, सब लोक इस बात के साक्षी हैं। राजा ययाति के पुत्र ने पिता को अपनी जवानी दे दी। पिता की आज्ञा पालन करने से उन्हें पाप और अपराध नहीं हुआ।

अन्तर्कथा– जब भरत आत्मग्लानि से विभोर हो गये, तब गुरु वशिष्ठ ने समझाया कि पिता की आज्ञा का पालन करना और राज्य-भार संभालना उनका कर्तव्य है। पिता की आज्ञा-पालन के वशिष्ठ जी ने दो दृष्टान्त दिये।

१- परशुराम ने पिता की आज्ञा-पालन हेतु अपनी माता का वध कर दिया। अन्तर्कथा के लिए देखिये पृष्ठ ३०७।

२- पुरु ने अपने पिता ययाति की इच्छा-पूर्ति के लिए उनकी जरा अवस्था अपने ऊपर ले ली और अपना यौवन उनको प्रदान कर दिया। अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ ५३३।

दो०– अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ।।१७४।।

भावार्थ– जो अनुचित उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयश के पात्र होकर अन्त में इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं।

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू ॥
बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी ॥
सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं ॥
कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं ॥
परम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि ॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ ॥

भावार्थ– राजा का वचन अवश्य सत्य करो। शोक त्याग दो और प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से स्वर्ग में राजा सन्तोष पायेंगे और तुमको पुण्य और सुन्दर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा। यह वेद में प्रसिद्ध है और स्मृति (पुराणादि) सभी शास्त्रों के द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे, वही राज तिलक पाता है। इसलिये तुम राज्य करो, ग्लानि का त्याग कर दो। मेरे वचन को हित समझ कर मानो। इस बात को सुनकर श्री रामचन्द्र जी और जानकी जी सुख पायेंगे और कोई पण्डित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौशल्या जी आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी। जो तुम्हारे और श्री रामचन्द्र जी के

श्रेष्ठ सम्बन्ध को जान लेगा, वह सभी प्रकार से तुम्हें भला मानेगा। श्री रामचन्द्र जी के लौट आने पर राज्य उन्हें सौंप देना और सुन्दर स्नेह से उनकी सेवा करना।''

दो०— कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि।।१७५।।

भावार्थ— मन्त्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं—'गुरु जी की आज्ञा का अवश्य ही पालन कीजिए। श्री रघुनाथ जी के लौट आने पर जैसा उचित हो, तब फिर वैसा ही कीजियेगा।'

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई।।
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी।।
बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू।।
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा।।
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई।।
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू।।
गुर के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु।।
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी।।

भावार्थ— कौशल्या जी भी धीरज धर कर कह रही हैं—''हे पुत्र! गुरु की आज्ञा पथ्य रूप है। उसका आदर करना चाहिये और हित मानकर उसका पालन करना चाहिये। काल की गति को जानकर विषाद का त्याग कर देना चाहिये। श्री रघुनाथ जी वन में हैं, महाराज स्वर्ग का राज्य करने चले गये। और हे तात! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो। हे पुत्र! कुटुम्ब, प्रजा, मन्त्री और सब माताओं के एक तुम ही सहारे हो। विधाता को प्रतिकूल और काल को कठोर देखकर धीर धरो, माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरू की आज्ञा को सिर चढ़ा कर उसी के अनुसार कार्य करो और प्रजा का पालन कर कुटुम्बियों का दु:ख हरो।'' भरत जी ने गुरू के वचनों और मन्त्रियों के अभिनन्दन (अनुमोदन) को सुना, जो उनके हृदय के.लिए मानों चन्दन के समान (शीतल) थे। फिर उन्होंने शील, स्नेह और सरलता के रस में सनी हुई माता कौशल्या की कोमल वाणी सुनी।

छं०— सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए।।
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की।।

सो०-- भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ।
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ।।१७६।।

भावार्थ-- सरलता के रस से सनी हुई माता की वाणी सुनकर भरत जी व्याकुल हो गये । उनके नेत्र-कमल जल (आँसू)बहाकर हृदय के विरहरूपी नवीन अंकुर को सींचने लगे (नेत्रों के आँसुओं ने उनके वियोग दुःख को बहुत ही बढ़ा कर उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया) । उनकी यह दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीर की सुध भूल गयी । तुलसीदास जी कहते हैं--भरत जी के स्वाभाविक प्रेम की सीमा की सब लोग आदर पूर्वक सराहना करने लगे । धैर्य की धुरी को धारण करने वाले भरत जी धीरज धरकर, कमल के समान हाथों को जोड़कर, वचनों को मानों अमृत में डुबोकर, सबको उचित उत्तर देने लगे।

टिप्पणी-- ऊपर अयोध्याकाण्ड का छटा छंद और सोरठा है। गुरु वशिष्ठ और माता कौशल्या ने भरत को समझाया कि पिता का स्वर्गवास हो गया है और राम वन में चले गये हैं । इसलिए उन्हें शोक त्याग कर राजा के वचन को सत्यापित करना चाहिए और प्रजा का पालन करना चाहिये । इस आदेश की भरत पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसका वर्णन इस छंद और सोरठे में किया गया है । भरत जी व्याकुल हो गए, आँखों से आँसू बहने लगे और हाथ जोड़कर उन्होंने सबसे विनती की कि एक बार उन्हें राम के दर्शन कर लेने दें । शायद उनका मनुहार सुनकर रामचन्द्र जी अयोध्या लौट आएँ (देखिए दोहा १८३ और उसके ऊपर की चौपाई, पृष्ठ ५६४)।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका । प्रजा सचिव संमत सबही का ।।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा । अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ।।
गुर पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मनमुदित करिअ भलि जानी ।।
उचित कि अनुचित किएँ बिचारू । धरमु जाइ सिर पातक भारू ।।
तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई । जो आचरत मोर भल होई ।।
जद्यपि यह समुझत हउँ नीकें । तदपि होत परितोषु न जी कें ।।
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत सिखावनु देहू ।।
ऊतरु देउँ छमब अपराधू । दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ।।

भावार्थ-- ''गुरु जी ने मुझे सुन्दर उपदेश दिया । फिर प्रजा, मन्त्री आदि सभी की यही सम्मति है । माता ने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर करना चाहता हूँ । (क्योंकि)गुरू, पिता-माता, स्वामी और सुहृद मित्र की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझ के करना (मानना) चाहिये । उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है । आप तो मुझे बड़ी

सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करने से मेरा भला हो । यद्यपि मैं इस बात को भली-भाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदय को सन्तोष नहीं होता । अब आप लोग मेरी विनती सुन लीजिये, और मेरी योग्यता के अनुसार शिक्षा दीजिये । मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिये। साधु पुरुष दुःखी मनुष्य के दोष गुणों को नहीं गिनते ।

दो०— पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु ।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ।।१७७।।

भावार्थ— पिता जी स्वर्ग में हैं, श्री राम जी वन में हैं और मुझे आप राज्य करने के लिये कह रहे हैं । इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम (होने की आशा रखते हैं)।

हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ।।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं । आन उपायँ मोर हित नाहीं ।।
सोक समाजु राजु केहि लेखें । लखन राम सिय बिनु पद देखें ।।
बादि बसन बिनु भूषन भारू । बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू ।।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा ।।
जायँ जीव बिनु देह सुहाई । बादि मोर सबु बिनु रघुराई ।।
जाउँ राम पहिं आयसु देहू । एकहिं आँक मोर हित एहू ।।
मोहि नृप करि भल आपन चहहू । सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ।।

भावार्थ— मेरा कल्याण तो सीतापति श्री राम जी की चाकरी में है, सो उसे माता की कुटिलता ने छीन लिया । मैंने अपने मन में अनुमान करके देख लिया है कि दूसरे किसी उपाय से मेरा कल्याण नहीं है । यह शोक का समुदाय राज्य लक्ष्मण, श्री रामचन्द्र जी और सीता जी के चरणों को देखे बिना किस गिनती में है (इसका क्या मूल्य है) । जैसे कपड़ों के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है ; वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है; रोगी शरीर के लिये नाना प्रकार के भोग व्यर्थ हैं ; श्री हरि की भक्ति बिना जप और योग व्यर्थ हैं ; जीव के बिना सुन्दर देह व्यर्थ है , वैसे ही श्री रघुनाथ जी के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है । मुझे आज्ञा दीजिये । मैं श्री राम के पास जाऊँ । एक ही आँक (निश्चयपूर्वक)मेरा हित इसी में है । और मुझे राजा बनाकर क्या आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप स्नेह की जड़ता (मोह)के वश होकर ही कह रहे हैं ।

दो०— कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कें राज ।।१७८।।

भावार्थ– कैकेयी पुत्र, कुटिल बुद्धि, राम विमुख और निर्लज्ज मुझ अधम के राज्य से आप मोह के वश होकर ही सुख चाहते हैं।

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥
रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥
राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई॥

भावार्थ– मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशील को ही राजा होना चाहिये। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे त्यों ही पृथ्वी पाताल में धँस जायेगी। मेरे समान पापों का घर कौन होगा जिसके कारण सीता जी और श्री रामचन्द्र जी को बनवास हुआ। राजा ने श्री राम जी को बन दिया, और उनके बिछुड़ते ही स्वयं स्वर्ग को गमन किया और मैं दुष्ट, जो सारे अनर्थों का कारण हूँ, होश-हवास में बैठा सब बातें सुन रहा हूँ। श्री रघुनाथ जी से रहित घर को देखकर और जगत का उपहास सहकर भी यह प्राण बने हुए हैं। (इसका यही कारण है कि ये प्राण)श्री राम रूपी पवित्र विषय-रस में आसक्त नहीं है। ये लालची भूमि और भोगों के ही भूखे हैं। मैं अपने हृदय की कठोरता कहां तक कहूँ ? जिसने बज्र का भी तिरस्कार करके बड़ाई पाई है।

दो०– कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥१७९॥

भावार्थ– कारण से कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा दोष नहीं। हड्डी से बज्र और पत्थर से लोहा भयानक और कठोर होता है।

लोकोक्ति– समस्त दोहा १७९ एक लोकोक्ति है। भरत जी कहते हैं कि कारण से कार्य अधिक कठिन होता है। अर्थात् साधन से साध्य अधिक कठोर होता है। जैसे दधीचि की तप से कठोर हुई हड्डियों से बना हुआ बज्र-अस्त्र अस्थियों से भी कठोर था (देखिये, अन्तर्कथा पृष्ठ ४२२)। इसी तरह, खदान से निकले हुए लोहे की अपेक्षा उससे बना हुआ स्पात, लोहे से कहीं कठोर होता है। भरत का तात्पर्य यह है कि उनका जन्म कठोर-हृदय कैकेयी से हुआ है। स्वाभाविक है कि उनका हृदय और भी अधिक कठोर है। यह दोहा भरत की आत्मग्लानि की पराकाष्ठा है।

कैकेई भव तनु अनुरागे । पावँर प्रान अघाइ अभागे ॥

जौं प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे । देखब सुनब बहुत अब आगे ॥

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा । पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥

लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू ॥ दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू ॥

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू । कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥

एहि तें मोर काह अब नीका । तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥

कैकइ जठर जनमि जग माहीं । यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं ॥

मोरि बात सब बिधिहिं बनाई । प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥

भावार्थ– कैकेयी से उत्पन्न देह से प्रेम करने वाले ये पामर प्राण भरपेट (पूरी तरह से)अभागे हैं। जब प्रिय के वियोग में भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ सुनूँगा। लक्ष्मण, श्रीराम जी और सीता जी को तो बन दिया ; स्वर्ग भेज कर पति का कल्याण किया ; स्वयं विधवापन और अपयश लिया ; प्रजा को शोक और सन्ताप दिया और मुझे सुख, सुन्दर यश और उत्तम राज्य दिया। इससे अच्छा अब मेरे लिये और क्या होगा ? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने को कहते हैं। कैकेयी के पेट से जगत में जन्म लेकर यह मेरे लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो विधाता ने ही बना दी है। (फिर)उसमें प्रजा और पंच (आप-लोग)क्यों सहायता कर रहे हैं।

दो०– ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार ॥१८०॥

भावार्थ– जिसे कुग्रह लगे हों (अथवा जो पिशाचग्रस्त हो), फिर जो वायुरोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलायी जाय, तो कहिये यह कैसा इलाज है।

कैकइ सुअन जोगु जग जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥

दसरथ तनय राम लघु भाई । दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका । राय रजायसु सब कहँ नीका ॥

उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥

मोहि कुमातु समेत बिहाई । कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥

मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं ॥

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू । अदिनु मोर नहिं दूषन काहू ॥

संसय सील प्रेम बस अहहू । सबुइ उचित सब जो कछु कहहू ॥

भावार्थ– कैकेयी के लड़के के लिए जो कुछ योग्य था, चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। पर 'दशरथ का पुत्र' और 'राम का छोटा भाई' होने की बड़ाई मुझे विधाता ने व्यर्थ ही दी। आप सब लोग भी मुझे टीका कराने के लिये कह रहे हैं। राजा की आज्ञा सभी के लिये अच्छी है। मैं किस-किसको किस-किस प्रकार उत्तर दूँ ? जिसकी जैसी रूचि हो, आप लोग सुखपूर्वक वही कहें। मेरी कुमाता कैकेयी समेत मुझे छोड़कर, कहिये, और कौन कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया ? जड़ चेतन जगत में मेरे सिवा और कौन है जिसको श्री सीताराम जी प्राणों के समान प्यारे न हों। जो परम हानि है, उसी में सबको बड़ा लाभ दीख रहा है। मेरा बुरा दिन है, किसी को दोष नहीं। आप सब जो कुछ कहते हैं सो सब उचित ही है। क्योंकि आप लोग संशय, शील और प्रेम के वश हैं।

दो० – राम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेषि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि ।।१८१ ।।

भावार्थ–श्री रामचन्द्र जी की माता बहुत ही सरल हृदय हैं और मुझ पर उनका विशेष प्रेम हैं। इसलिये मेरी दीनता देखकर वे स्वाभाविक स्नेहवश ही ऐसा कह रही हैं।

गुर बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना ।।
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ।।
परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ।।
सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी ।।
डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू ।।
एकइ उर बँस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी ।।
जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा ।।
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताऊँ अभागी ।।

भावार्थ– गुरु जी ज्ञान के समुद्र है, इस बात को सारा जगत जानता है, जिसके लिये विश्व हथेली पर रक्खे हुए वेर के समान है। वे भी मेरे लिये राजतिलक का साज सज रहे हैं। सत्य है, विधाता के विपरीत होने पर सब कोई बिपरीत हो जाते हैं। श्री रामचन्द्र जी और सीता जी को छोड़कर जगत में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ में मेरी सम्मति नहीं है। मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा और सहूँगा। क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहीं अन्त में कीचड़ होती ही है। मुझे इसका डर नहीं है कि जगत मुझे बुरा कहेगा, और न मुझे परलोक का ही सोच है। मेरे हृदय में तो बस, एक ही दुःसह दावानल धधक रहा है कि मेरे कारण श्री सीता-राम जी दुःखी हुए। जीवन का उत्तम लाभ तो लक्ष्मम ने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्री रामचन्द्र जी के चरणों में मन लगाया। मेरा जन्म तो श्री रामचन्द्र जी के बनवास के लिये ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्यों पछताता हूँ।

दो०– आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ।।१८२।।

भावार्थ– सबको सिर झुकाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ । श्री रघुनाथ जी के चरणों के दर्शन किये बिना मेरे जी की जलन न जायेगी ।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा । को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ।।
एकहिं आँक इहइ मन माहीं । प्रातःकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ।।
जद्यपि मैं अनभल अपराधी । भै मोहि कारन सकल उपाधी ।।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ।।
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ । कृपा सनेह सदन रघुराऊ ।।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ।।
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी । आयसु आसिष देहु सुबानी ।।
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहिं बहुरि रामु रजधानी ।।

भावार्थ– मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता । श्री राम जी के बिना मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है ? मन में एक ही आँक (निश्चय)यही है कि प्रातःकाल प्रभु श्री रामचन्द्र जी के पास चल दूँ । यद्यपि बुरा हूँ और अपराधी हूँ, और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है, तथापि श्री रामचन्द्र जी मुझे शरण में आया हुआ देखकर, सब अपराध क्षमा करके, मुझपर विशेष कृपा करेंगे । श्री रामचन्द्र जी शील, संकोच, अत्यन्त सरल स्वभाव, कृपा और स्नेह के घर हैं । श्री रामचन्द्र जी ने कभी शत्रु का भी अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ , पर हूँ तो उनका बच्चा और सेवक ही । आप पंच (सब) लोग भी इसी में मेरा कल्याण मानकर सुन्दर वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दीजिये जिसमें मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्री रामचन्द्र जी राजधानी को लौट आयें ।

दो०– जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ।।१८३।।

भावार्थ– यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं दुष्ट सदा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी मुझे श्री रामचन्द्र जी का भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं ।''

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे । राम सनेह सुधाँ जनु पागे ।।
लोग बियोग बिषम बिष दागे । मंत्र सबीज सुनत जनु जागे ।।
मातु सचिव गुर पुर नर नारी । सकल सनेहँ बिकल भए भारी ।।

भरतहि कहहिं सराहि सराही । राम प्रेम मूरति तनु आही ।।
तात भरत अस काहे न कहहू । प्रान समान राम प्रिय अहहू ।।
जो पावँरु अपनी जड़ताईं । तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं ।।
सो सठु कोटिक पुरुष समेता । बसिहि कलप सत नरक निकेता ।।
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी के प्रति स्नेह-सुधा पूर्ण, भरत जी के वचन सबको प्रिय लगे । माता, मन्त्री, गुरु, नगर के स्त्री-पुरुष, सभी स्नेह के कारण बहुत ही व्याकुल हो गये। सब भरत जी को सराह-सराह कर कहते हैं कि ''आपका शरीर श्री राम प्रेम की साक्षात् मूर्ति है । हे तात भरत ! आप ऐसा क्यों न कहें । श्री राम जी को आप प्राणों के समान प्यारे हैं । जो नीच अपनी मूर्खता से आपकी माता कैकेयी की कुटिलता को लेकर आप पर सन्देह करेगा वह दुष्ट करोड़ों पुरखों सहित सौ कल्पों तक नरक के घर में निवास करेगा । साँप के पाप और अवगुणों को मणि नहीं ग्रहण करती । बल्कि वह विष को हर लेती है और दुःख तथा दरिद्रता को भस्म कर देती है ।

दो०– अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह ।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ।।१८४।।

भावार्थ– हे भरत जी ! वन को अवश्य चलिये, जहाँ श्री रामजी हैं । आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी । शोक समुद्र में डूबते हुए सब लोगों को आपने (बड़ा) सहारा दे दिया ।''

भा सब कें मन मोदु न थोरा । जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ।।
चलत प्रात लखि निरनउ नीके । भरतु प्रानप्रिय भे सबही के ।।
मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई । चले सकल घर बिदा कराई ।।
धन्य भरत जीवनु जग माहीं । सीलु सनेहु सराहत जाहीं ।।
कहहिं परसपर भा बड़ काजू । सकल चलै कर साजहिं साजू ।।
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी । सो जानइ जनु गरदनि मारी ।।
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू । को न चहइ जग जीवन लाहू ।।

भावार्थ– सब के मन में कम आनन्द नहीं हुआ (अर्थात् बहुत ही आनन्द हुआ) मानों मेघों की गर्जना सुनकर चातक और मोर आनन्दित हो रहे हों । (दूसरे दिन) प्रातःकाल चलने का सुन्दर निर्णय देखकर, भरत जी सभी को प्रानप्रिय हो गये । मुनि वशिष्ठ जी की वन्दना करके और भरत जी को सिर नवाकर, सब लोग बिदा लेकर अपने अपने घर को

चले। 'जगत में भरत जी का जीवन धन्य है', इस प्रकार कहते हुए वे उनके शील और स्नेह की सराहना करते जाते हैं। आपस में कहते हैं, बड़ा काम हुआ। सभी चलने की तैयारी करने लगे। जिसको भी घर की रखवाली के लिये पीछे रुकने के लिए कहा जाता है, वह समझता है मानों उसकी गर्दन पकड़ी गयी। कोई कोई कहते हैं – रहने के लिये किसी को भी मत कहो ; जगत में जीवन का लाभ कौन नहीं चाहता।

टिप्पणी– ऊपर की चौपाई में केवल सात विषम पंक्तियाँ हैं। जब कुलगुरु वशिष्ठ माता कौशल्या और मन्त्री-मण्डल ने भरत जी से आग्रह किया कि वह तुरन्त राज-भार सम्हाल लें, तब भरत ने उत्तर दिया कि यदि आप मुझ जैसे पापी को राज्य देंगे, तो पृथ्वी पाताल में धंस जायेगी (दोहा १७८ के नीचे की चौपाई)। मुझे कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता सिवाय इसके कि मैं कल प्रातः उठकर श्री राम जी के पास चल दूँ। (दोहा १८२ के नीचे की चौपाई)। मुझे पूरा भरोसा है कि रामचन्द्र जी मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं। मुझे अपना दास जानकर, मेरी विनती सुनकर, रामचन्द्र जी राजधानी को लौट आयेंगे (दोहा १८३ और उसके ऊपर की चौपाई)। राम के प्रति स्नेह वचन सुनकर सबने भरत के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। सब प्रातः चित्रकूट जाने की तैयारी में लग गए। घर की रखवाली के लिए, पीछे रुकने को कोई तैयार नहीं।

दो०– जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ।।१८५।।

भावार्थ– वह सम्पत्ति, घर, सुख, माता, पिता, भाई जल जाय जो श्री रामजी के चरणों के सन्मुख होने में हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता न करे।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना ।।
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू ।।
संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ।।
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई ।।
करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई ।।
अस बिचारी सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले ।।
कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ।।
करि सब जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरत सिधारे ।।

भावार्थ– घर-घर लोग अनेकों प्रकार की सवारियां सजा रहे हैं। हृदय में (बड़ा) हर्ष है कि सबेरे चलना है। भरत जी ने घर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े-हाथी,

महल-खजाना आदि सारी सम्पत्ति रघुनाथ जी की है यदि उसकी (रक्षा की) व्यवस्था किए बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ, तो परिणाम में मेरी भलाई नहीं है। क्योंकि स्वामी का द्रोह सब पापों में शिरोमणि (श्रेष्ठ) है। सेवक वही जो स्वामी का हित करे चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे। भरत जी ने ऐसा विचार कर ऐसे विश्वास पात्र सेवकों को बुलाया जो कभी स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं डिगे थे। भरत जी ने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया, और जो जिस योग्य था उसे उसी काम पर नियुक्त कर दिया। सब व्यवस्था करके, रक्षकों को रखकर भरत जी राजमाता कौशल्या के पास गये।

दो०— आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान ।।१८६।।

भावार्थ— स्नेह के सुजान (प्रेम के तत्व को जानने वाले) भरत जी ने सब माताओं को आर्त (दुःखी) जानकर उनके लिए पालकियां तैयार करने तथा सुखासन यान (सुखपाल) सजाने के लिये कहा।

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी।।
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना।।
कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू।।
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे।।
अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ।।
बिप्र बृंद चढ़ि वाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना।।
नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना।।
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी।।

भावार्थ— नगर के नर-नारी चकवे-चकवी की भाँति हृदय में अत्यन्त आर्त होकर प्रातःकाल का होना चाहते हैं। सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया। तब भरत जी ने चतुर मन्त्रियों को बुलाया और कहा 'तिलक का सब सामान ले चलो। बन में ही मुनि बशिष्ठ जी श्री रामचन्द्र जी को राज्य देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मन्त्रियों ने वन्दना की और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिये। सबसे पहले मुनिराज बशिष्ठ जी अरुन्धती और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित रथपर सवार होकर चले। फिर ब्राह्मणों के समूह, जो सबके सब तपस्या और तेज के भण्डार हैं, अनेकों सवारियों पर चढ़कर चले। नगर के सब लोग रथों को सजा-सजा कर चित्रकूट को चल पड़े। जिनका वर्णन नहीं हो सकता, ऐसीं सुन्दर पालकियों पर चढ़-चढ़ कर सब रानियां चलीं।

दो०— सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ ।।१८७।।

भावार्थ— विश्वास पात्र सेवकों को नगर सौंप कर और सब को आदरपूर्वक रवान करके, तब श्री रामचन्द्र जी के चरणों को स्मरण करके भरत शत्रुघ्न दोनों भाई चले ।

राम दरस बस सब नर नारी । जनु करि करिनि चले तकि बारी ।।
बन सिय रामु समुझि मन माहीं । सानुज भरत पयादेहिं जाहीं ।।
देखि सनेहु लोग अनुरागे । उतरि चले हय गय रथ त्यागे ।।
जाइ समीप राखि निज डोली । राम मातु मृदु बानी बोली ।।
तात चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवारु दुखारी ।।
तुम्हरें चलत चलिहिं सबु लोगू । सकल सोक कृस नहिं मग जोगू ।।
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई । रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ।।
तमसा प्रथम दिवस करि बासू । दूसर गोमति तीर निवासू ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के वश में हुए (दर्शन की अनन्य लालसा से) सब नर नारी ऐसे चले मानों प्यासे हाथी-हथिनी जल को तक कर (बड़े तेजी से बावले से हुए) जा रहे हों । श्री सीता-राम जी (सब सुखों को छोड़कर) वन में हैं, मन में ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्न जी सहित भरत जी पैदल ही चले जा रहे हैं । उनका स्नेह देखकर लोग प्रेम में मग्न हो गये और सब घोड़े, हाथी, रथों, को छोड़कर, उनसे उतर कर पैदल चलने लगे । तब श्री रामचन्द्र जी की माता कौशल्या जी भरत जी के पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणी से बोलीं "हे बेटा ! माता बलैयाँ लेती है, तुम रथ पर चढ़ जाओ । नहीं तो सारा प्यारा परिवार दुःखी हो जायेगा । तुम्हारे पैदल चलने से सभी लोग पैदल चलेंगे । शोक के मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्ते के योग्य नहीं हैं।' माता की आज्ञा को सिर चढ़ाकर और उनके चरणों में सिर नवा कर दोनों भाई रथपर चढ़कर चलने लगे । पहले दिन तमसा पर वास करके, दूसरे दिन गोमती के तट पर निवास किया ।

दो०— पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ।।१८८।।

भावार्थ— कोई दूध ही पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रात को एक ही बार भोजन करते हैं । भूषण और भोग-विलास को छोड़कर सब लोग श्री रामचन्द्र जी के लिये नियम और व्रत करते हैं ।

सई तीर बसि चले बिहाने । सृंगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा । हृदयँ बिचार करइ सबिषादा ॥
कारन कवन भरतु बन जाहीं । है कछु कपट भाउ मन माहीं ॥
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥
जानहिं सानुज रामहि मारी । करउँ अकंटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी । तब कलंकु अब जीवन हानी ॥
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहि समर न जीतनिहारा ॥
का आचरजु भरतु अस करहीं । नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं ॥

भावार्थ– रातभर सई नदी के तीर पर निवास करके सबेरे वहाँ से चल दिये और सब श्रृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे । निषादराज ने सब समाचार सुनें, तो वह दु:खी होकर हृदय में विचार करने लगा । क्या कारण है जो भरत बन को जा रहे हैं ? मन में कुछ कपट भाव अवश्य है । यदि मन में कुटिलता न होती, तो साथ मे सेना क्यों ले चले हैं । समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री राम को मारकर सुख से निष्कण्टक राज्य करूँगा । भरत ने हृदय में राजनीति को स्थान नहीं दिया । तब (पहले)तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवन से ही हाथ धोना पड़ेगा । सम्पूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जायें, तो भी श्री रामचन्द्र जी को रण में जीतने वाला कोई नहीं है । भरत जो ऐसा कर रहे हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है ? विष की बेलें अमृत फल कभी नहीं देती ।

दो०– अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु ।
हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ॥१८९॥

भावार्थ– ऐसा विचार कर गुह निषाद राज ने अपनी जाति वालों से कहा कि ''सब लोग सावधान हो जाओ । नावों को हाथ में (कब्जे में)कर लो और फिर उन्हें डुबा दो, तथा सब घाटों को रोक दो ।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा । राम काजु छनभंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू । बड़े भाग असि पाइअ मीचू ॥
स्वामि काज करिहउँ रन रारी । जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें । दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ॥
साधु समाज न जाकर लेखा । राम भगत महुँ जासु न रेखा ॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू । जननी जौबन बिटप कुठारू ॥

भावार्थ– सुसज्जित होकर घाटों को रोक लो और सब लोग मरने के साज सजा लो (अर्थात् भरत से युद्ध में लड़कर मरने के लिए तैयार हो जाओ)। मैं भरत से सामने लोहा लूँगा और जीते जी उन्हें गंगापार न उतरने दूँगा। युद्ध में मरण, फिर गंगा जी का तट ;श्री राम जी का काम और क्षणभंगुर शरीर (जो, जब चाहे नाश हो जाय)। भरत श्री राम जी के भाई और राजा (उनके हाथ से मरना)और मैं नीच सेवक–बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है। मैं स्वामी के काम के लिए रण में लड़ाई करूँगा और चौदहों लोकों को अपने यश से उज्जवल कर दूँगा। श्री रघुनाथ जी के निमित्त प्राण त्याग दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथ में आनन्द के लड्डू हैं। साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नहीं और श्री रामचन्द्र जी के भक्तों में जिसका स्थान नहीं,वह जगत में पृथवी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है। वह माता के यौवनरूपी वृक्ष के काटने के लिये कुल्हाड़मात्र है।"

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है--

'दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ।।'

निषादराज गूह ने जब भरत को सेना-सहित आते देखा तो उन्हें आशंका हुई कि यद्यपि राजा दशरथ ने भरत को केवल चौदह वर्ष के लिए अयोध्या का राज्य दिया था, भरत की नियत बदल गई। वह सेना लेकर आये हैं ताकि निहत्ये बनवासी राम को मारकर आजीवन निष्कण्टक राज्य करें। परन्तु मेरे जीते जी उनकी यह मनोकामना कभी भी पूरी नहीं होगी। मैं उनको चुनौती दूँगा और गंगा पार कभी भी नहीं जाने दूँगा। यदि मैंने युद्ध में भरत को हरा दिया और उन्हें गंगा पार नहीं जाने दिया, तो मेरा यश चौदहों लोकों मे फैल जायेगा और यदि मैं युद्ध में मारा गया, तो मेरे प्राण श्री राम की भक्ति में जायेंगे और मुझे सद्गति प्राप्त होगी। युद्ध में जाते हुए हर योद्धा की मनोगति ऐसी ही होती है। यदि जीत गया तो सारे देश में उसका यशोगान होगा, अगर मारा गया तो देशभक्त कहलायेगा। बीर के दोनो हाथों में लड्डू होते हैं। चित भी मेरी, पट भी मेरी। Heads I win, tails you lose.

दो०– बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु ।।१९०।।

भावार्थ– (इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी के लिये प्राण समर्पण का निश्चय करके) निषादराज विषाद से रहित हो गया और सब का उत्साह बढ़ाकर तथा श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा।

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा ॥

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रुचइ रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥
अँगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े॥
निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥

भावार्थ– (उसने कहा)–'हे भाइयों ! जल्दी करो और सब समान सजाओ। मेरी आज्ञा सुनकर कोई मन में कायरता न लावे।' सब हर्ष के साथ बोल उठे–' हे नाथ ! बहुत अच्छा,' और आपस में एक दूसरे का जोश बढ़ाने लगे। निषाद राज को जोहार कर-करके सब निषाद चले। सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राम में लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों की जूतियों का स्मरण करके उन्होंने भाथियाँ (छोटे-छोटे तरकस)बाँधकर, धुनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों)पर प्रत्यंचा चढ़ायी। कवच पहन कर सिर पर लोहे का टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछों को सीधा कर रहे हैं (सुधार रहे हैं)। कोई तलवार के वार रोकने में अत्यन्त ही कुशल है। वे ऐसे उमंग में भरे हैं मानों धरती छोड़कर आकाश में कूद रहे हों। अपना-अपना साज-समाज (लड़ाई का सामान और दल)बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुह को जोहार की। निषाद राज ने सुन्दर योद्धाओं को देखकर, सब को सुयोग्य जाना और नाम ले लेकर सब का सम्मान किया।

दो०– भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥१९१॥

भावार्थ– (उसने कहा)–'हे भाइयों ! धोखा न लाना (अर्थात् मरने से न घबराना)। आज मेरा बड़ा भारी काम है।' यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोश के साथ बोल उठे–''हे वीर! अधीर मत हो।

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥
जीवत पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥
दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥
बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें॥

भावार्थ– हे नाथ ! श्री रामचन्द्र जी के प्रताप से और आपके बल से हम लोग भरत की सेना को बिना वीर और बिना घोड़े की कर देंगे (एक एक वीर और एक एक घोड़े को मार डालेंगे) । जीते जी पीछे पाँव न रक्खेंगे । पृथ्वी को रूण्ड-मुण्ड मयी कर देंगे (सिरों और धड़ों से छा देगें) ।'' निषादराज ने वीरों का बढ़िया दल देखकर कहा–'जुझाऊ (लड़ाई का) ढोल बजाओ ।' इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई । शकुन विचारने वालों ने कहा कि संकेत सुन्दर है, जीत होगी । एक बूढ़े ने शकुन विचार कर कहा–' भरत से मिल लीजिये, उनसे लड़ाई नहीं होगी । भरत श्री रामचन्द्र जी को मनाने जा रहे हैं । शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है ।' यह सुन निषादराज गुह ने कहा--''बूढ़ा ठीक कह रहा है । जल्दी में बिना विचारे कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं । भरत जी का शील स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करने में हित की बहुत बड़ी हानि है ।

दो०– गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ ।।१९२ ।।

भावार्थ– अतएव सब वीर लोग इकट्ठे होकर सब घाटों को रोक लो । मैं जाकर भरत जी से मिलकर उनका भेद लेता हूं । उनका भाव मित्र का है या शत्रु या उदासीन का, यह जानकर तब आकर जैसा (उसी के अनुसार)प्रबन्ध करूँगा ।

लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ । बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ ।।
अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग मागे ।।
मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ।।
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगल मूल सगुन सुभ पाए ।।
देखि दूरि तें कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ।।
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ।।
राम सखा सुनि संदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ।।
गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ।।

भावार्थ– उनके सुन्दर स्वभाव से मैं उनके स्नेह को पहचान लूँगा । वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते ।'' ऐसा कहकर वह भेंट का समान सजाने लगा । उसने कन्द, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाये । कहार लोग पुरानी और मोटी पहिना-नामक मछलियों के भार भर-भर कर लाये । भेंट का सामान सजाकर मिलने के लिये चले, तो मंगलदायक शुभ शकुन मिले । निषादराज ने मुनिराज वशिष्ठ जी को देखकर अपना नाम बतलाकर दूर ही से दण्डवत् प्रणाम किया । मुनीश्वर वशिष्ठ जी ने उसको राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरत को समझाकर कहा– (कि यह श्री राम जी का मित्र है) ।'यह श्री राम का

मित्र है,' इतना सुनते ही भरत जी ने रथ त्याग दिया। वे रथ से उतरकर प्रेम में उमंगते हुए चले। निषादराज गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर माथा टेककर जोहार की।

दो०— करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ।।१९३।।

भावार्थ— दण्डवत करते देखकर भरत जी ने उठाकर उसे छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानों स्वयं लक्ष्मण जी से भेंट हो गयी हो।

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती।।
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला।।
लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता।।
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं।।
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा।।
करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई।।
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना।।

भावार्थ— भरत जी गुह को अत्यन्त प्रेम से गले लगा रहे हैं। प्रेम की रीति को सब लोग सिहा रहे हैं (ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसाकर रहे हैं)। मंगल की मूल 'धन्य-धन्य' की ध्वनि करके देवता उसकी सराहना करते हुए फूल बरसा रहे हैं। (वे कहते हैं)—''जो लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीचा माना जाता है, जिसकी छाया छू जाने से भी स्नान करना होता है, उसी निषाद से अंकवार भरकर (हृदय से चिपटा कर)श्री रामचन्द्र जी के छोटे भाई भरत जी (आनन्द और प्रेमवश)शरीर में पुलकावलि से परिपूर्ण हो रहे हैं। जो लोग राम राम कहकर जँभाई लेते हैं (अर्थात् आलस्य से भी जिनके मुँह से रामनाम का उच्चारण हो जाता है) पापों के समूह (कोई भी पाप)उनके सामने नहीं आते। फिर इस गुह को तो स्वयं श्री रामचन्द्र जी ने हृदय से लगा लिया और कुल समेत इसे जगपावन (जगत को पवित्र करने वाला)बना दिया। कर्मनाशा नदी का जल गंगा जी में पड़ जाता है (मिल जाता है)तब कहिये, उसे कौन सिरपर धारण नहीं करता ? जगत जानता है कि उलटा नाम 'मरा-मरा' जपते जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के समान हो गए।

दो०— खपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात।।१९४।।

भावार्थ-- मूर्ख और पामर चाण्डाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी राम नाम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं।

नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई ॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवधलोग सुखु लहहीं ॥
रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा। भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥
कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥

भावार्थ-- इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, युग युगान्तर से यही रीति चली आ रही है। श्री रघुनाथ जी ने किसको बड़ाई नहीं दी ?'' इस प्रकार देवता राम नाम की महिमा कह रहे हैं और उसे सुन-सुनकर अयोध्या के लोग सुख पा रहे हैं। राम सखा निषादराज से प्रेम के साथ मिलकर भरत जी ने कुशल-क्षेम और सुन्दर मंगल समाचार पूछे। भरत जी का शील और प्रेम देखकर निषाद उस समय विदेह हो गया (प्रेमामुग्ध होकर देह की सुध भूल गया)। उसके मन में संकोच, प्रेम और आनन्द इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा टकटकी लगाये भरतजी को देखता रहा। फिर धीरज धरकर भरत जी के चरणों की वन्दना करके प्रेम के साथ हाथ जोड़कर विनती करने लगा। ''हे प्रभो ! कुशल के मूल आपके चरण कमलों के दर्शन कर मैंने तीनों कालों में अपना कुशल जान लिया। अब आपके परम अनुग्रह से करोड़ों कुलों (पीढ़ियों)सहित मेरा मंगल (कल्याण)हो गया।

दो०-- समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

भावार्थ-- मेरी करतूत और कुल को समझकर और प्रभु श्री रामचन्द्र जी की महिमा को मन में देख (विचार)कर (अर्थात कहाँ तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करने वाला जीव, और कहाँ अनन्त कोटि ब्रह्मांडों के स्वामी भगवान श्री रामचन्द्र जी। पर उन्होंने मुझ जैसे नीच को भी अपनी अहैतुकी कृपा वश अपना लिया--यह समझकर)जो श्री रघुबीर श्री राम जी के चरणों का भजन नहीं करता, वह जगत् में विधाता के द्वारा ठगा गया है।

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें ॥
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥

कहि निषाद निज नाम सुबानी । सादर सकल जोहारीं रानी ॥
जानि लखन सम देहिं असीसा । जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
निरखि निषादु नगर नर नारी । भए सुखी जनु लखनु निहारी ॥
कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू । भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई । प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई ॥

भावार्थ– मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूँ और लोक-वेद दोनों से सब प्रकार से बाहर हूँ । पर जब से श्री रामचन्द्र जी ने मुझे अपनाया है, तभी से मैं विश्व का भूषण हो गया ।'' निषाद राज की प्रीति को देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरत जी के छोटे भाई शत्रुघ्न जी उनसे मिले । फिर निषाद ने अपना नाम ले-लेकर सुन्दर (नम्र और मधुर)वाणी से सब रानियों को आदर पूर्वक जोहार की । रानियाँ उसे लक्ष्मण जी के समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौ लाख वर्षों तक सुखपूर्वक जिओ । नगर के स्त्री पुरुष निषाद को देखकर ऐसे सुखी हुए मानों लक्ष्मण जी को देख रहे हैं। सब कहते हैं कि जीवन का लाभ तो इसी ने पाया है, जिसे कल्याण स्वरूप श्री रामचन्द्र जी ने भुजाओं में बाँधकर गले लगाया है । निषाद अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर मन में परम आनन्दित हो सब को अपने साथ लिवा ले चला ।

दो०– सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ ।।१९६।।

भावार्थ– उसने सब सेवकों को इशारे से कह दिया। वे स्वामी का रुख पाकर चले और उन्होंने घरों में, वृक्षों के नीचे, तालाबों पर तथा बगीचों और जंगलों में ठहरने के लिए स्थान बना दिये ।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब ॥
सोहत दिएँ निषादहिं लागू । जनु तनु धरें बिनय अनुरागू ॥
एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा । दीखि जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥
करहिं प्रनाम नगर नर नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु मागहिं कर जोरी । रामचंद्र पद प्रीति न थोरी ॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि बर मागउँ एहू । सीय राम पद सहज सनेहू ॥

भावार्थ– भरत जी ने जब श्रृंगवेरपुर को देखा, तब उनके सब अंग प्रेम के कारण शिथिल हो गये । वे निषाद को लाग दिये (अर्थात् उसके कन्धे पर हाथ रखकर चलते

हुए)ऐसे शोभा दे रहे हैं मानों विनय और प्रेम शरीर धारण किये हुए हैं। इस प्रकार भरत जी ने सब सेना को साथ में लिये हुए जगत् को पवित्र करने वाली गंगा जी के दर्शन किये। श्री राम घाट को (जहाँ श्री राम जी ने स्नान संध्या की थी)प्रणाम किया। उनका मन इतना आनन्दमय हो गया मानों उन्हें स्वयं श्री राम जी मिल गये हों। नगर के नर नारी प्रणाम कर रहे हैं और गंगा जी के ब्रह्मरूप जल को देख-देखकर आनन्दित हो रहे हैं। गंगा जी में स्नान कर हाथ जोड़कर सब यही वर माँगते हैं कि श्री रामचन्द्र जी के चरणों में हमाररा प्रेम कम न हो (अर्थात् बहुत अधिक हो)। भरत जी ने कहा–'गंगे ! आपकी रज सब को सुख देने वाली तथा सेवक के लिये तो कामधेनु ही है। मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि श्री सीता राम जी के चरणों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।'

दो०– एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ ।।१९७।।

भावार्थ– इस प्रकार भरत जी, स्नान कर और गुरु की आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी हैं, डेरा उठा ले चले।

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा ।।
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोउ भाई ।।
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी ।।
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ।।
चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेह न थोरें ।।
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ।।
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए ।।
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू ।।

भावार्थ– लोगों ने जहाँ तहाँ डेरा डाल दिया। भरत जी ने सभी का पता लगाया (कि सब लोग आकर आराम से टिक गये हैं या नहीं)। फिर देव पूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्री रामचन्द्र जी की माता कौशल्या जी के पास गये। चरण दबा कर और कोमल वचन कह-कहकर भरत जी ने सब माताओं का सत्कार किया। फिर शत्रुघ्न को माताओं की सेवा सौंपकर आपने निषाद को बुला लिया। सखा निषादराज से हाथ से हाथ मिलाये हुए भरत जी चले। प्रेम कुछ थोड़ा नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है), जिससे उनका शरीर शिथिल हो रहा है। भरत जी सखा से पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखलाओ और नेत्र और मन की जलन कुछ ठंडी करो, जहां सीता जी, श्री राम जी और लक्ष्मण रात को सोये थे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रों के कोयों में (प्रेमाश्रुओं का)जल भर आया। भरत जी के वचन सुनकर निषाद को बडा विषाद हुआ। वह तुरंत ही उन्हें वहाँ ले गया।

दो०– जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु ।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु ।।१९८।।

भावार्थ– जहाँ पवित्र अशोक के वृक्ष के नीचे श्री रामचन्द्र जी ने विश्राम किया था । भरत जी ने वहाँ अत्यन्त प्रेम से आदरपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया ।

कुस साँथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ।।
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।।
कनक बिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीय सम लेखे ।।
सजल बिलोचन हृदयँ गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ।।
श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना । जथा अवध नर नारि बिलीना ।।
पिता जनक देउँ पटतर केही । करतल भोगु जोगु जग जेही।।
ससुर भानुकुल भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावतिपालू ।।
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं । जो बड़ होत सो राम बड़ाई ।।

भावार्थ– कुशों की सुन्दर साथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। श्री रामचन्द्र जी के चरणचिन्हों की रज आँखों में लगाई । (उस समय की) प्रेम की अधिकता कहते नहीं बनती । भरत जी ने दो चार स्वर्ण बिन्दु (सोने के कण या तारे जो सीता जी के गहनों कपड़ों से गिर पड़े थे) देखे तों उनको सीता जी के समान मानकर सिरपर रख लिया। उनके नेत्र जल (प्रेमाश्रु) से भरे हैं और हृदय में ग्लानि भरी है । वे सखा से सुन्दर वाणी में ये बचन बोले – "ये स्वर्ण के कण या तारे भी सीताजी के विरह से ऐसे श्रीहत (शोभाहीन) एवं कान्तिहीन हो रहे हैं जैसे रामवियोग में अयोध्या के नर-नारी विलीन (शोक के कारण क्षीण)हो रहे हैं । जिन सीता जी के पिता राजा जनक हैं , इस जगत् में भोग और योग दोनों ही जिनकी मुट्ठी में हैं, उन जनक जी को मैं किसकी उपमा दूँ। सूर्यकुल के सूर्य राजा दशरथ जी जिनके ससुर हैं, जिनको अमरावती के स्वामी इन्द्र भी सिहाते थे (ईर्ष्या पूर्वक उनके जैसा ऐश्वर्य और प्रताप पाना चाहते थे) और प्रभु श्री रघुनाथ जी जिनके प्राणनाथ हैं, जो इतने बड़े हैं कि जो कोई भी बड़ा होता है वह श्री रामचन्द्र जी की (दी हुई)बड़ाई से ही होता है ।

दो०– पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि ।
बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि ।।१९९।।

भावार्थ– उन श्रेष्ठ पतिब्रता स्त्रियों में शिरोमणि सीता जी की साथरी (कुशशय्या) देखकर मेरा हृदय हहराकर (दहल कर)फट नहीं जाता । हे शंकर ! यह बज्र से भी अधिक कठोर है ।

लालन जोगु लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ।।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे ।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती ।।
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर । रूप सील सुख सब गुन सागर ।।
पुरजन परिजन गुर पितु माता । राम सुभाउ सबहि सुखदाता ।।
बैरिउ राम बड़ाई करहीं । बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ।।
सारद कोटि कोटि सत सेषा । करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ।।

भावार्थ– मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बहुत ही सुन्दर और प्यार करने योग हैं । ऐसे भाई न तो किसी के हुए न हैं, न होने के ही हैं । जो लक्ष्मण अवध के लोगों को प्यारे, माता-पिता के दुलारे और श्री सीताराम जी के प्राण के प्यारे हैं । जिनकी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, जिनके शरीर में कभी गरम हवा भी नहीं लगी, वे बन में सब प्रकार की विपत्तियों को सह रहे हैं । (हाय !) इस मेरी छाती ने (कठोरता में)करोड़ों बज्रों का भी निरादर कर दिया (नहीं तो यह कभी की फट गयी होती)। श्री रामचन्द्र जी ने जन्म (अवतार)लेकर जगत को प्रकाशित (परम सुशोभित)कर दिया । वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणों के समूह हैं । पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता-माता सभी को श्री रामजी का स्वभाव सुख देने वाला है । शत्रु भी श्री रामचन्द्र जी की बड़ाई करते हैं । बोल चाल, मिलने का ढंग और विनय से वे मन को हर लेते हैं । करोड़ों सरस्वती और अरबों शेष जी भी प्रभु श्री रामचन्द्र जी के गुण समूहों की गिनती नहीं कर सकते ।

दो०– सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान ।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान ।।२००।।

भावार्थ– जो सुखस्वरूप रघुवंश शिरोमणि श्री रामचन्द्र जी मंगल और आनन्द के भण्डार हैं, वे पृथ्वी पर कुशा विछाकर सोते हैं । विधाता की गति बड़ी बलवान है ।

राम सुना दुखु कान न काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवइ राऊ ।।
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती । जोगवहिं जननि सकल दिन राती ।।
ते अब फिरत बिपिन पदचारी । कंद मूल फल फूल अहारी ।।
धिग कैकेई अमंगल मूला । भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ।।
मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी । सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ।।
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाताँ । साइँदोह मोहि कीन्ह कुमाताँ ।।
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू । नाथ करिअ कत बादि बिषादू ।।
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि । यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी ने कानों से भी कभी दुःख का नाम नहीं सुना । महाराज स्वयं जीवन-वृक्ष की तरह उनकी देख भाल किया करते थे । सब माताएँ भी रात-दिन उनकी ऐसी सावधानी से देखभाल करती थीं जैसे पलक नेत्रों की और साँप अपनी मणि की करते हैं । वही श्री रामचन्द्र जी अब जंगलों में पैदल फिरते हैं और कन्द, मूल तथा फल-फूलों का भोजन करते हैं । अमंगल की मूल कैकेयी को धिक्कार है, जो अपने प्राणप्रिय प्रीतम पति से भी प्रतिकूल हो गई । मुझ पापों के समुद्र और अभागे को धिक्कार है, धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए । विधाता ने मुझे कुल का कलंक बनाकर पैदा किया और माता ने मुझे स्वामी द्रोही बना दिया ।'' यह सुनकर निषादराज प्रेमपूर्वक समझाने लगा–''हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद किस लिये करते हैं ? श्री राम चन्द्र जी आपको प्यारे हैं और आप श्री रामचन्द्र जी को प्यारे हैं । यही निचोड़ (निश्चित सिद्धान्त)है, दोष तो प्रतिकूल विधाता को है ।

छं०– बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ।।
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौंहें किएँ ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ ।।

सो०– अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन ।।
चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन ।।२०१।।

भावार्थ– प्रतिकूल विधाता की करनी बड़ी कठोर है, जिसने माता कैकेयी को बावली बना दिया (उसकी मति फेर दी)। उस रात को प्रभु श्री रामचन्द्र जी बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी सराहना करते थे ।'' तुलसीदास जी कहते हैं (निषादराज कहता है)कि ''श्री रामचन्द्र जी को आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है । मैं सौगंध खाकर कहता हूँ। परिणाम में मंगल होगा, यह जानकर आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिये । श्री रामचन्द्र जी अन्तर्यामी , तथा संकोच, प्रेम और कृपा के धाम हैं, यह विचार कर और मन में दृढ़ता लाकर चलिये और विश्राम कीजिये ।''

टिप्पणी– ऊपर अयोध्याकाण्ड का सातवाँ छंद और सोरठा है । यह दोहे ९०-९३ और उनके बीच की चौपाइयों की पुनरावृत्ति है (देखिये पृष्ठ ४७५-४७७)। वहाँ लक्ष्मण निषादराज गुह को सभझा रहे हैं, और यहां गुह वही बात भरत को समझा रहा है । पहले जब गुह को मानसिक क्लेश हुआ था कि वह राम और सीता जो पहले दूध के फेन के समान उज्जवल, कोमल और सुन्दर गद्दे, बिछौना और तकियों पर सोया करते थे, आज बिना वस्त्र घास-फूस की साथरी पर सोये हैं, तब लक्ष्मण ने उनको समझाया कि योग-वियोग, हित-अनहित, जन्म-मरण, सम्पत्ति-विपत्ति, स्वर्ग-नरक यह सब भ्रम के फंदे हैं । परमार्थ यह नहीं है ।श्री रामचन्द्र जी भक्तों, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिए केवल नरलीला कर रहे हैं ।

श्रृंगवेरपुर में अशोक वृक्ष के नीचे, वह स्थान देखकर जहाँ राम और सीता ने रात बिताई थी, भरत को भी वहीं मानसिक क्लेश हुआ, जो पहले गुह को हुआ था। गुह के ज्ञान-चक्षु लक्ष्मण ने खोल दिए थे। इसलिये अब गुह भरत को समझाते हैं कि प्रतिकूल विधाता ने आपकी माता की मतिभ्रष्ट कर दी। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। श्री रामचन्द्र जी अन्तर्यामी हैं, तथा संकोच, प्रेम और कृपा के धाम हैं। यह विचार कर आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा ॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी ॥
परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥
एक सराहहिं भरत सनेहू। कोऊ कह नृपति निबाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ॥
एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा ॥
गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सुहाई। नईं नाव सब मातु चढ़ाई ॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥

भावार्थ— सखा के वचन सुनकर, हृदय में धीरज धारण कर, श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करते हुए भरत जी डेरे को चले। नगर के सारे स्त्री पुरुष यह (श्री राम जी के ठहरने के स्थान)का समाचार पाकर बड़े आतुर होकर उस स्थान को देखने चले। वे उस स्थान की परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को बहुत दोष देते हैं। नेत्रों में जल भर-भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाता को दोष देते हैं। कोई भरत जी के स्नेह की सराहना करते हैं, और कोई कहते हैं कि राजा ने अपना प्रेम खूब निबाहा। सब अपनी निन्दा करके निषाद की प्रशंसा करते हैं। उस समय के विमोह और विषाद को कौन कह सकता है। इस प्रकार रातभर सब लोग जागते रहे। सबेरा होते ही खेवा लगा। सुन्दर नाव पर गुरु जी को चढ़ा कर, फिर नयी नाव पर सब माताओं को चढ़ाया। चार घड़ी में सब गंगा जी के पार उतर गये। भरत जी ने उतर कर सबको सँभाला।

टिप्पणी— ऊपर की चौपाई नौ विषम पंक्तियों की है। पिछले पृष्ठ पर बताया गया है कि राम ने जिस स्थान पर श्रृंगवेरपुर में रात बिताई थी, उसे देखकर भरत को बहुत विषाद हुआ और गुह ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया। भरत के साथ जो सेना और अवधपुर वासी आए थे, वह भी उस पवित्र स्थान को देखने आए और उसकी परिक्रमा की। राम के शयन स्थान को देखकर लोगों की विभिन्न प्रतिक्रिया हुई—

१- कोई कैकेयी को दोष देते हैं;

२- कोई प्रतिकूल विधाता को दोष देते हैं;

३- कोई भरत जी के स्नेह की सराहना करते हैं;

४- कोई कहते हैं कि राजा ने राम के प्रति अपना प्रेम खूब निबाहा;और

५- कोई निषाद का भाग्य सराहते हैं और अपनी निन्दा करते हैं।

इस प्रकार रात भर सब लोग जागते रहे। प्रातः होते ही चार घड़ी में सब गंगा जी के पार उतर गये।

दो०— प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ।।२०२।।

भावार्थ— प्रातःकाल की क्रियाओं को करके, माता के चरणों की वन्दना करके और गुरू जी को सिर नवाकर, भरत जी ने निषाद गणों को (रास्ता दिखलाने के लिये)आगे कर दिया और सेना चल दी।

कियउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चलाईं।।
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा।।
आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लषन सहित सिय रामू।।
गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए।।
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा।।
रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए।।
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी।।

भावार्थ— निषाद राज को आगे करके पीछे माताओं की पालकियाँ चलायीं। छोटे भाई शत्रुघ्न जी को बुलाकर उनके साथ कर दिया फिर ब्राह्मणों सहित गुरु जी ने गमन किया। तदनन्तर आपने (भरत जी ने)गंगा जी को प्रणाम किया। लक्ष्मण सहित श्री सीताराम जी का स्मरण किया। भरत जी पैदल ही चले। उनके साथ कोतल (बिना सवार के)घोड़े बागडोर से बंधे हुए चले जा रहे हैं। उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ! आप घोड़े पर सवार हो लीजिये। (भरत जी जबाव देते हैं कि)श्री रामचन्द्र जी तो पैदल ही गये और हमारे लिये रथ, हाथी, और घोड़े बनाये गये हैं। मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊँ। सेवक का धर्म सब से कठिन होता है। भरत जी की दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवक गण ग्लानि के मारे मरे जा रहे हैं।

दो०— भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ।।२०३।।

भावार्थ— प्रेम में उमंग-उमंग कर सीता-राम कहते हुए भरत जी ने तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश किया ।

झलका झलकत पायन्ह कैसें । पंकज कोस ओस कन जैसें ।।
भरत पयादेहिं आए आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ।।
खबरि लीन्ह सब लोग नहाए । कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए ।।
सबिधि सितासित नीर नहाने । दिए दान महिसुर सनमाने ।।
देखत स्यामल धवल हलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ।।
सकल काम प्रद तीरथराऊ । बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ।।
मागउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ।।
अस जियँ जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी ।।

भावार्थ— उनके चरणों के छाले कैसे चमकते हैं, जैसे कमल की कली पर ओस की बूँदें चमकती हों । भरत जी आज पैदल ही चलकर आये हैं, यह समाचार सुनकर सारा समाज दुखी हो गया । जब भरत जी ने यह पता पा लिया कि सब लोग स्नान कर चुके हैं, तब त्रिवेणी पर आकर उन्हें प्रणाम किया । फिर विधिपूर्वक (गंगा-यमुना के)श्वेत और श्याम जल में स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणों का सम्मान किया । श्याम और सफेद (यमुना जी और गंगा जी) की लहरों को देखकर भरत जी का शरीर पुलकित हो उठा उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—''हे तीर्थ राज ! आप समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपका प्रभाव वेदों में प्रसिद्ध और संसार में प्रकट है । मैं अपना धर्म (न माँगने का क्षत्रिय धर्म) त्याग कर आपसे भीख माँगता हूँ । आर्त मनुष्य कौन-सा कुकर्म नहीं करता ? ऐसा हृदय में जानकर सुजान उत्तम-दानी जगत् में माँगने वाले की वाणी को सफल किया करते हैं (अर्थात् वह जो मांगता है सो दे देते हैं)।

दो०— अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ।।२०४।।

भावार्थ— मुझे न अर्थ की रुचि (इच्छा) है, न धर्म की, और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्री राम जी के चरणों में प्रेम हो, बस यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं ।

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ।।
सीता राम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥

भावार्थ– स्वयं श्री रामचन्द्र जी भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरु द्रोही तथा स्वामि द्रोही भले ही कहें, पर श्री रामचन्द्र जी के चरणों में मेरा प्रेम आपकी कृपा से दिन-दिन बढ़ता ही रहे। मेघ चाहे जन्म भर चातक की सुध भुला दे और जल माँगने पर वह चाहे वज्र और पत्थर (ओले)ही गिरावे, पर चातक की रटन घटने से तो उसकी बात ही घट जायेगी (प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जायेगी)। उसकी तो प्रेम बढ़ने से ही सब तरह से भलाई है। जैसे तपाने से सोने पर आब (चमक)आ जाती है, वैसे ही प्रियतम के चरणों में प्रेम का नियम निबाहने से प्रेमी सेवक का गौरव बढ़ जाता है।'' भरत जी के वचन सुनकर बीच त्रिवेणी में से सुन्दर मंगल देने वाली कोमल वाणी हुई –'हे तात भरत, तुम सब प्रकार से साधु हो। श्री राम चन्द्र जी के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम व्यर्थ ही मन में ग्लानि कर रहे हो। श्री रामचन्द्र जी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है।'

दो०– तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥२०५॥

भावार्थ– त्रिवेणी जी के अनुकूल वचन सुनकर, भरत जी का शरीर पुलकित हो गया, हृदय में हर्ष छा गया।'भरत जी धन्य हैं, धन्य हैं,'कह कर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥
सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमत भाग्य निज लेखे॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे॥
मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥

भावार्थ– तीर्थराज प्रयाग में रहने वाले बानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (सन्यासी) सब बहुत ही आनन्दित हैं और दस पाँच मिलकर आपस में कहते हैं कि भरत जी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है। श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर गुण समूहं को सुनते हुए वे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज जी के पास आये। मुनि ने भरत जी को दण्डवत् प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान् सौभाग्य समझा। उन्होंने दौड़कर भरत जी को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। मुनि ने उन्हें आसन दिया। वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानों भाग कर संकोच के घर में घुस जाना चाहते हैं। उनके मन में यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे (तो मैं क्या उत्तर दूँगा)। भरत जी के शील और संकोच को देखकर ऋषि बोले–"भरत सुनो, हम सब खबर पा चुके हैं। विधाता के काम पर कुछ वश नहीं चलता।

दो०– तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ।।२०६।।

भावार्थ– माता की करतूत को समझकर (याद करके) तुम हृदय में ग्लानि मत करो। हे तात ! कैकेयी का कोई दोष नहीं है। उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गई थी।

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ।।
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई।।
लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई।।
राउ सत्यब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई।।
राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला।।
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी।।
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू।।
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू।।

भावार्थ– यह कहते भी कोई भला नहीं कहेगा, क्योंकि लोक और वेद दोनों ही विद्वानों को मान्य हैं। किन्तु हे तात ! तुम्हारा निर्मल यश गाकर तो लोक और वेद दोनों बड़ाई पायेंगे। यह लोक और वेद दोनों को मान्य है और सब यही कहते हैं कि पिता जिसको राज्य दे, वही पाता है। राजा सत्यब्रती थे तुमको बुलाकर राज्य देते, तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती। सारे अनर्थ की जड़ तो श्री रामचन्द्र जी का वनगमन है, जिसे सुनकर समस्त संसार को पीड़ा हुई। वह श्री रामचन्द्र जी का वनगमन भी भावी वश हुआ। बेसमझ रानी तो भावी वश कुचाल करके अन्त में पछतायी। उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक सा भी अपराध कहे, तो वह अधम, अज्ञानी और असाधु है। यदि तुम राज्य करते, तो भी तुम्हें दोष न होता। सुनकर श्री रामचन्द्र जी को भी सन्तोष होता।

दो०— अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु ।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु ।।२०७।।

भावार्थ— हे भरत ! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया, यही मत तुम्हारे लिये उचित था । श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम होना ही समस्त सुन्दर मंगलों का मूल है ।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना । भूरिभाग को तुम्हहि समाना ।।
यह तुम्हार आचरजु न ताता । दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ।।
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं । पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ।।
लखन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ।।
जाना मरमु नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा ।।
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें । सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ।।
यह न अधिक रघुबीर बड़ाई । प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ।।
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ।।

भावार्थ— सो वह (श्री रामचन्द्र जी के चरणों का प्रेम)तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है । तुम्हारे समान बड़भागी कौन है? हे तात ! तुम्हारे लिये यह आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि तुम दशरथ जी के पुत्र और श्री रामचन्द्र जी के प्यारे भाई हो । हे भरत! सुनों, श्री रामचन्द्र जी के मन में तुम्हारे समान प्रेम पात्र दूसरा कोई नहीं है । लक्ष्मण जी, श्री रामचन्द्र जी और सीता जी तीनों को सारी रात उस दिन अत्यन्त प्रेम के साथ तुम्हारी सराहना करते ही बीती । प्रयाग राज में जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैंने उनका यह मर्म जाना । वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे । तुम पर श्री रामचन्द्र जी का ऐसा ही (आगाध)स्नेह है जैसा मूर्ख (विषयासक्त)मनुष्य का संसार के सुखमय जीवन पर होता है। यह श्री रघुनाथ जी की बहुत बड़ाई नहीं है । क्योंकि श्री रघुनाथ जी तो शरणागत के कुटुम्ब भर को पालने वाले हैं । हे भरत ! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीर धारी श्री रामचन्द्र जी के प्रेम ही हो ।

दो०— तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ।।२०८।।

भावार्थ— हे भरत ! तुम्हारे लिये (तुम्हारी समझ में)यह कलंक है, पर हम सबके लिए तो उपदेश है । श्री रामभक्ति रूपी सिद्धि के लिये यह समय गणेश (बड़ा शुभ)हुआ है।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥
कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू ॥
पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ । कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ ॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी । सुमिरत सकल सुमंगल खानी ॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं । अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं ॥

भावार्थ– हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चन्द्रमा है और श्री राम चन्द्र जी के दास कुमुद और चकोर हैं (वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता है और घटता है, जिससे कुमुद और चकोर को दुख होता है), परन्तु तुम्हारा यशरूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, कभी अस्त होगा ही नहीं । जगत रूपी आकाश में यह घटेगा नहीं, वरन दिन दिन दूना होगा । त्रैलोक्य रूपी चकवा इस यशरूपी चन्द्रमा पर अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्री रामचन्द्र जी का प्रताप रूपी सूर्य इसकी छवि को हरण नहीं करेगा । यह चन्द्रमा रात दिन सदा सब किसीको सुख देने वाला होगा । कैकेयी कुकर्म रूपी राहू इसे ग्रास नहीं करेगा । यह चन्द्रमा श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत से परिपूर्ण है । यह गुरु के अपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। तुमने इस यशरूपी चन्द्रमा की सृष्टि करके पृथ्वी पर भी अमृत को सुलभ कर दिया । अब श्री राम जी के भक्त इस अमृत से तृप्त हो लें । राजा भगीरथ गंगा जी को लाये, जिन (गंगा जी)का स्मरण ही सम्पूर्ण मंगलों की खान है । दशरथ जी के गुण समूहों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, अधिक क्या , जिसकी बराबरी का जगत् में कोई नहीं है ।

दो०– जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ ।।२०९।।

भावार्थ– जिसके प्रेम और संकोच के वश में होकर स्वयं सच्चिदानन्द भगवान श्री राम जी आकर प्रकट हुए, जिन्हे श्री महादेव जी अपने हृदय के नेत्रों से भी अघाकर देख नहीं पाये (अर्थात् जिनका स्वरूप हृदय में देखते-देखते शिवजी कभी तृप्त नहीं हुए)।

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा । जहँ बस राम पेम मृगरूपा ॥
तात गलानि करहु जियँ जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ॥

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ । कहि अस पेम मगन पुनि भयऊ ॥
सुनि मुनि बचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा । सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ॥

भावार्थ– (परन्तु उससे भी बढ़कर) तुमने कीर्ति रूपी चन्द्रमा को उत्पन्न किया, जिसमें श्री राम-प्रेम हिरन का चिन्ह बसता है । हे तात ! तुम व्यर्थ ही हृदय में ग्लानि कर रहे हो । पारस पाकर भी तुम दरिद्रता से डर रहे हो । हे भरत ! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं (किसी का पक्ष नहीं करते), तपस्वी हैं (किसी का मुँह देखी नहीं कहते)और बन में रहते हैं (किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते)। सब साधनों का उत्तम फल हमें लक्ष्मण जी, श्री रामजी और सीता जी का दर्शन प्राप्त हुआ । सीता-लक्ष्मण सहित श्री रामदर्शन रूप उस महान फल का परम फल यह तुम्हारा दर्शन है । प्रयागराज समेत यह हमारा बड़ा भाग्य है । हे भरत ! तुम धन्य हो, तुमने अपने यश से जगत को जीत लिया है ।'' ऐसा कहकर मुनि प्रेम में मग्न हो गये । भरद्वाज मुनि के वचन सुनकर सभासद हर्षित हो गये । 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाये । आकाश में और प्रयागराज में'धन्य, धन्य' की ध्वनि सुन-सुन कर भरत जी प्रेम में मग्न हो रहे हैं ।

दो०– पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन ।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन ।।२१०।।

भावार्थ– भरत जी का शरीर पुलकित है । हृदय में श्री सीता राम जी हैं और कमल के समान नेत्र (प्रेमाश्रु के)जल से भरे हैं । वे मुनियों की मण्डली को प्रणाम करके गद्‌गद वचन बोले ।

मुनि समाजु अरु तीरथराजू । साँचिहुँ सपथ अघाइ अकाजू ॥
एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥
तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ । उर अंतरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू ॥
नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए । लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥
राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू । भूप सोच कर कवन प्रसंगू ॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥

भावार्थ– ''मुनियों का समाज है और फिर तीर्थ राज है। यहां सच्ची सौगन्ध खाने से भी भरपूर हानि होती है। इस स्थान में यदि कुछ बना कर कहा जाय, तो इसके समान कोई बड़ा पाप और न होगा। मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। आप सर्वज्ञ हैं, और रघुनाथ जी भी हृदय के भीतर की जानने वाले हैं (मैं कुंछ भी कहूँगा तो आपसे और उनसे छिपा नहीं रह सकता)। मुझे कैकेयी की करनी का कुछ भी सोच नहीं है और न अपने मन में इसी बात का दु:ख है कि जगत मुझे नीच समझेगा। न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जायेगा और न पिता जी के मरने का ही मुझे शोक है। क्योंकि उनका सुन्दर पुण्य और सुयश विश्वभर में सुशोभित है। उन्होंने श्री राम-लक्ष्मण-सरीखे पुत्र पाये। फिर जिन्होंने श्री रामचन्द्र जी के विरह में क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया। ऐसे राजा के लिये सोच करने का कौन प्रसंग है? (सोच इसी बात का है कि) श्री राम जी, श्री लक्ष्मण जी और सीता जी पैरों में बिना जूती के मुनियों का वेष बनाये बन-बन फिरते हैं।

दो०– अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ।।२११।।

भावार्थ– वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलों का भोजन करते हैं, पृथ्वी पर कुश और पत्ते विछाकर सोते हैं और वृक्षों के नीचे निवास करके नित्य सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं।

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती।।
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं।।
मातु कुमत बढ़ई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला।।
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू।।
मोहि लगि यहु कुठाटु तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा।।
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसइ अवध नहिं आन उपाएँ।।
भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहिं कीन्हि बहु भाँति बड़ाई।।
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी।।

भावार्थ– इसी दुख की जलन से निरन्तर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिन में भूख लगती है, न रात को नींद आती है। मैंने मन ही मन समस्त विश्व को खोज डाला, पर इस कुरोग की औषधि कहीं नहीं है। माता का कुमत (बुरा बिचार) पापों का मूल बढ़ई है। उसने हमारे हित का बसूला बनाया। उससे कलहरूपी कुकाठ का कुमन्त्र बनाया और चौदह वर्ष की अवधि रूपी कठिन कुमन्त्र पढ़कर उस यन्त्र को गाड़ दिया। (यहाँ माता का विचार बढ़ई है, भरत को राज्य बसूला है, राम का वनवास कुमन्त्र है और चौदह वर्ष की अवधि कुमन्त्र है)। मेरे लिये उसने यह सारा कुठार (बुरा साज) रचा और सारे जगत को

पर ही मिट सकता है और तभी अयोध्या बच सकती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं।'' भरत जी के वचन सुनकर मुनि ने सुख पाया और सभी ने उनकी बहुत प्रकार बड़ाई की। (मुनि ने कहा)–'हे तात ! अधिक सोच मत करो। श्री रामचन्द्र जी के चरणों का दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जायेगा।'

दो०– करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।
कंदू मूलफल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ।।२१२।।

भावार्थ– इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज ने समझा बुझाकर कहा–'अब आप लोग हमारे प्रेम प्रिय अतिथि बनिये और कृपा करके कन्द, मूल, फल-फूल, जो कुछ हमे दें स्वीकार कीजिये।'

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा ॥
भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए ॥
चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए ॥
मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता ॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होइ सो करहिं गोसाई ॥

भावार्थ– मुनि के वचन सुनकर भरत के हृदय में सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेढब संकोच आ पड़ा। फिर गुरुजनों की वाणी को महत्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणों की बन्दना करके हाथ जोड़ कर बोले–' हे नाथ ! आपकी आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है।' भरत जी के ये वचन मुनिश्रेष्ठ को अच्छे लगे। उन्होंने विश्वास पात्र सेवकों और शिष्यों को पास बुलाया। और कहा कि भरत जी की पहुनाई करनी चाहिए। जाकर कन्द-मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे नाथ ! बहुत अच्छा' कहकर सिर नवाया और तब बड़े आनन्दित होकर अपने-अपने काम को चले। मुनि को चिन्ता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमान को न्योता है। अब, जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी पूजा भी होनी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आ गईं और बोलीं–'हे गोसाईं! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें।'

दो०– राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज ।।२१३।।

भावार्थ– मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा–'छोटे भाई शत्रुघ्न और समाज सहित भरत जी श्री रामचन्द्र जी के विरह में व्याकुल हैं, इनकी पहुनाई (आतिथ्य सत्कार)करके इनके श्रम को दूर करो।'

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़ भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥
मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥
भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे॥
दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहिं मनु दीन्हें॥
सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुन्दर सुखद जथा रुचि जेही॥

भावार्थ– ऋद्धि-सिद्धि ने मुनिराज की आज्ञा को सिर चढ़ा कर अपने को बढ़भागिनी समझा। सब सिद्धियाँ आपस में कहने लगीं –'श्री रामचन्द्र जी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना में कोई नहीं आ सकता। अतः मुनि के चरणों की वन्दना करके आज वही करना चाहिये जिससे सारा राजसमाज सुखी हो।' ऐसा कह कर उन्होंने बहुत से सुन्दर घर बनाये, जिन्हें देखकर विमान भी बिलखते हैं (लजा जाते हैं)। उन घरों में बहुत से भोग (इन्द्रियों के विषय) और ऐश्वर्य (ठाट-बाट)का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गये। दासी-दास सब प्रकार की सामग्री लिये हुए मन लगाकर मनों को देखते रहते हैं (अर्थात् मेहमानों के मन की रुचि के अनुसार करते रहते हैं)। जो सुख के सामान स्वर्ग में भी स्वप्न में नहीं हैं, ऐसे सब समान सिद्धियों ने पल भर में सजा दिये। पहले तो उन्होंने सब किसी को जिसकी जैसी रुचि थी वैसे ही, सुखदायक सुन्दर निवास स्थान दिये।

दो०– बहुरि सपरिजन भरत कहुं रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥२१४॥

भावार्थ– और फिर कुटुम्ब सहित भरत जी को स्थान दिये, क्योंकि ऋषि भरद्वाज जी ने ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी। (भरत जी चाहते थे कि उनके सब संगियों को आराम मिले, इसलिये उनके मन की बात जानकर मुनि ने पहले उन लोगों को स्थान देकर, पीछे सपरिवार भरत जी को स्थान देने के लिये आज्ञा दी थी)। मुनिश्रेष्ठ ने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देने वाला वैभव रच दिया।

टिप्पणी— भरद्वाज मुनि ने भरत, उनकी समस्त समाज और सेना को अपने आश्रम में ठहरने और रात को विश्राम करने के लिए आमन्त्रित किया। आमन्त्रित करने के बाद मुनि सोच में पड़ गए कि इतने बड़े अतिथि को आमंत्रित तो कर लिया पर उनके स्तर के योग्य आश्रम में सेवा-सुश्रुषा के साधन कहाँ से उपलब्ध होंगे। जैसा देवता हो, वैसी ही उसकी पूजा होनी चाहिए। मुनि को चिन्तित जानकर, बिना आहूत किए, समस्त ऋद्धि-सिद्धि स्वयं प्रकट हो गईं। और हाथ जोड़कर कहने लगीं —'हे गोसाई, जो आपकी आज्ञा हो, सो हम करें।' भरद्वाज ने कहा 'भरत राम के विरह में व्याकुल है। उनका आतित्थ्य-सत्कार करके, उनका भ्रम दूर करो।' मुनि को इच्छा प्रकट करने की देरी थी, कि मिनटो में सिद्धियों ने सबके ठहरने के लिये सुन्दर सदन निर्मित कर दिये, जिनमें सब भोग-विलास की सामग्री और सेवा के लिए दास-दासियाँ मौजूद थीं। इस प्रकार भरद्वाज ऋषि ने अपने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देने वाला वैभव रच दिया। ऐसा ही चमत्कार मिथिला में हुआ था जब दशरथ जी अयोध्या से राम के विवाह के लिए बरात लेकर आए थे :

'सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिए संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥'

सीता जी की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इन्द्रपुरी के भोगविलास लिए हुए गयीं (देखिए बालकाण्ड, दोहा ३०६, और उसके नीचे की चौपाई, पृष्ठ ३३८-३९)।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥
आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥
असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें॥
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥

भावार्थ— जब भरत जी ने मुनि के प्रभाव को देखा, तो उनके सामने उन्हें सभी लोक पालों के लोक तुच्छ जान पड़े। सुख की सामग्री का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं। आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति भाँति के पक्षी और पशु, सुगंधित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकार के (तालाब, कूएँ, बावली आदि) निर्मल जलाशय। तथा अमृत-सरीखे पवित्र खान-पान के पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषों की तरह सकुचा रहे हैं। सभी के डेरों में मनवांछित वस्तु देने वाले कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को

भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है)। बसन्त ऋतु है। शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकार की हवा बह रही है। सभी को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थ सुलभ हैं। माला, चन्दन, स्त्री, आदिक भोगों को देखकर सब लोग हर्ष और विषाद के वश हो रहे हैं। (हर्ष तो भोग-सामग्रियों को और मुनि के तप प्रभाव को देखकर होता है और विषाद इस बात से होता है कि श्री राम के वियोग में नियम-व्रत से रहने वाले हम लोग भोग-विलास में क्यों आ फंसे। कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-ब्रतों को न त्याग दे)।

दो०—संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजरौं राखे भा भिनुसार ।।२१५।।

भावार्थ— सम्पत्ति (भोग-विलास की सामग्री) चकवी है और भरत जी चकवा हैं, और मुनि की आज्ञा खिलाड़ी है। जिसने उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को बन्द कर रखा और ऐसे ही सबेरा हो गया (जैसे किसी बहेलिये के द्वारा पिजड़े में रखे जाने पर भी चकवी-चकवे का रात को संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाज जी की आज्ञा से, रात भर भोग-सामग्रियो के साथ रहने पर भी भरत जी ने मन से भी उनका स्पर्श नहीं किया)।

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ।।
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी ।।
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें ।।
रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू ।।
नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया ।।
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहिं कहत मृदु बानी ।।
राम बास थल बिटप बिलोकें। उरं अनुराग रहत नहिं रोकें ।।
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला ।।

भावार्थ— (प्रातःकाल) भरत जी ने तीर्थराज में स्नान किया और समाज सहित मुनि को सिर नवाकर और ऋषि की आज्ञा तथा आशीर्वाद को सिर चढ़ा कर दण्डवत् करके बहुत विनती की। तदनन्तर रास्ते की पहचान रखने वाले लोगों (कुशल पद-प्रदर्शकों) के साथ सब लोगों को लिए हुए भरत जी चित्रकूट में चित्त लगाये चले। भरत जी राम सखा गुह के हाथ में हाथ दिये हुए ऐसे जा रहे हैं, मानों साक्षात् ही प्रेम शरीर धारण किए हुए हो। न तो उनके पैर में जूते हैं, और न सिर पर छाया है। उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म निष्कमट (सच्चा) है। वे सखा निषादराज से लक्ष्मण जी, श्री रामचन्द्र जी और सीता जी के रास्ते की बातें पूछते हैं, और वह कोमल वाणी से कहता है। श्री रामचन्द्र जी के ठहरने के स्थान और वृक्षों को देखकर उनके हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरत जी की यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गयी और मार्ग मंगल का मूल बन गया।

दो०– किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ।।२१६।।

भावार्थ– बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देने वाली सुन्दर हवा बह रही है। भरत जी के जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्री रामचन्द्र जी के समय बन जाते भी नहीं हुआ।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ।।
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू ।।
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं ।।
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ ।।
भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता ।।
सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं ।।
देखि प्रभाव सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू ।।
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेट न होई ।।

भावार्थ– रास्ते में असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमें से जिनको प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्री रामचन्द्र जी को देखा वे सब उसी समय परम पद के अधिकारी हो गये। परन्तु अब भरत जी के दर्शन ने तो उनका भवरोग ही मिटा दिया। (श्री रामचन्द्र जी के दर्शन से तो वे परम पद के अधिकारी ही हुए थे,परन्तु भरत जी के दर्शन से उन्हें वह परम पद प्राप्त हो गया)। भरत जी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्री रामचन्द्र जी स्वयं अपने मन में स्मरण करते रहते हैं। जगत में जो मनुष्य एक बार राम कह लेते हैं, वे भी तरने तारने वाले हो जाते हैं। फिर भरत जी तो श्री रामचन्द्र जी के प्यारे तथा उनके छोटे भाई हैं, तब भला उनके लिये मार्ग मंगलमय (सुखदायक) कैसे न हो ? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरत जी को देखकर हृदय में हर्ष-लाभ करते हैं। भरत जी के (इस प्रेम के)प्रभाव को देखकर देवराज इन्द्र को सोच हो गया (कि कहीं इनके प्रेमवश श्री रामचन्द्र जी लौट न जायँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ न जाय)। संसार भले के लिए भला और बुरे के लिये बुरा है। (मनुष्य जैसा आप होता है जगत उसे वैसा ही दिखता है)। उसने गुरु वृहस्पति से कहा–"हे प्रभो ! वही उपाय कीजिये जिससे श्री राम चन्द्र जी की और भरत जी की भेंट ही न हो।

दो०– रामु सँकोची प्रेम बस भरत सपेम पयोधि ।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि ।।२१७।।

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी संकोची और प्रेम के वश हैं, और भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनायी बात बिगड़ना चाहती है, इसलिये कुछ छल ढूँढ इसका उपाय कीजिये।"

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने । सहसनयन बिनु लोचन जाने ॥
मायापति सेवक सन माया । करइ त उलटि परइ सुरराया ॥
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानी ॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥
भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ॥

भावार्थ– इन्द्र के वचन सुनते ही देवगुरु वृहस्पति जी मुस्कराये। उन्होंने हजार नेत्रोंवाले इन्द्र को बिना नेत्रों का (मूर्ख)समझा (और कहा)– ''हे देवराज ! माया के स्वामी श्री रामचन्द्र जी के सेवक के साथ कोई माया करता है तो यह उलट कर अपने ही ऊपर आ जाती है। उस समय (पिछली बार)तो श्री रामचन्द्र जी का रुख जानकर कुछ किया था। परन्तु इस समय कुचाल करने से हानि ही होगी। हे देवराज ! श्री रघुनाथ जी का स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किए हुए अपराध से कभी रुष्ट नहीं होते। पर जो कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह श्री राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। लोक और वेद दोनों में यह इतिहास (कथा)प्रसिद्ध है। इस महिमा को दुर्वासा जी जानते हैं। सारा जगत श्री राम को जपता है। वे श्री राम जी जिनको जपते हैं उन भरत जी के समान श्री रामचन्द्र जी का प्रेमी कौन होगा।

अन्तर्कथा– ऊपर की चौपाई केवल सात विषम पंक्तियों की है। भरत का राम के प्रति अगाध प्रेम और भक्ति को देखकर, इन्द्र को आशंका हुई कि कहीं इनके प्रेमवश श्री राम अयोध्या वापस न लौट जायें और देवताओं का बना-बनाया काम बिगड़ जाये। अतएव इन्द्र ने देवगुरु वृहस्पति से प्रार्थना की कि ऐसा उपाय करें कि भरत और राम की भेंट ही न हो। यह सुनकर वृहस्पति भगवान ने इन्द्र को समझाया कि माया के स्वामी श्री रामचन्द्र जी के भक्त के साथ कोई माया करता है तो वह उलट कर अपने ही ऊपर आ जाती है। भगवान राम अपने प्रति किए हुए अपराध को भले ही माफ कर दें, पर यदि कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह श्री राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। दृष्टान्त के लिये, वृहस्पति ने दुर्वासा का उदाहरण दिया। दुर्वासा की अन्तर्कथा इस प्रकार है :

दुर्वासा– महादेव के अंशरूप हैं। अनुसूया के गर्भ से उत्पन्न अत्रि मुनि के पुत्र हैं*। यह अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के थे। अम्बरीष प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा थे। अयोध्या इनकी राजधानी थी। यह अत्यन्त विष्णुभक्त थे। राज्यभार मंत्रियों को देकर, उन्होंने बहुत दिनों तक विष्णु

---

* देखिये पृष्ठ ५१९

भगवान् की आराधना की। दुर्वासा ने एक बार भगवान् के भक्त अम्बरीष का अपमान किया। भगवान ने अपने भक्त अम्बरीष की रक्षा के लिए सुदर्शन-चक्र छोड़ा। विष्णु चक्र से बचने के लिए दुर्वासा सारे संसार में भागते फिरे, पर कहीं ठौर-ठिकाना न मिल पाया। अन्त में जब उन्होंने अम्बरीष से ही जाकर क्षमा माँगी, तब कहीं उन्हें छुटकारा मिल पाया और विष्णु ने सुदर्शन को निवृत्त किया।

दो०— मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु ।।२१८।।

भावार्थ— हे देवराज ! रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी के भक्त का काम बिगाड़ने की बात मन में भी न लाइये। ऐसा करने से लोक मे अपयश और परलोक में दुःख होगा, और शोक का सामान दिनों दिन बढ़ता चला जायेगा।

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा ।।
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ।।
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू ।।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।।
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ।।
अगुन अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत पेम बस ।।
राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी ।।
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई ।।

भावार्थ— हे देवराज ! हमारा आदेश सुनो। श्री रामचंद्र जी को अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवक की सेवा से सुख मानते हैं और सेवक के साथ बैर करने से बड़ा भारी बैर मानते हैं। यद्यपि वे सम है, उनमें न राग है, न रोष है। और न वे किसी का पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है वैसा ही फल भोगता है। तदपि वे भक्त और अभक्त के अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं। (भक्त को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को मार कर तार देते हैं)। गुण रहित, निर्लेप, मानरहित, और सदा एक रस भगवान भक्त के प्रेमवश ही सगुण हुए हैं। श्री राम जी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आये हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरत जी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

दो०— राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ।।२१९।।

भावार्थ – हे सुरपालक इन्द्र ! श्री राम जी के भक्त सदा दूसरों के हित में लगे रहते हैं। वे दूसरों के दुख से दुखी और दयालु होते हैं। फिर, भरत जी तो भक्त के शिरोमणि हैं, उनसे बिल्कुल न डरो।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी ॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू ॥
सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी ॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ ॥
एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा ॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना ॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥

भावार्थ– प्रभु श्री रामचन्द्र जी सत्यप्रतिज्ञ और देवताओं का हित करने वाले हैं। और भरत जी श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थ के विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरत जी का कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है।'' देवगुरु बृहस्पति जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर इन्द्र के मन में बड़ा आनन्द हुआ और उनकी चिन्ता मिट गई। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरत जी के स्भाव की सराहना करने लगे। इस प्रकार भरत जी मार्ग में चले जा रह हैं। उनकी (प्रेममयी) दशा सुनकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरत जी जभी 'राम' कहकर लंबी सांस लेते हैं, तभी मानों चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है। उनके (प्रेम और दीनता से पूर्ण) वचनों को सुनकर बज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्या वासियों का प्रेम कहते नहीं बनता। बीच में निवास (मुकाम) करके भरत जी यमुना जी तट पर आये। यमुना जी का जल देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया।

दो०– रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज ।।२२०।।

भावार्थ–श्री रामचन्द्र जी के (श्याम) रंग का सुन्दर जल देखकर सारे समाज सहित भरत जी (प्रेम विह्वल होकर)श्री रामचन्द्र जी के विरहरूपी समुद्र में डूबते-डूबते विवेक रूपी जहाज़ पर चढ़ गये (अर्थात् , श्री राम जी का श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान के प्रेम में विह्वल हो गये और उन्हें न पाकर विरह व्यथा से पीड़ित हो गये ; तब भरत जी को यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात् दर्शन करेंगे, इस विवेक से वे फिर उत्साहित हो गये)।

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू । भयउ समय सम सबहि सुपासू ॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी । आईं अगनित जाहिं न बरनी ॥
प्रात पार भए एकहि खेवाँ । तोषे रामसखा की सेवाँ ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई । साथ निषादनाथ दोउ भाई ॥
आगें मुनिबर बाहन आछें । राजसमाज जाइ सबु पाछें ॥
तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें । भूषन बसन बेष सुठि सादें ॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा । सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा । तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥

भावार्थ– उस दिन यमुना के किनारे वास किया । समयानुसार सबके लिये (खान-पान आदि की) सुन्दर व्यवस्था हुई । (निषादराज का संकेत पाकर) रात ही रात में घाट-घाट की अगणित नावें वहाँ आ गई ; जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता । सबेरे एक ही खेवे में सब लोग पार हो गये और श्री रामचन्द्र जी के सखा निषादराज की इस सेवा से सन्तुष्ट हुए । फिर स्नान करके और नदी को सिर नवाकर निषादराज के साथ दोनों भाई चले । आगे अच्छी सवारियों पर श्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा समाज जा रहा है । उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण वस्त्र और वेष में पैदल चल रहे हैं । सेवक, मित्र और मंत्री के पुत्र उनके साथ हैं । लक्ष्मण, सीता जी और श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते जा रहे हैं । जहाँ जहाँ श्री राम जी ने निवास और विश्राम किया था, वहाँ वहाँ वे प्रेम सहित प्रणाम करते हैं ।

दो०— मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ ।
देखि सरुप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

भावार्थ– मार्ग में रहने वाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौन्दर्य) और प्रेम को देखकर वे सब जन्म लेने का फल पाकर आनन्दित होते हैं ।

कहहिं सपेम एक एक पाहीं । रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं ॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥
बेषु न सो सखि सीय न संगा । आगें अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा । सखि संदेहु होइ एहिं भेदा ॥
तासु तरक तियगन मन मानी । कहहिं सकल तेहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी । बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥
कहि सपेम सब कथाप्रसंगू । जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी ॥

भावार्थ-- गाँवों की स्त्रियां एक दूसरे से प्रेम पूर्वक कहती हैं--'हे सखी ! ये राम लक्ष्मण हैं कि नहीं । हे सखी ! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है । शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं के समान है । परन्तु हे सखी! इनका न तो वह वेष (वल्कल धारी मुनि वेष)है, न सीता जी ही संग हैं । और इनके आगे चतुरंगिणी सेना चली जा रही है । फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं है, इनके मन में खेद है । हे सखी ! इसी भेद के कारण संदेह होता है ।'' उसका तर्क (युक्ति)अन्य स्त्रियों के मनभाया । सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर)कोई नहीं है । उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली । श्री रामचन्द्र जी के राज तिलक का आनन्द जिस प्रकार से भंग हुआ था वह सब कथा प्रसंग प्रेमपूर्वक कहकर फिर वह भाग्यवती स्त्री श्री भरत जी के शील, स्नेह और स्वभाव की सराहना करने लगी ।

दो०-- चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु ।।२२२।।

भावार्थ-- (वह बोली)--''देखो, ये भरत जी पिता के दिये हुए राज्य दो त्यागकर पैदल चलते हुए और फलाहार करते हुए श्री राम जी को मनाने के लिये जा रहे हैं ! इनके समान आज कौन है ।

भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू ।।
जो किछु कहब थोर सखि सोई । राम बंधु अस काहे न होई ।।
हम सब सानुज भरतहि देखें । भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें ।।
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं ।।
कोउ कह दूषनु रानिहि नाहिन । बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ।।
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी । लघु तिय कुल करतूति मलीनी ।।
बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा । कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ।।
अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ।।

भावार्थ-- भरत जी का भाईपना, भक्ति, इनके आचरण कहने और सुनने से दुख और दोषों के हरने वाले हैं । हे सखी ! उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा है । श्री रामचन्द्र जी के भाई ऐसे क्यों न हों । छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत जी को देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी)स्त्रियों की गिनती में आ गयीं ।'' इस प्रकार भरत जी के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछ्ताती हैं और कहती हैं--'यह पुत्र कैकेयी जैसी माता के योग्य नहीं है ।' कोई कहती हैं--''इसमें रानी का भी दोष नहीं है। यह सब विधाता ने ही किया है, जो हमारे अनुकूल हैं । कहाँ तो इस लोक और वेद दोनों की विधि (मर्यादा)से हीन, कुल और करतूत दोनों से मलिन तुच्छ स्त्रियाँ । जो बुरे देश (जंगली

प्रान्त)और बुरे गाँवों में बसती हैं और (स्त्रियों में भी)नीच स्त्रियाँ है। और कहाँ वह महान पुण्यों के परिणाम स्वरूप इनका दर्शन !'' ऐसा ही आनन्द और आश्चर्य गाँव-गाँव में हो रहा है। मानों मरुभूमि में कलपवृक्ष उग गया हो।

दो०— भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु ।।२२३।।

भावार्थ— भरत जी का स्वरूप देखते ही रास्ते में रहने वाले लोगों के भाग्य खुल गये। मानों देवयोग से सिंहल द्वीप में बसने वालों को तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो।

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ।।
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ।।
मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू ।।
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी ।।
करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही ।।
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं ।।
जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ।।
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी ।।

भावार्थ— (इस प्रकार) अपने गुणों सहित श्री रामचन्द्र जी के गुणों की कथा सुनते और श्री रघुनाथ जी को स्मरण करते हुए भरत जी चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान, और मुनियों के आश्रम तथा देवताओं के मन्दिर देखकर प्रणाम करते हैं। और मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि श्री सीताराम जी के चरण कमलों में प्रेम हो। मार्ग में भी, कोल, आदि बनवासी, तथा बानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, सन्यासी और विरक्त मिलते हैं। उनमें से जिस तिस से प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मण जी, श्री राम जी और जानकी जी किस बन में हैं। वे प्रभु के सब समाचार कहते हैं और भरत जी को देखकर जन्म का फल पाते हैं। जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुशलपूर्वक देखा है, उनको वे श्री राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारे लगते हैं। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणी से पूछते और श्री राम जी के बनवास की कहानी सुनते जाते हैं।

दो०— तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ।।२२४।।

भावार्थ— उस दिन वहीं ठहर कर दूसरे दिन प्रातः काल ही श्री रघुनाथ जी का स्मरण कर चले। साथ के सब लोगों को भी श्री रामचन्द्र जी के दर्शन की लालसा भरत जी के समान ही है।

मंगल सगुन होहिं सब काहू । फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहि सहित समाज उछाहू । मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू ॥
करत मनोरथ जस जियँ जाके । जाहिं सनेह सुराँ सब छाके ॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं । बिहबल बचन पेम बस बोलहिं ॥
रामसखाँ तेहि समय देखावा । सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पय तीरा । सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥
देखि करहिं सब दंड प्रनामा । कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेम मगन अस राज समाजू । जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

भावार्थ– सबको मंगल सूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देने वाले (पुरुषों के दाहिने और स्त्रियों के बायें) नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाज सहित भरत जी को उत्साह हो रहा है कि श्री रामचन्द्र जी मिलेंगे और दुख का दाह मिट जायेगा। जिसके जी में जैसा है, वह वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेहरूपी मदिरा से छके (प्रेम में मतवाले हुए) चले जा रहे हैं। अंग शिथिल हैं। रास्ते में पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं। रामसखा निषादराज ने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वत शिरोमणि कामदगिरि दिखलाया। जिसके निकट ही पयस्विनी नदी के तट पर सीता जी समेत दोनों भाई निवास करते हैं। सब लोग उस पर्वत को देखकर 'जानकी जीवन श्री रामचन्द्र जी की जय हो।' ऐसा कहकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेम से ऐसा मग्न है मानों श्री रघुनाथ जी अयोध्या को लौट चले हों।

दो०– भरतु प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु ।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु ॥२२५॥

भावार्थ– भरत जी का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेष जी भी नहीं कह सकते। कवि के लिये तो वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममता के लिये ब्रह्मानन्द।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें । गए कोस दुइ दिनकर ढरकें ॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीतें । कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें ॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा । जागे सीयँ सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए । नाथ बियोग ताप तन ताए ॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी । देखीं सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन । भए सोचबस सोच बिमोचन ॥
लखन सपन यह नीक न होई । कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने । पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

भावार्थ– सब लोग श्री रामचन्द्र जी के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिनभर में)दो ही कोस चल पाये और जल स्थल का सुपास देखकर रात को वहीं (बिना खाये-पिये ही)रह गये। रात बीतने पर श्री रघुनाथ जी के प्रेमी भरत जी ने आगे गमन किया। उधर श्री रामचन्द्र जी रात शेष रहते ही जागे। रात को सीता जी ने ऐसा स्वप्न देखा (जिसे वे श्री राम को सुनाने लगीं) मानो समाज सहित भरत जी यहाँ आये हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है। सभी लोग मन में उदास, दीन और दुखी है। सासुओं को दूसरी ही सूरत में देखा। सीता जी का स्वप्न सुनकर श्री रामचन्द्र जी के नेत्रों में जल भर आया और सबों को सोच से छुड़ा देने वाले प्रभु स्वयम् (लीला से)सोच के वश हो गए (और बोले) 'लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण समाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनायेगा।' ऐसा कहकर उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारि महादेव जी का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया।

छं०– सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए।।
तुलसी उठे अवलोकिं कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे।।

सो०–सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरूह नैन तुलसी भरे सनेह जल।।२२६।।

भावार्थ– देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वन्दना करके श्री रामचन्द्र जी बैठ गये और उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु श्री रामचन्द्र जी यह देख कर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है ? वे चित्त में आश्चर्ययुक्त हो गये। उसी समय कोल भीलों ने आकर सब समाचार कहे। तुलसीदास जी कहते हैं कि सुन्दर वचन सुनते ही श्री राम जी के मन में बड़ा आनन्द हुआ। शरीर में पुलकावली छा गई, और शरद ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गए।

टिप्पणी – ऊपर अयोध्या काण्ड का ८वां छन्द और सोरठा है। प्रात: जिस दिन भरत और उनकी समस्त सेना और साथी चित्रकूट पहुँचे, उसकी पहली रात को सीता जी ने एक स्वप्न देखा। उन्होंने बृह्म मुहूर्त में ही वो स्वप्न राम को सुनाया। सीता जी ने स्वप्न में देखा की भरत समाज सहित वियोग की अग्नि में सन्तप्त आ रहें हैं। सभी लोग मन में उदास, दीन और दु:खी हैं। तीनों सास विधवा का वेश धारण किये हुए हैं। स्वप्न सुनकर श्री राम के नेत्रों में जल भर आया और वो सोच में पड़ गये। उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि ये स्वप्न अच्छा नहीं है और भीषण कुसमाचार का द्योतक है। व्याधि शान्ति के लिए रामचन्द्र जी ने स्नान कर के महादेव और अन्य देवताओं का पूजन किया और मुनियों और साधुओं की वन्दना की। वन्दना

कर के वो उत्तर दिशा की ओर मुख कर के बैठ गये जिस ओर से अयोध्यावासियों के लिए मार्ग था। उन्होंने देखा कि बिना आँधी के आकाश में धूल छा रही है। वो इस बात की द्योतक थी कि बहुत से लोग और वाहन इस मार्ग से आ रहे हैं। राम के चित्त में आश्चर्य हुआ कि सीता जी का स्वप्न इतना शीघ्र ही सत्य होता प्रतीत हो रहा है। उसी समय कोल और भीलों ने आकर समाचार सुनाया। समाचार सुनते ही श्री राम की उद्विग्नता जाती रही और मन में बड़ा आनन्द हुआ। शरीर में पुलकावली छा गयी और नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गये।

बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी ॥
सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं ॥
समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने ॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू ॥
बिनु पूछें कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुरामी ॥

भावार्थ– सीतापति श्री रामचन्द्र जी पुनः सोच के वश हो गये कि भरत के आने का क्या कारण है। फिर एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरंगिनी सेना भी है। यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी को अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और उधर भाई भरत जी का संकोच। भरत जी के स्वभाव को मन में समझकर तो प्रभु श्रीरामचन्द्र जी चित्त को ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं। तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहने में (आज्ञाकारी)हैं। लक्ष्मण जी ने देखा कि प्रभु श्री रामजी के हृदय में क्षोभ है तो वे समय के अनुसार अपना नीति युक्त विचार कहने लगे – "हे स्वामी ! आपके बिना पूछे मैं कुछ कहता हूँ, सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात, आप पूछे तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है, इस लिये मेरा यह कहना ढिठाई नहीं होगी)। हे स्वामी आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब जानते ही है)। मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ।

दो०- नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान ॥२२७॥

भावार्थ- हे नाथ ! आप परम सुहृद (बिना कारण ही परम हित करने वाले), सरल दय तथा स्नेह के भण्डार हैं, आपका सभी पर प्रेम और विश्वास है, और अपने हृदय में बको अपने ही समान जानते हैं।

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाईं ॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना ॥

तेऊ आजु राम पदु पाई । चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥
करि कुमंत्रु मन साजि समाजू । आए करै अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दल बटोरि दोउ भाई ॥
जौं जियँ होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ । जग बौराइ राज पदु पाएँ ॥

भावार्थ– परन्तु मूढ़, विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं । भरत नीतिपरायण साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है, इस बात को सारा जगत जानता है । वे भरत भी आज श्री रामचन्द्र जी का (आपका)पद(सिंहासन का अधिकार) पाकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं । कुटिल छोटे भाई कुसमय देखकर और यह जानकर कि राम जी (आप)बनवास में अकेले हैं, अपने मन में बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्य निष्कण्टक करने के लिये यहाँ आये हैं । करोड़ों (अनेकों)प्रकार की कुटिलताएँ रचकर सेना बटोर कर दोनों भाई आये हैं । यदि इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े, हाथियों की कतार ऐसे समय किसे सुहाती ? परन्तु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे ? राजपद पा जाने पर सारा जगत ही पागल (मतवाला)हो जाता है ।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई की पहली और अन्तिम पंक्ति में एक ही लोकोक्ति को दो प्रकार से व्यक्त किया गया है :

"विषई जीव पाई प्रभुताई । मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ।।"
"भरतहि दोस देई को जाएँ । जग बौराई राज पद पाएँ ।"

यही भाव बालकाण्ड में दोहा ६० के ऊपर की चौपाई की अन्तिम पंक्ति में भी व्यक्त किया गया है :

"नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाई जाहि मद नाहीं ।"

ऊपर की पंक्ति दक्ष के सन्दर्भ में कही गयी थी । ब्रह्मा ने दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया था । इससे दक्ष के अभिमान की सीमा नहीं रही । उन्होंने बृहस्पति नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें उन्होंने अपनी पुत्री सती और दामाद महादेव को आमन्त्रित नहीं किया । कारण के लिए देखिए अन्तर्कथा, पृष्ठ १०२ ।

यहाँ उत्तर की ओर से उठती हुई धूल को देखकर लक्ष्मण आशंका कर रहे हैं कि अधिकार पाकर भरत मदान्ध हो गए हैं । समस्त सेना लेकर राम को पराजित करने आ रहे हैं, ताकि आजीवन अयोध्या पर अकण्टक राज कर सकें । ऐसी आशंका निषादराज गुह को भी हुई थी देखिए, पृष्ठ ५६९ ।

लोकोक्ति की समीक्षा के लिए देखिए पृष्ठ १०० ।

दो०—ससि गुर तिय गामी नघुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान ।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान ।।२२८।।

भावार्थ— चन्द्रमा गुरू पत्नी-गामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर चढ़ा। और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया।

अन्तर्कथाएं— पिछले पृष्ठ में तीन लोकोक्तियां दी गई हैं, जिनका आशय है कि प्रभुता पाकर, बड़े से बड़ा आदमी मदान्ध हो जाता है। लक्ष्मण कहते हैं कि कोई आश्चर्य नहीं कि राजपद पाकर भरत की भी मति भ्रष्ठ हो गई है। अपने तर्क की पुष्टि के लिए लक्ष्मण तीन दृष्टान्त देते हैं :

चन्द्रमा- तारा देवगुरु बृहस्पति की स्त्री थी। एक दिन चन्द्रमा ने इनकी सुंदरता पर मुग्ध होकर इनको हर लिया। बृहस्पति ने चन्द्रमा के इस दुराचार की बात देवताओं से कही। देवताओं और ऋषियों ने तारा को लौटा देने के लिए चन्द्रमा से कहा परन्तु चन्द्रमा ने उनका कहना नहीं माना। रुद्र बृहस्पति का पक्ष लेकर युद्ध के लिए तैयार हुए। ब्रह्मा ने अनर्थ होने की आशंका से रुद्र को समझा बुझाकर युद्धक्षेत्र से हटाया और चन्द्रमा से तारा को लेकर बृहस्पति को दे दिया। उस समय तारा के गर्भ था। बृहस्पति ने गर्भत्याग कर तारा से अपने समीप आने के लिए कहा। तारा ने गर्भ त्याग दिया। उस पुत्र का नाम हुआ दस्युसुन्तम। वह पुत्र चन्द्रमा का ही औरसजात है- यह जानकर ब्रह्मा ने चन्द्रमा को यह पुत्र दे दिया।

२. वेन- इनके पिता का नाम अंगराज था। इन्होंनें अपने राज्य में बलि और देवार्चन का निषेध किया था। इससे क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने उस आज्ञा का प्रत्याहार करने के लिए राजा से कहा परन्तु राजा ने उनकी एक भी नहीं सुनी। अंत में, ब्राह्मणों ने मंत्रपूत कुश द्वारा राजा का विनाश किया। अनंतर उन ब्राह्मणों ने राजा वेन के मृत देह पर कुशघर्षण किया। उस घर्षण से पृथुराज की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मणों ने वेन के सिंहासन पर पृथु का अभिषेक किया। पृथुराज की अन्तर्कथा के लिए, देखिए पृष्ठ १६

३.नहुष— अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ ४४९-५०।

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजपद दीन्ह कलंकू ।।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ ।।
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई ।।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी ।।
एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला ।।

प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बलु भाषी ॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहि उपचार न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारें । नाथ साथ धनु हाथ हमारें ॥

भावार्थ– सहस्रबाहु, देवराज इन्द्र और त्रिशंकु आदि, किसको राजमद ने कलंकित नहीं किया ? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है। क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिए। हाँ, भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो राम जी को (आपको) असहाय जानकर उनका निरादर किया ! पर आज संग्राम में श्री राम जी का (आपका) क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनको समझ में विशेषरूप से आ जायेगी (अर्थात, इस निरादर का फल भी वे अच्छी तरह पा जायेंगे)।" इतना कहते ही लक्ष्मण जी नीतिरस भूल गए और युद्धरूपी वृक्ष पुलकावली के बहाने से फूल उठा ; अर्थात नीति की बात कहते-कहते उनके शरीर में बीररस छा गया। वे प्रभु श्री रामचन्द्र जी के चरणों की वन्दना करके, चरण रज को सिर पर रख कर, सच्चा और स्वाभाविक बल दिखाते हुए बोले –"हे नाथ ! मेरा कहना अनुचित न मानियेगा। भरत ने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है) । आखिर कहाँ तक सहा जाय और मन मारे रहा जाय, जब स्वामी हमारे साथ है और धनुष हमारे हाथ में है।

अन्तर्कथाएँ – सत्ता पाने से आदमी कैसे मदान्ध हो जाता है, उसके तीन उदाहरण पिछले पृष्ठ में दिये जा चुके हैं। ऊपर चौपाई में लक्ष्मण तीन व्यक्तियों का और उदाहरण देते हैं, जो राजमद के कारण कलंकित हुए :

१. **सहस्रबाहु-** अन्तर्कथा के लिए देखिये पृष्ठ ३११-१२।

२. **इन्द्र-** महर्षि काश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इन्द्र उत्पन्न हुए थे। पौराणिक देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर से इनकी पदमर्यादा नीची है। अन्यान्य देवताओं पर इनका अधिकार है। पुलोमना नामक दानव की कन्या शची को इन्होंने ब्याहा था। तीसरा पाण्डव अर्जुन इनके औरस और कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। समुद्र मन्थन में इन को ऐरावत हाथी, उच्चैः;श्रवा घोड़ा और पारिजात वृक्ष मिले थे। वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि मुनि की अस्थि से देव शिल्पी विश्वकर्मा ने इन्द्र का वज्र बना दिया था। (पृष्ठ ४२२) रावण के पुत्र मेघनाथ ने युद्ध में इन्हें पराजित कर दिया था। ये गौतम की स्त्री अहल्या का सतीत्व नाश करने के लिए गए थे, और स्वयम् अण्डहीन हुए (पृष्ठ ५४)।

३. **त्रिशंकु-** यह सूर्यवंशी राजा थे। सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा से इन्होंने वशिष्ठ को यज्ञ कराने के लिए कहा था। वशिष्ठ ने कहा यह होना असंभव है। गुरु से कोरा उत्तर पाकर त्रिशंकु ने गुरुपुत्रों के समीप जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया। वशिष्ठ के पुत्रों ने कहा कि "यह काम हम लोगों के द्वारा नहीं हो सकता, पिता की उपेक्षा करके हम लोग

यह काम नहीं कर सकते हैं।'' राजा त्रिशंकु ने कहा कि ''गुरु ने भी हमारा काम करना अस्वीकार किया और आप लोग भी अस्वीकार करते हैं। अतएव हमको अब दूसरा गुरु बनाना ही पड़ेगा।'' यह सुन वशिष्ठ के पुत्र बड़े क्रुद्ध हुए और उन लोगों ने श्राप दिया- ''तुम चांडालत्व को प्राप्त होओ।'' वशिष्ठ के पुत्रों के श्राप से राजा चांडाल हो गए, उनकी मनोवृत्ति मलिन हुई। राजा को चांडाल जानकर मंत्रियों ने भी उन्हें छोड़ दिया। राजा अपनी दुर्दशा देख विश्वामित्र के पास गए। विश्वामित्र ने योगबल से सब जान लिया। उन्होंने सशरीर राजा को स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की। विश्वामित्र की आज्ञा से उनके पुत्र यज्ञ का आयोजन करने लगे। महर्षियों को निमन्त्रण देने के लिए, विश्वामित्र के शिष्य गण चारों तरफ दौड़ाए गए। वशिष्ठ, उनके पुत्र तथा महोदय ऋषि के अतिरिक्त और सभी वेदज्ञ ऋषियों को निमंत्रण दिया गया। महोदव और वशिष्ठ के पुत्रों ने कहा कि जिस यज्ञ में क्षत्रिय यज्ञ कराने वाला है और करने वाला चांडाल है, उसमें देवता आदि हवि भोजन कैसे करेंगे ? यह सुनकर विश्वामित्र अप्रसन्न हुए और उन्होंने वशिष्ठ के पुत्रों को कुकुर-मांस-भोजी डोम तथा निषाद हो जाने के लिए श्राप दिया। विश्वामित्र की आज्ञा से देवज्ञ ऋषियों ने यज्ञ प्रारम्भ किया। स्वयं विश्वामित्र इस यज्ञ के अध्वर्यु बने। परन्तु यज्ञ में कोई भी देवता न आया, तब क्रुद्ध होकर विश्वामित्र अपनी तपस्या से राजा को स्वर्ग भेजने का प्रयत्न करने लगे। विश्वामित्र के तपोबल से राजा धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे, पर इन्द्र ने मना किया। इससे विश्वामित्र और भी क्रुद्ध हो गए। उन्होंने एक नये स्वर्ग का निमार्ण करना प्रारंभ किया। इससे अनर्थ होने की संभावना देख देवों ने विश्वामित्र से संधि कर ली। तबसे अधोमस्तक होकर त्रिशंकु अंतरिक्ष में लटकते हैं।

दो०— छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुं मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान।। २२९।।

भावार्थ- क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म और फिर मैं श्री राम जी का (आपका) अनुगामी सेवक हूँ। यह जगत जानता है (फिर भला कैसे सहा जाय?) धूल के समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारने पर सिर ही चढ़ती है।

लोकोक्ति— दोहा २२९ के नीचे की पंक्ति में एक लोकोक्ति है :

"लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान।।"

अर्थात, नीच आदमी भी लात मारने पर सिर पर चढ़ता है। धूल के समान दूसरा नीच नहीं है जो सदा पैरों के नीचे ही कुचली जाती है। परन्तु यदि उसमें भी लात मारी जाय तो वह ऊपर उठकर सिरपर ही चढ़ती है। लक्ष्मण यह उदाहरण देकर कहते हैं कि ''क्या हम धूल से भी गये बीते हैं जो भरत की वृथा की छेड़छाड़ को सहन करते रहेंगे ?''

उठि कर जोरि रजायसु मागा । मनहुँ बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासनु सायकु हाथा ॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई । सोवहुँ समर तेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू । प्रकट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकरु आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥

भावार्थ- यों कहकर लक्ष्मण जी ने उठ कर, हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी । मानों बीररस सोते से जाग उठा हो । सिर पर जटा बाँध कर, कमर में तरकस कस लिया और धनुष को साध तथा बाण को हाथ में लेकर कहा- ''आज मैं श्री राम का (आपका) सेवक होने का यश ले लूँ और भरत को संग्राम में शिक्षा दे दूँ । श्री रामचन्द्र जी के (आपके) निरादर का फल पाकर दोनों भाई (भरत- शत्रुघ्न) रण शय्या पर सोवें । अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया । आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करुँगा । जैसे सिंह हाथियों के झुण्ड को कुचल डालता है, और बाज जैसे बटेर को लपेट में ले लेता है वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूँगा । यदि शंकर जी भी आकर उनकी सहायता करें तो भी मैं उन्हें युद्ध में मार डालूँगा । छोडूँगा नहीं । मुझे राम जी की सौगन्ध है ।''

दो०— अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान ।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ।। २३० ।।

भावार्थ- लक्ष्मण जी को अत्यन्त क्रोध से तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रमाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोक भयभीत हो जाते हैं और लोकपति घबरा कर भागना चाहते हैं ।

जगु भय मगन गगन भइ बानी । लखन बाहुबलु बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥
अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने । राम सीयँ सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तें कठिन राजमदु भाई ॥

जो अचवँत नृप मातहिं तेई । नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ।।
सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।।

भावार्थ- सारा जगत भय में डूब गया । तब लक्ष्मण जी के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुइ आकाशवाणी हुई "हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है । फिर भी कोई काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझबूझ कर किया जाय तो सब कोई अच्छा कहते हैं । वेद और विद्वान कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान नहीं है ।" देववाणी सुनकर लक्ष्मण जी सकुचा गये । श्री रामचन्द्र जी और सीता जी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया और कहा- "हे तात ! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही । हे भाई ! राजमद सब से कठिन मद है । जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग)नहीं किया, वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करके ही (पीते ही)मतवाले हो जाते हैं । हे लक्ष्मण ! सुनो, भरत सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा गया है ।

दो०—भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ।।२३१।।

भावार्थ- (अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है)ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राजमद नहीं होवे गा । क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीर समुद्र नष्ट हो सकता है (फट सकता है)।

टिप्पणी— लक्ष्मण का चरित्र चित्रण करने में, तुलसीदास जी बराबर उनके उग्र-स्वभाव को उजागर करते जा रहे हैं। जब जब लक्ष्मण उत्तेजित होते हैं, राम उनको शान्त करते हैं।

१- जब सीता-स्वयंबर में बड़े बड़े सूरमा शिव-धनुष को हिला नहीं पाए, उठाना और प्रत्यंचा चढ़ाना दूर रहा, तब महाराजा जनक दु:खी होकर बोल पड़े :

"अब जनि कोउ माखै भटमानी । वीर विहीन मही मैं जानी"

जनक का इतना कहना था कि लक्ष्मण तमतमा उठे और बड़े आवेग में बोले :

"रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई । तेहिं समाज अस कहइन कोई ।।
कही जनक असि अनुचित बानी । विद्यमान रघुकुल मणि जानी ।।
सुनहुँ भानुकुल पंकज भानू । कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ।।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं । कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं ।।

* * *

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।
जौं न करों प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ" ।।

राम ने किसी प्रकार लक्ष्मण को शांत किया :

"सयनहिं रघुपति लखन, नेवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे ।।"

वातावरण को बहुत गरम होता हुआ देखकर, विश्वामित्र ने राम को आज्ञा दी कि वह शिव के धनुष को उठाएँ, जनक के वचन की पूर्ति करें और उनके सन्ताप को दूर करें :

"उठहु राम भंजहु भव चापा । मेटहु तात जनक परितापा ।।"

(देखिये पृष्ठ २९३-९४)

२- शिव धनुष के टूटने की टंकार सारे लोक में फैल गई । उसे सुनकर परशुराम दौड़े दौड़े मिथिला आए और आते ही जनक से उन्होंने पूँछा कि शिव-धनुष को तोड़ने का साहस किसने किया ? बीच-बचाव करते हुए राम ने उत्तर दिया :

"नाथ संभुधनु भंजनिहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ।।"

परन्तु अपने स्वभाव के कारण, लक्ष्मण कहाँ दबने वाले थे । परशुराम का उपहास करते हुए, उन्होंने कहा :

"टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहिं पाय पिराने ।।
जौं अतिप्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिअ कोउ बड़ गुनी बोलाई ।।"

आप खड़े-खड़े थक गए होगें, बैठ जाइये । व्यर्थ क्रोध करने से टूटा हुआ धनुष फिर जुड़ तो नहीं सकता । अगर आपको उस पुराने धनुष से इतना प्रेम है, तो उसकी मरम्मत करने के लिए कहिए तो बढ़ई बुलाया जाये । लक्ष्मण की ललकार सुनकर परशुराम को और क्रोध आया और उन्होंने सबको चेतावनी दी कि वह इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर चुकें हैं ।

"गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अतिधोर ।"

लक्ष्मण भला परशुराम की गीदड़ धमकी में कब आने वाले थे । तुरन्त उन्होंने प्रत्युत्तर दिया :

"इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ।"

बात आगे और न बढ़ जाए, इसलिये राम ने फिर बीच-बचाव किया और परशुराम से विनती की कि लक्ष्मण को बच्चा समझकर क्षमा कर दें :

"सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक बचनु करिअ नहिं काना ।।
बररै बालकु एकु सुभाऊ । इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ ।।"

(देखिये पृष्ठ ३०६-१७)

३- निषादराज की नगरी श्रृंगवेरपुर पहुँचकर राम ने रात्री अशोकवृक्ष के नीचे बिताई। प्रात: उठकर उन्होंने वट-वृक्ष का दूध मंगाया और उस दूध से अपने सिर पर जटाएँ बनाई। यह देखकर सुमन्त्र की आँखों में जल भर आया और वह अत्यन्त दीन वचन बोले "हे नाथ! महाराजा दशरथ का आदेश है कि आपको वन दिखाकर, गंगास्नान कराकर, दोनों भाइयों को तुरन्त अयोध्या लौटा लाऊँ । सो अब आप वापस चलिए ।" सुमन्त्र के वचन सुनकर लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और वह बोले :

"पिता जी डंडा मार कर पीठ सहलाने चले हैं ।"

लक्ष्मण के कटु वचन सुनकर राम ने उन्हें मना किया और सुमन्त्र को सौगन्ध दिलाई कि लक्ष्मण की बात वह दशरथ जी तक न पहुँचाएं ।

(देखिए पृष्ठ ४८०-८२)

४- ऊपर की चौपाई में लक्ष्मण के उग्र स्वभाव का एक और उदाहरण दिया गया है। जब उन्होंने भरत को सेना सहित चित्रकूट की ओर आते देखा तो उन्हें आशंका हुई कि राम को अकेला और निहत्था जानकर भरत सेना लेकर आ रहे हैं ताकि राम को पराजित करके, अयोध्या पर आजीवन अकण्टक राज्य करें । ऐसी आशंका निषादराज गुह को भी हुई थी ।

(देखिए पृष्ठ ५६९-७२)

कमर में तरकस कस कर और धनुष-बाण साधकर लक्ष्मण ने घोषणा की "मैं अकेला सारी सेना का मुकाबला करूँगा । दोनों भाइयों (भरत शत्रुघ्न)को मौत के घाट उतार दूँगा।"

लक्ष्मण की घोषणा सुनकर आकाशवाणी हुई : "आपका प्रताप और प्रभाव सब जानते हैं । परन्तु उचित-अनुचित सोचे बिना कोई काम किया जाए, तो ठीक नहीं होता ।" राम ने भी समझाया कि ''अयोध्या का राज्य क्या चीज़ है ? ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद पाकर भी भरत को राजमद नहीं हो सकता । यदि जगत में भरत का जन्म न होता, तो इस पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्मों के मूल आधार को कौन अपने प्रत्यक्ष सद्गुणों में सम्मिलित करने की क्षमता रख सकता था ?'' राम के वचन सुनकर लक्ष्मण सकुचा गए ।

(देखिये पृष्ठ ६०२-०७)

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ।।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी । सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ।।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अबगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

भावार्थ- ''अन्धकार चाहे तरुण (मध्यान्ह के) सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाए, गौ के खुर-जितने जल में अगस्त्य जी डूब जाँय, और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़ दे, नच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु उड़ जाय, परन्तु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिता जी की सौग्नध खाकर कहता हूँ। भरत के समान पवित्र भाइ संसार में नहीं है। हे तात! गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिलाकर विधाता इस दृश्य प्रपंच (जगत) को रचता है। परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस-रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया (दोनों को अगल अलग कर दिया)। गुण- रूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुण-रूपी जल को परित्याग कर भरत ने अपने यश से जगत में उजियाला कर दिया है।'' भरत जी के गुण, शील और स्वभाव को कहते-कहते श्री रघुनाथ जी प्रेम समुद्र में मग्न हो गये।

दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥२३२॥

भालार्थ— श्री रामचन्द्र जी की वाणी सुनकर और भरत जी पर उनका प्रेम देखकर, समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे (और कहने लगे) कि ''श्री रामचन्द्र जी के समान कृपा के धाम प्रभु औरक कौन हैं।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥
लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए॥
सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

भावार्थ– यदि जगत में भरत का जन्म न होता, तो पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता ? हे रघुनाथ ! कविकुल के लिये अगम (उनकी कल्पना से अतीत) भरत जी के गुणों की कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है ?" लक्ष्मण जी, श्री रामचन्द्र जी और सीता जी ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यन्त सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता । यहाँ भरत जी ने सारे समाज के साथ पवित्र मन्दाकिनी में स्नान किया । फिर सबको नदी के समीप ठहरा कर तथा माता, गुरू, और मन्त्री की आज्ञा माँगकर निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत जी वहाँ को चले जहाँ श्री सीता जी और श्री रघुनाथ जी थे। भरत जी अपनी माता कैकेयी की करनी को समझ कर (याद करके) सकुचाते हैं और मन में करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं तथा (सोचते हैं)-- "श्री राम, लक्ष्मण और सीता जी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जावें ।

दो०- मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ।।२३३।।

भावार्थ- मुझे माता के मत में मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने विरद और सम्बन्ध को देखकर) मेरे पापों और अवगुणों को क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे ।

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवकु मानी ।।
मोरें सरन रामहि की पनही । राम सुस्वामि दोसु सब जनही ।।
जग जस भाजन चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नबीना ।।
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता ।।
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ।।
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाहँ जल अलि गति जैसी ।।
देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू ।।

भावार्थ– चाहे मलिन मन जानकर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें, (कुछ भी करें) मेरी तो श्री रामचन्द्र जी की जूतियाँ ही शरण हैं । श्री रामचन्द्र जी तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दास का ही है । जगत में यश के पात्र तो चातक और मछली ही हैं, जो अपने नेम और प्रेम को सदा नया बनाये रखने में निपुण हैं ।" ऐसा मन में सोचते हुए भरत जी मार्ग में चले जाते हैं । उनके सब अंग संकोच और प्रेम से शिथिल हो रहे हैं । माता की की हुई बुराई मानों उन्हें लौटाती है, पर धीरज की धुरी को धारण करने वाले भरत जी भक्ति के बल से चलते हैं । जब श्री रघुनाथ जी के स्वभाव को समझते (स्मरण करते) हैं तब मार्ग में उनके पैर जल्दी जल्दी पड़ने लगते हैं । उस समय भरत की दशा कैसी है ? जैसी जल के प्रवाह में जल के भौंरे की गति होती है । भरत जी का सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया (देह की सुध बुध भूल गया)।

दो०—लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु ।।२३४।।

भावार्थ— मंगल शगुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निषाद कहने लगा-" सोच मिटेगा, हर्ष होगा, और फिर अन्त में दुःख होगा।"

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ।।
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ।।
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ।।
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ।।
राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ।।
सचिव बिरागु बिबेक नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू ।।
भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी ।।
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ ।।

भावार्थ— भरत जी ने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रम के समीप जा पहुँचे। वहाँ के बन और पर्वतों के समूह को देखा तो भरत जी ऐसे आनन्दित हुए मानों कोई भूखा अन्न (भोजन)पा गया हो। जैसे ईति के भय से दुखी हुई (अतिवृष्ठि, अनावृष्टि, टिड्डी पड़ना, मूसों से खेती का नाश, पक्षियों से खेती का नाश, राज-विद्रोह से क्लेश)और तीनों (आध्यात्मिक, अधिदैविक, और अधिभौतिक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियों से पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और राज्य में जाकर सुखी हो जाए, भरत जी की गति (दशा) ठीक उसी प्रकार हो रही है। श्री रामचन्द्र जी के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है मानों अच्छे राजा को पाकर प्रजा हो। सुहावना बन ही पवित्र देश है। विवेक उसका राजा है और वैराग्य मन्त्री है। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान) योद्धा है। पर्वत राजधानी है, शान्ति और सुबुद्धि दो सुन्दर पवित्र रानियाँ हैं। ये श्रेष्ठ राजा राज्य के सब अंगों से पूर्ण है और श्री रामचन्द्र जी के चरणों में आश्रित रहने से उसके चित्त में चाव (आनन्द या उत्साह)है।

दो०— जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु ।।२३५।।

भावार्थ— मोहरूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेकरूपी राजा निष्कंटक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान हैं।

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना । प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष बृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहु ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला । सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

भावार्थ– बनरूपी प्रान्तों में जो मुनियों के बहुत से निवास स्थान हैं मानों शहरों, नगरों, गाँवों और खेड़ों का समूह है । बहुत से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानों प्रजाओं का समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सुअर, भैंसे और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है । यह सब आपस का वैर छोड़ कर जहाँ तहाँ एक साथ विचरते हैं । यही मानों चतुरंगिणी सेना है । पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंग्घाड़ रहे हैं । चकवा, चकोर, पपीहा तथा कोयलों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं । मानों उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं । समाज आनन्द और मंगल का मूल बन रहा है ।

टिप्पणी– जब गंगा को पार करके, दूसरे दिन श्री रामचन्द्र जी ने तीर्थराज प्रयाग के दर्शन किये, तब तुलसीदास जी ने प्रयाग को राजा की संज्ञा देकर उस राजा के ठाट-बाट का एक बड़े सुन्दर रूपक द्वारा वर्णन किया (देखिए पृष्ठ ४१९-९४) । इसी प्रकार जब भरत चित्रकूट पहुँचे, तो तुलसीदास ने फिर चित्रकूट को राजा की संज्ञा दे कर, दोहा २३५ और उसके ऊपर और नीचे की चौपाइयों में एक रूपक बाँधा है :

१. विवेक राजा है,

२. वैराग्य उसका मन्त्री है,

३. वन उसका देश है,

४. पर्वत उसकी राजधानी है,

५. शान्ति और सुबुद्धि उसकी रानियाँ हैं,

६. यम और नियम उसके योद्धा हैं ।

७. मुनियों के निवास-स्थान राजा के देश के नगर और गाँव हैं,

८. पशु-पक्षी प्रजा हैं,

९. गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सुअर, भैंसा और बैल चतुरंगिणी सेना हैं,

१०. हाथी की चिग्घाड़ नगाड़े हैं,

११. चकवा, चकोर, पपीहा तथा कोयलों की गूँज राज दरबार का संगीत है,

१२. ऐसा यह राजा मोहरूपी राजा को परास्त कर चुका है।

दो०— राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु ।।२३६।।

भावार्थ— श्री राम जी के पर्वत की शोभा देखकर भरत जी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियम की समाप्ति होने पर तपस्या का फल पाकर सुखी होता है।

तब केवट ऊँचें चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई।।
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला।।
जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा।।
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहँ सुखद सब काला।।
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी।।
ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई।।
तुलसी तरुवर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।।
बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई।।

भावार्थ— तब केवट दौड़ कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरत जी से कहने लगा— "हे नाथ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के विशाल वृक्ष दिखाई देते हैं। जिन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में एक सुन्दर विशाल बट वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उनमें लाल फल लगे हैं। मानों ब्रह्मा जी ने परम शोभा को एकत्र करके अन्धकार और लालिमामयी राशि रच दी है। हे गुसाईं! ये वृक्ष नदी के समीप हैं, जहाँ श्री राम की पर्ण कुटी छायी हुई है। वहाँ तुलसी के बहुत से सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीता जी ने और कहीं लक्ष्मण जी ने लगाये हैं। इसी बट की छाया में सीता जी ने अपने कर कमलों से सुन्दर वेदी बनायी है।

दो०— जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ।।२३७।।

भावार्थ– जहाँ सुजान श्री सीताराम जी मुनियों के वृन्द समेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणों की सब कथा-इतिहास सुनते हैं।"

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका ॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥

भावार्थ–सखा के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरत जी के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वती जी भी सकुचाती हैं। श्री रामचन्द्र जी के चरण चिन्ह देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं मानों दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँ के रज को मस्तक पर रख कर हृदय में और नेत्रों में लगाते हैं और श्री रघुनाथ जी के मिलने के समान सुख पाते हैं। भरत जी की अत्यन्त अनिर्वचनी दशा को देख कर बन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्ष आदि)जीव प्रेम में मग्न हो गये। प्रेम के विशेष वश होने से सखा निषादराज को भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे। भरत के प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गये और उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वी तल पर भरत का जन्म (अथवा प्रेम)न होता तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता।

दो०– पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ॥२३८॥

भावार्थ– प्रेम अमृत है, विरह मन्दराचल पर्वत है, भरत जी गहरे समुद्र हैं। कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने देवता और साधुओं के हित के लिये स्वयं (इस भरतरूपी गहरे समुद्र को अपने विरह रूपी मन्दराचल से)मथकर वह प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया है।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन ॥
करत प्रबेसु मिटे दुख दावा। जनु जोगीं परमारथु पावा ॥

देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूँछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें । तून कसें कर सरु धनु काँधें ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू । सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥

भावार्थ– सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन बन की आड़ के कारण लक्ष्मण जी नहीं देख पाये । भरत जी ने प्रभु श्री रामचन्द्र जी के समस्त सुमंगलों के धाम और सुन्दर पवित्र आश्रम को देखा । आश्रम में प्रवेश करते ही भरत जी का दु:ख और दाह (जलन) मिट गया, मानों योगी को परमार्थ (परमतत्व) की प्राप्ति हो गई हो । भरत जी ने देखा कि लक्ष्मण जी प्रभु के आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बात का उत्तर प्रेम पूर्वक दे रहे हैं)। सिर पर जटा है । कमर में मुनियों का (बल्कल) वस्त्र बाँधें हैं और उसी में तरकस कसे हैं । हाथ में बाण तथा कंधे पर धनुष है । वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीता जी सहित श्री रघुनाथ जी विराजमान हैं। श्री रामचन्द्र जी के बल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किये हैं, श्याम शरीर है । सीता राम जी ऐसे लगते हैं मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो । श्री रामजी अपने कर कमलों से धनुष वाण फेर रहे हैं, और हंस कर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं । (अर्थात् जिसकी ओर भी एक बार हंस कर देख लेते हैं, उसी को परम आनन्द और शान्ति मिल जाती है)।

दो०– लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु ॥२३९॥

भावार्थ– सुन्दर मुनिमण्डली के बीच में सीता जी और रघुकुल चन्द्र श्री रामचन्द्र जी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों ज्ञान की सभा में साक्षात भक्ति और सच्चिदानन्द शरीर धारण करके बिराजमान हैं ।

सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ॥
बचन सपेम लखन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा बस जोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥

कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥

भावार्थ– छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरत जी का मन प्रेम में मग्न हो रहा है । हर्ष-शोक, सुख-दुख आदि सब भूल गये । "हे नाथ ! रक्षा कीजिये, हे गुसाईं! रक्षा कीजिये", ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर पड़े । प्रेम भरे वचनों से लक्ष्मण जी ने पहचान लिया और मन में जान लिया कि भरत जी प्रणाम कर रहे हैं (वे श्री राम जी की ओर मुँह किये खड़े थे, भरत जी पीठ-पीछे थे, इससे उन्होंने देखा नहीं)। अब इस ओर तो भाई भरत जी का सरस प्रेम और उधर स्वामी श्री रामचन्द्र जी की सेवा की प्रबल परावशता । न तो (क्षण भर के लिये भी सेवा से प्रथक होकर)मिलते ही बनता है और न (प्रेमवश)छोड़ते ही (उपेक्षा करते ही) । कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मण जी के चित्त की इस गति (दुविधा)का वर्णन कर सकता है । वे सेवा पर भार रखकर रह गये (सेवा को ही विशेष महत्वपूर्ण समझ कर उसी में लगे रहे) ! मानों चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी (पतंग उड़ाने वाला)खींच रहा हो । लक्ष्मण जी ने प्रेम सहित पृथ्वी पर मस्तक नवा कर कहा– "हे रघुनाथ जी ! भरत जी प्रणाम कर रहे हैं ।" यह सुनते ही श्री रघुनाथ जी प्रेम में अधीर होकर उठे । कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण ।

दो०– बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥२४०॥

भावार्थ– कृपानिधान श्री राम जी ने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया। भरत जी और श्री राम जी के मिलने की रीति को देखकर सबको अपनी सुध भूल गयी ।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम पेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥
कहहु सुपेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा ॥
अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥

भावार्थ– मिलन की प्रीति कैसे बखानी जाय । वह तो कविकुल के लिये कर्म, मन, वाणी तीनों से अगम है । दोनों भाई (भरत जी और श्री राम जी)मन, बुद्धि, चित्त और

अहंकार को भुलाकर परम प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं। कहिये उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रकट करे? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे ? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल है। नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है। भरत जी और श्री रघुनाथ जी का प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ ? भला गाँडर की तांत से भी कहीं सुन्दर राग बज सकता है (तालाबों और झीलों में एक तरह की घास होती है, उसे गाँडर कहते हैं)। भरत जी और श्री रामचन्द्र जी के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गये, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देवगुरु वृहस्पति जी ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेते और फूल बरसा कर प्रशंसा करने लगे।

दो०— मिलि सपेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ।।१४१।।

भावार्थ— फिर श्री रामचन्द्र जी प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले। फिर प्रणाम करते हुए लक्ष्मण जी से भरत जी बड़े ही प्रेम से मिले।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ।।
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे ।।
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ।।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ।।
सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं ।।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता ।।
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ।।
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ।।

भावार्थ— तब लक्ष्मण जी ललककर (बड़ी उमंग के साथ) छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषाद राज को हृदय से लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने (उपस्थित) मुनियों को प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनन्दित हुए। छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरत जी प्रेम में उमंग कर सीता जी के चरण कमलों की रज सिर पर धारण कर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीता जी ने उन्हें उठाकर उनके सिर को अपने कर कमल से स्पर्शकर (सिर पर हाथ फेर कर) उन दोनों को बैठाया। सीता जी ने मन-ही मन आशीर्वाद दिया। क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध-बुध नहीं है। सीता जी को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरत जी सोच रहित हो गये और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा। उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेम से परिपूर्ण है, वह अपनी गति से खाली है (अर्थात् संकल्प-विकल्प और चांचल्य से शून्य

है)। उस अवसर पर केवट (निषाद राज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा।

दो०– नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग ।।२४२।।

भावार्थ– "हे नाथ ! मुनिनाथ वशिष्ठ जी के साथ सब माताएँ, नगरनिवासी, सेवक, सेनापति, मंत्री सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आये हैं"।

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू ।।
चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला ।।
गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ।।
मुनिबंर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ।।
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा ।।
रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला ।।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ।।

भावार्थ– गुरु का आगमन सुनकर शील के समुद्र श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी के पास शत्रुघ्न जी को रख दिया और वे परमवीर, धर्म धुरन्धर दीनदयालु श्री रामचन्द्र जी उसी समय वेग के साथ चल पड़े। गुरु जी के दर्शन करके लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी प्रेम में भर गये और दण्डवत् प्रणाम करने लगे। मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम में उमंग कर वे दोनों भाइयों से मिले। फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट (निषाद राज)ने अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठ जी को दण्डवत् प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठ जी ने राम सखा जानकर उसको जबरदस्ती हृदय से लगा लिया। मानों जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो। "श्री रघुनाथ जी की भक्ति सुन्दर मंगलों का मूल है" इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाश से फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे– "जगत में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठ जी के समान बड़ा कौन है।

दो०– जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रकट प्रताप प्रभाउ ।।२४३।।

भावार्थ– जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठ जी लक्ष्मण से भी अधिक उससे आनन्दित होकर मिले, यह सब सीतापति श्री रामचन्द्र जी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है।"

आरत लोग राम सबु जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी ॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू । कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं । जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं ॥
मिलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखीं राम दुखित महतारीं । जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं ॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी । काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥

भावार्थ- दया की खान, सुजान भगवान श्री राम जी ने सब लोगों को दुखी जाना । तब जो जिस भाव से मिलने का अभिलाषी था, उस उसका उस-उस प्रकार का रुख रखते हुए (उसकी रुचि के अनुसार)उन्होंने लक्ष्मण जी सहित पल भर में सब किसी से मिलकर उनके दुख और कठिन संताप को दूर कर दिया । श्री रामचन्द्र जी के लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है । जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य की (पृथक पृथक) छाया (प्रतिबिम्ब)एक साथ ही दिखती है । समस्त पुरवासी प्रेम से उमंग कर केवट से मिलकर (उसके)भाग्य की सराहना करते हैं । श्री रामचन्द्र जी ने सब माताओं को दुखी देखा । मानों सुन्दर लताओं की पंक्तियों को पाला मार गया हो । सबसे पहले राम जी कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया । फिर चरणों में गिरकर काल, कर्म, और विधाता के सिर दोष मढ़ कर, श्री राम जी ने सान्त्वना दी ।

दो०- भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु ।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु ।।२४४।।

भावार्थ- फिर श्री रघुनाथ जी सब माताओं से मिले । उन्होंने सबको समझा बुझा कर सन्तोष कराया कि "हे माता ! जगत ईश्वर के अधीन है । किसी को भी दोष नहीं देना चाहिये ।"

गुरतिय पद बंदे दुहु भाई । सहित बिप्रतिय जे सँग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानीं । देहिं असीस मुदित मृदु बानीं ॥
गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु भेंटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता । परे प्रेम ब्याकुल सब गाता ॥
अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू । किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू ॥

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ । गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू । जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू ॥

भावार्थ– फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों सहित जो भरत जी के साथ आयी थीं, गुरु जी की पत्नी अरून्धती जी के चरणों की वन्दना की और उन सबका गंगा जी तथा गौरी जी के समान सम्मान किया । वे सब आनन्दित होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं । तब दोनों भाई पैर पकड़ कर सुमित्रा जी की गोद में जा चिपटे मानों किसी अत्यन्त दरिद्र को सम्पत्ति से भेंट हो गयी हो । फिर दोनों भाई माता कौशल्या जी के चरणों में गिर पड़े । प्रेम के मारे उनके सब अंग विकल हैं । बड़े ही स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया । और नेत्रों से बहे हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया । उस समय के हर्ष और विषाद को कवि कैसे कहें ? जैसे गूँगा स्वाद को कैसे बतावे । श्री रघुनाथ जी ने छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित माता कौशल्या से मिलकर गुरू जी से कहा कि आश्रम पर पधारिये । तदनन्तर मुनीश्वर वशिष्ठ जी की आज्ञा पाकर अयोघ्यावासी सब लोग जल और सुभीता देख देखकर उतर गये ।

दो०–महिसुर मंत्री मातु गुर गने लोग लिए साथ ।
पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ ।।२४५।।

भावार्थ–ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरू आदि गिने-चुने लोगों को साथ लिए, भरत जी, लक्ष्मण जी और श्री रघुनाथ जी पवित्र आश्रम को चले ।

सीय आइ मुनिबर पग लागी । उचित असीस लही मन मागी ॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता । मिली पेमु कहि जाइ न जेता ॥
बंदि बंदि पग सिय सबही के । आसिरबचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीयँ निहारीं । मूदे नयन सहमि सुकुमारीं ॥
परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं । काह कीन्ह करतार कुचालीं ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा । सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा ॥
जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अवसर करुना महि छाई ॥

भावार्थ– सीता जी आकर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी के चरणों लगीं और उन्होंने मनमाँगी उचित आशिष पायी । फिर मुनियों की स्त्रियों सहित गुरू पत्नी अरुन्धती से मिलीं । उनका जितना प्रेम था कहा नहीं जा सकता । सीता जी ने, सभी के चरणों की अलग-अलग वन्दना करके, अपने हृदय को प्रिय (अनुकूल)लगने वाले आशीर्दाद पाये । जब सुकुमारी सीता जी ने सब सासुओं को देखा, तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखे बन्द कर लीं । (सासुओं की बुरी

दशा देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ) मानों राजहंसनियाँ बधिक के वश में पड़ गयी हों। (मन में सोचने लगीं)कुचाली विधाता ने क्या कर डाला ? उन्होंने भी सीता जी को देखकर बड़ा दुःख पाया। (सोचा)जो कुछ दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है। तब जानकी जी हृदय में धीरज धरकर, नील कमल के समान नेत्रों में जल भर, सब सासुओं से आकर मिलीं। उस समय पृथ्वी पर करुणा (करुण- रस) छा गयी।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं पेम बस रहिअहु भरी सोहाग ।।२४६ ।।

भावार्थ— सीता जी सब के पैरों से लग-लग कर, अत्यन्त प्रेम से मिल रही हैं और सब सासुएँ स्नेहवश हृदय से आशीर्वाद दे रहीं हैं कि तुम सुहाग से भरी रहो(अर्थात सदा सौभाग्यवती रहो)।

बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं ।।
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा ।।
नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ।।
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी ।।
कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी ।।
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू ।।
मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए ।।
ब्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुँ ना लीन्हा ।।

भावार्थ— सीता जी और सब रानियाँ स्नेह के मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरू ने सबको बैठ जाने के लिये कहा। फिर मुनिनाथ वशिष्ठ जी ने जगत की गति को मायिक कहकर (अर्थात जगत माया है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है ऐसा कहकर) कुछ परमार्थ की कथाएँ कहीं। तदनन्तर वशिष्ठ जी ने राजा दशरथ के स्वर्गवास की बात सुनायी। जिसे सुनकर रघुनाथ जी ने दुसह दुख पाया और अपने प्रति उनके स्नेह को उनके मरने का कारण विचार कर धीरधुरन्धर श्री रामचन्द्र जी अत्यन्त व्याकुल हो गये। बज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मण जी सीता जी और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गया। मानों राजा आज ही मरे हों। फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने श्री राम जी को समझाया। तब उन्होंने समाज सहित श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु (श्री रामचन्द्र जी)ने निर्जल व्रत किया। मुनि वशिष्ठ जी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया।

दो० — भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह ।।२४७।।

भावार्थ— दूसरे दिन सबेरा होने पर मुनि वशिष्ठ जी ने श्री रघुनाथ जी को जो आज्ञा दी, वह सब कार्य प्रभु ने श्रद्धा भक्ति सहित आदर के साथ किया।

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी।।

जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला।।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस।।

सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते।।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी।।

सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता।।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ।।

बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई।।

भावार्थ— वेदों में जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पापरूपी अन्धकार के नष्ट करने वाले सूर्यरूप श्री रामचन्द्र जी शुद्ध हुए। जिनका नाम पाप- रूपी रूई के (तुरन्त जला डालने के)लिये अग्नि है, और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मंगलों का मूल है , वे (नित्य शुद्ध-बुद्ध)भगवान श्री राम जी शुद्ध हुए। साधुओं की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध होना वैसे ही है जैसे तीर्थों के आवाहन से गंगा जी शुद्ध होती हैं! जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गये तब श्री रामचन्द्र जी प्रीति के साथ गुरूजी से बोले – "हे नाथ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। कन्द, मूल, फल और जल का ही आहार करते हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मन्त्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल युग के समान बीत रहा है। अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरी को पधारिये (लौट जाइये)। आप यहाँ हैं, और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है)। मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाई! जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये।"

दो०— धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्राम।।२४८।।

भावार्थ—(वशिष्ठ जी ने कहा)– ''हे राम! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो? लोग दुखी हैं। दो चार दिन तुम्हें देखकर शान्ति लाभ कर लें।''

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू।।

सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला।।

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं।।

मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि।।

राम सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं।।

झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी।।

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

भावार्थ– श्री राम जी के वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया। मानों बीच समुद्र में जहाज डगमगा गया हो। परन्तु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठ जी की श्रेष्ठ कल्याण मूलक वाणी सुनी, तो उस जहाज के लिये मानो हवा अनुकूल हो गयी। सब लोग पवित्र यशस्विनी नदी में त्रिकाल (प्रात:काल, मध्यान्ह और सायं) स्नान करते हैं, जिनके दर्शन से ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और मंगलमूर्ति श्री रामचन्द्र जी को दण्डवत् प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र भर-भर कर देखते हैं। सब श्री रामचन्द्र जी के पर्वत (कामदगिरि)और वन को देखने जाते हैं, जहाँ सभी सुख है और सभी दुखों का अभाव है। झरने अमृत के समान जल झरते हैं और तीन प्रकार की (शीतल, मन्द, सुगन्ध) हवा त्रिविध तापों को हर लेती है। असंख्य जाति के वृक्ष, लताएँ और तृन तथा बहुत तरह के फल-फूल और पत्ते हैं। सुन्दर शिलाएँ हैं। वृक्षों की छाया सुख देने वाली है। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है।

दो०–सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२४९॥

भावार्थ– तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौरें गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगों के पक्षी और पशु बन में बैर रहित होकर विहार कर रहे हैं।

कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥
सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं ॥
कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु पेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा ॥
हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा ॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा ॥

भावार्थ- कोल, किरात और भील आदि बन के रहने वाले लोग मीठे, पवित्र, सुन्दर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट कन्द, मूल, फल और अंकुर आदि के गुच्छों को सुन्दर दोने बना कर और उनमें भर-भर कर सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों का अलग अलग स्वाद, भेद (प्रकार),गुण और नाम बता बता कर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में श्री राम जी की दुहाई देते हैं। प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि ''साधु लोग प्रेम को पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात् आप

साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं। श्री राम जी की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाये हैं। हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि के लिये गंगा जी की धारा दुर्लभ है। (देखिये) कृपालु श्री रामचन्द्र जी ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए।

दो०- यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥२५०॥

भावार्थ– हृदय में ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिये और हमको कृतार्थ करने के लिये ही फल, तृण और अंकुर लीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईंधनु पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥

भावार्थ- आप प्रिय पाहुन वन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी ! हम आपको क्या देगें ? भीलों की मित्रता तो बस ईंधन (लकड़ी) और पत्तों तक ही है। हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं ; जीवों की हिंसा करने वाले हैं ; कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं। जब से प्रभु के चरण कमल देखे, तबसे हमारे दुःसह दुख और दोष मिट गये।'' बन वासियों के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गये और उनके भाग्य की सराहना करने लगे।

छं०- लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा॥

सो०- बिहरहिं बन चहु ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥२५१॥

भावार्थ- सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे। उन लोगों के बोलने और मिलने का ढंग तथा श्री सीताराम जी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं। उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदास जी कहते हैं कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया। सब लोग परम आनन्दित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं। जैसे पहली वर्षा के जल से मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)।

टिप्पणी- ऊपर अयोध्याकाण्ड का नवाँ छन्द और सोरठा है। यह पहला अवसर है जब छंद और सोरठे में दो पृथक भाव प्रदर्शित किए गए हैं। अन्य सोरठों में छंद की पुनरावृत्ति है। यहाँ छन्द में कहा गया है कि श्री राम की ही कृपा है कि कोल, किरात, और भील जैसी अनुसूचित जातियों के सारे लोग अयोध्यावासियों के प्रिय हो गये हैं। कहाँ कोल, किरात कठोर वृत्ति के लोग और कहाँ रघुकुल और ऋषि कुल के कोमल वृत्ति के लोग--उलटी गंगा बह रही है। अयोध्या के लोग जनजातियों के वश में हो गए हैं। या यूँ कहिए कि नाव में लोहा लद के जाने की अपेक्षा, लोहा अपने ऊपर नाव को तैराए लिए जा रहा है।

फिर आगे सोरठे में बिलकुल दूसरा भाव व्यक्त किया गया है। जैसे वर्षा का पहला पानी पड़ते ही मेढक और मोर तन्दरुस्त हो जाते हैं और प्रसन्न होकर नाचते-खेलते हैं, वैसे ही अयोध्यावासी मग्न होकर चित्रकूट में विचर रहे हैं।

पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥
लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥
लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहिं जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥
लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥
यहु संसउ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥

भावार्थ- अयोध्यापुरी के पुरुष और स्त्री सभी प्रेम में अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पलक के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीता जी सब सासुओं की आदरपूर्वक एक सी सेवा करती हैं। श्री रामचन्द्र जी के सिवा इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब माताएँ (पराशक्ति महामाया) श्री सीता जी की माया में ही हैं। सीता जी ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिये। सीता जी समेत दोनों भाइयों (श्री राम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछतायी। वह पृथ्वी और यमराज से याचना करती है। किन्तु धरती बीच (फटकर समाजाने के लिये रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता। लोक

और वेद में प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी)भी कहते हैं कि जो श्री राम जी से विमुख हैं उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलती। सब के मन में यह सन्देह हो रहा था कि हे विधाता! श्री रामचन्द्र जी का अयोध्या को जाना होगा या नहीं।

दो०– निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच ।।२५२।।

भावार्थ–भरत जी को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल)के कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली ।।
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू ।।
अवसि फिरहिं गुरू आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ।।
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ ।।
मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता ।।
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू ।।
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी ।।
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई ।।

भावार्थ– (भरत जी सोचते हैं कि)माता के मिस से काल ने कुचाल की हैं। जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता। गुरुजी की आज्ञा मानकर तो श्री राम जी अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे। परन्तु मुनि वशिष्ठ जी तो श्री रामचन्द्र जी की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे (अर्थात वे श्री राम जी की रुचि देखे बिना जाने कुछ नहीं कहेंगे)। माता कौशल्या जी के कहने से भी श्री रघुनाथ जी लौट सकते हैं, पर भला, श्री राम जी को जन्म देने वाली, क्या कभी हठ करेंगी। मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं)और विधाता प्रतिकूल हैं। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म)होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिव जी के पर्वत से भी भारी (निबाहने में कठिन)है। एक भी युक्ति भरत जी के मन में न ठहरी। सोचते ही सोचते रात बीत गयी। भरत जी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्री रामचन्द्र जी को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठ जी ने उनको बुलवा भेजा।

दो०–गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ।।२५३।।

भावार्थ- भरत जी गुरु के चरण कमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गये। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गये।

बोले मुनिबरु समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस भगवानू ॥
सत्यसंघ पालक श्रुति सेतू । राम जनमु जग मंगल हेतू ॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी । खल दलु दलन देव हितकारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला । माया जीव करम कुलि काला ॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि बिचार जियँ देखहु नीकें । राम रजाइ सीस सबही कें ॥

भावार्थ– श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ जी समयोचित वचन बोले– "हे सभासदों ! हे सुजान भरत ! सुनो ! सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्री रामचन्द्र जी धर्म धुरन्धर और स्वतंत्र भगवान हैं । वे सत्यप्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं । श्री राम जी का अवतार ही जगत के कल्याण के लिये हुआ है । वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं । दुष्टों के दल का नाश करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं । नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को श्री राम जी के समान यथार्थ में (तत्व से)कोई नहीं जानता । ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल, शेष जी और पृथ्वी एवं पाताल के अन्यान्य राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है, और योग की सिद्धियाँ जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, अच्छी तरह विचार कर देखो, (तो यह स्पष्ट दिखायी देगा कि)श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा इन सभी के सिर पर है (अर्थात् श्री रामचन्द्र जी ही सबके एकमात्र महान् महेश्वर हैं)।

दो०– राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ ।।२५४।।

भावार्थ– अतएव श्री राम जी की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सब का हित होगा। (इस तत्व और रहस्य को समझकर)अब तुम सयाने लोग जो सब को सम्मत हो, वहीं मिलकर करो ।

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू । मंगल मोद मूल मग एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥
सब सादर सुनि मुनिबर बानी । नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे । तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥
भानुबंस भए भूप घनेरे । अधिक एक तें एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥

दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जगु जाना ॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी । सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

भावार्थ– श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक सबके लिये सुखदायक है। मंगल और आनन्द का मूल यही एक मार्ग है। अब किस प्रकार श्री रघुनाथ जी अयोध्या लौट चलें। सोच कर कहो, वही उपाय किया जाय।'' मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ (प्रजाहित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता। सब लोग भोले (विचार शक्ति से रहित) हो गये। तब भरत ने सिर नवाकर हाथ जोड़े (और कहा)–''सूर्यवंश के एक से एक अधिक बड़े बहुत से राजा हो गये हैं। सभी के जन्म के कारण पिता-माता होते हैं, और शुभ-अशुभ कर्मों को विधाता देते हैं। आपकी आशिष ही एक ऐसी है जो दुखों का दलन करके, समस्त कल्याणों को सजा देती है ? यह जगत् जानता है। हे स्वामी ! आप वही हैं जिन्होंने विधाता की गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है।

दो०– बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु ।
सुनि सनेहमय बचन गुर उर उमगा अनुरागु ॥२५५॥

भावार्थ– अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है।'' भरत जी के प्रेममय वचनों को सुनकर गुरुजी के हृदय में प्रेम उमड़ आया।

तात बात फुरि राम कृपाहीं । राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता । अरध तजहिं बुध सरबस जाता ॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई । फेरिअहिं लखन सीय रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता । भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा । जनु जिय राउ रामु भए राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥
कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू । एहि तें अधिक न मोर सुपासू ॥

भावार्थ– (वे बोले)–''हे तात ! बात सत्य है, पर है राम जी कृपा से ही। राम बिमुख को तो स्वर्ग में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात ! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिये) आधा छोड़ दिया करते हैं। यदि तुम दोनों भाई भरत-शत्रुघ्न वन को जाओ, तो लक्ष्मण, सीता और श्री रामचन्द्र जी को लौटा दिया जाय।'' ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये। उनके सारे अंग आनन्द से परिपूर्ण हो गये। मन प्रसन्न हो गये। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो

राजा दशरथ जी उठे हो और श्री रामचन्द्र जी राजा हो गये हों। अन्य को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई। परन्तु रानियों को दुख सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न-- दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही, यह समझकर) वे सब रोने लगीं। भरत जी कहने लगे ''मुनि ने जो कहा, वह करने मे जगत भर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं), मैं जन्मभर वन में वास करूँगा। मेरे लिये इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

लोकोक्ति-- संस्कृत में एक सूक्ति है :''सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धम त्यजति पण्डित:।'' इस सूक्ति को तुलसीदास जी ने ऊपर की चौपाई में अक्षरश: भाषा में अनूदित कर दिया है:

'अरध तजहिं बुध सरबस जाता।।'

अर्थात्, जब सर्वनाश होता हो, तो बुद्धिमान आधा नाश होने देते हैं और शेष आधा बचा लेते हैं। इस सूक्ति का सहारा लेकर तुरन्त दूसरी पंक्ति में वशिष्ठ जी सुझाव देते हैं कि राम, सीता और लक्ष्मण को अयोध्या वापस लौटा दिया जाये, और उनके स्थान पर भरत और शत्रुघ्न बन को चले जायें। इस प्रकार अयोध्या पर जो महान विपत्ति आई है वह टल जायेगी। भले ही माताओं को फिर भी दो पुत्रों का वियोग तो सहना ही पड़ेगा। वशिष्ठ जी के प्रस्ताव का भरत ने हार्दिक अनुमोदन किया। चौदह वर्ष की अवधि क्या, वह आजीवन बनवास के लिए राजी हो गए। आगे चलकर भरत ने सभा के सामने और भी बहुत से विकल्प रखे। राम और सीता अयोध्या लौट जायें और शेष तीन भाई वनवास करें, अन्यथा लक्ष्मण के स्थान पर राम भरत को (मुझको)अपने साथ बन में ले जायें (देखिए पृष्ठ ६४१)।

दो०-- अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान।।२५६।।

भावार्थ-- श्री रामचन्द्र जी और सीता जी हृदय की जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ!अपने वचनों को प्रमाण (सत्य)कीजिये।''

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू।।
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी।।
गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा।।
और करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई।।
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए।।

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु । बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु ॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी । देस काल अवसर अनुहारी ॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना । धरम नीति गुन ग्यान निधाना ॥

भावार्थ– भरत जी के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठ जी विदेह हो गये (किसी को अपने देह की सुध न रही) । भरत जी की महान महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है । वह पार जाना चाहती है, इसके लिये उसने हृदय में उपाय ढूंढे पर नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरत जी की बड़ाई और कौन करेगा ? तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है । मुनि वशिष्ठ जी की अन्तरात्मा को भरत जी बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित श्री रामचन्द्र जी के पास आये । प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया । सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गये । श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले –''हे सर्वज्ञ ! हे सुजान ! हे धर्म, नीति और ज्ञान के भण्डार राम ! सुनिये।

दो०– सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ ।।२५७।।

भावार्थ– आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले बुरे भाव को जानते हैं। जिससे पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइये।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें । आयसु किएँ मुदित फुर भाषें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई । माथें मानि करौं सिख सोई ॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरत सनेहँ बिचारु न राखा ॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥

भावार्थ– आर्त (दुःखी)लोग कभी विचार नहीं करते । जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है ।'' मुनि के वचन सुनकर श्री रघुनाथ जी कहने लगे--''हे नाथ ! उपाय तो आपके ही हाथ है । आपका रूख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कह कर प्रसन्नता पूर्वक पालन करने में ही सब का हित है । पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे चढ़ाकर करूँ । फिर हे गोसाईं ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जायेगा (आज्ञा पूरी करेगा)।'' मुनि वशिष्ठ जी कहने लगे–''हे राम तुमने सच कहा । पर भरत के प्रेम

ने विचार को नहीं रहने दिया । इसलिये मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश में हो गई है । मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जायेगा, वह सब शुभ ही होगा । शिव जी इसके साक्षी हैं ।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई की पहली पंक्ति में एक लोकोक्ति है :

'सूझ जुआरिहि आपन दाऊ'

द्यूतक्रीड़ा में लग्न जुआरी बराबर अपना ही दाँव देखता है । पासे का खेल आमने-सामने का होता है । एक खिलाड़ी सम संख्या लेता है और दूसरा विषम । पासा फेकने वाले का ध्यान निरन्तर अपनी संख्या पर रहता है । जैसे छः वाला निरन्तर घोषणा करता है–छः आ गया, छः आ गया । यह लोकोक्ति वशिष्ठ जी के मुख से क्यों निकली, यह समझना भी आवश्यक है । वह पहले ही राम से कह चुके हैं कि जिसमें पुरवासियों, माता और भरत का हित हो, वह वैसा ही उपाय बताऐं । यह तीनों वर्ण के लोग राम के वियोग में दु:खी है । इनकी विचार शक्ति शिथिल हो गई है । यह तो यही चाहते हैं कि राम किसी तरह अयोध्या वापस लौट चलें । इनकी चाह जुआरी की अपने पासे की चाह के समान है ।

दो०– भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ।।२५८।।

भावार्थ– पहले भरत की बिनती आदरपूर्वक सुन लीजिये, फिर उस पर विचार कीजिये। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार)निकाल कर जैसा हो (उसी के अनुसार)कीजिये ।''

गुर अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदयँ आनंदु बिसेषी ।।
भरतहि धरम धुरंधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ।।
बोले गुर आयस अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगलमूला ।।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ।।
जे गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ।।
राउर जा पर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ।।
लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरत बड़ाई ।।
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई । अस कहि राम रहे अरगाई ।।

भावार्थ– गुरु का भरत के प्रति प्रेम देखकर, राम को हार्दिक आनन्द हुआ । भरत को धर्म-धुरंधर और मन-वचन-काय से अपना सेवक जानकर, श्री रामचन्द्र जी गुरू की आज्ञा के अनुकूल, मनोहर, कोमल और कल्याणमूलक वचन बोले–''हे नाथ ! आपकी शपथ और पिता जी की चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि)विश्वभर में भरत के

समान भाई कोई हुआ ही नहीं। जो लोग गुरु के चरण कमलों के अनुरागी हैं, वो लोक में (लौकिक दृष्टि से)भी और वेद में (पारमार्थिक दृष्टि से)भी बड़भागी होते हैं। (फिर) जिस पर आप (गुरू)का ऐसा स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है। छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। भरत जो कुछ कहें वहीं करने में भलाई है।'' ऐसा कहकर श्री रामचन्द्र जी चुप हो रहे।

दो०— तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात।।२५९।।

भावार्थ— तब मुनि भरत जी से बोले—''हे तात! सब संकोच त्याग कर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो।''

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरू साहिब अनुकूल अघाई।।
लखि अपने सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू।।
पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े।।
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा।।
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ।।
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी।।
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहूँ न कीन्ह मोर मन भंगू।।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही।।

भावार्थ— मुनि के वचन सुनकर और श्री रामचन्द्र जी का रूख पाकर, गुरू तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर, सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर, भरत जी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे। शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हुए। कमल सदृश नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ गयी। (वे बोले)—''मेरा कहना तो मुनि नाथ ने ही निवाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह सब उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ। अपने नाथ का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझपर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता)नहीं देखी। बचपन से ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भली भाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं।

दो०— महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन।।२६०।।

भावार्थ— मैंने भी प्रेम और संकोच वश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आजतक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए।

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीचु जननी मिस पारा ।।

यहउ कहत मोहि आजु न सोभा । अपनी समुझि साधु सुचि को भा ।।

मातु मंदि मैं साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली ।।

फरइ कि कोदव बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक काली ।।

सपनेहुँ दोसक लेसु न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ।।

बिनु समुझें निज अघ परिपाकू । जारिउँ जायँ जननि कहि काकू ।।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा । एकहिं भाँति भलेहिं भल मोरा ।।

गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू । लागत मोहि नीक परिनामू ।।

भावार्थ– परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका । उसने नीच माता के बहाने अन्तर डाल दिया । यह भी कहना मुझे आज शोभा नहीं देता । क्योंकि अपनी समझ में से कौन साधु और पवित्र हुआ है ? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें वहीं साधु है) । माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली में उत्तम धान फल सकता है ? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है । स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैं ने अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही, माता को कुवचन कहकर व्यर्थ ही जलाया। मैं अपने हृदय में सब ओर खोजकर हार गया (मेरी भलाई का कोई स्थान नहीं सूझता)। एक ही प्रकार है जिससे भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्री सीताराम जी मेरे स्वामी हैं । इसी से मुझे परिणाम अच्छा जान पड़ता है ।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में दो लोकोक्ति हैं जो एक दूसरे से मिलती हैं :-

१- फरइ कि कोदव बालि सुसाली ।

२- मुकता प्रसव कि संबुक काली ।।

दोनों लोकोक्तियों का एक ही आशय है । रद्दी बीज से अच्छे फल की आशा नहीं करनी चाहिए । कोदों (घटिया छोटा अनाज का दाना)के पौधे में उत्तम श्रेणी का धान (चावल) नहीं उपज सकता, और न काली घोंगी (छोटी सीपी)में मोती पैदा हो सकता है। इसी प्रकार आत्म ग्लानि में भरत कहते हैं कि नीच माता कैकेयी की कोख से उत्पन्न मुझ अभागे से किसी प्रकार की आशा नहीं रखनी चाहिये ।

दो०– साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सति भाउ ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ।।२६१।।

भावार्थ– साधुओं की सभा में गुरु जी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ हैं या सत्य ? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठ जी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथ जी जानते हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥

भावार्थ– प्रेम में प्रण को रखकर महाराज (पिता जी) का मरना और माता की कुबुद्धि दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जाती। अवधपुरी के नर-नारी दुसह ताप से जल रहे हैं। इस सारे अनर्थों का मूल मैं ही हूँ। यह सुनकर और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण और सीता जी के साथ मुनिवेष धारण कर बिना जूते पहने नंगे पैर (पैदल) ही बन को चले गये, यह सुनकर, शंकर जी साक्षी हैं, इस घाव से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)। अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रहकर सभी सहेगा, जिसको देखकर रास्ते की तीक्ष्ण सांपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और क्रोध को त्याग देती हैं।

दो०– तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

भावार्थ– वे ही श्री रघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिनको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहायेगा।''

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥
तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें ॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥

भावार्थ– दुःख, प्रेम, विनय और नीति से सनी हुई अत्यन्त व्याकुल भरत जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये, सारी सभा में विषाद छा गया। मानों कमल के वन पर पाला पड़ गया हो। तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर, भरत जी का समाधान किया। फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनन्दन उचित बचन बोले – "हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मन में तीनों कालों और तीनों लोकों के पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं। हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करते ही लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। माता जी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरू और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।

दो०– मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

भावार्थ– हे भरत ! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जायेंगे। तथा लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख प्राप्त होता है।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीकें । करौं काह असमंजस जीकें ॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

भावार्थ– हे भरत ! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं–यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है। हे तात ! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते। पक्षी और पशु मुनियों के पास बेधड़क चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है। हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जी में बड़ा असमंजस है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण

भावार्थ– साधुओं की सभा में गुरु जी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ हैं या सत्य ? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठ जी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथ जी जानते हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥

भावार्थ– प्रेम में प्रण को रखकर महाराज (पिता जी) का मरना और माता की कुबुद्धि दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जाती। अवधपुरी के नर-नारी दुसह ताप से जल रहे हैं। इस सारे अनर्थों का मूल मैं ही हूँ। यह सुनकर और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण और सीता जी के साथ मुनिवेष धारण कर बिना जूते पहने नंगे पैर (पैदल) ही बन को चले गये, यह सुनकर, शंकर जी साक्षी हैं, इस घाव से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)। अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रहकर सभी सहेगा, जिसको देखकर रास्ते की तीक्ष्ण सांपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और क्रोध को त्याग देती हैं।

दो०– तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

भावार्थ– वे ही श्री रघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिनको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहायेगा।''

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥
तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें ॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥

भावार्थ– दुःख, प्रेम, विनय और नीति से सनी हुई अत्यन्त व्याकुल भरत जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये, सारी सभा में विषाद छा गया। मानों कमल के वन पर पाला पड़ गया हो। तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक)कथाएँ कहकर, भरत जी का समाधान किया। फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनन्दन उचित बचन बोले – ''हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मन में तीनों कालों और तीनों लोकों के पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं। हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करते ही लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। माता जी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरू और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है।

दो०– मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

भावार्थ– हे भरत ! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जायेंगे। तथा लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख प्राप्त होता है।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें ॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

भावार्थ– हे भरत ! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं–यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है। हे तात ! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते। पक्षी और पशु मुनियों के पास बेधड़क चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है। हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जी में बड़ा असमंजस है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण

भावार्थ— साधुओं की सभा में गुरु जी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ हैं या सत्य ? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठ जी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथ जी जानते हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी । जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं । जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ॥
महीं सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा । करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ । संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू । कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ॥
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई । जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ॥
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी । तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ॥

भावार्थ— प्रेम में प्रण को रखकर महाराज (पिता जी) का मरना और माता की कुबुद्धि दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जाती। अवधपुरी के नर-नारी दुसह ताप से जल रहे हैं। इस सारे अनर्थों का मूल मैं ही हूँ। यह सुनकर और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण और सीता जी के साथ मुनिवेष धारण कर बिना जूते पहने नंगे पैर (पैदल) ही बन को चले गये, यह सुनकर, शंकर जी साक्षी हैं, इस घाव से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)। अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रहकर सभी सहेगा, जिसको देखकर रास्ते की तीक्ष्ण सांपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और क्रोध को त्याग देती हैं।

दो०— तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

भावार्थ— वे ही श्री रघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिनको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहायेगा।''

सुनि अति बिकल भरत बर बानी । आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभाँ खभारू । मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू ॥
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी । भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥
तात जायँ जियँ करहु गलानी । ईस अधीन जीव गति जानी ॥
तीनि काल तिभुअन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥

भावार्थ– दुःख, प्रेम, विनय और नीति से सनी हुई अत्यन्त व्याकुल भरत जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये, सारी सभा में विषाद छा गया । मानों कमल के वन पर पाला पड़ गया हो । तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर, भरत जी का समाधान किया । फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनन्दन उचित बचन बोले – "हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो । मेरे मन में तीनों कालों और तीनों लोकों के पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं । हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करते ही लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं । माता जी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरू और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है ।

दो०– मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

भावार्थ– हे भरत ! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जायेंगे । तथा लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख प्राप्त होता है ।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीकें । करौं काह असमंजस जीकें ॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

भावार्थ– हे भरत ! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं—यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है । हे तात ! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो । बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते। पक्षी और पशु मुनियों के पास बेधड़क चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं । मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है । हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जी में बड़ा असमंजस है । राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण

भावार्थ— साधुओं की सभा में गुरु जी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में सत्य भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ हैं या सत्य ? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठ जी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथ जी जानते हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ।।
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं ।।
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ।।
सुनि बन गबनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा ।।
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ।।
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू ।।
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ।।
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी ।।

भावार्थ— प्रेम में प्रण को रखकर महाराज (पिता जी) का मरना और माता की कुबुद्धि दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जाती। अवधपुरी के नर-नारी दुसह ताप से जल रहे हैं। इस सारे अनर्थों का मूल मैं ही हूँ। यह सुनकर और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण और सीता जी के साथ मुनिवेष धारण कर बिना जूते पहने नंगे पैर (पैदल) ही बन को चले गये, यह सुनकर, शंकर जी साक्षी हैं, इस घाव से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)। अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जड़ जीव जीता रहकर सभी सहेगा, जिसको देखकर रास्ते की तीक्ष्ण सांपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और क्रोध को त्याग देती हैं।

दो०— तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि ।।२६२।।

भावार्थ— वे ही श्री रघुनन्दन, लक्ष्मण और सीता जिनको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहायेगा।''

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी ।।
सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू ।।
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ।।
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू ।।
तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ।।
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें ।।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ॥

भावार्थ– दुःख, प्रेम, विनय और नीति से सनी हुई अत्यन्त व्याकुल भरत जी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गये, सारी सभा में विषाद छा गया । मानों कमल के वन पर पाला पड़ गया हो । तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठ जी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर, भरत जी का समाधान किया । फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनन्दन उचित बचन बोले – ''हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो । मेरे मन में तीनों कालों और तीनों लोकों के पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं । हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करते ही लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं । माता जी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरू और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है ।

दो०— मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ।।२६३।।

भावार्थ– हे भरत ! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जायेंगे । तथा लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख प्राप्त होता है ।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ॥
मुनि गन निकट बिहग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥
तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीकें । करौं काह असमंजस जीकें ॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

भावार्थ– हे भरत ! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं–यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है । हे तात ! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो । बैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते। पक्षी और पशु मुनियों के पास बेधड़क चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं । मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है । हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जी में बड़ा असमंजस है । राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण

के लिये शरीर छोड़ दिया। उनके वचन मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरू जी ने मुझे आज्ञा दी है। इसलिये अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ।

दो०— मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंघ रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ।।२६४।।

भावार्थ— तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्यागकर जो कुछ कहो, मैं आज वहीं करूँ।'' सत्य-प्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ।।
बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं ।।
बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं ।।
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा ।।
सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ।।
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा ।।
आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ।।
हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ।।

भावार्थ— देवगणों सहित इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब सब बना बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बना। तब वे मन ही मन श्री राम जी की शरण गये। फिर विचार करके आपस में कहने लगे कि श्री रघुनाथ जी तो भक्त की भक्ति के वश हैं। अम्बरीष और दुर्वाषा की (घटना) याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गये। पहले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रहलाद ने ही नृसिंह भगवान् को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानों से लग-लग कर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओं का काम भरत जी के हाथ है। देवताओं को और कोई उपाय नहीं दिखायी देता। श्री राम जी अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते हैं (अर्थात् उनके भक्त की कोई सेवा करता है तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं)। अतएव अपने गुण और शील से श्री राम जी को वश में करने वाले भरत जी का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो।

टिप्पणी— दोहा २६४ में राम ने भरत से कहा कि तुम जो कुछ कहोगे, मैं वही करूंगा। राम के यह वचन सुनकर इन्द्र और अन्य देवता सोच में पड़ गये कि कही भरत के कहने से राम अयोध्या न वापस लौट जायें। परन्तु अपनी माया का प्रभाव भरत पर डालने का उन्हें साहस नहीं हो रहा है। उनके गुरु वृहस्पति उन्हें पहले ही चेतावनी दे चुकें हैं कि भगवान

राम अपने प्रति किए हुए अपराध को भले ही माफ कर दें, पर यदि कोई उनके भक्त का अपराध करता है, तो श्री राम उसको अवश्य दण्ड देते हैं। इस संदर्भ में वृहस्पति ने अम्बरीष दुर्वासा का दृष्टान्त दिया था। वह दृष्टान्त देवताओं को याद आ गया। फिर उन्हें इस बात से सन्तोष हुआ कि हिरण्यकशिपु के अत्याचार से जब देवता बहुत दुखी हो गये थे, तब भगवान ने नृसिंह अवतार धारण करके अपने भक्त प्रहलाद की रक्षा की थी।

१- **अम्बरीष-दुर्वासा**-अन्तर्कथा के लिये देखिए पृष्ठ ५९४-९५।

२- **प्रह्लाद**-अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ ५७,११८।

दो०— सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ।।२६५।।

भावार्थ— देवताओं का मत सुनकर देवगुरु वृहस्पति ने कहा—"अच्छा विचार किया तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरत जी के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल है।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई।।
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई।।
देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ।।
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं।।
सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सकोचू।।
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना।।
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका।।
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा।।

भावार्थ— सीतानाथ श्री राम जी के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन में भरत जी की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी। हे देवराज! भरत जी का प्रभाव तो देखो। श्री रघुनाथ जी सहज स्वभाव से ही उनके पूर्ण रूप से वश में हैं। हे देवताओं, भरत जी को श्री रामचन्द्र जी की परछाई जानकर मन स्थिर करो, डर की बात नहीं है।" देवगुरु वृहस्पति जी और देवताओं की सम्मति (आपस का विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्री राम जी को संकोच हुआ। भरत जी ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदय से करोड़ों (अनेकों) प्रकार के अनुमान विचार करने लगे। सब तरह से विचार करके अन्त में उन्होंने मन में यही निश्चय किया कि श्री राम जी की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात् अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया)।

के लिये शरीर छोड़ दिया। उनके वचन मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरू जी ने मुझे आज्ञा दी है। इसलिये अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ।

दो०— मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंघ रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ।।२६४।।

भावार्थ— तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्यागकर जो कुछ कहो, मैं आज वहीं करूँ।'' सत्य-प्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ श्री राम जी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू ।।
बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं ।।
बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं ।।
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा ।।
सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा ।।
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा ।।
आन उपाउ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ।।
हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ।।

भावार्थ— देवगणों सहित इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब सब बना बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बना। तब वे मन ही मन श्री राम जी की शरण गये। फिर विचार करके आपस में कहने लगे कि श्री रघुनाथ जी तो भक्त की भक्ति के वश हैं। अम्बरीष और दुर्वाषा की (घटना) याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गये। पहले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रहलाद ने ही नृसिंह भगवान् को प्रकट किया था। सब देवला परस्पर कानों से लग-लग कर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओं का काम भरत जी के हाथ है। देवताओं को और कोई उपाय नहीं दिखायी देता। श्री राम जी अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते हैं (अर्थात् उनके भक्त की कोई सेवा करता है तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं)। अतएव अपने गुण और शील से श्री राम जी को वश में करने वाले भरत जी का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो।

टिप्पणी— दोहा २६४ में राम ने भरत से कहा कि तुम जो कुछ कहोगे, मैं वही करूंगा। राम के यह वचन सुनकर इन्द्र और अन्य देवता सोच में पड़ गये कि कही भरत के कहने से राम अयोध्या न वापस लौट जायें। परन्तु अपनी माया का प्रभाव भरत पर डालने का उन्हें साहस नहीं हो रहा है। उनके गुरु वृहस्पति उन्हें पहले ही चेतावनी दे चुकें हैं कि भगवान

राम अपने प्रति किए हुए अपराध को भले ही माफ कर दें, पर यदि कोई उनके भक्त का अपराध करता है, तो श्री राम उसको अवश्य दण्ड देते हैं। इस संदर्भ में वृहस्पति ने अम्बरीष दुर्वासा का दृष्टान्त दिया था। वह दृष्टान्त देवताओं को याद आ गया। फिर उन्हें इस बात से सन्तोष हुआ कि हिरण्यकशिपु के अत्याचार से जब देवता बहुत दुखी हो गये थे, तब भगवान ने नृसिंह अवतार धारण करके अपने भक्त प्रहलाद की रक्षा की थी।

१- **अम्बरीष-दुर्वासा**-अन्तर्कथा के लिये देखिए पृष्ठ ५९४-९५।

२- **प्रह्लाद**-अन्तर्कथा के लिए देखिए पृष्ठ ५७,११८।

दो०– सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ।।२६५।।

भावार्थ– देवताओं का मत सुनकर देवगुरु वृहस्पति ने कहा–"अच्छा विचार किया तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरत जी के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल हैं।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ।।
भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ।।
देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ ।।
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं ।।
सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सकोचू ।।
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना ।।
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका ।।
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ।।

भावार्थ– सीतानाथ श्री राम जी के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन में भरत जी की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी। हे देवराज! भरत जी का प्रभाव तो देखो। श्री रघुनाथ जी सहज स्वभाव से ही उनके पूर्ण रूप से वश में हैं। हे देवताओं, भरत जी को श्री रामचन्द्र जी की परछाई जानकर मन स्थिर करो, डर की बात नहीं है।" देवगुरु वृहस्पति जी और देवताओं की सम्मति (आपस का विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्री राम जी को संकोच हुआ। भरत जी ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदय से करोड़ों (अनेकों) प्रकार के अनुमान विचार करने लगे। सब तरह से विचार करके अन्त में उन्होंने मन में यही निश्चय किया कि श्री राम जी की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात् अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया)।

दो०— कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ ।।२६६।।

भावार्थ— श्री सीता राम जी ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया। तदनन्तर भरत जी दोनों कर कमलों को जोड़कर प्रणाम करके बोले ।

कहौं कहावौं का अब स्वामी । कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ।।
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला । मिटी मलिन मन कलपित सूला ।।
अपडर डरेउँ न सोच समूलें । रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ।।
मोर अभागु मातु कुटिलाई । बिधि गति बिषम काल कठिनाई ।।
पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला । प्रनतपाल पन आपन पाला ।।
यह नइ रीति न राउरि होई । लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई ।।
जगु अनभल भल एकु गोसाईं । कहिअ होइ भल कासु भलाईं ।।
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ । सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ।।

भावार्थ— ''हे स्वामी ! हे कृपा के समुद्र ! हे अन्तरयामी अब मैं अधिक क्या कहूँ और क्या कहाऊँ? गुरु महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा मिट गयी । मैं मिथ्या उस से ही डर गया था । मेरे सोच की जड़ ही न थी । दिशा भूल जाने पर हे देव ! सूर्य का दोष नहीं है । मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की भयानक गति और काल की कठिनता, इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके)नष्ट कर दिया था परन्तु शरणागत के रक्षक आपने अपना प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया) । यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है । यह लोक और वेदों मे प्रकट है, छिपी नहीं है । सारा जगत बुरा है, हे स्वामी ! भले तो एक आप हैं । फिर कहिये किसकी भलाई से भला हो सकता है ? हे देव ! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, वह न कभी किसी के सम्मुख (अनुकूल)है, न विमुख (प्रतिकूल)।

दो०— जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच ।
मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच ।।२६७।।

भावार्थ— उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाय, तो उसकी छाया सब प्रकार के सोच का नाश करने वाली है । राजा-रंक, भले-बुरे जगत् में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू । मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू ।।
अब करुनाकर कीजिअ सोई । जन हित प्रभु चित छोभु न होई ।।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का । किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू । सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥
देव एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ॥
तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥

भावार्थ— गुरू और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी सन्देह नहीं रहा । हे दया की खान ! अब वही कीजिये जिससे दास का हित हो और प्रभु के चित्त में क्षोभ न हो । जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है । सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा ही करे । हे नाथ आपके लौटने में सभी का स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है । यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है, समस्त पुण्यों का फल और सम्पूर्ण शुभ गतियों का श्रृंगार है । हे देव ! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये । राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लायी गई है, जो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिये ।

दो०— सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ ।
नतरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ।।२६८।।

भावार्थ— छोटे भाई शत्रुघ्न सहित मुझे वन में भेज दीजिये और सबको सनाथ कीजिये। नहीं तो हे नाथ, लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलूँ ।

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुना सागर कीजिअ सोई ॥
देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू । मोरें नीति न धरम बिचारू ॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत कें चित चेतू ॥
उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू । स्वामि सनेह सराहत साधू ॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ । जग मंगल हित एक उपाऊ ॥

भावार्थ— अथवा हम तीनों भाई बन चले जायें और हे श्री रघुनाथ जी ! आप श्री सीता जी सहित (अयोध्या को) लौट जाइये । हे दया सागर ! जिस प्रकार से प्रभु का मन

प्रसन्न हो वहीं कीजिये। हे देव ! आपने सारा भार (जिम्मेदारी) मुझपर रख दिया। पर मुझ में न तो नीति का विचार है और न धर्म का ही। मैं तो अपने स्वार्थ के लिये सब बातें कह रहा हूँ। आर्त्त (दुखी) मनुष्य के चित्त में चेत (विवेक) नहीं रहता। स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ)। किन्तु स्वामी (आप) स्नेहवश साधु कहकर मुझे सराहते हैं। हे कृपालु ! अब तो वही मत मेरे मन भाता है, जिससे स्वामी का मन सोच न पावे। प्रभु के चरणो की शपथ है, मैं सत्य भाव से कहता हूँ, जगत के कल्याण के लिये एक यही उपाय है।

दो०— प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब ।।२६९।।

भावार्थ— प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब सिर चढ़ा-चढ़ा कर पालन करेंगे और सब उपद्रव और उलझने मिट जायेंगी।''

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ।।
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनवासी ।।
चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची ।।
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठँ सुनि बेगि बोलाए ।।
करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे ।।
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता ।।
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर बर जोरें हाथा ।।
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं ।।

भावार्थ— भरत जी के पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु साधु' कहकर सराहना करके देवताओं ने फूल बरसाये। अयोध्यावासी असमंजस के वश हो गये (दुबिधा में पड़ गये)। तपस्वी तथा बनवासी लोग मन में परम आनन्दित हुए। संकोची श्री रघुनाथ जी चुप ही रह गये। प्रभु की यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोच में पड़ गयी। उसी समय जनक जी के दूत आये। यह सुनकर मुनि वशिष्ठ जी ने उन्हें तुरंत बुलवा लिया। उन्होंने आकर प्रणाम करके श्री रामचन्द्र जी को देखा। उनका (मुनियों का सा) वेष देखकर वे बहुत ही दुःखी हुए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने दूतों से बात पूछी की विदेह राज का कुशल-समाचार कहो। यह (मुनि का कुशल प्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़कर बोले—''हे स्वामी आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाई ! कुशल का कारण हो गया।

दो०– नाहिं त कोसल नाथ कें साथ कुसल गइ नाथ ।
मिथिला अवध बिसेष तें जगु सब भयउ अनाथ ।।२७०।।

भावार्थ– नहीं तो हे नाथ ! कुशल तो सब कोशलनाथ दशरथ जी के साथ ही चली गयी । यों तो सारा जगत् ही अनाथ हो गया, किन्तु मिथिला और अवध तो विशेष रूप से अनाथ हो गये ।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा । भे सब लोक सोक बस बौरा ।।
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू । नामु सत्य अस लाग न केहू ।।
रानि कुचालि सुनत नरपालहिं । सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि ।।
भरत राज रघुबर बनबासू । भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू ।।
नृप बूझे बुध सचिव समाजू । कहहु बिचारि उचित का आजू ।।
समुझि अवध असमंजस दोऊ । चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ।।
नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी । पठए अवध चतुर चर चारी ।।
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ । आएहु बेगि न होइ लखाऊ ।।

भावार्थ– कोशलपति की गति (दशरथ जी का मरण)सुनकर जनकपुर वासी सभी लोग शोकवश हो गए । उस समय जिन्होंने विदेह को (शोक मग्न)देखा, उनमें से किसी को ऐसा न लगा कि उनका विदेह नाम सत्य है । रानी की कुचाल सुनकर राजा जनक जी को कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि बिना साँप को नहीं सूझता । फिर भरत जी को राज्य और रघुबर श्री रामचन्द्र जी को बनवास सुनकर मिथेलश्वर श्री जनक जी के हृदय में बड़ा दुख हुआ ।राजा ने विद्वानों और मंत्रियों के समाज से पूछा कि विचार कर कहिये, आज (इस समय) क्या करना उचित है । अयोध्या की दशा समझकर और दोनों प्रकार से असमंजस जानकर चलें या रहें ? किसी ने कुछ नहीं कहा । (जब किसी ने कोई सम्मति नहीं दी) तब राजा ने धीरज धर हृदय में विचार कर चार चतुर गुप्तचर अयोध्या को भेजे । उनसे कह दिया कि तुम लोग भरत जी के सद्भाव या दुर्भाव का यथार्थ पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसी को तुम्हारा पता न लगने पावे ।

दो०– गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति ।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति ।।२७१।।

भावार्थ– गुप्तचर अवध को गये और भरत जी का ढंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जैसे ही भरत चित्रकूट को चले वे तिरहुत (मिथिला)को चल दिये ।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी । जनक समाज जथामति बरनी ।।
सुनि गुर परिजन सचिव महीपति । भे सब सोच सनेहँ बिकल अति ।।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई । लिए सुभट साहनी बोलाई ॥
घर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥
दुघरी साधि चले ततकाला । किए बिश्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सबु लागा ।
खबरि लेन हम पठए नाथा । तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे । मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥

भावार्थ– गुप्त दूतों ने आकर राजा जनक जी की सभा में भरत जी की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया । उसे सुनकर गुरू, कुटुम्बी, मन्त्री और राजा सभी सोच और स्नेह से अत्यन्त व्याकुल हो गये । फिर जनक जी ने धीरज धर कर और भरत जी की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और सैनिकों को बुलाया । घर, नगर और देश में रक्षकों को रख कर घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत सी सवारियां सजवायीं । वे दुघड़िया मुहूर्त साध कर उसी समय चल पड़े । राजा ने रास्ते में कहीं भी विश्राम नहीं किया । आज सबेरे ही प्रयाग राज में स्नान करके चले हैं । जब सब लोग यमुना जी उतरने लगे । तब हे नाथ ! हमें खबर लेने को भेजा ।'' उन्होंने (दूतों ने)ऐसा कहकर पृथ्वी पर सिर नवाया । मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने कोई छः सात भीलों को साथ देकर दूतों को तुरन्त विदा कर दिया ।

दो०– सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु ।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु ।।२७२।।

भावार्थ– जनक जी का आगमन सुनकर अयोध्या का सारा समाज हर्षित हो गया श्री राम जी को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेष रूप से सोच के वश हो गये

गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहै केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नर नारी । भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥
एहि प्रकार गत बासर सोऊ । प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी । गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥
रमा रमन पद बंदि बहोरी । बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा रामु जानकी रानी । आनँद अवधि अवध रजधानी ॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा । भरतहि रामु करहुँ जुबराजा ॥
एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू । देव देहु जग जीवन लाहू ॥

भावार्थ–कुटिल कैकेयी मन ही मन ग्लानि से गली जाती है । किससे कहे और किसको दोष दे ? और सब नर-नारी मन में ऐसा विचार कर प्रसन्न हो रहे हैं कि अच्छा हुआ, चार

(कुछ) दिन और रहना हो गया। इत तरह वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातः काल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर नारी गणेश जी, महादेव जी और सूर्य भगवान की पूज़ा करते हैं। फिर लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के चरणों की वन्दना करते, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसार कर विनती करते हैं कि श्री राम जी राजा हों, जानकी जी रानी हों, तथा राजधानी अयोध्या आनन्द की सीमा होकर, फिर समाज सहित सुख पूर्वक बसे और श्री राम जी भरत जी को युवराज बनावें। हे देव ! इस सुख रूपी अमृत से सींचकर सबको जगत में जीने का लाभ दीजिये।

दो०— गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ ।।२७३।।

भावार्थ— गुरु, समाज और भाइयों समेत श्री राम जी का राज्य अवधपुरी में हो और राम जी के राजा रहते ही हम लोग अयोध्या में मरें। सब कोई यही माँगते हैं।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ।।
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन ।।
ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ।।
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं ।।
लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ।।
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ।।
कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ।।
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे ।।

भावार्थ— अवधवासियों की प्रेमयमयी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्य कर्म करके श्री राम जी को पुलकित शरीर हो प्रणाम करते हैं। ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियों के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्री राम जी का दर्शन प्राप्त करते हैं। श्री रामचन्द्र जी सावधानी के साथ सब का सम्मान करते हैं, और सभी कृपानिधान श्री रामचन्द्र जी की सराहना करते हैं। श्री रघुबर की लड़कपन से ही यह बात है कि वे प्रेम को पहचान कर नीति का पालन करते हैं। श्री रघुनाथ जी शील और संकोच के समुद्र हैं। वे सुन्दर मुख के या सबके अनुकूल रहने वाले, सुन्दर लोचन वाले या सबकों कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखने वाले और सरल स्वभाव हैं। श्री राम जी के गुण समूहों को कहते सब लोग प्रेम में भर गए और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि जगत में हमारे समान पुण्य की बड़ी पूँजी वाले थोड़े ही हैं, जिन्हें श्री रामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं)।

दो०— प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु ।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु ।।२७४।।

भावार्थ— उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं । इतने में ही मिथिलापति जनक जी को आते हुए सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्र जी सभा सहित आदरपूर्वक जल्दी से उठ खड़े हुए ।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा । आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा ।।
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं । करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं ।।
राम दरस लालसा उछाहू । पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ।।
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही । बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ।।
आवत जनकु चले एहि भाँती । सहित समाज प्रेम मति माती ।।
आए निकट देखि अनुरागे । सादर मिलन परसपर लागे ।।
लगे जनक मुनिजन पद बंदन । रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन ।।
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि । चले लवाइ समेत समाजहिं ।।

भावार्थ— भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर श्री रघुनाथ जी आगे (जनक जी की आगवानी में) चले । जनक जी ने ज्योंहि पर्वतश्रेष्ठ कामदगिरि को देखा, त्योंही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया (पैदल चलना शुरु कर दिया) । श्री राम जी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को जरा भी रास्ते की थकावट और क्लेश नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्री रघुवर और जानकी जी हैं । बिना मन के शरीर के सुख दुख की सुध किसको है । जनक जी इस प्रकार चले आ रहे हैं । समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है । निकट आये देखकर सब प्रेम में भर गये और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे । जनक जी (वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी) मुनियों के चरणों की वन्दना करने लगे और रघुनन्दन श्री रामचन्द्र जी ने (शंतानन्द आदि जनकपुरवासी) ऋषियों को प्रणाम किया । फिर भाइयों समेत श्री राम जी राजा जनक जी से मिलकर उन्हें समाज सहित अपने आश्रम को लिवा चले ।

दो०— आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु ।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु ।।२७५।।

भावार्थ— श्री राम जी का आश्रम शान्त रस रूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है। जनक जी की सेना समाज मानों करुणा (करूण रस) की नदी है, जिसे श्री रघुनाथ जी (उस आश्रम रूपी शान्त रस के समुद्र में मिलाने के लिये) लिये जा रहे हैं।

बोरति ग्यान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ।।
सोच उसास समीर तरंगा । धीरज तट तरुबर कर भंगा ।।

विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा ।।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा ।।
बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे ।।
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई ।।
सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ।।
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही ।।

भावार्थ– यह करूणा की नदी (इतनी बढ़ी हुई है कि) ज्ञान-वैराग्य रूपी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं, और सोच की लम्बी साँसे (आहें) ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगे हैं, जो धैर्यरूपी तट के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं। भयानक विषाद ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान मल्लाह हैं, विद्या ही बडी नाव है। परन्तु वे खे नहीं सकते हैं, किसी की समझ में नहीं आता। बन में विचरने वाले बेचारे कोल-किरात ही पथिक हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गये हैं। जब यह करूणा नदी आश्रम-समुद्र में जाकर मिली, तो मानों समुद्र अकुला गया (क्षुब्ध हो उठा)। दोनों राज समाज शोक से व्याकुल हो गये। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथ जी के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक समुद्र में डुबकी लगा रहे हैं।

टिप्पणी– गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी महान कृति को मानसरोवर (मानस) की संज्ञा दी है। अपने प्रबन्ध काव्य का इस प्रकार नामकरण करके, बालकाण्ड के दोहे ३६ और ३७ और उनके नीचे की चौपाइयों में गोस्वामी जी ने एक बहुत सुन्दर और बड़ा रूपक बाँधा है। इन दोहों और चौपाइयों में उपमानों की बड़ी लम्बी सूची दी गयी है। चार संवाद मानों 'मानस' के चार घाट हैं और सात काण्ड मानों उसकी सात सीढ़ियाँ है, इत्यादि (देखिये पृष्ठ ७२-७५)।

इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड में भी तीन रूपक हैं। प्रयाग राज को राजा की संज्ञा देकर तुलसीदास जी ने फिर राजा के ठाट-बाट का वर्णन किया है (देखिए पृष्ठ ४९२-९३)। फिर जब भरत और गुह चित्र कूट पहुचें और कामदगिरि के दर्शन किये, तो उन्हें सारा पर्वत राम की राजधानी लगी और सारा वन राजा का प्रदेश। विवेक उस देश का राजा है और वैराग्य उसका मन्त्री इत्यादि (देखिए पृष्ठ ६१४-१५)।

दोहा २७५ और उसके नीचे की चौपाई में अयोध्याकाण्ड का तीसरा और अन्तिम रूपक है। जब जनक जी रामाश्रम के निकट पहुँचे तो उन्हें वह आश्रम एक समुद्र लगा। समुद्र से जुटे हुए द्रव्यों का इस रूपक में वर्णन किया गया है।

१. शान्त-रस उस समुद्र का जल है।

२- जनक की सेना करुण-रस की नदी है।

३- श्री राम करुण-रस को शान्त रस से मिलाने लिये जा रहे हैं।

४- करुण-रस की नदी इतनी बढ़ी हुई है कि वह ज्ञान वैराग्य के किनारों को डुबाती जाती हैं।

५- शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो उस नदी में जाकर मिलते हैं।

६- सोच की लम्बी सासें ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगें हैं। यह तरंगें धैर्य-रूपी तट के वृक्षों को तोड़ रही हैं।

८- भयानक विषाद नदी की तेज धारा है।

९- भय और भ्रम ही नदी के भवँर और चक्र हैं।

१०- महाराजा जनक का ज्ञान मल्लाह है।

११- ज्ञान से प्राप्त उनकी विद्या नाव है।

१२- जनक का ज्ञान और विद्या सब निष्फल हैं।

१३- बन-वासी कोल-किरात किनारे-किनारे चलने वाले पथिक हैं।

१४-अवध और मिथिला—दोनों की समाज—नाव के यात्री हैं। जब करुण-रस की नदी शांत-सागर से जा मिली तो समस्त यात्री डूब गए। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज, न लाज।

छं०— अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा।।
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की।।

सो०— किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन।।२७६।।

भावार्थ— शोक समुद्र में डुबकी लगाते हुए सभी स्त्री पुरुष महान् व्याकुल होकर सोच रहे हैं। वे सब विधाता को क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि दुष्ट विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदास जी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणों में कोई भी समर्थ नहीं है जो उस समय विदेह जनकराज की दशा देखकर प्रेम की नदी को पार कर सके (प्रेम में मग्न हुए बिना रह सके)। जहाँ तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने लोगों को अपरिमित उपदेश दिये और वशिष्ठ जी ने विदेह (जनक जी) से कहा–'हे राजन! आप धैर्य धारण कीजिये।

टिप्पणी— ऊपर अयोध्याकाण्ड का नवाँ छन्द और सोरठा है। बालकाण्ड के १६ और १७ दोहों के ऊपर की चौपाइयों में तुलसीदास ने उन सभी व्यक्तियों की वन्दना की है जो राम के सम्पर्क में आये। राजा जनक की वन्दना करते हुए गोस्वामी जी उनके विषय में कहते हैं:

'प्रनउँ परिजन सहित विदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।।
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम विलोकत प्रगटेउ सोई।।'

राजा जनक का नाम 'विदेह' उनकी योगकला का सूचक है। वह योग में इतने लीन हो जाते थे कि उन्हें अपनी देह (शरीर)का भी ध्यान नहीं रहता था। योगी होने के कारण राजा जनक को किसी व्यक्ति विशेष से न प्रेम था न उसके प्रति मोह। फिर भी उनका राम के प्रति स्नेह जो उनके योग और भोग (राज-लक्ष्मी भोग) में दबा हुआ था, राम को देखते ही सहसा प्रकट हो जाता था (देखिये पृष्ठ ४३-४४)।

ऊपर के छंद और सोरठा में जनक की इसी मनोदशा को पुनः उजागर किया गया है। महाराज जनक का राम के प्रति सहज प्रेम, उनके बनवास के कारण, करूणा में परिवर्तित हो गया, जिससे उनका जगत विख्यात ज्ञान और वैराग्य भी लुप्त हो गया। गोस्वामी जी कहते हैं कि देव प्रकृति वाले सिद्ध, तपस्वी और मुनिगणों में इतना सामर्थ्य नहीं था जो उस समय राजा जनक की दशा देखकर, अपने ज्ञान को विस्मृत न कर बैठें और उनके समान ही प्रेम में मग्न होने से अपने को रोक सकें। केवल वशिष्ठ जी ने ही महाराज जनक को समझाने का साहस किया और उन्हें धैर्य धारण करने की अनुमति दी। इससे अधिक वशिष्ठ जी ज्ञान-मिश्रित कोई उपदेश देने की अवस्था में न थे। कारण, जनक स्वयं ही जगत-विख्यात परम ज्ञानी थे, परन्तु शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम ज्ञान पर भी छा जाता है।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥
बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥
सोह न राम पेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। राम घाट सब लोग नहाए॥
सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥

भावार्थ— जिन राजा जनक का ज्ञानरूपी सूर्य भवागमन रूपी रात्रि का नाश कर देता है, और जिनकी वचन रूपी किरणें मुनि रूपी कमलों को खिला देती हैं, क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं? यह तो सीता-राम जी के प्रेम की महिमा है। (अर्थात्

राजा जनक की यह दशा श्री सीताराम जी के अलौकिक प्रेम के कारण हुई, लौकिक मोह-ममता के कारण नहीं)। जो लौकिक मोह-ममता को पार चुके हैं उन पर भी श्री सीताराम जी का प्रेम अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता। विषयी, साधक और ज्ञानवान् सिद्धपुरुष—जगत में ये तीन प्रकार के जीव वेदों ने बतायें हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्री राम जी के स्नेह से सरस (शराबोर) रहता है, साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है। श्री राम जी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधार के बिना जहाज। वशिष्ठ जी ने विदेह राजा (जनक जी) को बहुत प्रकार से समझाया। तदनन्तर सब लोगों ने राम घाट पर स्नान किया। स्त्री पुरुष सब शोक से पूर्ण थे। वह दिन बिना ही जल के बीत गया (भोजन की बात तो दूर रही किसी ने जल तक नहीं पिया)। पशु, पक्षी और हिरनों तक ने कुछ आहार नहीं किया, तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियों का तो विचार ही क्या किया जाय।

दो०— दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात ।।२७७।।

भावार्थ— निमिराज जनक जी और रघुराज रामचन्द्र जी तथा दोनों ओर के समाज ने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे। सब के मन उदास और शरीर दुबले हैं।

जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी।।
हंस बंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा।।
लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका।।
कौसिक कहि कहि कथा पुरानीं। समुझाई सब सभा सुबानीं।।
तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ।।
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई।।
रिषि रुख लखि कह तेरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू।।
कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना।।

भावार्थ— जो दशरथ जी की नगरी अयोध्या के रहने वाले और जो मिथिलापति जनक जी के नगर जनकपुर के रहने वाले ब्राह्मण थे, तथा सूर्यवंश के गुरु वशिष्ठ जी तथा जनक जी के पुरोहित शतानन्द जी, जिन्होंने सांसारिकि अभ्युदय का मार्ग तथा परमार्थ का मार्ग छान डाला था, वे सब धर्म, नीति, वैराग्य तथा विवेक युक्त अनेकों उपदेश देने लगे। विश्वामित्र जी ने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कहकर सारी सभा को सुन्दर वाणी से समझाया। तब श्री रघुनाथ जी ने विश्वामित्र जी से कहा कि "हे नाथ ! कल सब लोग बिना जल पिये ही रह गये थे (अब कुछ आहार करना चाहिये)।" विश्वामित्र जी ने कहा कि श्री रघुनाथ जी उचित कह रहे हैं। ढाई पहर दिन आज भी बीत गया। विश्वामित्र जी का रुख देखकर

तिरहुतराज जनक जी ने कहा-'यहाँ अन्न खाना उचित नहीं है।' राजा का कथन सबके मन को अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले।

दो०— तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार ।।२७८।।

भावार्थ— उसी समय अनेकों प्रकार के बहुत से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहँगियों और बोझों में भर-भर कर बनवासी (कोल-किरात)लोग ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा ।।
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनँद अनुरागा ।।
बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ।।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीप सुखद सब काहू ।।
जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई ।।
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई ।।
देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ।।
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना ।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी की कृपा से सब पर्वत मनचाही बस्तु देने वाले हो गए। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, बन और पृथ्वी के सभी भागों में मानों आनन्द और प्रेम उमड़ रहा है। बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गये। पक्षी, पशु और भौंरे अनुकूल बोलने लगे। उस अवसर पर बन में बहुत उत्साह (आनन्द) था, सबको सुख देने वाली शीतल, मन्द, सुगन्ध हवा चल रही थी। वन की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती। मानों पृथ्वी जनक जी की पहुनाई कर रही है। तब जनकपुरवासी सब लोग नहा नहा कर रामचन्द्र जी, जनक जी और मुनि की आज्ञा पाकर, सुन्दर वृक्षों को देख-देखकर प्रेम में भरकर जहाँ तहाँ उतरने लगे। पवित्र, सुन्दर और अमृत के समान स्वादिष्ट अनेकों प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कन्द –

दो०— सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार ।।२७९।।

भावार्थ— श्री रामचन्द्र जी के गुरु वशिष्ठ जी ने सब के पास बोझे भर-भर कर आदर पूर्वक भेजे। तब वे पितर, देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे।

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी ।।
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं ।।

सीता राम संग बनबासू । कोटि अमरपुर सरिस सुपासू ॥

परिहरि लखन रामु बैदेही । जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥

दाहिन दइउ होइ जब सबही । राम समीप बसिअ बन तबही ॥

मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला । राम दरसु मुद मंगल माला ॥

अटनु राम गिरि बन तापस थल । असनु अमिअ सम कंद मूल फल ॥

सुख समेत संबत दुइ साता । पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥

भावार्थ– इस प्रकार चार दिन बीत गए । श्री रामचन्द्र जी को देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं । दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि श्री सीता राम जी के बिना लौटना अच्छा नहीं है । श्री सीता राम जी के साथ वन-निवास करोड़ों देवलोकों के (निवास)समान सुखदायक है । श्री लक्ष्मण जी, श्री राम जी और श्री जानकी जी को छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत है । जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्री राम जी के पास बन में निवास हो सकता है । मन्दाकिनी जी का त्रिकाल स्नान और आनन्द और मंगलों की माला (समूह) रूप श्री राम दर्शन, श्री राम जी के पर्वत, और तपस्वियों के स्थानों में घूमना और अमृत के समान कन्द, मूल, फलों का भोजन – चौदह वर्ष सुख के साथ पल के समान हो जायेंगे (बीत जायेंगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे ।

दो०– एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु ।

सहज सुभायँ समाज दुहु राम चरन अनुरागु ।।२८०।।

भावार्थ– सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं है, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ ? दोनों समाजों का श्री रामचन्द्र जी के चरणों में सहज स्वभाव से ही प्रेम हैं ।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥

सीय मातु तेहि समय पठाईं । दासीं देखि सुअवसरु आईं ॥

सावकास सुनि सब सिय सासू । आयउ जनकराज रनिवासू ॥

कौसल्याँ सादर सनमानी । आसन दिए समय सम आनी ॥

सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा । द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥

पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन । महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥

सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति । जनु करुना बहु बेष बिसूरति ॥

सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी । जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ॥

भावार्थ– इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं । उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही (सुनने वालों के)मन को हर लेते हैं । उसी समय सीता जी की माता श्री सुनयना जी की भेजी हुई दासियाँ (कौशल्या जी आदि के मिलने का)सुन्दर अवसर देखकर आईं । उनसे यह सुनकर कि सीता जी की सब सासुएँ इस समय फुरसत में हैं, जनक राजा का रनिवास उनसे मिलने

आया। कौशल्या जी ने आदर पूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिये। दोनों ओर सब के शील और प्रेम को देख और सुनकर कठोर बज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं, और नेत्रों में (शोक और प्रेम के) आँसू हैं। सभी श्री सीताराम के प्रेम की मूर्ति सी हैं, मानों स्वयं करुणा ही बहुत से वेष (रूप) धारण करके विसूर रही है (दुःख कर रही है)। सीता जी की माता सुनयना जी ने कहा—"विधाता की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन जैसी कोमल वस्तु को बज्र की टाँकी से फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं, उन पर विपत्ति पर विपत्ति ढा रहा है)।

दो०— सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल।।२८१।।

भावार्थ— अमृत केवल सुनने में आता है और विष जहाँ तहाँ प्रत्यक्ष देखा जाता है। विधाता की सभी करतूतें भयंकर हैं। जहाँ तहाँ कौए, उल्लू और बगले ही होते हैं, हंस तो एक मानसरोवर में ही हैं।"

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बाल केलि सम बिधि मति भोरी।।
कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू।।
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता।।
ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें।।
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी।।
भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी।।
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी।।

भावार्थ— यह सुनकर देवी सुमित्रा जी शोक के साथ कहने लगीं—"विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि को उत्पन्न कर पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली (विवेक शून्य) है।" कौशल्या ने कहा—'किसी का दोष नहीं है, दुख-सुख हानि-लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन (दुष्कर) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी कर्मों का देने वाला है। ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा अमृत और विष के भी सिर पर है (वे सब भी उसी के अधीन हैं)। हे देवि! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल और अनादि है। महाराज के मरने और जीने की बात को हृदय याद करके जो चिन्ता करती हैं, वह तो हे सखी! हम अपने ही हित की हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं।" सीता जी की माता ने कहा—"आपका कथन उत्तम और सत्य है। आप पुण्य आत्माओं के सीमारूप अवधपति महाराज दशरथ जी की ही तो रानी हैं (फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी)।"

दो०– लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु ।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु ।।२८२।।

भावार्थ– कौशल्या जी ने दुख भरे हृदय से कहा–'श्री राम, लक्ष्मण और सीता बन में जायें, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं । मुझे तो भरत की चिन्ता है ।

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी । सुत सुतबधू देवसरि बारी ।।
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ । सो करि कहउँ सखी सति भाऊ ।।
भरत सील गुन बिनय बड़ाई । भायप भगति भरोस भलाई ।।
कहत सारदहु कर मति हीचे । सागर सीप कि जाहिं उलीचे ।।
जानउँ सदा भरत कुलदीपा । बार बार मोहि कहेउ महीपा ।।
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ । पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ ।।
अनुचित आजु कहब अस मोरा । सोक सनेहँ सयानप थोरा ।।
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी । भईं सनेह बिकल सब रानी ।।

भावार्थ– ईश्वर के अनुग्रह और आपके आशीर्वाद से मेरे चारों पुत्र और चारों पुत्रबधुएं गंगा जी के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी ! मैंने कभी श्री राम की सौगंध नहीं की, सो आज श्री राम की शपथ करके सत्य भाव से कहती हूँ । भरत का शील, गुण, नम्रता, महत्ता, भाईपन, भक्ति, भरोसा और भोलेपन का वर्णन करने में सरस्वती जी की बुद्ध भी असमर्थ हो जाती है । सीप से कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं । मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूँ । महाराज ने भी बार-बार मुझे यही कहा था । सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न पारखी (जौहरी)के मिलने पर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है । किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है । शोक और स्नेह में सयानापन (विवेक) कम हो जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरत की बड़ाई कर रही हूँ)।'' कौशल्या जी की गंगा जी के समान पवित्र करने वाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह के मारे विकल हो उठीं ।

दो०– कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि ।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि ।।२८३।।

भावार्थ– कौशल्या जी ने फिर धीरज धर कर कहा– ''हे देवि मिथिलेश्वरी ! सुनिये, ज्ञान के भण्डार श्री जनक जी की प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है ।

रानि राय सन अवसरु पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ।।
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन । जौं यह मत मानै महीप मन ।।

तौ भल जतनु करब सुबिचारी । मोरें सोचु भरत कर भारी ॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं । रहें नीक मोहि लागत नाहीं ॥
लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी । सब भइ मगन करुन रस रानी ॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि । सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि ॥
सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ । तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती । राम मातु सुनि उठी सप्रीती ॥

भावार्थ– हे रानी ! मौका पाकर आप राजा को जहाँ तक हो सके समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मण को घर रख लिया जाय और भरत बन को जाँय । यदि यह राय राजा के मन को ठीक जँच जाय तो भली भाँति खूब विचार कर ऐसा यत्न करें । मुझे भरत का अत्यधिक सोच है । भरत के मन में गूढ़ प्रेम है । उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणों को कोई भय न हो जाय)।'' कौशल्या जी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुण रस में निमग्न हो गई। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गई और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी । सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गये । सारा रनिवास देखकर चकित रह गया (निस्तब्ध हो गया)। तब सुमित्रा जी ने धीरज धर के कहा कि 'हे देवि! दो घड़ी रात बीत गई है ।' यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी की माता कौशल्या जी प्रेमपूर्वक उठीं ।

दो०– बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय ।
हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय ॥२८४॥

भावार्थ– और प्रेम सहित सद्भाव से बोलीं–'अब आप शीघ्र डेरे को पधारिये । हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर जनक जी सहायक हैं।'

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता । जनकप्रिया गह पाय पुनीता ॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी । दसरथ घरिनि राम महतारी ॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥
सेवकु राउ करम मन बानी । सदा सहाय महेसु भवानी ॥
रउरे अंग जोगु जग को है । दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
रामु जाइ बनु करि सुर काजू । अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥
अमर नाग नर राम बाहुबल । सुख बसिहहिं अपनें अपनें थल ॥
यह सब जागबलिक कहि राखा । देबि न होई मुधा मुनि भाषा ॥

भावार्थ– कौशल्या जी के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर, जनक जी की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिये और कहा–''हे देवि आप राजा दशरथ की रानी और श्री राम जी की माता हैं । आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है । प्रभु अपने नीच

जनों का भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँ को और पर्वत तृण (घास) को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्री महादेव-पार्वती जी हैं। आपका सहायक होने योग्य जगत में कौन है ? दीपक सूर्य को सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है ? श्री रामचन्द्र जी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे। देवता, नाग और मनुष्य सब श्री रामचन्द्र जी की भुजाओं के बल पर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले से ही कह रक्खा है। हे देवि ! मुनि का कथन झूठा नहीं हो सकता।''

दो०— अस कहि पग परि पेम अति सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ।।२८५।।

भावार्थ— ऐसा कहकर बड़े प्रेम से पैरों पड़कर सीता जी को साथ भेजने के लिये विनती करके और सुन्दर आज्ञा पाकर तब सीता जी समेत सीता जी की माता डेरे को चलीं।

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही।।
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी।।
जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई।।
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की।।
उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू।।
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। ता पर राम पेम सिसु सोहा।।
चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु।।
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की।।

भावार्थ— जानकी जी अपने प्यारे कुटुम्बियों से जो जिस योग्य था, उस उससे उसी प्रकार मिलीं। जानकी जी को तपस्विनी के वेश में देखकर सभी अत्यन्त विषाद से व्याकुल हो गये। जनक जी श्री राम जी के गुरु वशिष्ठ की आज्ञा पाकर डेरे को चले और आकर उन्होंने सीता जी को देखा। जनक जी ने अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकी जी को हृदय से लगा लिया। उनके हृदय में वात्सल्य-प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। राजा का मन मानों प्रयाग हो गया। उस समुद्र के अंदर उन्होंने (आदिशक्ति) सीता जी के अलौकिक स्नेहरूपी अक्षय वट को बढ़ते हुए देखा। उस (सीता जी)के प्रेम रूपी वट पर श्री राम जी का प्रेम रूपी बालक (बाल रूपधारी भगवान) सुशोभित हो रहा है। जनक जी का ज्ञानरूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर डूबते-डूबते मानों उस श्री राम प्रेमरूपी बालक का सहारा पाकर बच गया। वस्तुतः (ज्ञान शिरोमणि) विदेहराज की बुद्धि मोह में मग्न नहीं है, यह तो श्री सीता राम जी के प्रेम की महिमा है (जिसने उन जैसे महान ज्ञानी के ज्ञान को भी विकल कर दिया)।

दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू । जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥
एसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥
जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारिचरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहसि नयन मुहु मोरी ॥

भावार्थ– अपने जी में कैकेयी को सुहृद जानकर राजा दशरथ जी प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वाणी से फिर बोले– "हे भामिनी ! तेरा मनचीता हो गया । नगर में घर-घर आनन्द के बधावे बज रहे हैं । मैं कल ही राम को युवराज पद दे रहा हूँ । इसलिये हे मृगनयनी ! तू मंगल-साज सज।" यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा)। मानों पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो । ऐसी भारी पीड़ा को भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोर की स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती, जिसमें उसका भेद न खुल जाय । राजा उसकी कपट-चतुराई को नहीं लख रहे हैं । क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि गुरू मन्थरा की पढ़ाई हुई है । यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं, परन्तु त्रिया चरित्र अथाह समुद्र है । फिर वह कपट युक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपर से प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली ।

दो०– मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

भावार्थ– "हे प्रियतम ! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देत-लेते कभी कुछ नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में सन्देह है ।"

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई । तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागिहु काऊ । बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू । दुइ कै चारि मागि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुँजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥
तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥

भावार्थ– राजा ने हँस कर कहा कि "अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा । मान करना तुम्हें परम प्रिय है । तुमने उन वरों को थाती (धरोहर) रखकर फिर कभी माँगा ही

नहीं। और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा। मुझे झूठ मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो! रघुकुल में सदा से यह रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चले जायें, पर वचन नहीं जाता। असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुंचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं। सत्य ही समस्त उत्तम सुकृतों की (पुण्यों की) जड़ है। यह बात वेद-पुराण में प्रसिद्ध है। और मनुजी ने भी यही कहा है। उस पर मेरे द्वारा श्री राम जी की शपथ करने में आ गयी (मुँह से निकल पड़ी)। श्री रघुनाथ जी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं।'' इस प्रकार बात पक्की करा के दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली। मानों उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) को छोड़ने के लिये उस की कुलही (आँखों पर की टोपी) खोल दी।

लोकोक्ति— ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है, जो समस्त 'मानस' की केन्द्र-बिन्दु है:

' रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई।।'

अपने वचन को सत्यापित करने के लिये, रघुवंश के राजा अपने प्राणों तक कि बाजी लगा देते थे। वास्तव में, राजा दशरथ ने कैकेयी को भरत को युवराज बनाने और राम को निष्कासित करने का वचन देकर, राम के वियोग में अपने प्राण त्याग दिये। और 'पूज्य पिता के सहज सत्य पर, वार सुधाम, धरा, धन को'*, राम चौदह वर्ष 'गहन वन' में रहे। इस रघुकुल की रीति की पुष्टि के लिए दो दृष्टान्त पर्याप्त हैं —

शिवि— राजा उशीनर के पुत्र तथा महाराज ययाति के दौहित्त थे। ये अपनी दयालुता के कारण प्रसिद्ध हैं। इनकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिये इंद्र और अग्नि दोनों यथाक्रम बाज और कबूतर बनकर इनकी सभा में आए। बाज ने कबूतर पर आक्रमण किया। कबूतर राजा शिवि की गोद मे जाकर छिप गया। यह देखकर बाज ने राजा से कहा— ''महाराज! दोनों पर दया करना राजधर्म है। मैं भूखा हूँ, मेरे भक्ष्य को आपने छिपा लिया है। यह आपका धर्म नहीं है, आप इसे छोड़ दें।'' राजा ने कहा— ''शरणागत की रक्षा करना प्रधान धर्म है। तुम इसके अतिरिक्त जो वस्तु मांगो मैं दूँगा।'' बाज ने कहा- ''इसी कबूतर के बराबर आप अपने शरीर का मांस दें।'' राजा ने तराजू के एक पलड़े पर कबूतर को रखवाया और वे अपने शरीर से मांस काटकर दूसरे पलड़े पर रखने लगे। उन्होंने समस्त शरीर का मांस काटकर रख दिया तो भी उस कबूतर के बराबर मांस नहीं हुआ। यह देखकर राजा स्वयं पलड़े में बैठ गये। इसी समय आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। इन्द्र और अग्नि भी अपना-अपना रूप धारण करके प्रकट हुए। इंद्र और अग्नि ने कहा— ''महाराज! आप धन्य हैं। आपकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिए हम लोग आये थे।''

---

* मैथलीशरण गुप्त की ''पञ्चवटी'' के पूर्वाभास की पहली दो पंक्ति।

२. **हरिश्चन्द्र—** सूर्य वंश के अट्ठाइसवें राजा, रामचन्द्र के ३५ पीढ़ी पहले, महाराज सत्यव्रत के पुत्र थे। इनकी राजधानी अयोध्या थी। ये बड़े दानी थे। नारद ने इन्द्र के दरबार में आकर घोषणा की कि राजा हरिश्चन्द्र सत्य की मूर्ति हैं। उनके निष्कमट अकृत्रिम स्वभाव से सारा जगत संतुष्ट है। इन्द्र ने सन्देह करते हुए कहा 'एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।' इतने में विश्वामित्र आ गये और उत्तेजित होकर बोले 'हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानी बनने का अभिमान करेगा।'

विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के दरबार में जाकर, उससे सारी पृथ्वी दान में माँग ली। दान पाने के बाद 'सहस्र स्वर्ण मुद्रा' दक्षिणा में माँगी। राजा ने मन्त्री को आज्ञा दी कि 'हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ'। विश्वामित्र बोले 'मन्त्री कहां से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है कि तूँ मन्त्री पर हुकुम चलाता है।' हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया 'मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो, मेरा शरीर तो है।'

दक्षिणा चुकाने के लिए विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को एक महीने की अवधि दी। फलतः काशी में जाकर ५००) में हरिश्चन्द्र स्वयं एक डोम के हाथ बिके और अपनी स्त्री और पुत्र को ५००) में एक उपाध्याय के हाथ बेचा। इस प्रकार विश्वामित्र के दक्षिणा-ऋण से उऋण हुए।

ब्राह्मण के बाग में खेलते हुए, रोहिताश्व (पुत्र) को सर्प ने डस लिया। शैव्या (पत्नी) दाह-क्रिया करने के लिये पुत्र के शव को श्मशान में लेकर आई। हरिश्चन्द्र ने दाह-संस्कार नहीं करने दिया क्योंकि श्मशान-पति डोमराज की आज्ञा थी कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे। अपनी विवशता प्रकटाती हुई शैब्या बोली 'मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था। अपना आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ। उसमें से भी जो आधा दूँगी तो यह खुला ही रह जायेगा।'

शैव्या जैसे ही रोहिताश्व का मृतकम्बल फाड़ना चाहती है, आकाश से जय जय ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान नारायण प्रकट होकर हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।' रोहिताश्व जाग उठता है और इन्द्र क्षमा माँगते हुए कहते हैं 'यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहे, आपने अपने सत्य बल से ब्रह्मपद पाया। देखिये आपकी रक्षा के हेतु श्री शिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे। नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।'

नहीं। और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा। मुझे झूठ मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो! रघुकुल में सदा से यह रीति चली आयी है कि प्राण भले ही चले जायें, पर वचन नहीं जाता। असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुंचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं। सत्य ही समस्त उत्तम सुकृतों की (पुण्यों की) जड़ है। यह बात वेद-पुराण में प्रसिद्ध है। और मनुजी ने भी यही कहा है। उस पर मेरे द्वारा श्री राम जी की शपथ करने में आ गयी (मुँह से निकल पड़ी)। श्री रघुनाथ जी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं।'' इस प्रकार बात पक्की करा के दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली। मानों उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) को छोड़ने के लिये उस की कुलही (आँखों पर की टोपी) खोल दी।

लोकोक्ति– ऊपर की चौपाई में एक लोकोक्ति है, जो समस्त 'मानस' की केन्द्र-बिन्दु है:

' रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई।। '

अपने वचन को सत्यापित करने के लिये, रघुवंश के राजा अपने प्राणों तक कि बाजी लगा देते थे। वास्तव में, राजा दशरथ ने कैकेयी को भरत को युवराज बनाने और राम को निष्कासित करने का वचन देकर, राम के वियोग में अपने प्राण त्याग दिये। और 'पूज्य पिता के सहज सत्य पर, वार सुधाम, धरा, धन को'*, राम चौदह वर्ष 'गहन वन' में रहे। इस रघुकुल की रीति की पुष्टि के लिए दो दृष्टान्त पर्याप्त हैं –

शिवि– राजा उशीनर के पुत्र तथा महाराज ययाति के दौहित्त थे। ये अपनी दयालुता के कारण प्रसिद्ध हैं। इनकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिये इंद्र और अग्नि दोनों यथाक्रम बाज और कबूतर बनकर इनकी सभा में आए। बाज ने कबूतर पर आक्रमण किया। कबूतर राजा शिवि की गोद मे जाकर छिप गया। यह देखकर बाज ने राजा से कहा– ''महाराज! दोनों पर दया करना राजधर्म है। मैं भूखा हूँ, मेरे भक्ष्य को आपने छिपा लिया है। यह आपका धर्म नहीं है, आप इसे छोड़ दें।'' राजा ने कहा– ''शरणागत की रक्षा करना प्रधान धर्म है। तुम इसके अतिरिक्त जो वस्तु मांगो मैं दूँगा।'' बाज ने कहा- ''इसी कबूतर के बराबर आप अपने शरीर का मांस दें।'' राजा ने तराजू के एक पलड़े पर कबूतर को रखवाया और वे अपने शरीर से मांस काटकर दूसरे पलड़े पर रखने लगे। उन्होंने समस्त शरीर का मांस काटकर रख दिया तो भी उस कबूतर के बराबर मांस नहीं हुआ। यह देखकर राजा स्वयं पलड़े में बैठ गये। इसी समय आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी। इन्द्र और अग्नि भी अपना-अपना रूप धारण करके प्रकट हुए। इंद्र और अग्नि ने कहा– ''महाराज! आप धन्य हैं। आपकी दयालुता की परीक्षा लेने के लिए हम लोग आये थे।''

---

* मैथलीशरण गुप्त की ''पञ्चवटी'' के पूर्वाभास की पहली दो पंक्ति।

२. हरिश्चन्द्र— सूर्य वंश के अट्ठाइसवें राजा, रामचन्द्र के ३५ पीढ़ी पहले, महाराज सत्यव्रत के पुत्र थे। इनकी राजधानी अयोध्या थी। ये बड़े दानी थे। नारद ने इन्द्र के दरबार में आकर घोषणा की कि राजा हरिश्चन्द्र सत्य की मूर्ति हैं। उनके निष्कपट अकृत्रिम स्वभाव से सारा जगत संतुष्ट है। इन्द्र ने सन्देह करते हुए कहा 'एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।' इतने में विश्वामित्र आ गये और उत्तेजित होकर बोले 'हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानी बनने का अभिमान करेगा।'

विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के दरबार में जाकर, उससे सारी पृथ्वी दान में माँग ली। दान पाने के बाद 'सहस्र स्वर्ण मुद्रा' दक्षिणा में माँगी। राजा ने मन्त्री को आज्ञा दी कि 'हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ'। विश्वामित्र बोले 'मन्त्री कहां से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है कि तूँ मन्त्री पर हुकुम चलाता है।' हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया 'मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो, मेरा शरीर तो है।'

दक्षिणा चुकाने के लिए विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र को एक महीने की अवधि दी। फलतः काशी में जाकर ५००) में हरिश्चन्द्र स्वयं एक डोम के हाथ बिके और अपनी स्त्री और पुत्र को ५००) में एक उपाध्याय के हाथ बेचा। इस प्रकार विश्वामित्र के दक्षिणा-ऋण से उऋण हुए।

ब्राह्मण के बाग में खेलते हुए, रोहिताश्व (पुत्र) को सर्प ने डस लिया। शैव्या (पत्नी) दाह-क्रिया करने के लिये पुत्र के शव को श्मशान में लेकर आई। हरिश्चन्द्र ने दाह-संस्कार नहीं करने दिया क्योंकि श्मशान-पति डोमराज की आज्ञा थी कि आधा कफन दिये बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे। अपनी विवशता प्रकटाती हुई शैव्या बोली 'मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था। अपना आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ। उसमें से भी जो आधा दूँगी तो यह खुला ही रह जायेगा।'

शैव्या जैसे ही रोहिताश्व का मृतकम्बल फाड़ना चाहती है, आकाश से जय जय ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान नारायण प्रकट होकर हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।' रोहिताश्व जाग उठता है और इन्द्र क्षमा माँगते हुए कहते हैं 'यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आप का तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहे, आपने अपने सत्य बल से ब्रह्मपद पाया। देखिये आपकी रक्षा के हेतु श्री शिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे। नारद जी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आप के हेतु चांडाल और कापालिक का भेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।'

तुलसीदास प्रण पालन और सत्यपालन में कोई भेद नहीं समझते। ऊपर की लोकोक्ति की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है-

'नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि समहोहिं कि कोटिक गुंजा ।।'

अर्थात्, असत्य के समान कोई भी पापों का समूह नहीं है क्योंकि एक असत्य को सत्य बनाने के लिये अनेकों असत्यों का आश्रय लेना पड़ता है, फिर भी असत्य असत्य ही रहता है। इस प्रकार पापों का समूह बढ़ता ही जाता है। करोड़ों घुँचियों को एकत्रित करके एक स्थान पर रख देने से वह पहाड़ कभी नहीं बन सकता। इसी प्रकार अनेकों असत्यों के मिला देने से भी सत्य नहीं बन जाता।

दो०— भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु ।।२८।।

भावार्थ— राजा का मनोरथ सुन्दर वन है; सुख सुन्दर पक्षियों का समुदाय है। उस पर भीलनी की तरह कैकेयी अपना वचन-रूपी भयंकर बाज़ छोड़ना चाहती है।

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका ।।
मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ।।
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी ।।
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू ।।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ।।
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ।।
माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ।।
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।।
अवध उजारि कीन्हि कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं ।।

भावार्थ— (वह बोली)— "हे प्राण प्यारे ! सुनिये ! मेरे मन को भाने वाला एक वर तो दीजिये भरत को राजतिलक ; और हे नाथ ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूं, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये। तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुम्ब आदि की ओर से भली-भाँति उदासीन होकर, विरक्त मुनियों की भाँति) राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें।" कैकेयी के कोमल (विनययुक्त)वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विफल हो जाता है। राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते न बना, मानों बाज वन में बटेर पर झपटा हो। राजा का रंग बिल्कुल उड़ गया मानों ताड़ के पेड़ को बिजली ने मारा हो (जैसे ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरने से वह झुलस कर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजा का हुआ)। माथे पर हाथ रखकर, दोनों

नेत्र बन्द करके राजा ऐसे सोच करने लगे मानों साक्षात् सोच ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो। (वे सोचते हैं-हाय) मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़ समेत उखाड़ कर नष्ट कर डाला। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और विपत्ति की अचल (सुदृढ़)नींव डाल दी।

टिप्पणी– यह चौपाई नौ विषम पंक्तियों की है। इसमें तुलसीदास जी ने दो बहुत सुन्दर रूपक बाँधे हैं। ऊपर दोहा २८ में कहा गया है, कैकेयी भिलनी अपने वचन-रूपी बाज को दशरथ के मनोरथ-रूपी पक्षी को दबोचने के लिए छोड़ रही है। रूपक को बढ़ाते हुए, चौपाई में तुलसीदास कहते हैं कि कैकेयी के वचन सुनकर दशरथ सहम गए मानों बाज बन में बटेर पर झपटा हो।

दूसरा रूपक है जब माथे पर हाथ रखकर, दोनों आँखें बन्द करके दशरथ सोचने लगे, तो मानों सोच साक्षात् शरीर धारण करके सोचने लगा हो। इस सोच की मूर्ति का महाकवि मिल्टन ने Il Penseroso में इस प्रकार चित्रण किया है–

''Thy rapt soul sitting in thine eyes :

There held in holy passion still,

Forget thyself to Marble, till

With a sad Leaden downward cast,

Thou fix them on the earth as fast.''

दो०– कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास।।२९।।

भावार्थ– किस अवसर पर क्या हो गया। स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया जैसे योग की सिद्धि रूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है।

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा।।
भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही।।
जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें।।
देहु उतरु अनु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं।।
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू।।
सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना।।
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा।।
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई।।

भावार्थ– इस प्रकार राजा मन ही मन खीज रहे हैं। राजा का ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मन में बुरी तरह से क्रोधित हुई। (और बोली)– "क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं ? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाये हैं (क्या मैं आबकी विवाहिता पत्नी नहीं हूं) ? जो मेरा वचन सुनते ही आपको वाण सा लगा, तो आप सोच समझ कर बात क्यों नहीं करते ? उत्तर दीजिये–हाँ कीजिये, नहीं तो नाहीं कर दीजिये। आप रघुकुल में सत्य प्रतिज्ञा वाले (प्रसिद्ध) हैं। आपने ही देने को कहा था, अब भले ही न दीजिये। सत्य को छोड़ दीजिये और जगत् में अपयश लीजिये। सत्य की बड़ी सराहना करके वर देने को कहा था। समझा था कि यह केवल चबेना मांग लेगी।राजा शिवि, दधीच और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा।" कैकेयी बहुत ही कडुवे बचन कह रही है, मानों जले पर नमक छिड़क रही हो।

पात्र-परिचय– जब कैकेयी ने अपने दो वरदान माँगे, तो दशरथ पछतावा करने लगे। कैकेयी ने उन्हें स्मरण कराया कि उन्होंने ही पहले उसे आश्वासन दिया था–

'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुं बरु वचन न जाई।'

साथ में कैकेयी ने उन महात्माओं का भी स्मरण कराया जिन्होंने अपने वचन का पालन करने के लिए अपने तन-धन को त्याग दिया। उनके नाम क्रमशः शिवि, दधीचि और बलि हैं।

१. **शिवि–** देखिये ऊपर पृष्ठ ४१८।

२. **दधीचि–** ये महर्षि शुक्राचार्य के पुत्र थे। ये अथर्वा के औरस और कर्द्दम प्रजापति की कन्या शांति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वृत्रासुर के अत्याचार से जब देवता पीड़ित हो रहे थे, तब उन्हें मालुम हुआ कि यदि दधीचि मुनि के अस्थि से बज्र बने तो उसी से वृत्रासुर का नाश होगा। यह सोचकर देवता दधीचि के निकट गये, और उन लोगों ने उनसे अपनी अस्थि देने की प्रार्थना की। इसके पहले इंद्र ने दधीचि मुनि का अपकार किया था। एक समय महर्षि दधीचि उग्र तपस्या कर रहे थे, भीत होकर इंद्र ने अलम्बुषा नाम की अप्सरा द्वारा उनकी तपस्या में विघ्न डाला। परन्तु इस समय उदारचेता महर्षि, पूर्व अपकार भूल गए। उन्होंने देवताओं के उपकार के लिए अपना शरीर छोड़ दिया। उनके अस्थि से बज्र बनाया गया और उसी वज्र से वृत्रासुर मारा गया।

३. **बलि–** ये दैत्यराज प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम विंध्यावली था। अपनी कठोर तपस्या से इन्होंने इंद्र को पराजित किया और इस प्रकार तीनों लोकों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन्होंने अश्वमेघ-यज्ञ किया। इंद्र के अनुरोध पर वामनस्वरूप विष्णु उनके समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने इनसे तीन पग पृथवी की याचना की। बलि के गुरू शुक्राचार्य ने वास्तविकता को समझ लिया था। इसलिए बलि से

उन्होंने अस्वीकार करने के लिए कहा;किन्तु बलि ने द्वार पर आए किसी भी व्यक्ति को निराश लौटा देना अस्वीकार कर दिया। बलि ने तीन पग पृथ्वी दान कर देने का संकल्प किया। तब वामनरूप विष्णु ने अपना विस्तार किया। दो पगों में उन्होंने स्वर्ग तथा पृथ्वी को नाप लिया। तीसरे पग के लिए स्थान मांगने पर बलि ने उसे अपने सिर पर रखने के लिए कहा। बलि की इस विषम परिस्थिति को देखकर प्रह्लाद प्रकट हुए। उनके अनुनय-विनय और बलि के पुण्यकार्यों के फलस्वरूप उन्हें सुतल में रहने की आज्ञा प्रदान की गई। बलि ने उनकी आज्ञा का पालन किया।

दो०— धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ ।।३०।।

भावार्थ— धर्म की धुरी को धारण करने वाले राजा दशरथ ने धीरज धर कर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी सांस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठौर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे बच निकलना कठिन हो गया)।

आगें दीखि जरत रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी ।।
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई ।।
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ।।
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती ।।
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती ।।
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी ।।
अवसि दूतु मैं पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ।।
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई ।।

भावार्थ— प्रचन्ड क्रोध से जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखाई पड़ी मानों क्रोध रूपी तलवार नंगी (म्यान से बाहर) खड़ी हो। कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी मन्थरा रूपी सान पर धर कर तेज की हुई है। राजा ने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयानक और कठोर है। (और सोचा)— क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी? राजा छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रता के साथ उसे (कैकेयी को) प्रिय लगने वाली वाणी बोले। "हे प्रिये! हे भीरू! विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे बुरी तरह के वचन कैसे कह रही हो। मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात् एक से) हैं, यह मैं शंकर जी की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ। मैं अवश्य ही सबेरे ही दूत भेजूँगा। दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) सुनते ही तुरंत आ जायेंगे। अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा।

दो०— लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति ।।३१।।

भावार्थ— राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है। मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था (बड़े को राजतिलक देने जा रहा था)।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ।।
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछें । तेहि तें परेउ मनोरथु छूछें ।।
रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ।।
एकहि बात मोहि दुखु लागा । बर दूसर असमंजस मागा ।।
अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा ।।
कहु तजि रोषु राम अपराधू । सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ।।
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयउ संदेहू ।।
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ।।

भावार्थ— राम की शपथ सौ बार खाकर मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि राम की माता (कौसल्या) ने इस विषय में मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया। इसी से मेरा मनोरथ खाली गया। अब क्रोध छोड़ दे और मंगल-साज सजा। कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जायेंगे। एक ही बात का मुझे दुःख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चन का माँगा। उसकी आँच से अब भी मेरा हृदय जल रहा है। यह दिल्लगी में, क्रोध में अथवा सचमुच ही (वास्तव में) सच्चा है। क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बता। सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं। तू स्वयं भी राम की सराहना करती और उन पर स्नेह किया करती थी। अब यह सुनकर मुझे सन्देह हो गया है (कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठ तो न थे)। जिनका (राम का) स्वभाव शत्रु को भी अनुकूल है, वह माता के प्रतिकूल आचरण क्यों कर करेगा।

दो०— प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु ।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ।।३२।।

भावार्थ— हे प्रिये ! हँसी और क्रोध छोड़ दो, और विवेक (उचित-अनुचित) विचार कर वर माँग, जिससे अब मैं नेत्र भरकर भरत का राज्याभिषेक देख सकू।

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना । मनि बिनु फनिकु जिऐ दुख दीना ।।
कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं । जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ।।
समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना । जीवनु राम दरस आधीना ।।
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ।।

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
रामु साधु तुम्ह साधु सयाने । राममातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका । तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥

भावार्थ– मछली चाहे बिना पानी के जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणि के दीन-दुःखी होकर जीता रहे । परन्तु मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, मन में (जरा भी) छल रखकर नहीं, कि मेरा जीवन राम के बिना नहीं है । हे चतुर प्रिये ! जी में समझ देख, जीवन मेरा श्री राम के दर्शन के अधीन है ।'' राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही है । मानों अग्नि में घी की आहुतियां पड़ रही हैं । (कैकेयी कहती है)– ''आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लगेगी । या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिये, नहीं तो 'नाही' करके अपयश लीजिये । मुझे बहुत प्रपंच (बखेड़े) नहीं सुहाते । राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और राम की माता भी भली हैं, मैंने सबको पहचान लिया है । कौशल्या ने मेरा जैसा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखने योग्य) वैसा ही फल दूँगी ।

दो०– होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं ।।३३।।

भावार्थ– सबेरा होते ही मुनि का वेष धारण कर यदि राम बन को नहीं जाते, तो हे राजन् ! मन में निश्चय समझ लीजिये कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश ।''

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात फुरि साँची । तिय मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥
मागु माथ अबहीं देउँ तोही । राम बिरहँ जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती । नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती ॥

भावार्थ– ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई मानों क्रोध की नदीं उमड़ी हो । वह नारीं पापरूपी पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोध रूपी जल से भरी है ।(ऐसी भयानक है कि) देखी नहीं जाती । दोनों वरदान उस नदी के किनारे हैं, कैकेयी की कठिन हठ ही उसकी (तीव्र) धारा है और कुबरी (मन्थरा) के वचनों की प्रेरणा ही भवँर है । (वह क्रोध रूपी नदी) राजा दशरथ रूपी वृक्ष को जड़-मूल से हठाती हुई विपत्ति रूपी समुद्र की ओर (सीधी) चली है । राजा ने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तव) में सच्ची है, स्त्री के

बहाने मेरी मृत्यु ही सिरपर नाच रही है। (तदनन्तर राजा ने कैकेयी के) चरण पकड़ कर उसे बिठाकर बिनती की कि "सूर्यकुल-रूपी वृक्ष के लिये कुल्हाड़ी मत बन। तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँगा। पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी प्रकार से हो, तू राम को रखा ले। नहीं तो जन्म भर तेरी छाती जलेगी।"

दो०— देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ।।३४।।

भावार्थ— राजा ने देखा रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणी से 'हा राम ! हा राम ! हा रघुनाथ !' कहते हुए सिर पीट कर ज़मीन पर गिर पड़े।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।।
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी।।
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई।।
जौं अंतहुँ अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ।।
दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।।
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई।।
छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू।।
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी।।

भावार्थ— राजा ब्याकुल हो गये, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया। मानों हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़ फेंका हो। कंठ सूख गया, मुख से बात नहीं निकलती। मानों पानी के बिना पाहिना नामक मछली तड़प रही हो। कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानों घाव में जहर भर रही हो। (कहती है)— "जो अन्त में ऐसा ही करना था, तो आपने माँग, माँग किस बल पर कहा था। हे राजा ! ठहाका मार कर हसना और गाल फुलाना (क्रोधित होना), क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना ! क्या राजपूती में क्षेम-कुशल भी रह सकती है ? (लड़ाई में बहादुरी भी दिखावें और कहीं चोट भी न लगे)। या तो वचन (प्रतिज्ञा)ही छोड़ दीजिये, या धैर्य धारण कीजिये। यों असहाय स्त्री की भाँति रोइये-पीटिये नहीं। सत्यव्रती के लिये तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनके के बराबर कहे गये हैं।"

दो०— मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर।।३५।।

भावार्थ— कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि "तू चाहे जो कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं हैं। मेरा काल तुझे मानों पिशाच होकर लग गया है। वही तुझसे यह सब कहला रहा है।

चहत न भरत भूपतहि भोरें । बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू । भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू ॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई ॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ । भुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुहु गोई ॥
जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारू लागी ॥

भावार्थ– भरत जी भूल कर भी राजपद नहीं चाहते । होनहार वश तेरे ही जी में कुमति आ बसी । यह सब मेरे पापों का परिणाम है, जिससे कुसमय में (बेमौके)विधाता विपरीत हो गया । (तेरी उजाड़ी हुई)यह सुन्दर अयोध्या फिर भली भाँति बसेगी और समस्त गुणों के धाम श्री राम की प्रभुता भी होगी । सब भाई उनकी सेवा भी करेंगे और तीनों लोकों में श्री राम की बड़ाई होगी । केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जायेगा । अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर । मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ (अर्थात् मेरे सामने से हट जा, मुझे मुंह न दिखा) । मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ न कहना (अर्थात् मुझसे न बोलना)। अरी अभागिनी फिर तू अन्त में पछतायेगी जो तू नहारू (ताँत)के लिये गाय को मार रही है ।''

दो०– परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु ।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु ।।३६।।

भावार्थ– राजा करोड़ो प्रकार से बहुत तरह से समझा कर और यह कहकर कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वी पर गिर पड़े । पर कपट करने में चतुर कैकेयी कुछ नहीं बोली । मानों (मौन रहकर)मसान जगा रही हो (श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो)।

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहै जनि कोई ॥
उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर । अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहिं जनु लागहिं सायक ॥
मंगल सकल सोहाहिं न कैसें । सहगामिनिहि बिभूषन जैसें ॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू । राम दरस लालसा उछाहू ॥

भावार्थ– राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। वे अपने हृदय में मनाते हैं कि सबेरा न हो, और कोई जाकर श्री रामचन्द्र जी से यह बात न कहे। हे रघुकुल के गुरु (मूलपुरुष) सूर्य भगवान्! आप अपना उदय न करें। अयोध्या को (बेहाल) देखकर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी। राजा की प्रीति और निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक रचकर बनाया है (अर्थात् राजा प्रेम की सीमा हैं और कैकेयी निष्ठुरता की)। विलाप करते करते ही राजा को सबेरा हो गया। राजद्वार पर वीणा, बाँसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं और गवैये गुणों का गान कर रहे हैं। सुनने पर राजा को वे वाण जैसे लगते हैं। राजा को ये सब मंगल साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं जैसे पति के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण। श्री रामचन्द्र जी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी को भी नींद नहीं आयी।

दो०– द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि ।।३७।।

भावार्थ– राजद्वार पर मन्त्रियों और सेवकों की भीड़ लगी है। वे सब सूर्य को उदित हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथ जी अभी तक नहीं जागे।

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा ।।
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई ।।
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं ।।
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा ।।
पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई ।।
कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ।।
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ।।
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी ।।

भावार्थ– राजा नित्य ही रात के पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किन्तु आज हमे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमन्त्र! जाओ, जाकर राजा को जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें। तब सुमन्त्र रावले में (राजमहल में) गये। पर महल को भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो दौड़कर काट खायेगा। उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। मानों विपत्ति और विषाद ने वहाँ डेरा डाल रखा हो। पूछने पर कोई जवाब नहीं देता। वे उस महल में गए जहाँ राजा और कैकेयी थे। 'जय-जीव' कहकर, सिर नवाकर (बंदना करके) बैठे और राजा की दशा देखकर तो वे सूख ही गये। (देखा कि)-- राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है। जमीन पर ऐसे पड़े हैं मानों कमल जड़ छोड़कर (जड़ से उखड़कर मुर्झाया) पड़ा हो। मन्त्री मारे डर के कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई और शुभ से विहीन कैकेयी बोली।

दो०— परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु ।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु ।।३८।।

भावार्थ— "राजा को रात भर नींद नहीं आई, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम-राम' रटकर सबेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं बतलाते।

आनहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूँछेहु आई ।।
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ।।
सोच बिकल मग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ।।
उर धरि धीरजु गयउ दुआरें । पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ।।
समाधानु करि सो सबही का । गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ।।
रामु सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पीता सम लेखा ।।
निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ।।
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ।।

भावार्थ— तुम जल्दी राम को बुला लाओ । तब आकर समाचार पूछना ।" राजा का रुख जानकर सुमन्त्र जी चले, समझ गये कि रानी ने कुछ कुचाल की है । सुमंत्र सोच से व्याकुल हैं, रास्ते पर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा नहीं जाता)। (सोचते हैं)— राम जी को बुलाकर राजा क्या कहेंगे ? किसी तरह हृदय मे धीरज धरकर वे द्वार पर गये । सब लोग उनको मनमारे (उदास)देखकर पूछने लगे । सब लोगों का समाधान करके (किसी तरह समझा बुझाकर) सुमंत्र वहाँ गये जहाँ सूर्यकुल के तिलक श्री रामचन्द्र जी थे । श्री रामचन्द्र जी ने सुमंत्र को आते देखा, तो पिता के समान समझकर उनका आदर किया । श्री रामचन्द्र जी के मुख को देखकर और राजा की आज्ञा सुनाकर वे रघुकुल के दीपक श्री रामचन्द्र जी को (अपने साथ)लिवा चले । श्री रामचन्द्र जी मंत्री के साथ बुरी तरह से (अर्थात् जिस दशा में थे उसी प्रकार)जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ तहाँ विषाद कर रहे हैं ।

दो०— जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनुहुँ वृद्ध गजराजु ।।३९।।

भावार्थ— रघुवंशमणि श्री रामचन्द्र जी ने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पड़े हैं, मानों सिंहनी को देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहम कर गिर पड़ा हो ।

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू । मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ।।
सरुष समीप दीखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई ।।
करुनामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ।।

तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुर बचन महतारी ॥
मोहि कहु मात तात दुख कारन । करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना । मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥

भावार्थ– राजा के ओठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है। मानों मणि के बिना साँप दुखी हो रहा हो । पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानों (साक्षात्) मृत्यु ही बैठी (राजा के जीवन की अंतिम)घड़ियाँ गिन रही हो । श्री रामचन्द्र जी का स्वभाव कोमल और करुणामय है । उन्होंने (अपने जीवन में) पहली बार यह दुःख देखा, इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था । तो भी समय का विचार करके, हृदय में धीरज धर कर उन्होंने मीठे बचनों से माता कैकेयी से पूछा ।'हे माता ! मुझे पिताजी के दुःख का कारण कहो, ताकि जिससे उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाय ।' (कैकेयी ने कहा)– ''हे राम ! सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है । इन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था । मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंनें माँगा । उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हो गया, क्यों कि ये तुम्हारा संकोच छोड़ नहीं सकते ।

दो०– सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ।।४०।।

भावार्थ– इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा)। राजा इसी धर्म संकट में पड़ गये हैं । यदि तुम कर सकते हो, तो राजाज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेश को मिटाओ । ''

निधरक बैठि कहइ कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना ॥
जनु कठोरपनु धरें सरीरू । सिखइ धनुषबिद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । रामु सहज आनंद निधानू ॥
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

भावार्थ– कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी । जीभ धनुष है, वचन बहुत से तीर हैं, और मानों राजा ही

कोमल निशाने के समान हैं। (इस सारे साज-समान के साथ) मानों स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। श्री रघुनाथ जी को सब हाल सुनाकर वह ऐसी बैठी है मानों निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हो। सूर्य कुल के सूर्य, स्वाभाविक ही आनन्द निधान श्री रामचन्द्र जी मन में मुसकराकर सब दूषणों से रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले जो वाणी के भूषण ही थे। "हे माता ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञापालन के द्वारा) माता-पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी ! सारे संसार में दुर्लभ है।

दो०— मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ।।४१।।

भावार्थ— वन में विशेष रूप से मुनियों का मिलाप होगा, जिससे मेरा सभी प्रकार से कल्याण है। उसमें भी, फिर पिता की आज्ञा और हे जननी ! तुम्हारी सम्मति है।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ।।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ।।
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ।।
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं ।।
अब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी ।।
थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी ।।
राउ धीर गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ।।
जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ।।

भावार्थ— और प्राणप्रिय भरत राज्य पायेंगे। (इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि)आज विधाता सब प्रकार से मेरे सम्मुख (अनुकूल)हैं। यदि ऐसे काम के लिये भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिये। जो कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंडी की सेवा करते हैं और अमृत त्याग कर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मन में विचार कर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे। हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेष रूप से हो रहा है, वह महाराज को अत्यन्त व्याकुल देखकर। इस थोड़ी सी बात के लिये ही पिता जी को इतना भारी दुःख हो, हे माता ! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता। क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणों के अथाह समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगंध है, माता ! तुम सच-सच कहो।"

दो०— सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ।।४२।।

भावार्थ– रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी के स्वभाव से ही सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है;जैसे, यद्यपि जल समान ही होता है, परन्तु जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥
पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हें॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

भावार्थ– रानी कैकेयी श्री रामचन्द्र जी का रुख पाकर हर्षित हो गयी और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली- ''तुम्हारी शपथ और भरत की सौगंध है, मुझे राजा के दु:ख का दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है। हे तात ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिता का अपराध बन पड़े, यह सम्भव नहीं)। तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे राम ! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम पिता-माता के वचनों (के पालन)में तत्पर हो। मैं तुम्हारी बलहारी जाती हूँ, तुम पिता को समझा कर वही बात कहो जिससे चौथेपन (बुढ़ापे) में इनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने इनको तुम जैसे पुत्र दिये हैं उनका निरादर करना उचित नहीं।'' कैकेयी के बुरे मुख से यह शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदि का तीर्थ। श्री रामचन्द्र जी को माता कैकैयी के सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगा जी में जाकर (अच्छे-बुरे सभी प्रकार के)जल शुभ, सुन्दर हो जाते हैं।

दो०– गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह॥४३॥

भावार्थ– इतने में राजा की मूर्छा दूर हुई, उन्होंने राम का स्मरण करके (राम ! राम! कहकर)फिर करवट ली। मन्त्री ने श्री रामचन्द्र जी का आना कहकर समयानुकूल विनती की।

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥
लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥

भावार्थ– देवराज इन्द्र कपट और कुचाल की शोभा हैं। उसे परायी हानि और अपना लाभ ही प्रिय है। इन्द्र की रीति कौए के समान है। वह छली और मलिन मन है। उसका कहीं किसी पर विश्वास नहीं है। पहले तो कुमत (बुरा विचार) करके कपट को एकत्र किया फिर वह (कपट जनित) उचाट सब के सिर पर डाल दिया। फिर देवमाया से सब लोगों को विशेष रूप से मोहित कर दिया। किन्तु श्री राम चन्द्र जी के प्रेम से उनका अत्यन्त विछोह नहीं हुआ (अर्थात् उनका श्री राम जी के प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा)। भय और उचाट के वश किसी का मन स्थिर नहीं है। क्षण में बन में रहने को इच्छा होती है और क्षण मे उन्हें घर अच्छे लगने लगते हैं। मन की इस प्रकार की दुविधामयी स्थिति से प्रजा दु:खी हो रही है। जैसे नदी और सुमद्र के संगम का जल स्थिर नहीं रहता। कभी इधर आता, कभी उधर जाता है। उसी प्रकार की दशा प्रजा के मन की हो गयी। फिर दो तरफा हो जाने से वे कहीं सन्तोष नहीं पाते और फिर दूसरे से अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान श्री राम चन्द्र जी यह दशा देखकर हृदय में हँस कर कहने लगे कुत्ता, इन्द्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक सरीखे (एक ही स्वभाव के) हैं। (पाणिनीय व्याकरण के अनुसार श्वन्, युवन् और मघवन् शब्दों के रूप भी एक सरीखे होते हैं)।

दो०— भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ।।३०२।।

भावार्थ– भरत जी, जनक जी, मुनिजन, मन्त्री जन और ज्ञानी साधु-संतों को छोड़कर अन्य सभी पर जिस जिस मनुष्यों को जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थिति का) पाया उस पर वैसे ही देवमाया लग गयी।

कृपासिंधु लखि लोग दुखांरे। निज सनेहँ सुरपति छल भारे।।
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री।।
रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से।।
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई।।
जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू।।
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी।।
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी।।
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई।।

भावार्थ– कृपासिंधु श्री रामचन्द्र जी ने लोगों को अपने स्नेह और देवराज इन्द्र के भारी छल से दुखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मन्त्री आदि सभी की बुद्धि को भरत जी की भक्ति ने कील दिया (स्थिर रक्खा)। सब लोग चित्र लिखे से श्री रामचन्द्र

जी की ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाये हुए से बचन बोलते हैं। भरत जी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुख देने वाली है, पर उसके वर्णन करने में कठिनता है। जिनकी भक्ति का लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनक जी प्रेम मग्न हो गये, उन भरत जी की महिमा तुलसी कैसे कहे ? भक्ति और सुन्दर भाव से (कवि के) हृदय में सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है)। परन्तु वह बुद्धि अपने को छोटी और भरत जी की महिमा को बड़ी जानकर कवि परम्परा की मर्यादा को मान कर सकुचा गयी (उसका वर्णन करने का साहस नहीं कर सकी)। उसकी गुणों में रूचि तो बहुत है, पर उन्हें कह नहीं सकती। बुद्धि की गति बालक के बचनों की तरह हो गयी (वह कुण्ठित हो गयी)।

दो०— भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि ।।२०३।।

भावार्थ— भरत जी का निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है, और कवि की सुबुद्धि चकोरी है। जो भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में उस चन्द्रमा को उदित देखकर उसकी ओर एकटक देखती रह गयी है।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ ।।
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ।।
सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ।।
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की ।।
धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर ।।
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू ।।
बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से ।।
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ।।

भावार्थ— भरत जी के स्वभाव का वर्णन वेदों के लिए भी सुगम नहीं है। मेरी तुच्छ बुद्धि की चञ्चलता को कवि क्षमा करें। भरत जी के सद्भाव को कहते-सुनते कौन मनुष्य श्री सीता-राम जी के चरणों में अनुरक्त न हो जायगा। भरत जी का स्मरण करने से जिसको श्री राम जी का प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान वाम (अभागा) और कौन होगा। दयालु और सुजान श्री राम जी ने सभी की दशा देखकर और भक्त (भरत जी) के हृदय की स्थिति जान कर, धर्म धुरन्धर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र, नीति और प्रीति के पालन करने वाले श्री रघुनाथ जी देश, काल, अवसर और समाज को देखकर तदनुसार ऐसे वचन बोले जो मानो वाणी के सर्वस्व ही थे, परिणाम में हितकारी थे और सुनने में चन्द्रमा के रस (अमृत) सरीखे थे। (उन्होंने कहा—) ''हे तात भरत ! तुम धर्म

की धुरी को धारण करने वाले हो, लोक और वेद दोनों के जानने वाले और प्रेम में प्रवीण हो।

दो०– करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात ।।३०४।।

भावार्थ– हे तात ! कर्म से, वचन से और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनों के समाज में और ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुण किस तरह कहे जा सकते हैं ?

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती ।।
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की ।।
तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू ।।
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ।।
तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी ।।
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू ।।
जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू ।।
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ।।

भावार्थ– हे तात ! तुम सूर्यकुल की रीति को, सत्य प्रतिज्ञ पिता जी की कीर्ति को, समय, समाज और गुरुजनों की लज्जा (मर्यादा)को तथा उदासीन, मित्र और शत्रु सब के मन की बात जानते हो। तुमको सब कर्मों का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्म का पता है। यदि मुझे तुम्हारा सब प्रकार से भरोसा है, तथापि मैं समय के अनुसार कुछ कहता हूँ। हे तात ! पिता जी के बिना (उनकी अनुपस्थित में) हमारी बात केवल गुरुवंश की कृपा ने ही सम्हाल रक्खी है, नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बरबाद हो जाते। यदि बिना समय के (सन्ध्या के पूर्व ही)सूर्य अस्त हो जाय तो कहो जगत में किसको क्लेश न होगा ? हे तात ! उसी प्रकार का उत्पात विधाता ने यह (पिता की असामयिक मृत्यु) किया है। पर मुनि महाराज ने तथा मिथिलेश्वर ने सब को बचा लिया।

दो०– राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ।।३०५।।

भावार्थ– राज्य का सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धान, घर, इन सभी का पालन (रक्षण)गुरु जी का प्रभाव (सामर्थ्य)करेगा और परिणाम शुभ होगा।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा ।।
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू ।।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनिकुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥
सो बिचारि सहि संकटु भारी । करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई । तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा । कुसमयँ तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए । ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए ॥

भावार्थ– गुरु जी का प्रसाद (अनुग्रह) ही घर में और बन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है । माता, पिता, गुरू और स्वामी की आज्ञा का पालन समस्त धर्मरूपी पृथ्वी को धारण करने में शेष जी के समान है । हे तात ! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ, और सूर्यकुल के रक्षक बनो । सार्थक के लिए यह एक ही (आज्ञा रूपी साधना) सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाली, कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है । इसे विचार कर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो । हे भाई ! मेरी विपत्ति सभी ने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है (सब से अधिक दुख है) । तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोग की) बात कह रहा हूँ । हे तात ! बुरे समय में मेरा यह कोई अनौचित्य नहीं है । कुठौर (कुअवसर) में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं । बज्र के आघात भी हाथ से ही रोके जाते हैं ।

दो०– सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ॥३०६॥

भावार्थ– सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिये।'' तुलसी दास जी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी । प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी ॥
सिथिल समाज सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ॥
भरतहि भयउ परम संतोषू । सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू ॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू । भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ॥
कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी । बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को । लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ॥
अब कृपाल जस आयसु होई । करौं सीस धरि सादर सोई ॥
सो अवलंब देव मोहि देई । अवधि पारु पावौं जेहि सेई ॥

भावार्थ– श्री रघुनाथ जी की वाणी सुनकर, जो मानों प्रेमरूपी समुद्र के (मन्थन से निकले हुए)अमृत में सनी हुई थी, सारा समाज शिथिल हो गया, सब को प्रेम समाधि लग गई। यह दशा देखकर सरस्वती ने चुप साध ली। भरत जी को परम संतोष हुआ। स्वामी के सन्मुख (अनुकूल)होते ही उनके दुःख और दोषों ने मुँह मोड़ लिया (वे उन्हें छोड़कर भाग गये)। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मन का विषाद मिट गया। मानों गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी हो। उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और कर कमलों को जोड़ कर वे बोले ''हे नाथ ! मुझे आपके साथ जाने का सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत में जनम होने का लाभ भी पा लिया। हे कृपालु ! अब जैसी आज्ञा हो, उसी को मैं सिर पर धर कर आदर पूर्वक करूँ। परन्तु देव ! आप मुझे वह अवलम्बन (कोई सहारा) दें जिसकी सेवा कर मैं अवधि का पार पा जाऊँ (अवधि को बिता दूँ)।

दो०– देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ।।३०७।।

भावार्थ– हे देव ! स्वामी (आप) के अभिषेक के लिए गुरु जी की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल ले आया हूँ। उसके लिए क्या आज्ञा होती है।

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयँ सकोच जात कहि नाहीं।।
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई।।
चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन।।
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी।।
अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू।।
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता।।
रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं।।
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा।।

भावार्थ– मेरे मन में एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोच के कारण कहा नहीं जाता।'' (श्री रामचन्द्र जी ने कहा–) 'हे भाई ! कहो।' तब प्रभु की आज्ञा पाकर भरत जी स्नेह पूर्ण सुन्दर वाणी बोले –''आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थान, वन, पक्षी पशु, तालाब, नदीं, झरने और पर्वतों के समूह तथा विशेषकर प्रभु आपके चरण चिन्हों से अंकित भूमि को देख आऊँ।'' श्री रघुनाथ जी बोले –''अवश्य ही अत्रि ऋषि की आज्ञा को सिर पर धारण करो (वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वन विचरो। हे भाई! अत्रि मुनि के प्रसाद से बन मंगलों का देने वाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है और ऋषियों के प्रमुख अत्रि जो जहाँ आज्ञा दें, वहाँ लाया हुआ तीर्थों का जल स्थापित क

देना।'' प्रभु के वचन सुनकर भरत जी ने सुख पाया और आनन्दित होकर मुनि अत्रि जी के चरण कमलों में सिर नवाया।

दो०— भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल ।।३०८।।

भावार्थ— भरत जी और श्री रामचन्द्र जी का समस्त सुन्दर मंगलों का मूल संवाद सुनकर स्वार्थी देवता रघुनाथ की सराहना करके कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं ।।
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू ।।
भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ।।
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन ।।
मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे ।।
सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू ।।
राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी ।।
एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई ।।

भावार्थ—'भरत जी धन्य हैं, स्वामी श्री रामचन्द्र जी की जय हो।' ऐसा कहते हुए देवता बल पूर्वक (अत्यधिक) हर्षित होने लगे। भरत जी के वचन सुनकर मुनि वशिष्ठ जी, मिथिलापति, जनक जी और सभा में सब किसी को बड़ा उत्साह (आनन्द) हुआ। भरत जी और श्री रामचन्द्र जी के गुण समूह की तथा प्रेम की विदेहराज जनक जी पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनों का सुन्दर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्र को भी अत्यन्त पवित्र करने वाले हैं। मन्त्री और सभासद सभी प्रेम मुग्ध होकर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। श्री राम और भरत का संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजों के हृदय में हर्ष और विषाद (भरत जी के सेवा धर्म को देखकर हर्ष और राम वियोग की सम्भावना से विषाद) दोनों हुए। श्री राम चन्द्र जी की माता कौशल्या जी ने दुःख और सुख को समान जानकर श्री रामचन्द्र जी के गुण कहकर दूसरी रानियों को धैर्य बँधाया। कोई रघुबीर श्री राम जी की बड़ाई (बड़प्पन) की चर्चा कर रहे हैं, तो कोई भरत जी के भलेपन की सराहना करते हैं।

दो०— अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ।।३०९।।

भावार्थ— तब अत्रि जी ने भरत जी से कहा— 'इस पर्वत के समीप ही एक सुन्दर कुआँ है। तीर्थजल को उसी में स्थापित कर दीजिए।'

भरत अत्रि अनुसासन पाई । जल भाजन सब दिए चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गए जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुन्यथल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥
तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा ॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥

भावार्थ– भरत जी ने अत्रि जी की आज्ञा पाकर जल के सब पात्र रवाना कर दिये और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि, तथा अन्य संतों सहित आप वहाँ गये, जहाँ वह अथाह कुँआ था । और उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में रख दिया । तब अत्रि मुनि ने प्रेम से आनन्दित होकर ऐसा कहा– ''हे तात ! यह अनादि सिद्धस्थल है । कालक्रम से यह लोप हो गया था, इसलिये किसी को इसका पता नहीं था । जब हमारे सेवकों ने इस सुन्दर जलयुक्त स्थान को देखा, तब उन्होंने सुन्दर जल के लिए एक खास कुआँ बना लिया । दैवयोग से विश्वभर का उपकार हो गया । धर्म का विचार तो अत्यन्त अगम था, वह (इस कूप के प्रभाव से)सुगम हो गया । अब इसको लोग भरत कूप कहेंगे । तीर्थों के जल के संयोग से तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया । इसमें प्रेमपूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, वचन और कर्म से निर्मल हो जायेंगे ।''

दो०– कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ ।।३१०।।

भावार्थ– कूप की महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गये जहां श्री रघुनाथ जी थे । श्री रघुनाथ जी को अत्रि जी ने उस तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया ।

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयउ भोरू निसि सुख सों बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई । राम अत्रि गुरु आयसु पाई ॥
सहित समाज साज सब सादें । चले रामबन अटन पयादें ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥
कुस कंटक काँकरी कुराई । कटुक कठोर कुबस्तु दुराई ॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे । बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हें ॥
सुमन बरषि सुर घन करिछाहीं । बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी । सेवहिं सकल राम प्रिय जानी ॥

भावार्थ– प्रेम पूर्वक धर्म का इतिहास कहते वह रात सुख से बीत गई और सबेरा हो गया। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्य क्रिया करके, श्री राम जी, अत्रि जी और गुरू वशिष्ठ से आज्ञा पाकर, समाज सहित सब (सहज और सरल स्वभाव से)रामवन में भ्रमण (प्रदक्षिणा)करने के लिए पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूते के चल रहे हैं। यह देखकर पृथ्वी मन ही मन सकुचा कर कोमल हो गयी। कुश, कांटे, कंकड़ आदि कड़वी, और बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर और कोमल मार्ग कर दिये। सुखों को साथ लिए शीतल मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी। रास्ते में देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फल कर, तृण अपनी कोमलता से, मृग (पशु)देखकर और पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर, सभी भरत जी को श्री रामचन्द्र जी के प्यारे जानकर, उनकी सेवा करने लगे।

दो०– सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात।।३११।।

भावार्थ– जब एक साधारण मनुष्य को भी आलस्य से जभाई लेते समय 'राम' कह देने से ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब श्री रामचन्द्र जी के प्राण प्यारे भरत के लिए यह कोई बड़ी (आश्चर्य की)बात नहीं है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं।।
पुण्य जलाशय भूमि बिभागा। खगमृग तरु तृन गिरि बन बागा।।
चारु बिचित्र पबित्र बिसेखी। बूझत भरत दिव्य सब देखी।।
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ।।
कतहु निमज्जन कतहु प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।।
कतहु बैठि पुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई।।
देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा।।
फिरहिं गये दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई।।

भावार्थ– इस प्रकार भरत जी बन में फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेम को देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जल के स्थान, नदी, बावली, कुण्ड आदि पृथ्वी के पृथक-पृथक भाग, पक्षी, पशु, फूल, फ़ल, तृन (घास), पर्वत, बन और बगीचे–एक से एक सुन्दर विचित्र और विशेष पवित्र थे। उन सब दिव्य स्थानों (और पदार्थों)को देख-देखकर भरत उनके विषय में पूछते जाते थे। और ऋषि-राज अत्रि उनके प्रश्न सुन-सुनकर बहुत प्रसन्न मन से उनकी उत्पत्ति, नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव बताते चले जा रहे थें। भरत जी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थलों के दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रि

जी की आज्ञा पाकर बैठकर, सीता जी सहित श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं। भरत जी के स्वभाव, प्रेम और सुन्दर सेवा भाव को देखकर वनदेवता आनन्दित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिर कर ढाई पहर बीतने पर भरत लौट आते हैं। और आकर प्रभु श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों का दर्शन करते हैं।

दो०— देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु गयउ दिवस भइ साँझ ।।३१२।।

भावार्थ— भरत जी ने पाँच दिन में सब तीर्थ स्थलों के दर्शन कर लिए। भगवान विष्णु और महादेव जी का सुन्दर यश कहते सुनते वह (पांचवां)दिन भी बीत गया, सन्ध्या हो गयी।

भोर न्हाई सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानिमन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥
गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न रामसम स्वामि संकोची॥
भरत सुजान रामरुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू॥
अब गोसाईं मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥

भावार्थ— (अगले छठे दिन) सबेरे स्नान करके भरत जी, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुड़ा। आज सब को विदा करने के लिए अच्छा दिन है, यह जानकर भी कृपालु श्री राम जी कहने में सकुचा रहे हैं। श्री रामचन्द्र जी ने गुरु वशिष्ठ जी, जनक जी और सारी सभा की ओर देखा। किन्तु फिर सकुचा कर दृष्टि फेर कर वे पृथ्वी की ओर ताकने लगे। सभा उनके शील की सरहाना करके सोचती हैं कि श्री रामचन्द्र जी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है। सुजान भरत जी श्री रामचन्द्र जी का रुख देख प्रेम पूर्वक उठकर, विशेष रूप से धीरज धारण कर दण्डवत् करके हाथजोड़कर कहने लगे—"हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रक्खी। मेरे लिए सब लोगों ने सन्ताप सहा और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर अवधिभर (चौदह वर्ष तक)अवध का सेवन करूँ।

दो०— जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखैं दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल ।।३१३।।

भावार्थ– हे दीन दयाल ! जिस उपाय से यह दास फिर चरणों का दर्शन करे– हे कोसलाधीस ! हे कृपालु ! अवधि भर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं ॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ॥
स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू ॥
अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएँ बिचारु न सोचु खरो सो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ॥
यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी ॥

भावार्थ– हे गोसाई ! आपके प्रेम से और सम्बन्ध से अवधपुरवासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनन्द)से युक्त हैं। आपके लिए भव दुःख (जन्म मरण के दुःख) की ज्वाला में जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद मोक्ष का लाभ भी व्यर्थ है। हे स्वामी ! आप सुजान हैं , सभी के हृदय की और मुझ सेवक के मन की रुचि, लालसा और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल ! आप सब किसी का पालन करेंगे और हे देव! दोनों तरफ को ओर-छोर तक निबाहेंगे। मुझे सब प्रकार से ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है। विचार करने पर तिनके के बराबर (जरा-सा)भी सोच नहीं रह जाता। मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिलकर मुझे जबरदस्ती ढीठ बना दिया है। हे स्वामी ! इस बड़े दोष को दूर करके, संकोच त्यागकर, मुझ सेवक को शिक्षा दीजिए।'' दूध और जल को अलग-अलग करने में हंसिनी की सी गति वाली भरत जी की विनती सुनकर उसकी सभी ने प्रशंसा की।

दो०– दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन ॥३१४॥

भावार्थ– दीनबन्धु और परम चतुर श्री रामचन्द्र जी भाई भरत जी के दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल बचन बोले।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई ॥

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

भावार्थ– हे तात ! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिन्ता गुरु वशिष्ठ जी और महाराज जनक जी की है। हमारे सिर पर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्र जी और मिथिलापति जनक जी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न में क्लेश नहीं है। मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिता जी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उसके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है। गुरू, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा का (आज्ञा का) पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने से पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सदा सोच छोड़कर, अवध जाकर अवधि भर उसका पालन करो। देश, ख़ज़ाना, कुटुम्ब, परिवार, आदि सब की जिम्मेदारी तो गुरु जी की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठ जी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना।''

दो०– मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥३१५॥

भावार्थ– तुलसी दास जी कहते हैं मुखिया मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने को तो (अकेला) है परन्तु विवेक पूर्वक सब अंगों का पालन पोषण करता है।

लोकोक्ति– ऊपर का समस्त दोहा एक लोकोक्ति है। जैसे खाने के लिए केवल एक ही मुख होता है, परन्तु वह समस्त शरीर का सांगोपांग पोषण करता है। इसी प्रकार एक राजा को समस्त प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरनपीठ करूनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥

भावार्थ– राज धर्म का सर्वस्व (सार)भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्री रघुनाथ जी ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मन में न संतोष हुआ न शान्ति। इधर तो भरत जी का शील (प्रेम)और उधर गुरुजनों, मन्त्रियों तथा समाज की उपस्थिति। यह देख कर श्री रघुनाथ जी संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत (अर्थात भरत जी के प्रेमवश) हो गये। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने कृपा कर खड़ाऊं दे दी और भरत जी ने उन्हें आदर पूर्वक सिर पर धारण कर लिया। करुणा निधान श्री रामचन्द्र जी के दोनों खड़ाऊँ, प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानों दो पहरेदार हैं। भरत जी प्रेम-रूपी रत्न के लिये मानो डिब्बा हैं। और जीव के साधन के लिए मानों राम-नाम दो अक्षर हैं। रघुकुल के लिये किवाड़ हैं। कुशल (श्रेष्ठ)कर्म करने के लिये दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं। और सेवारूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिये निर्मल नेत्र हैं। भरत जी इस अवलम्ब के मिल जाने से परम आनन्दित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ जैसे श्री सीता राम जी के रहने से होता।

टिप्पणी– जैसे बालकाण्ड के उत्तरार्ध का वस्तु विषय है धनुर्यज्ञ, सीतास्वयम्बर और रामविवाह, उसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्ध का विषय है भरत का क्षोभ और आत्मग्लानि। दशरथ जी के देहावसान के पश्चात् जब भरत ननिहाल से लौटे तो कुलगुरु वशिष्ठ, राजमाता कौशल्या और मन्त्री सुमन्त्र ने उनके समक्ष उनके राज्याभिषेक का प्रस्ताव रक्खा। इस प्रस्ताव के उत्तर में भरत ने कहा–

'पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

* * *

जाऊँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू ॥

* * *

कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज ॥१७८॥

(पृष्ठ ५५९-६०)

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥

(पृष्ठ ५६४)

अर्थात्, पिता जी का स्वर्गवास हो गया, बड़े भाई राम को वनवास हो गया और आप मुझे राज-लक्ष्मी भोगने के लिए कह रहे हैं। इसमें क्या आप मेरा कल्याण समझते हैं। या

अपनी स्वार्थ सिद्धि ? कुटिल-बुद्धि, राम बिमुख, कैकेई के पुत्र से आप व्यर्थ ही आशा रखते हैं। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं श्री राम के पास जाऊँ। निश्चयपूर्वक मेरा हित इसी में है। आप पंच लोग इसी में मेरा कल्याण मानकर मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दीजिये कि मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर, श्री राम अयोध्या को लौट आएं।

भरत के वचन सब को प्रिय लगे और दूसरे दिन प्रातः भरत ने चित्रकूट के लिये प्रयाण किया।

सई, गंगा, त्रिवेणी, जमुना और मन्दाकिनी नदियों के तटों पर पड़ाव डालते हुये समस्त समाज सातवें दिन चित्रकूट पहुँच गया। उधर राजा जनक भी चित्रकूट पहुँच गए।

परन्तु जिस उद्देश्य से भरत चित्रकूट गए थे, उसे स्पष्ट राम के सन्मुख रखने का साहस न भरत को और न किसी अन्य व्यक्ति को हुआ। इधर-उधर कई सभाएं हुईं कई विकल्प रखे गए, परन्तु कोई निष्कर्ष नहीं निकला।

राम को पिता का क्रिया-कर्म करने में और पातक से पुनीत होने में दो दिन बीत गए। तीसरे दिन राम ने गुरु वशिष्ठ से कहा—

'नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी।।
सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आप इहाँ अमरावति राऊ।।'

अर्थात्, जनता केवल कंद-मूल-फल पर जीवन निर्वाह कर रही है। यहां और बन में हर प्रकार से दुखी है। पिता परलोक सिधार गए हैं। अब इस तरह राजधानी को अकेला छोड़ना उचित नहीं। आप लोग सब शीघ्र अयोध्या वापस लौट जाइये।

इस पर वशिष्ठ ने तुरन्त उत्तर दिया :

'लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहूँ विश्राम।'

'लोग अवश्य दुःखी हैं। उन्हें दो चार दिन और विश्राम कर लेने दीजिए ताकि आपके दर्शन का और लाभ उठा सकें।'

इस प्रकार चित्रकूट में एक सप्ताह बीत गया और काम की कोई बात न हुई। फिर गुरु वशिष्ठ ने 'विप्र महाजन सचिव सब' की एक सभा बुलाई और उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि भरत-शत्रुघ्न बन चले जाएँ और राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या लौट जाएें। इस प्रस्ताव के बाद भरत और मुनिराज 'सहित समाज राम पहि आए'। पर राम के पास आने पर प्रस्ताव वशिष्ठ जी ने नहीं रक्खा, अपितु राम से भरत की बात सुनने को कहा और भरत को अपनी बात कहने के लिए प्रेरित किया।

'भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचार बहोरि '

(दोहा २५८, पृष्ठ ६३३)

'तब मुनि बोले भरत सन सब संकोचु तजि तात ।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहू हृदय कै बात ।।'

(दोहा २५९, पृष्ठ ६३४)

इस पर भरत ने बड़ा साहस करके राम के सामने कई विकल्प रक्खे —

'देव एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ।
तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ।।
सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ ।
नतरू फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ।।२६८।।
नतरू जाहिं बन तीनिउ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ।।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुना सागर कीजिअ सोई ।।

(दोहा २६८ और उसके ऊपर - नीचे की चौपाई, पृष्ठ ६४१)

ऊपर के दोहे और चौपाई में भरत ने जो चार विकल्प रखे, वह इस प्रकार थे :

१- राज तिलक की सामग्री सजा कर लाई गई है, उसे सफल कीजिये ।

२- छोटे भाई शत्रुघ्न सहित मुझे वन में भेज दीजिये ।

३- लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ ।

४- हम तीनों भाई बन चले जायें और आप सीता जी सहित अयोध्या लौट जाइये।

इसके पहले कि राम कोई निर्णय लें, राजा जनक के आने की खबर सुनकर, सभा में खलबली मच गई और बिना किसी निष्कर्ष के सभा विसरजित हो गई।

दोनों समाजों के मिलने पर नया ही वातावरण बन गया । कोई उत्तरदायित्व लेने को तैयार ही नहीं । सब एक दूसरे पर बात टाल रहे हैं । न कोई ठोस सुझाव है, न प्रस्ताव। न प्रस्ताव का अनुमोदन, न स्वीकृति । एक दूसरे की प्रशंसा करने में लगे हैं । पारस्परिक-प्रशंसा-समिति (mutual admiration society) का सृजन हो गया । देवमाया से लोगों का मन उचाट हो गया । जनता की ऐसी विपन्नावस्था देखकर, राम भरत से संकेतात्मक भाषा में बोले—

'सहित समाज तुम्हार हमारा । घर बन गुर प्रसाद रखवारा ।।

० ० ० ०

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनिकुल पालक होहू ।।

o o o o

सो बिचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजा परिवारु सुखारी ।।

बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई । तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ।।

(दोहा ३०५ के नीचे की चौपाई, पृष्ठ ६७५)

भरत समझ गए कि राम अयोध्या वापस लौटने वाले नहीं हैं। और न राजतिलक स्वीकार करेंगे। भरत विवश होकर खाली हाथ लौटने को राजी हो गए। लौटने से पहले उन्होंने तीन इच्छा प्रकट की —

१- आनेऊँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाई ।

इसका समाधान अत्रि ऋषि ने तुरन्त कर दिया—

'अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप ।

राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमीअ अनूप ।।३०९।। '

अर्थात्,तुम जो राज्याभिषेक के लिये विविध तीर्थों से जल लाए हो उसे पर्वत के समीप एक कुआँ है, उसमें डाल दो।

२- चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन । खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ।।

प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी । आयसु होइ त आवौं देखी ।।

राम ने तुरन्त चित्रकूट में अत्रि की आज्ञा से विचरने की अनुमति दे दी।

'अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू । तात बिगत भय कानन चरहू ।।'

(पृष्ठ ६७७)

३- भरत राम के प्रतिनिधि बनकर अवध का चौदह वर्ष तक शासन सम्हालने को राजी हो गए। परन्तु राज-सिंहासन पर बैठने से इन्कार कर दिया। वह तो राम की धरोहर है। उस पर राम का ही प्रतीक विराजमान किया जा सकता है,

'अब कृपाल जस आयसु होई । करौं सीस धरि सादर सोई ।।

सो अवलंब देव मोहि देई । अवधि पारु पावौं जेहि सेई ।।'

(पृष्ठ ६७७)

भरत की यह इच्छा भी राम ने पूरी की। जब चित्रकूट की यात्रा करके भरत लौटे तो एक और सभा आयोजित की गई। उस सभा में राम ने औपचारिक रूप से भरत को अपनी चरण पादुका राज-सिंहासन पर विराजमान करने के लिये दी,

प्रभु करि कृपा पावरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ।।
चरनपीठ करुना निधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।।

भरत चित्रकूट में १५ दिन रहे । इन पन्द्रह दिनों में पाँच सभाएँ आयोजित की गई । इन पन्द्रह दिन का कथानक तुलसीदास जी ने ८५ दोहों और चौपाइयों में कहा है । तीन बातें विशेष तौर पर खटकती हैं–

१- दोहा १८७ में कहा गया है–

सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चलें भरत दोउ भाई ।।

भरत, शत्रुघ्न, उनकी तीनों माताऐं, कुल गुरु, मुख्य मन्त्री सुमन्त और तमाम समाज नौकरों पर अयोध्या छोड़कर चित्रकूट चला आया । इस प्रकार अयोध्या को एक माह के लिये-१५ दिन यात्रा के और १५ दिन चित्रकूट निवास के अरक्षित और निराधार छोड़कर चला जाना कहाँ तक नीति संगत था ?

२- राम को बनवास का आदेश कैकेयी ने दिया था । तुलसीदास ने उसके पश्चाताप का कोई अवसर नहीं दिया । भरत की चित्रकूट यात्रा प्रारम्भ होने से उसके अन्त तक कैकेयी मौन रही ।

३- आज कल की विधान सभा और लोकसभा की बैठकों के समान चित्रकूट की पाँच सभाएँ हुई । इन सभाओं में केवल भाषण हुए । कोई ठोस निर्णय नहीं लिया गया । इसके विपरीत राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपनी खड़ी बोली प्रबन्ध काव्य 'साकेत' में केवल एक ही सभा चित्रकूट में आयोजित की और उसका प्रमुख वक्ता कैकेयी को बनाया । जिस नाटकीय ढंग से मैथिली शरण ने इस प्रसंग को उठाया और उसका समापन किया उसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में हो सकता है ।'साकेत' के अष्टम सर्ग के कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं–

तदनन्तर बैठी सभा उटज के आगे,
नीले बितान के तले दीपबहु जागे ।।

o o o o

प्रभु बोले गिरा गंभीर नीरनिधि जैसी ।
'हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना,'

o o o o o

हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?
मिलगया अकण्टक राज्य उसे जब, तब भी ?

पाया तुमने तरु-तले अरण्य बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?'

o o o o o

'उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको ।'

o o o o o

'हाँ जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें, तुमने स्वयं अभी यह माना ।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात तुम्हारी मैया ।'

o o o o

'बनवास लिया है मान तुम्हारा शासन,
लूँगा न प्रजा का भार, राजसिंहासन ?
पर यह पहला आदेश प्रथम हो पूरा,
वह तात-सत्य भी रहे न अम्ब, अधूरा—'

o o o o

'पर मुझको तो परितोष नहीं है इससे,
हा तब तक मैं क्या कहूं सुनूंगी किससे

o o o o

हे वत्स, तुम्हें वनवास दिया मैंने ही,
अब उसका प्रत्याहार किया मैंने ही'
'पर रघुकुल में जो वचन दिया जाता है,
लौटा कर वह कब कहां लिया जाता है ?'

o o o o o

'तो जैसी आज्ञा आर्य सुखी हो बन में,
जूझेगा दुख से दास उदास भवन में ।
बस, मिलें पादुका मुझे, उन्हें ले जाऊँ,
बच उनके बल पर, अवधि पार मैं पाऊँ ।
हो जाय अवधि मय अवध अयोध्या अब से,
मुख खोल नाथ, कुछ बोल सकूँ मैं सब से ।'

दो०— मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ।।३१६।।

भावार्थ— भरत जी ने प्रणाम करके बिदा माँगी, तब श्री राम चन्द्र जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया । इधर कुटिल इन्द्र ने मौका पाकर लोगों के मन में उच्चाटन पैदा कर दिया।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी । अवधि आस सम जीवनि जी की ।।
नतरु लखन सिय राम बियोगा । हहरि मरत सब लोग कुरोगा ।।
रामकृपाँ अवरेब सुधारी । बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ।।
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो । राम प्रेम रसु कहि न परत सो ।।
तन मन बचन उमग अनुरागा । धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ।।
बारिज लोचन मोचत बारी । देखि दसा सुर सभा दुखारी ।।
मुनिगन गुर धुर धीर जनक से । ग्यान अनल मन कसें कनक से ।।
जे बिरंचि निरलेप उपाए । पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ।।

भावार्थ— वह कुचाल भी सब के लिये हितकर हो गयी । अवधि की आशा के समान ही वह जीवन के लिये संजीवनी हो गयी । नहीं तो (उच्चाटन न हो तो) लक्ष्मण जी, सीता जी और श्री रामचन्द्र जी के वियोग रूपी बुरे रोग से सब घबराकर (हाय, हाय करके) मर ही जाते । श्री रामचन्द्र जी की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी । देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही गुणदायक (हितकारी) और रक्षक बन गई । श्री रामचन्द्र जी के प्रेम का वह रस (आनन्द) कहते नहीं बनता । तन, मन और बचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा । धीरज की धुरी को धारण करने वाले श्री रघुनाथ जी ने धीरज त्याग दिया । वे कमल सदृश नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहाने लगे । उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा (समाज) दुःखी हो गयी । मुनिगन, गुरु वशिष्ठ जी और जनक जी सरीखे धीर धुरन्धर, जो अपने मनों को ज्ञान रूपी अग्नि से सोने के समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्मा जी ने निर्लेप ही रचा और जो जगत रूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही (जगत में रहते हुए भी जगत में अनासक्त)पैदा हुए–

दो० — तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार ।
भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार ।।३१७।।

भावार्थ— वे भी, रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी की और भरत जी के उपमा रहित अपार प्रेम को देखकर वैराग्य और विवेक सहित तन, मन, वचन से उस प्रेम में मग्न हो गये ।

जहाँ जनक गुर गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥

बरनत रघुबर भरत बियोगू । सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू ॥

सो सकोच रसु अकथ सुबानी । समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥

भेंटि भरतु रघुबर समुझाए । पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए ॥

सेवक सचिव भरत रुख पाई । निज निज काज लगे सब जाई ॥

सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा । लगे चलन के साजन साजा ॥

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि राम रजाई ॥

मुनि तापस बनदेव निहोरी । सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥

भावार्थ— जहाँ जनक जी और गुरु वशिष्ठ जी की गति और बुद्धि भी कुंठित हो गयी, उस दिव्य प्रेम को प्राकृत (लौकिक)कहने में बड़ा दोष है । रघुबर श्री रामचन्द्र जी और भरत जी के वियोग का वर्णन सुनकर लोग कवि को कठोर हृदय समझेंगे । वह संकोच रस अकथनीय है । अतएव कवि की सुन्दर वाणी उस समय के प्रेम को स्मरण करके सकुचा गई। भरत जी को भेंट कर श्री रघुनाथ जी ने उनको समझाया । फिर हर्षित होकर शत्रुघ्न जी को हृदय से लगा लिया । सेवक और मन्त्री भरत जी का रुख पाकर सब अपने-अपने काम में जा लगे । यह सुनकर दोनो समाजों में दारुण दुःख छा गया । वे चलने की तैयारियाँ सजने लगे । प्रभु के चरण कमलों की वन्दना करके तथा श्री राम जी की आज्ञा को सिर पर धर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले । मुनि, तपस्वी और बन देवता सब का बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की ।

दो० — लखनहि भेटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि ।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि ।।३१८।।

भावार्थ— फिर लक्ष्मण जी को क्रमशः भेट कर तथा प्रणाम करके और सीता जी के चरणों की धूलि को निरन्तर धारण करके और समस्त मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेम सहित चले ।

सानुज राम नृपहि सिर नाई । कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥

देव दया बस बड़ दुखु पायउ । सहित समाज काननहिं आयउ ॥

पुर पगु धारिअ देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥

मुनि महिदेव साधु सनमाने । बिदा किए हरि हर सम जाने ॥

सासु समीप गए दोउ भाई । फिरे बंदि पग आसिष पाई ॥

कौसिक बामदेव जाबाली । पुरजन परिजन सचिव सुचाली ॥

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा । बिदा किए सब सानुज रामा ॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे । सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥

भावार्थ— छोटे भाई लक्ष्मम सहित श्री रामचन्द्र जी ने राजा जनक को सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकार से विनती और बड़ाई की (और कहा) 'हे देव ! दयावश आपने बहुत दुःख पाया । आप समाज सहित बन में आये। अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिये ।' यह सुन राजा जनक जी ने धीरज धरकर गमन किया । फिर श्री रामचन्द्र जी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु और शिव के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया । तब श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाई सास के पास गये और उनके चरणों की वन्दना करके आशीर्वाद पाकर लौट आये । फिर विश्वामित्र, वामदेव, जावालि और शुभ आचरण वाले कुटुम्बी, नगरनिवासी और मन्त्री सब को छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी ने यथा योग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया । कृपा निधान श्री रामचन्द्र जी ने छोटे, मध्यम (मझले)और बड़े सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुष का सम्मान करके उनको लौटाया ।

दो०— भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि ।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि ।।३१९।।

भावार्थ— भरत जी की माता कैकेयी के चरणों की वन्दना करके प्रभु श्री राम चन्द्र जी ने पवित्र (निश्छल) प्रेम के साथ उनसे मिल-भेंट कर तथा उनके सारे संकोच और सोच को मिटा कर, पालकी सजाकर उनको विदा किया ।

परिजन मातु पितहि मिलि सीता । फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनामु भेंटीं सब सासू । प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू ॥
सुनि सिख अभिमत आसिष पाई । रही सीय दुहु प्रीति समाई ॥
रघुपति पटु पालकीं मगाईं । करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाईं ॥
बार बार हिलि मिलि दुहु भाईं । सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं ॥
साजि बाजि गज बाहन नाना । भरत भूप दल कीन्ह पयाना ॥
हृदयँ रामु सिय लखन समेता । चले जाहिं सब लोग अचेता ॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें । चले जाहिं परबस मन मारें ॥

भावार्थ— प्राणप्रिय पति श्री रामचन्द्र जी के साथ पवित्र करने वाली सीता जी नैहर के कुटुम्बियों से तथा माता-पिता से मिलकर लौट आईं । फिर प्रणाम करके सब सासुओं से गले लगकर मिलीं । उनके प्रेम का वर्णन करने के लिए कवि के लिए हृदय में हुलास (उत्साह)नहीं होता । उनकी शिक्षा सुनकर और मन चाहा आशीर्वाद पाकर सीता जी, सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओर की प्रीति में समायी (बहुत देर तक निमग्न)रहीं । श्री

रघुनाथ जी ने सुन्दर पालकियाँ मँगवायीं और सब माताओं को आश्वासन देकर उन पर चढ़ाया। दोनों भाइयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिल जुल कर उनको पहुँचाया। भरत जी और राजा जनक जी के दलों ने घोड़े हाथी और अनेकों तरह की सवारियां सजाकर प्रस्थान किया। सीता जी एवं लक्ष्मण जी सहित श्री रामचन्द्र जी को हृदय में रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहें हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु हृदय से हारे (शिथिल)हुए परवश मन मारे चले जा रहे हैं।

दो० – गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत ।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत ।।३२०।।

भावार्थ– गुरु वशिष्ठ जी और गुरुपत्नी अरुन्धती जी के चरणों की वन्दना करके, सीता जी और लक्ष्मण जी सहित प्रभु श्री रामचन्द्र जी हर्ष और विषाद के साथ लौटकर पर्ण कुटी पर आये।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू ।।
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ।।
प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं । प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ।।
भरत सनेह सुभाउ सुबानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी ।।
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । श्री मुख राम प्रेम बस बरनी ।।
तेहि अवसर खग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ।।
बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की । बरषि सुमन कहि गति घर घर की ।।
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरो सो ।।

भावार्थ– फिर सम्मान करके निषादराज को विदा किया। वह चला तो सही किन्तु उसके हृदय में विरह का बड़ा भारी विषाद था। फिर श्री रामचन्द्र जी ने कोल, किरात, भील आदि बनवासी लोगों को लौटाया। वे सब जोहार जोहार कर (वन्दना कर-करके) लौटे। प्रभु श्री रामचन्द्र जी, सीता जी और लक्ष्मण जी बड़ की छाया में बैठ कर प्रियजन एवं परिवार के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। भरत जी के स्नेह, स्वभाव और सुन्दर वाणी को बखान-बखान कर के,राम प्रिय पत्नी सीता जी और छोटे भाई लक्ष्मण जी से कहने लगे। श्री रामचन्द्र जी ने प्रेम के वश होकर भरत जी के वचन, मन, कर्म की प्रीति तथा विश्वास का अपने श्री मुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी-पशु और जल की मछलियाँ, चित्रकूट के सभी चेतन और जड़ जीव उदास हो गये। श्री रघुनाथ जी की दशा देखकर देवताओं ने उन पर फूल बरसाकर घर-घर की दशा कही (दुखड़ा सुनाया)। प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मन में ज़रा सा भी डर नहीं रहा।

दो० – सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर ।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर ।।३२१।।

भावार्थ– छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीता जी समेत प्रभु श्री रामचन्द्र जी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण करके शोभित हो रहे हैं।

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू । राम बिरहँ सबु साजु बिहालू ।।
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ।।
जमुना उतरि पार सबु भयऊ । सो बासरु बिनु भोजन गयऊ ।।
उतरि देवसरि दूसर बासू । रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू ।।
सई उतरि गोमतीं नहाए । चौथें दिवस अवधपुर आए ।।
जनकु रहे पुर बासर चारी । राज काज सब साज सँभारी ।।
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू । तेरहुति चले साजि सबु साजू ।।
नगर नारि नर गुर सिख मानी । बसे सुखेन राम रजधानी ।।

भावार्थ– मुनि, ब्राह्मण, गुरू वशिष्ठ जी, भरत जी और राजा जनक जी सारा समाज श्री रामचन्द्र जी के विरह में विह्वल हैं। प्रभु के गुण समूहों का मन में स्मरण करते हुए सब लोग मार्ग में चुपचाप चले जा रहे हैं। (पहले दिन)सब लोग यमुना जी उतर कर पार हुए। वह दिन विना भोजन के ही बीत गया। दूसरा मुकाम गंगाजी उतर कर (गंगा पार श्रृंगवेरपुर में)हुआ। वहाँ राम सखा निषाद राज ने सब प्रबन्ध कर दिया। फिर सई उतर कर गोमती जी में स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्या जी जा पहुँचे। जनक जी चार दिन अयोध्या जी में रहे और राजकाज और सब साज समाज को सम्हाल कर और मन्त्री, गुरु जी तथा भरत जी को राज्य सौंप कर सारा सामान ठीक करके तिरहुत को चले। नगर के स्त्री-पुरुष, गुरु जी की शिक्षा मानकर श्री रामचन्द्र जी की राजधानी अयोध्या जी में सुख पूर्वक रहने लगे।

दो० – राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास ।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस ।।३२२।।

भावार्थ– सब लोग श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के लिए नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग सुखों को छोड़कर अवधि की आशा पर ही जी रहे हैं।

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे ।।
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मातु सेवकाई ।।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम बय बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू । आयसु देब न करब सँकोचू ॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाए । समाधानु करि सुबस बसाए ॥
सानुज गे गुर गेहँ बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥
आयसु होइ त रहौं सनेमा । बोले मुनि तन पुलकि सपेमा ॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरम सारु जग होइहि सोई ॥

भावार्थ– भरत जी ने मन्त्रियों और विश्वासी सेवकों को समझा कर उद्यत किया । वे सब सीख पाकर अपने-अपने काम में लग गये । फिर छोटे-भाई (शत्रुघ्न जी) को बुला कर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उनको सौंपी । ब्राह्मणों को बुला कर भरत जी ने हाथ जोड़ कर प्रणाम कर अवस्था के अनुसार विनय और निहोरा किया कि आप लोग ऊँचा-नीचा (छोटा-बड़ा)अच्छा-बुरा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिए आज्ञा दीजिएगा । सँकोच न कीजियेगा । भरत जी ने फिर परिवार के लोगों को तथा अन्य प्रजा को बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया । फिर छोटे भाई शत्रुघ्न सहित वे गुरु जी के घर गये और दण्डवत करके हाथ जोड़ कर बोले–'आज्ञा हो तो मैं नियम पूर्वक रहूँ ।' मुनि वशिष्ठ जी पुलकित शरीर हो प्रेम के साथ बोले 'हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे,कहोगे और करोगे, वही जगत में धर्म का सार होगा ।'

दो० – सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि ।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ।।३२३।।

भावार्थ– भरत जी ने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और दिन (अच्छा मुहुर्त)साधकर प्रभु की चरण पादुकाओं को शान्ति पूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया ।

राम मातु गुर पद सिरु नाई । प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ।
नंदिगावँ करि परन कुटीरा । कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥
जटाजूट सिर मुनि पट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राजु सुरराजु सिहाई । दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥

भावार्थ— फिर राममाता कौशल्या जी और गुरू जी के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरण पादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरत जी ने नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में निवास किया। सिर पर जटाजूट और शरीर में मुनियों के बल्कल धारण कर, पृथ्वी को खोद कर अंदर कुश की आसनी बिछायी। भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम, सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे। गहने-कपडे और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन, और वचन से और तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इन्द्र सिहाते थे और दशरथ जी की सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे, उसी अयोध्यापुरी में भरत जी अनासक्त होकर, इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पा के बाग में भौंरा। श्री रामचन्द्र जी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास को (भोगैश्वर्य को)वमन की भाँति त्याग देते हैं।

दो० — राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति ।।३२४।।

भावार्थ— फिर भरत जी तो श्री रामचन्द्र जी के प्रेम के पात्र हैं। वे इस (भोगैश्वर्य त्यागरूप) करनी से बड़े नहीं हुए (अर्थात् उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है)। चातक की पृथ्वी पर जल न पीने की टेक से और हंस की नीर-क्षीर विवेक की विभूति (शक्ति)से ही सराहना होती है।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई ।।
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ।।
जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे ।।
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा ।।
ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ।।
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा ।।
भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ।।
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ।।

भावार्थ— भरत जी का शरीर दिनों दिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदि से उत्पन्न होने वाला मेद) घट रहा है। बल और मुख छबि (मुख की कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। राम प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात् प्रसन्न है)। जैसे शरद ऋतु के प्रकाश (विकास)से जल घटता है किन्तु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। सम, दम, सैयम, नियम उपवास आदि भरत जी के हृदय रूपि निर्मल आकाश के नक्षत्र (तारागण)हैं। विश्वास ही

उस आकाश में ध्रुव तारा है, चौदह वर्ष की अवधि (का ध्यान)पूर्णिमा के समान है। और स्वामी श्री रामचन्द्र जी की सुरति (स्मृति)आकाश-गंगा-सरीखी प्रकाशित है। राम प्रेम ही अचल (सदा रहने वाला)और कलंक रहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों)सहित नित्य सुन्दर सुशोभित है। भरत जी की रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी सुकवि सकुचाते हैं। क्योंकि वहाँ (औरों की तो बात ही क्या)स्वयं शेष, गणेश, और सरस्वती की भी पहुँच नहीं है।

दो० — नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति ।।३२५।।

भावार्थ— वे नित्य प्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं। हृदय में प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओं से आज्ञा माँग माँग कर वे बहुत प्रकार (सब प्रकार) के राज-काज करते हैं।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू ।।
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ।।
दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ।।
परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू ।।
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू ।।
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू ।।
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ।।

भावार्थ— शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीता राम जी हैं। जीभ श्री राम जी का नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेम का जल भरा है। लक्ष्मण जी, श्री राम जी, और सीता जी तो बन में बसते हैं, परन्तु भरत जी घर में रह कर तप से शरीर को कस रहे हैं। दोनों ओर की स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरत जी सब प्रकार से सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और नियमों को सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं। भरत जी का परम पवित्र आचरण (चरित्र)मधुर, सुन्दर और आनन्द-मंगलों का करने वाला है। कलियुग के कठिन पापों और क्लेशों को हरने वाला है। महामोह रूपी रात्रि नष्ट करने के लिए सूर्य (के समान) है। पाप समूह रूपी हाथी के लिए सिंह है। सारे सन्तापों के दल का नाश करने वाला है। भक्तों को आनन्द देने वाला और भव के भार (संसार के दुःख)का भंजन करने वाला तथा श्री राम प्रेम रूपी चन्द्रमा का सार (अमृत)है।

छं० — सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को ।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

सो०— भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ।।३२६।।

भावार्थ— श्री सीताराम जी के प्रेमामृत से परिपूर्ण भरत जी का जन्म यदि न होता, तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता ? दुःख, सन्ताप, दारिद्र, दम्भ आदि दोषों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? तथा कलिकाल में तुलसी दास जैसे शठों को हठपूर्वक कौन श्री रामजी के सम्मुख करता ? तुलसीदास जी कहते हैं 'जो कोई भरत जी के चरित्र को नियम से आदर पूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही श्री सीताराम जी के चरणों मे प्रेम होगा । और सांसारिक विषय-रस से वैराग्य होगा ।'

टिप्पणी— ऊपर अयोध्याकाण्ड का तेरहवाँ और अन्तिम छन्द और सोरठा है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो कोई भरत जी के चरित्र को नियम से आदरपूर्वक सुनेगा, उसका अवश्य ही श्री सीताराम के चरणों में प्रेम होगा । और सांसारिक विषय रस से वैराग्य होगा । अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्ध (दोहा १६० से सोरठा ३२६ तक) में भरत का चरित्र उजागर किया गया है । उसका सारांश यह है कि यदि भरत का जन्म न होता तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता ? दुःख, सन्ताप, दारिद्र, दम्भ आदि दोषों को कौन हरता ? तथा कलियुग में पापियों को कौन राम के सम्मुख करता ?

इसी प्रकार बालकाण्ड के उत्तरार्ध (दोहा २१२ से सोरठा ३६१ तक) में सीता- राम के विवाह का वर्णन किया गया है । और अन्त में तुलसीदास जी कहते हैं कि जो लोग सीता-राम के विवाह-प्रसंग को प्रेमपूर्वक गाते-सुनते हैं, उनका जीवन सर्वदा आनन्दमय है, क्योंकि श्री राम का यश मंगलधाम है ।

दोनों सोरठों का लक्ष्य एक ही है । जनता में राम के प्रति प्रेम और भक्ति को उजागर करना । राम तो पिता के आदेश से वन गए थे । परन्तु भरत ने स्वयं आई हुई राज्य लक्ष्मी को ठुकरा दिया और अपने ज्येष्ठ भ्राता का अनुकरण करते हुए १४ वर्ष अयोध्या से बाहर नन्दी ग्राम में रहकर कठोर तप और व्रत किये और एक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया । अतएव जो भरत का यश गान करेंगे उन्हें राम की भक्ति अनायास प्राप्त हो जायेगी । और जो सीता-राम के विवाह-प्रसंग को गाये-सुनेंगे उनका जीवन सर्वदा और सर्वथा आनन्द और मंगलमय होगा ।

लोकोक्तियाँ

लोकोक्ति	पृष्ठ
सीय राममय सब जग जानी।	२२
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥	२५
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुर सरि सम सब कहँ हित होई॥	३७
होइहि सोई जो राम रचि राखा।	९२
हरि इच्छा भावी बलवाना।	९६
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाई जाहिं मद नाहीं॥	१००
जो विधि लिखा लिलार......कोउ न मेटनिहार॥	१०८
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाई।	१०९
जेहि कर मन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥	११९
पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसन्सहिं तेही॥	१२३
जस दूलहु तसि बनी बराता।	१३४
सो न टरइ जो रचइ विधाता॥	१३७-१३८
बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥	१३८
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं॥	१४४
हरि इच्छा बलवान	१७१
राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई।	१७२
हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता।	१८२-८५
तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलई सहाइ॥	२०२
गिरा अनयन, नयन बिनु बानी॥	२६८
जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥	२९०
वीर विहीन मही मैं जानी॥	२९३

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥ २९८

का बरषा सब कृषी सुखाने । ३००

इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं ॥ जे तरजनि देखि मरि जाहीं ॥ ३१२

बररै बालक एक सुभाऊ । ३१८

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि । ४०४

बवा से लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥ ४०७

कोउ नृप होउ हमहि का हानी ॥ ४०७

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहूँ बरु बचन न जाई ॥ ४१५

नहिं असत्य सम पातक पुँजा । ४२०

....नारि सुभाऊ । सब विधि अगहु अगाध दुराऊ ॥ ४३६

का न करै अबला प्रबल ४३६

औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु । ४६४

हानि लाभ जीवनु मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ ५५३

कारन से कारजु कठिन ५६१

दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ५७०

जग बौराइ राज पदु पाएँ ॥ ६०३

लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान ॥ ६०७

अरध तजहिं बुध सरबस जाता ॥ ६३१

सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥ ६३३

फरइ कि कोदव बालि सुसाली॥ ६३५

मुकता प्रसव कि संबुक काली ॥ ६३५

पात्र-परिचय

पात्र	पृष्ठ
अगस्त्य ऋषि	१२
अजामिल	५८
अत्रि ऋषि	५१८
अनुसूया	५१८
अहल्या	५४
इन्द्र	६०५
कबन्ध	७६१
कार्तिकेय	१४५
कालनेमि	२१
कुम्भकर्ण	१६
खर	७३२
गजेन्द्र	५८
गणिका	५८
गालव	४४९
चन्द्रमा	६०४
चित्रकेतु	११८
जयन्त	७०३
जय-विजय	१६५
जलंधर	१६७
ताड़का	५४
तारकासुर	१२१
तारा	६०४
तुलसी	७१२
त्रिशंकु	६०५
दधीचि	४२२
दण्ड	७२४
दक्ष	१०१, १०५
दक्ष पुत्र	१०२
दुर्वासा	५९४

दूषण	५७
ध्रुव	४५०
नहुष	१६९
नारद	२६९
निमि	१६
पृथुराज	१२८
प्रद्युम्न	५७
प्रह्लाद	३०७
परशुराम	४२२
बलि	२५४
भगीरथ	६५७
मार्कण्डेय	२६९
मिथि	५३३
ययाति	४८०
रन्तिदेव	२१६
रावण	२१
राहु	२९२
वाणासुर	६६६
वाराह	७१५
विराध	६०४
वेन	७६२
शबरी	७१५
शरभंग	५४०
श्रवणकुमार	४१८
शिवि	५३३
सम्पाति	३११
सहस्त्रबाहु	७१८
सुतीक्षण	४१९
हरिश्चन्द्र	११८
हिरण्यकश्यप	

पाठ शुद्धि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	१७	स्वन्त:	स्वान्त:
१६	२३	वेन के राजा	वेन राजा
९३	४	वही होता	होता वही
३२२	१२	बनजबन	बनज बन
३२९	१०	गुरू	गुरु
३२९	११	कौशिल्या	कौशल्या
३४५	३.	भगवान्	भगवान
४१५	१४	दस	तेरह
४१५	२१	बालकाण्य	बालकाण्ड
४३६	अन्तिम	३९३	३९२
४३९	२४	को ई	कोई
४३९	२५	चलाओ ।"	चलाओ ।
४५०	२७	हम पैर	पैर
४८०	२१	५०	४१८
	२२	५१	४१९
	२३	५८	४२२
	२४	५९	४२२
४५१	१८	क छु	कछु

४८३	२०	एताह्स	एतादृस
४८४	८	आदपीठम्	ंपादपीठम्
४८८	११और २४	५९	४२२
४८८	२०	जाह्ववी	जाह्नवी
५३५	२२	श्रंगवेरपुर	शृंगवेरपुर
५५३	२१	आपन	आपुनु
५५९	१०	छटा	सातवाँ
५७९	२५	सातवाँ	आठवाँ
५८०	१ और २७	श्रृंगवेरपुर	शृंगवेरपुर
५९४	पादटिप्पणी	५१९	५१८
६०१	२५	[illegible]	नवाँ
६०६	१०	महोदव	महौदय
६०९	८	२९३-९४	२९४
६२७	७	नवाँ	दसवाँ
६३१	७	अर्धम	अर्धम्
६४९	पहली	नवाँ	ग्यारहवाँ
६५७	१०	पद्यपुराण	पद्मपुराण
६७१	१४	नवाँ	बारहवाँ
६७२	८	जो	जौं
६८४	२५	५५९-६०	५६०
६८७	२५	६७५	६७६
६८८	११	के अरक्षित	के—अरक्षित